MARATHI SE HINDI MEIN ANOODIT VIMUKT EVAM GHUMANTOO JANJATIYON KI AATMKATHAON MEIN YATHARTH

Thesis submitted in Partial Fulfillment of the Requirement For the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY in Hindi

Submitted By

DHARASURE VYANKAT BAPURAO

16HHPH04

Under the guidance of

Dr. M. Anjaneyulu

Under the co- guidance of

Prof. R. S. Sarraju

Head of Department
Prof. Gajendra kumar Pathak
Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
P.O. Central University, Gachibowli,
Hyderabad-500046
Telangana, India

2021

मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में यथार्थ

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

जून-2021

शोधार्थी

धारासुरे व्यंकट बापूराव

16HHPH04

शोध-निर्देशक

डॉ. एम. आन्जनेयुलू

सह- शोध निर्देशक

प्रो. आर. एस. सर्राजू

विभागाध्यक्ष

प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

2021

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“MARATHI SE HINDI MEIN ANOODIT VIMUKT EVAM GHUMANTOO JANJATIYON KI AATMKATHAON MEIN YATHARTH”** (**मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में यथार्थ**) submitted by **DHARASURE VYANKAT BAPURAO** bearing Regd. No. 16HHPH04 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Signature of Co- Supervisor

Head of the Department

Dean of the school of Humanities

DECLARATION

I, **DHARASURE VYANKAT BAPURAO** hereby declare that the thesis entitled **"MARATHI SE HINDI MEIN ANOODIT VIMUKT EVAM GHUMANTOO JANJATIYON KI AATMKATHAON MEIN YATHARTH"** (**मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में यथार्थ**) submitted by me under the guidance and supervision of Dr. M. Anjaneyulu and Co-Supervisor Prof. R. S. Sarraju is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga/INFLIBNET.

Date : / /2021

Signature of the student

DHARASURE VYANKAT BAPURAO

Regd. No. 16HHPH04

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"MARATHI SE HINDI MEIN ANOODIT VIMUKT EVAM GHUMANTOO JANJATIYON KI AATMKATHAON MEIN YATHARTH"** (**मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में यथार्थ**) submitted by **DHARASURE VYANKAT BAPURAO** bearing Regd. No. 16HHPH04 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.
Parts of this thesis have been:

A. Published in the following publications:

1. 'Ghumantoo Janjatiyon Ki Shram Sanskruti', (Shodh Dhara, ISSN : 0975-3664) March-2019
2. Dombari Samuday Ka Samajshastra, (Vidyawarta, ISSN 2319-9318) February- 2019

B. Presented in the following conference:

1. Vimukt-Ghumantoo Aadivasiyon Ki Samasyayen Aur Nidan, (National) Gondvana Swadesh- Masik Patrika, Raipur (Chhattisgarh) Dwara Aayojit Evam Sanskruti Vibhag va Aadivasi Vikas Vibhag, Chhattisgarh Prashasan Dwara Prayojit- 27, 28 and 29 December 2019.
2. Vimukt Evam Ghumantoo Janjateey Aatmkatha Lekhan Ki Parampara, (National) Shivaji Vidyapeeth Hindi Pradhyapak Parishad ke Santyukt Tatavavdhan Mein Parishad ka Pancham Adhiveshan Tatha Ek Divasiya Rashtriay Sanghoshthi- 07 Decenber 2019.

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D. was exempted from doing coursework (recommended by Doctoral committee) on the basis of the following courses passed during his M.Phil. Program and the M.Phil. Degree was awarded.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1. HN701	Research Methodology	4	Pass
2. HN721	Modern Thought	4	Pass
3. HN722	Sociology of Literature	4	Pass
4. HN726	Sahitya Media Aur sanskrauti	4	Pass

5. HH750	Dissertation	16	Pass

Further the student has passed the following courses toward fulfillment of course wark requirement for ph.D.-

Course Code	**Name**	**Credits**	**Pass/Fail**
1. HN801	Critical Approaches to research	4	Pass
2. HN802	Research Paper	4	Pass
3. HN826	The Ideological background of Hindi Literature	4	Pass
4. HN827	Practical Review of the text	4	Pass

Supervisor	Head of Department	Dean of School
Dept. of Hindi	Dept. of Hindi	School of Humanities

भूमिका...✍

भारत में आज भी कुछ ऐसी अभागी जनजातियाँ मौजूद हैं जो आजादी का अर्थ नहीं जानती है । उनके पास न तो अपनी जमीन है और न ठिकाने का घर । औपनिवेशिक शासन ने उन्हें 'जरायमपेशा'*[1] जाति घोषित कर न केवल सभ्य समाज के नजरों में उपेक्षित किया बल्कि पुलिसिया अत्याचार का नारम चारा भी बना दिया । यद्यपि देश की स्वतंत्रता के बाद इन जनजातियों को समान नागरिकता का अधिकार तो प्राप्त हुआ, पर जीविकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन उपलब्ध नहीं हुआ था । यही कारण है कि इन जनजातियों को आजीविका चलाने अपराधिकरण और देह व्यापार के लिए विवश होना पड़ा ।

मराठी में दलित साहित्य की आत्मकथाओं के साथ-साथ विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के युवाओं ने भी आत्मकथाओं के माध्यम से विचार व्यक्त किया है । जिसके माध्यम से विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का संघर्षमय जीवन के साथ-साथ उनके दुःख, दारिद्रय, गरीबी एवं अशिक्षा का फ़ायदा उठाने वाले राजनीतिक लोगों, पुलिस अधिकारीयों, जमींदारों, साहूकारों से जनजाति के लोगों पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार, हिंसा, शोषण आदि को वर्णित किया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर केंद्रित आत्मकथाओं का अध्ययन किया गया है । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर केंद्रित आत्मकथाओं के दो आयाम हैं- 1. विमुक्त घुमंतुओं द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ 2. घुमंतू जनजातियों द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ । इस प्रबंध में विमुक्त एवं घुमंतू दोनों जनजातियों के आत्मकथाकारों द्वारा लिखी गयी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की मराठी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाओं का अध्ययन किया गया है । अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को छह अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

पहला अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अवधारणा', जिसके अंतर्गत विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की परिभाषा व स्वरूप पर विवेचन किया गया है । साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का परिचय, महाराष्ट्र की विमुक्त एवं घुमंतू

---

* अनेक प्रकार के अपराध या गुनाह का पेशा

जनजातियाँ नामक उपशीर्षक के अंतर्गत महाराष्ट्र की विमुक्त जातियों और घुमंतू जनजातियों का सामाजिक, ऐतिहासिक और वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है।

दूसरा अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर आधारित आत्मकथाएँ' के अंतर्गत आत्मकथा की परिभाषाओं और स्वरूप को बताते हुए, हिंदी में आत्मकथा लेखन का उद्‌द्भव और विकास का परिचय दिया गया है। अगले उपशीर्षक में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथा लेखन एवं प्रेरणास्रोत का विवेचन करते हुए, मराठी में लिखित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया तथा मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के आत्मकथाकारों और आत्मकथाओं का विस्तृत परिचय दिया गया है।

तीसरा अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ' के अंतर्गत 'यथार्थ से तात्पर्य और विवेच्य रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक परिस्थिति के यथार्थ को देखा गया। जिसके अंतर्गत समाज में फैली जातीयता के लेखकीय अनुभव, सन् 1871 का कानून और समाज की मानसिकता, अंधविश्वास, जात पंचायत, नारियों की स्थिति में पारिवारिक स्त्री, शोषित स्त्री, परित्यक्ता स्त्री और देवदासी स्त्रियों का यथार्थपूर्ण अध्ययन एवं मूल्यांकन किया गया है। इसी अध्याय के दूसरे उप अध्याय में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं का विश्लेषण किया गया। जिसके अंतर्गत जनजातियों की जीवन प्रणाली, आवास व्यवस्था, खान-पान, वेशभूषा-आभूषण, जन्म एवं नामकरण, विवाह संस्कार, त्यौहार-पर्व, रीति-रिवाज एवं विवेच्य आत्मकथाओं में स्थित जनजातियों का पारंपरिक व्यवसाय को यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर अध्ययन एवं विवेचन किया गया है।

चौथा अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ' के अंतर्गत आर्थिक स्थिति में विमुक्त एवं घुमंतुओं की आर्थिक स्थिति, जात पंचायत द्वारा शोषण, जनजातियों का आर्थिक संघर्ष और गरीबी और भूख के सवालों का विश्लेषण करते हुए जीविकोपार्जन के साधनों का अध्ययन, मूल्यांकन एवं विवेचन किया गया है। इसी अध्याय के दूसरे उपशीर्षक में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में राजनीतिक स्थिति पर अध्ययन, विश्लेषण करते हुए, प्रगतिशील विचार और आंदोलन, दलित

पैंथर आंदोलन का प्रभाव और विमुक्त एवं घुमंतुओं के संगठन कार्य तथा विमुक्त-घुमंतुओं का राजनीति में स्थान को रेखांकित किया गया है ।

पाँचवा अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में शैक्षणिक-संवैधानिक परिस्थितियों का यथार्थ' के अंतर्गत शैक्षणिक स्थितियों में विमुक्त एवं घुमंतुओं की शैक्षणिक शुरुआत, शैक्षणिक सहायता और संघर्ष, तकनीकी का अभाव एवं प्रभाव और आरक्षण और उसके लाभ का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है । इसी के अंतर्गत दूसरे उपअध्याय में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की संवैधानिक स्थिति में वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार की शुरुआत, भारत में मानवाधिकार की पृष्ठभूमि और विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए मानवाधिकार को रेखांकित करते हुए, भारतीय संविधान व्यवस्था और डी.एन.टीज्*[2] उपशीर्षक में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक प्रावधान । जिनमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सेवा में संरक्षण और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष संरक्षण देखे गए हैं । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और संविधान के अंतर्गत महाराष्ट्र प्रशासन में अन्य पिछड़ा वर्ग के अधीन डी.एन.टीज् का स्थान और अब तक विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए बनायी गयी समितियाँ और राष्ट्रीय आयोग के प्रस्ताव और क्रियान्वयन को रेखांकित करते हुए, सामाजिक एकता में डी.एन.टीज् के योगदान का अध्ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है ।

छटवां अध्याय- 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की विवेच्य आत्मकथाओं का शिल्प-विधान' के अंतर्गत भाषागत विशेषताओं में बिंब, प्रतिक तथा मिथकीय बिंब का विश्लेषण किया है । शैलीगत विश्लेषण में वर्णनात्मक, संवादात्मक, विचारात्मक, पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक शैलियों का शोध की दृष्टि से खोज किया है । भाषागत प्रयोग (शब्द चयन) में अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी, तेलुगु, मराठी, ग्रामीण बोली, पुनरुक्ति शब्दों तथा हीनताबोध करने वाले या जाति वाचक, अश्लील भाषा के विभिन्न शब्दों और कहावतें एवं लोकोक्तियों के प्रयोग का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है ।

इस तरह इस शोध के द्वारा मैंने विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का विस्तृत अध्ययन, विश्लेषण एवं विवेचन कर उनकी वास्तविक परिस्थितियों को उजागर कर निष्कर्षों तक पहुँचा, जो उपसंहार में वर्णित है । परिशिष्ट के अंतर्गत आलोच्य संदर्भ ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाओं तथा वेबसाइट की सूचि जोड़ दी गयी है ।

* Denotified and nomadic tribes (विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति)

इस शोध को पूरा करने में कई लोगों का आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनमें महत्वपूर्ण सहयोग मेरे शोध निर्देशक डॉ.एम. आन्जनेयुलु से प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरे द्वारा व्यक्त विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथा को लेकर जिज्ञासा पर मेरी रूचि देखकर मुझे इस शोध विषय पर शोधकार्य करने की अनुमति दी और शोध पूरा करने के लिए हमेशा अपना बहुमूल्य समय देकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसलिए सहृदय से उनका आभारी हूँ। विश्वविद्यालय के कई शिक्षकों का सहयोग मिलता रहा, खासकर पूर्व विभागाध्यक्ष तथा सह-शोध निर्देशक प्रो.आर.एस.सर्राजू को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मेरे मनपसंद विषय पर मुझे कार्य करने की अनुमति प्रदान की। साथ ही वर्तमान विभाग अध्यक्ष प्रो.गजेन्द्र कुमार पाठक और विभाग के डॉ.भीम सिंह, प्रो.विष्णु सरवदे, प्रो.श्यामराव तथा समस्त गुरुजनों, ग्रंथालय के कर्मचारियों और साहित्यिक मित्रों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिनके कार्यकाल और सहयोग में मैं सफलतापूर्वक अपना शोध कार्य बिना किसी रूकावट के समय पर पूरा कर पाया।

महाराष्ट्र तथा अन्य राज्यों के विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लेखक तथा कार्यकर्ताओं का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। जिनमें लक्ष्मण गायकवाड़ ने समय-समय पर महाराष्ट्र की जनजातियों पर विचार-विमर्श करने अपना असीमित समय उपलब्ध कराया। साथ ही औरंगाबाद से स्वर्गीय मोतिराज राठोड, के.ओ.गिर्हे, नांदेड से डॉ.संजय बालाघाटे, डॉ.संजय हापगुंडे, प्रा. वैजनाथ अनमुलवाड, चंद्रपुर से अशोक पवार, कोल्हापुर से दादासाहब मोरे और उत्तर प्रदेश से रमाशंकर सिंह, राजस्थान से हरिराम मीणा, मध्यप्रदेश से प्रेम प्रकाश, संदीप नाईक 'दादा' और मोहन नरवरिया के प्रति मैं कृतज्ञतापूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ।

साथ ही मैं हमेशा जिनका ऋणी रहकर उनसे आशीष की मनीषा रखता हूँ, डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे, डॉ. जोगेंद्र सिंह बिसेन, स्वर्गीय प्रो.संजय नवले, डॉ.प्रदीप सूर्यवंशी, प्रो.अर्जुन चव्हाण, डॉ.चंदू खंदारे, डॉ.साईनाथ चपले, डॉ.माधव मुंडकर, डॉ.लक्ष्मण तोंडाकुर, राम रेड्डी, वाल्मीक वाघमारे, डॉ.अनिलकुमार, डॉ.कैलास घाटे, भाई सतिश अनमुलवाड़, गोब्बला लक्ष्मण, डॉ.राजेश्वर बोलचटवार, सेतु, प्रविन्द्र और मंजू के प्रति भी मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने मुझे सही दिशा-निर्देश किया।

अतः मेरे जीवन की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने और मौलिकता लाने में 'छात्रवृत्ति' उपलब्ध कराने के लिए 'यूजीसी' का अंतःकरणपूर्वक आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य समझता हूँ। मेरे माता-पिता, दादियाँ, चाचा-चाचियाँ, भाइयों, बहनों और मेरे मार्गदर्शक जिनका हमेशा मेरे प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रहा वे जीजाजी मनोहर येरकलवार का शोधकार्य करने के लिए

निरंतर प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसलिए मैं इन सबका और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में जिनका सहकार्य मिला उन सब का मनःपूर्वक आभारी हूँ, सब का ऋणी रहूँगा।

-धारासुरे व्यंकट बापूराव

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका **7-11**

पहला अध्याय : विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अवधारणा **19-73**

1.1. भारतीय परिप्रेक्ष्य में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का परिचय 21

1.2. महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ 29

1.2.1. महाराष्ट्र के विमुक्त जनजातियों का परिचय

1.2.2. महाराष्ट्र के घुमंतू जनजातियों का परिचय

दूसरा अध्याय : विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर आधारित आत्मकथाएँ **74-114**

2.1. आत्मकथा : परिभाषा एवं स्वरूप 74

2.2. हिंदी में आत्मकथा लेखन : उद्भव और विकास 78

2.3. विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथा : लेखन एवं प्रेरणास्त्रोत 80

2.3.1. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ

2.3.2. मराठी में लिखित विमुक्त जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

2.3.3. मराठी में लिखित घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

2.3.4. मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

तीसरा अध्याय : विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ **115-176**

3.1. यथार्थ से तात्पर्य 115

3.2. विवेच्य रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति 117

3.3. सामाजिक स्थिति **120**

3.3.1. जातीयता के लेखकीय अनुभव

3.3.2. 1871 का एक्ट और समाज की मानसिकता

3.3.3. अंधविश्वास

3.3.4. जातपंचायत

3.3.5. नारी स्थिति

3.3.5.1. पारिवारिक स्त्री

3.3.5.2. शोषित स्त्री

3.3.5.3. परित्यक्ता स्त्री

3.3.5.4. देवदासी स्त्री

3.4. सांस्कृतिक विशेषताएँ **158**

3.4.1. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की जीवन प्रणाली

3.4.2. विमुक्त-घुमंतू जनजातियों की आवास व्यवस्था

3.4.3. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का खान-पान

3.4.3.1. शाकाहारी भोजन

3.4.3.2. मांसाहारी भोजन

3.4.3.3. मद्यपान

3.4.4. वेशभूषा एवं आभूषण

3.4.5. विमुक्त-घुमंतू जनजातिओं के संस्कार

3.4.5.1. जन्म एवं नामकरण संस्कार

3.4.6. विवाह संस्कार

3.4.6.1. बाल विवाह

3.4.6.2. अनमेल विवाह और विधवा विवाह

3.4.7. विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के त्यौहार

3.4.8. विमुक्त-घुमंतू जनजातियों का पारंपरिक व्यवसाय

चौथा अध्याय : विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ 177-222

4.1 : आर्थिक स्थिति 177

4.1.1. विमुक्त-घुमंतुओं की आर्थिक स्थिति

4.1.2. जात पंचायत द्वारा शोषण

4.1.3. आर्थिक संघर्ष और शोषण का चित्रण

4.1.4. गरीबी और भूख के सवाल

4.2 : राजनीतिक स्थिति 195

4.2.1. प्रगतिशील विचार और आन्दोलन

4.2.2. दलित पैंथर आन्दोलन

4.2.3. विमुक्त एवं घुमंतुओं के संगठन और कार्य

4.2.4. विमुक्त-घुमंतुओं का राजनीति में स्थान

पाँचवा अध्याय : विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में शैक्षणिक और संवैधानिक परिस्थितियों का यथार्थ 223-281

5.1. शैक्षणिक परिस्थितियाँ 223

5.1.1. विमुक्त एवं घुमंतुओं की शैक्षिक शुरुआत

5.1.2. शैक्षणिक सहायता और संघर्ष

5.1.3. तकनीकी का अभाव एवं प्रभाव

5.1.4. आरक्षण और उसका लाभ

5.2. संवैधानिक परिस्थितियाँ 245

5.2.1. वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार की शुरुआत

5.2.2. भारत में मानवाधिकार की पृष्भूमि

5.2.3. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और मानवाधिकार

5.2.4. भारतीय संविधान व्यवस्था और डीएनटीज्

5.2.2.1.अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संवैधानिक प्रावधान

5.2.2.1.1. सामाजिक संरक्षण

5.2.2.1.2 आर्थिक संरक्षण

5.2.2.1.3. शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संरक्षण

5.2.2.1.4. राजनीतिक संरक्षण

5.2.2.1.5. सेवा में संरक्षण

5.2.2.1.6. अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष संरक्षण

5.2.2.3.विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और संविधान

5.2.2.3.1.अन्य पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत डीएनटीज् का स्थान

5.2.5. आयोगों के प्रस्ताव और क्रियान्वयन

छटवां अध्याय : विवेच्य विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का शिल्प विधान **282-305**

6.1. भाषागत विशेषताएँ 282

6.1.1. बिंब विधान

6.1.2. प्रतीक विधान

6.1.3. मिथकीय बिंब

6.2. शैलीगत विश्लेषण **292**

6.2.1. वर्णनात्मक शैली

6.2.2. संवादात्मक शैली

6.2.3. विचारात्मक शैली

6.2.4. पूर्वदीप्ति या फ्लैशबैक शैली

6.2.5. आत्मकथात्मक शैली

6.2.6. पत्रात्मक शैली

6.3. भाषागत प्रयोग (शब्द चयन) 297

6.3.1. अंग्रेजी शब्द

6.3.2. उर्दू, फ़ारसी शब्द

6.3.3. तेलुगु शब्द

6.3.4. मराठी शब्द

6.3.5. ग्रामीण बोली भाषा के शब्द

6.3.6. पुनरुक्ति शब्द

6.3.7. हीनता बोध कराने वाले या जातिवाचक शब्द

6.3.8. अश्लील भाषा के शब्द

6.4. कहावतें / लोकोक्तियाँ एवं मुहावरें 301

6.4.1. कहावतें / लोकोक्तियाँ

6.4.2. मुहावरें

6.5. मूल पाठ और अनूदित पाठ में तुलना/अंतर 302

6.5.1. सांकेतिक भाषा का प्रयोग

6.5.2. ग्रामीण भाषा का प्रयोग

6.5.3. मराठी शब्द प्रयोग

उपसंहार **306-318**

संदर्भ ग्रंथ सूची **319-328**

आधार ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

पत्र-पत्रिकाएँ

वेबसाइट (अंतर्जाल)

परिशिष्ट **329-351**

1. प्रकाशित शोध आलेख- 1
2. प्रकाशित शोध आलेख- 2
3. राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाणपत्र- 1
4. राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाणपत्र- 2
5. जनजातियों के साथ साक्षात्कार की तस्वीरें

पहला अध्याय

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अवधारणा

प्रस्तावना :

इस देश का एक नक्शा होते हुए भी इसमें अनेक देश बसे हुए हैं । वे स्वंय की जाति, संप्रदाय, धर्म के रीति-रिवाज, प्रथा-परंपरा, पूजा-आर्चना में उलझाकर रहनेवाले देश हैं । सार्वजानिक जीवन में कुछ प्रतिशत देश एकत्रित दिखाई देता हो, किंतु अन्य व्यवहारों में विविध जातियाँ खुद के संसार में मशगुल रहती हैं । आज भी इस देश का इंसान जाति में पैदा होता है, और जाति में ही गुजर जाता है । जाति यहाँ की वास्तविक सच्चाई है । जाति यहाँ इंसान को इंसान से दूर रखती है । आत्मसम्मान छीन लेती है । लाखों लोगों की पहचान मिटा देती है । उनका इतिहास, वर्तमान, भविष्य और भूगोल भी नकारा जाता है । जिनका गाँव न हो, सरकारी विभाग में नाम, जिन्हें सम्मान-प्रतिष्ठा नहीं ऐसी अनेक जाति-जनजातियाँ यहाँ मौजूद हैं । 'जो सैकड़ों सालों से बिना घर, गाँव के उदरनिर्वाह की तलाश घुमक्कड़ी कर रही है, उन्हें 'घुमंतू' कहा जाता है ।'

घुमंतू जनजातियाँ 'घुमंतू' के आलावा ख़ानाबदोश, यायावर, घुमक्कड़, अस्थिरवासी, यात्री, बंजारा आदि नामों से जानी जाती है । इनके लिए मराठी विश्वकोश में लिखा गया है- "उदरनिर्वाह अथवा व्यवसाय के कारण भटकने वाले समूह को सामान्यतः 'घुमंतू' कहा जाता है।' किंतु उनका उद्गम बहुत प्राचीन संस्कृति में पाया जाता है । अंग्रेजी में 'नोमड्स' का प्रयोग होता है । 'नोमड्' शब्द 'नोमी' अथवा 'नेमो' (मवेशी चारण) के ग्रीक शब्द से तैयार हुआ है । स्थायीरूप से घर और जमीन नहीं, परंतु मवेशियों के झुंड है, ऐसे समूह जानवरों के चारे की तलाश में घूमते हैं । इस प्रकार के समूहों के लिए 'नोमड्स' इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।"[3]

---

[3] मराठी विश्वकोश खंड-12, संपा- लक्ष्मणशास्त्री जोशी, म.रा.म.वि.नि. मं. मुंबई, आवृत्ति- 1985, पृ.सं- 19

*उदरनिर्वाहासाठी किंवा व्यवसायाच्या निमित्ताने भटकनार्या लोकांना सर्वसाधारणपणे 'भटके' असे म्हटले जाते. परन्तु त्यांचे मूल फार पुरातन संस्कृतीत असल्याचे आढलते. इंग्रजीत त्यांचा उल्लेख 'नोमड्स' असा करतात. 'नोमड्' हा शब्द 'नोमी' किंवा 'नेमो' (गुरे चारणे) या ग्रीक शब्दापासून तयार झालेला आहे. कायमस्वरूपी घर नाही किंवा शेतजमीन नाही, परन्तु गुरांचे कलप आहेत असे लोक घुरांसाठी चराऊ कुरनांच्या शोधार्थ सतत भटकत असतात. अशा लोकांना उद्देशून 'नोमड्स' हा शब्द वापरला जातो.

सदियों से अपनी घुमंतू प्रवृत्ति के कारण ये समूह अस्थायी रूप से किसी न किसी कार्य, लेन-देन के संपर्क से समाज में मौजूद हैं।

यही घुमक्कड़ जाति-जनजातियाँ इतिहास में कभी सरदार, सैनिक थे; आर्यों, मुग़लों, अंग्रेजों के शासन और युद्धों की वजह से इन मूलनिवासियों को पराजित होना पड़ा था। पराजित होने के कारण ये भोजन की खोज में भटकते रह गये। जंगलों, पहाड़-घाटियों के करीब रहने लगे। वहीं से स्थिर समाज को सेवाएँ प्रदान करने लगे। उदाहरण- वनौषधि, शिकार किये गए प्राणी आदि। आगे चलकर इनसे जंगल भी छिना गया। जंगलों को अपनी संपत्ति बनाकर रखने के लिए और जंगलों पर अंग्रेजों की हुकूमत ख़त्म करने के लिए अनेक युद्ध इन जाति-जनजातियों ने किया। अंग्रेजों के खिलाफ जगह-जगह पर विद्रोह किया, हैरान करके छोड़ा। अंग्रेजों के अलावा अन्य शासक वर्ग ने इन जातियों को सेना, युद्ध व अन्य कामों में शामिल किया। इस कारण यह जाति-जनजातियाँ अलग-अलग प्रकार की सेवाएँ दे सकी। व इन जनजातियों को राजा-महाराजाओं द्वारा ताम्रपत्र प्राप्त किया है।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में घुमंतू जनजातियाँ स्थानिक सेनानियों के साथ मिलकर अंग्रेजों का गोला-बारूद, बंदूके, खजाना लूटकर और अपने गोरिल्ला युद्ध नीतियों को अपनाकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में अपना एहम योगदान दिया है। आगे भी अंग्रेजों के प्रति जनजातियों का रुख देश की आजादी का ही रहा। इसलिए अंग्रेजों ने अपनी सत्ता कायम करने के लिए, और जनजातियों को काबू में लाने का तरीका 'भारतीय वन अधिनियम, 1865' द्वारा शाही वन विभाग (इम्पीरियल फ़ॉरेस्ट डिपार्टमेंट)के विभिन्न वनमंडलों द्वारा वनों पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। तथा सन् 1871 में 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' बनाकर सभी लड़ाकू जातियाँ-जनजातियों को 'गुनहगार' के अपराध में बंदी बनाया गया। वहाँ पर इन जनजातियों को काम करवाया था, और जो काम नहीं करते उसे कड़ी सज़ा देते थे। बाद में अंग्रेजों को पता चला की मारने से काम संभव नहीं, इस लिए अंग्रेजों ने इन लोगों को दिन में तीन बार हाज़िरी देने की शर्त लगायी। अंग्रेज यह भी समझते थे की 'इंसान बुरा नहीं होता है' इसलिए अंग्रेजों ने जेल में ही जनजातियों के लिए रोज़ गार, स्वस्थ्य और शिक्षा का प्रबंध किया और उनमें सुधार लाने का प्रयास भी किया था। यह सिलसिला भारत की आजादी तक चलता रहा।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। सन् 1949 में भारतीय संविधान लागू हुआ, किंतु इन जनजातियों को जेल (सेटलमेंट) से बाहर निकालने का प्रावधान नहीं किया। इसलिए भारत के प्रथम कानून मंत्री डॉ.अम्बेडकर ने अपने साथी सांसदों के द्वारा संसद में जनजातियों को सेटलमेंट से बाहर निकालने का प्रस्ताव रखा। तब भारत सरकार द्वारा तत्कालीन एक समिति का निर्माण किया गया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं.नेहरु ने 1871 के 'आपराधिक जनजाति अधिनियम' (क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट) को ख़त्म कर 31 अगस्त 1952 को 'आदतन आपराधिक अधिनियम' (हँबिचुँल अफेंडर्स एक्ट) के तहत बंदिस्त जनजातियों को 'विमुक्त' किया। तभी से यह जनजातियाँ 'विमुक्त जातियाँ' कहलाती हैं।

विमुक्त जनजातियों को 'विमुक्त' के आलावा स्वतंत्र किया हुआ, मुक्त किया हुआ, प्रतिबंध से छूटा हुआ, स्वच्छंद, आज़ाद, फेंका हुआ आदि नामों से जानी जाती है। 'विमुक्त' जनजातियों की अपराधी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए दादासाहब मोरे लिखते हैं-"सामाजिक परिस्थितियों का दबाव और आर्थिक विपन्नता के कारण कुछ घुमंतू जनजातियाँ गुनहगार प्रवृत्ति को मजबूरन स्वीकार किया। जिन्हें 'अपराधी जनजाति' के नाम से पहचाना जाता है।"[4] 'स्वतंत्र भारत में 'समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण और पुलिस प्रशासन में अंग्रेजों द्वारा बनाए गए 'अधिनियम' के तहत चले आ रहे 'कानून' से प्रताड़ित जनजातियों को 'विमुक्त' कहा जा सकता है।'

अतः 'विमुक्त जनजातियों' और परंपरागत प्रवृत्ति से घुमक्कड़ी करती आ रही 'घुमंतू जनजातियों' का परिचय निम्नलिखित दिया गया है-

1.1. भारतीय परिप्रेक्ष्य में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का परिचय

संपूर्ण भारत में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है। इदाते आयोग द्वारा इनकी जनसंख्या 15 करोड़ बताई गयी है। जो चार सौ से अधिक जातियों-उपजातियों में बिखरी हुई है। ये जनजातियाँ समाज में अपने परंपरागत व्यवसाय के साथ घुमक्कड़ी करते आ रही है। जिनमें- पशु-पालक, पहरेदार, कारीगर, शिकारी, वैद्यकी, नृतक, जादूगर, कलाबाज, भिक्षाटन, अपराध करनेवाली जातियाँ शामिल हैं। इनमें से अधिकांश जनजातियों का संबंध जंगल-पहाड़ियों से रहा है, कुछ का जंगल और गाँव दोनों से रहा है और कुछ जनजातियों का संबंध

[4] साठोत्तरी मराठी वांग्मयातील प्रवाह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, भटक्या-विमुक्तांचे साहित्य, दादासाहेब मोरे, दिलिप्रज प्रकाशन प्रा.लि. पुणे, द्वि.आ- 2014, पृ.सं- 323

*परिस्थितीच्या दबावामुले किंवा आर्थिक विपन्नावस्थेमुले काही भटक्या जमाती गुन्हेगारीकडे वळल्या. त्यांना 'गुन्हेगार जमाती' म्हणून ओलखले जाते.

केवल गाँव से रहा है । समय के चलते इनमें से कुछ जनजातियों में परिवर्तन दिखाई देता है, परंतु अधिकांश जनजातियों में पहले जैसी स्थितियाँ पाई जाती है ।

हम देख सकते हैं की भारत में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है। जिन्हें हम पाँच श्रेणियों में देख सकते हैं । पहली है पशुपालक घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंट व सूअर आदि का पालन करती है । इनमें दो प्रकार की घुमंतू जातियाँ पाई जाती है । एक पशुपालक जो एक स्थान से दूसरे स्थान अनवरत घूमती है और दूसरी वह कुछ समय के लिए दूसरे स्थान जाते हैं और कुछ समय अपने पशुओं के साथ घर लौटते हैं । यह लोग गाय, भैंस का दूध बेचते हैं । भेड़, बकरी चराने वाले समुदाय उनकी खरेदी-बिक्री करते हैं । इनमें- गोपाल, धनगर, गद्दी, गुज्जर, बकरवाल, रेवारी, गडरिया आदि प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती है । दूसरी है व्यापारी जनजातियाँ, यह जनजातियाँ पूर्वकाल में नमक, खाद्यान्न, पशुओं का व्यापार किया करती थी । इसमें- बंजारा प्रमुख जनजाति है । तीसरी है भिक्षुक घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ समाज में देवी-देवताओं के नाम पर गाने गाती, भविष्य देखकर, नंदीबैल के नामपर भिक्षाटन करती है । जिनमें- जोगी, जोशी, स्वामी, गोसावी, बहुरूपी, वासुदेव, गोंधली आदि प्रमुख जनजातियाँ है । चौथी है पेशेवर घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ सांप, बंदर, भालू पालते हैं, साथ में बच्चों को कलाबाजी सिखाते हैं । यह समुदाय हमेशा उदरनिर्वाह तथा अपने पशुओं के चारे की तलाश में घूमते है । इनमें- सपेरे, बंदरिया, नट, बाजीगर, भालू वाले, सिकलीगर आदि प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती है । पाँचवी है अपराधी घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ अंग्रेजों द्वारा अपराधी मानी गयी थी । भारत स्वतंत्रता के बाद इन्हें समाज और प्रशासन में स्थान न मिल पाने के कारण मजबूरवश छोटी-मोटी चोरी, चोरी-छुपे शराब बेचकर जीवन-यापन करने लगी । जिनमें- सांसी, कंजर, पारधी, बेरड़, भामटा, उठाईगीर, बावरिया, डोम आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं । जिनका सामाजिक आधार पर परिचय दिया गया है । वह निम्नलिखित-

जम्मू-कश्मीर में लगभग 17 घुमक्कड़ जनजातियाँ पाई जाती है । जिनमें मुख्यतः गुज्जर, बकरवाल, गद्दी, ब्रोकापा, बल्टी, डोगरा, चंगपा, सीप्पी, मदबली, कुलफकिर, बेड़ा, पोहुल जीवर आदि । इनमें से कुछ जनजातियाँ पहाड़ियों में तो कुछ समतल भूभाग पर रहती है । जम्मू-कश्मीर की बकरवाल घुमंतू जनजाति हिमाचल, उत्तराखंड और पंजाब के हिमालयी क्षेत्र के उत्तरी प्रांतों के पहाड़ी क्षेत्र में विचरण करती है । बकरवाल जनजाति भारत के अन्य क्षेत्र में धनगर नाम से जानी जाती है । जिनका पारंपरिक व्यवसाय भेड़ चराना, उनके बालों का कंबल बनाकर बेचना आदि । इन्हीं का दूसरा वंश गुज्जर नाम से भी जाना जाता है । पहाड़ी क्षेत्र में

रहने वाला यह समुदाय हमेशा चरागाह की तलाश में भटकता है । “पहाड़ियों में रहनेवाले गुज्जर शुद्ध चरवाहा कबीले के लोग हैं । वे लगभग न के बराबर खेती करते हैं । गद्दियों के पास भेड़-बकरियाँ होती हैं तो गुज्जर गाय-भैस पालते हैं । ये लोग जंगलों के किनारे रहते हैं और दूध, घी और मवेशियों से मिलने वाली दूसरी जिजें बेच कर अपना पेट पालते हैं । घर के मर्द मवेशियों को चराने ले जाते हैं और कई बार हफ़्तों तक नहीं लौटते । इस बीच वे जंगल में अपने रेवड़ के साथ ही रहते हैं । औरतें सिर पर टोकरियाँ और कंधो पर हाँडियाँ लटकाकर रोज़ बाज़ार चली जाती हैं । उनकी हाँडियों में दूध, मक्खन और घी आदि होता है । वे सिर्फ इतनी चीज़ें ही बाज़ार में ले जा पाती हैं जितनी घर चलाने के लिए काफ़ी हों । गरमीयों गुज्जर अपने रेवडों को लेकर प्रायः ऊपरी इलाको में चले जाते हैं जहाँ उनकी भैंसों को न केवल बहुत सारी हरी-भरी बरसाती घास मिल जाती है और वे शीतोष्ण (न ज्यादा ठंडा, न ज्यादा गरम) मौसम के हिसाब से खुद को ढाल लेती हैं बल्कि उन जहरीली मक्खियों से भी छुटकारा मिल जाता है जो मैदानों में उनका जीना मुहाल किये रहते हैं ।”[5] यह घुमंतू जनजातियाँ मौसमी उतार-चढ़ाव का सामना करने के लिए इसी तरह सर्दी-गर्मी के हिसाब से अपनी जगह बदलती है । पहले की अपेक्षा अब कुछ घुमंतू जनजातियाँ आंशिक रूप से स्थायी हुई है । परंतु बकरवाल जैसी जनजातियाँ अपनी प्रवृत्ति में कायम है ।

हिमाचल प्रदेश में गुज्जर भी हैं । अनिरुद्ध ठाकुर कहते हैं-“यह जनजाति मुख्यतः चंबा इलाके से संबंध रखती है । यह लोग कश्मीरी वेशभूषा पहनते हैं । और मुख्यतः मुस्लिम धर्म को अपनाते हैं और कुछ हिन्दू धर्म को भी मानते हैं । मुस्लिम गुज्जर पलायन करते रहते हैं । जिन्हें गूजर और गुर्जर के नाम से भी जाना जाता है ।”[6] हिमाचल में सबसे प्रमुख घुमंतुओं में ‘गद्दी’ जनजाति है जो चंबा (भरमौर) और कांगड़ा के बर्फीले क्षेत्रों की निवासी है । यह जनजाति सर्दियों में हिमालय के पहाड़ी इलाखे में चली जाती हैं । इनका मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरियाँ पालना होता है । इस समुदाय के लोग अपनी कमर पर काले रंग का रस्सा बांधते हैं जिसके पीछे इनकी मंशा भूत-पिशाच बचना है । शिव इनके मुख्य देवता हैं । इस समुदाय में घर को ताला लगाने का रिवाज नहीं है, जब घुमक्कड़ी पर निकलते हैं तो घर पर बूढ़े लोग ही रहते हैं जो चल नहीं सकते ।

---

[5] https://ncert,nic.in/textbook/pdf/ihss305.pdf, पृ.सं- 98, 19/02/2021, 10.00 pm

[6] onehimachal.com/हिमाचल-प्रदेश-की-पांच-मुख्य/ 20/02/2021, 10.40 pm

हिमालय क्षेत्र में तिब्बत की अप्रवासी जनजातियों में खाम्पा जनजाति पाई जाती है। यह जनजाति पहले भारत और तिब्बत में घोड़ों का व्यापार किया करती थी। भारत में रामपुर के प्रसिद्ध मेले में घोड़ों खरीद-फरोख्त होती थी। आजकल ये सीमांत प्रदेशों में घूमते रहते है। जब यह प्रवास में होते हैं, सारी गृहस्थी घोड़ों पर लाद कर चलते है। भारत में खाम्पा जनजाति की स्थिति पर डॉ. श्याम सिंह शशि लिखते हैं-"आज भी कुछ खान्पा परिवार ऐसे हैं जो तंबूओं में नहीं बल्कि प्राकृतिक गुन्फाओं में ही अपना डेरा डालते है तथा साधारणतया भीख माँगकर जीवन-यापन करते है। ऐसे खान्पा टिहरी गढ़वाल में अधिक मिलते है।"[7] वर्तमान समय खान्पा स्त्रियाँ सुई, धागा, स्त्रियों के कान और गले में पहनने वाले वस्तु बेचती है।

पंजाब और हरियाणा में विमुक्त और घुमंतू दोनों जनजातियाँ पाई जाती है। विमुक्त जनजातियों में सांसी, कुचबंद, भान्तु, भेडकूट, कंजर, बउरिया, नट, बंजारा, बाजीगर, बरड आदि। घुमंतू जनजातियों में अहेरी, नायक, बंजगली, बुरिया बवारिया, चीरीमार, फ़क़ीर, गांधीला, गोडरी, घुमीयर (मुस्लिम), जोगी, ओड, पंजा, अहेरिया आदि। यह विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ कुछ ख़ास चीजों के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे नृत्य, संगीत, रंगोली, कशीदाकारी गोदना और चित्रकारी आदि। इनमें से कुछ जनजातियों का लगाव पशु-पंछियों के प्रति अधिक है, वे उनसे अदाकारी कर उदरनिर्वाह करते हैं। कुछ चरवाहे समूह भी शामिल है। यह जनजातियाँ एक स्थान पर दो-तीन दिन तो कई बार हफ़्ते भर गुजार देती हैं। अब ये अधिकत्तर ग्रामों-शहरों के आसपास नदी या हाइवे के किनारे दिख जाती है।

राजस्थान में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है। उनकी संख्या 60 से अधिक है। "मुक्तिधारा संस्था द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेजों से इन तमाम घुमंतू जनजातियों और इनके पारंपरिक व्यवसायों के बारे में जो जानकारी मिलती है, उसके अनुसार 'बंजारे' पशुओं पर माल ढोने (मुख्यतः नमक और मुल्तानी मिट्टी) का काम किया करते थे; 'बावरिये' जानवरों का शिकार और उनके अंगों का व्यापार करते थे; 'नट' नृत्य और करतब दिखाते थे; 'कालबेलिया' (सपेरा); सापों का खेल दिखाते थे; 'भोपा' स्थानीय देवताओं के आख्यान गाते थे; 'सिकलीगर' हथियारों में धार लगाते थे; 'सिंगीवाल' हिरन कर टूटे हुए सींग से लोगों का इलाज करते थे और इन्हें प्राकृतिक औषधियों का ज्ञाता समझा जाता था; 'कुचबंदा' मिट्टी के खिलौने बनाते थे; 'कलंदर' भालुओं और बंदरों से करतब दिखाते थे; 'ओढ़' नहर बनाने और जमीन समतल करने का काम करते थे; 'जागा' लोगों की कई पीढ़ियों का ब्यौरा रखते थे

---

[7] हिमालय के यायावर, डॉ. श्याम सिंह शशि, प्रकाशन विभाग, सुचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वि.सं-1987, पृ.सं- 43

और जजमानी में जगह-जगह जाते थे; 'बहुरूपिये' और 'बाजीगर' हाथ की सफाई दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे।"[8]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में कमोबेश एक जैसी स्थिति पाई जाती है । इनके सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करते वक्त राजस्थान के बंजारा समुदाय के लोग राहुल कोटीयाल से बताते हैं कि-"हम बंजारे हैं, पीढ़ियों से घूमते ही रहे हैं। लेकिन अब घूमने से दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती इसलिए एक जगह बस जाना चाहते हैं। पर बसने जाओ तो हमारे साथ ऐसा सलूक होता है कि, बसने से पहले ही लोग उजड़ जाते हैं।' वे आगे कहते हैं- 'हम यहाँ रहते भी है तो गाँववालों के दबंगयी में ही जीते हैं। न उनके नालों से पानी ले सकते हैं और न किसी सार्वजानिक जगह का इस्तेमाल कर सकते हैं। हमारे जानवर अगर गाँव में चले जाते हैं तो वे लोग उन्हें वहीं रोक लेते हैं। फिर कभी पैसे लेकर जानवर लौटते हैं और कभी लौटते भी नहीं।"[9] इन घुमक्कड़ जनजातियों की तरह भारत के अधिकांश जनजातियों की हालत है । वे स्थायी होना चाहते हैं पर समाज का कुछ तबका सामंजस्य की भूमिका लेने को तैयार नहीं हैं।

गुजरात में राबरी जिन्हें 'रेवारी' या 'देसाई' भी कहा जाता है, यह एक घुमंतू चरवाहा जनजाति है। यह घुमक्कड़ जनजाति पूरे उत्तर-पश्चिम भारत (मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान और पंजाब के राज्यों में) में फैली हुई है । यह जनजाति अपने पशुओं के साथ मुख्यरूप से राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में चारे की तलाश में घूमती है । घूमते हुए साल में एक बार अपने मूल गाँव वापस आती है और दूध बेचकर अपना उदरनिर्वाह करती है । कंजर, सपेरा, घंटी चोर, छप्परबंद (मुस्लिम), छारा, ओड़, कालबेलिया आदि मुख्य घुमंतू जनजातियाँ नृत्य, कलाबाजी, शराब बिक्री व्यवसाय करते दिखाई देती है।

उत्तरप्रदेश में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की संख्या 84 के आसपास है । इन जनजातियों परशोधकार्य कर रहे रमाशंकर सिंह लिखते हैं-"उत्तरप्रदेश में कई ऐसे समुदाय हैं जो सदियों से घुमंतू जीवन जीते हैं। ये समुदाय हैं- नट, चमरमंगता, पथरकट और महावत। नट, चमरमंगता और महावत में एक समानता है कि वे भैंस-भैंसों का व्यापार करते हैं और जड़ी-बूटी का काम करते हैं । चमरमंगता बारहों महीने भिक्षावृत्ति करते हैं । पथरकट पत्थर का सिल

---

[8] भारत के विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदाय, संपा- व्यंकट धारासुरे, घुमंतू जनजातियाँ, राहुल कोटियाल, पृ.सं- 294

[9] https://satyagrah.scroll.in/artcle/101782/are-we-responsible-for-criminalisation-of-nomadic-tribes21.02.2021,6.00pm

लोढ़ा बना कर बेचते हैं और वे जंगलों आदि से शहद निकाल कर बेचते हैं। नट और महावत कुश्ती भी सिखाते रहे हैं। महावत औरतें दांत झाड़ने का काम और कान साफ़ करने का काम करती हैं। वे भैंस और भैंसों के व्यापार और उनके गर्भधान का काम अभी भी करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में गाँव के अंदरूनी इलाकों में भी सरकारी पशु अस्पतालों और बाएफ़ के प्रवेश ने उनके इस रोज़ गार को प्रभावित किया है।"[10] बेड़िया घुमक्कड़ जनजाति उत्तरी भारत में अपने नृत्य के लिए जानी जाती है। बुंदेली लोकनृत्यों में इस समुदाय की स्त्रियों को बेडनी भी कहा जाता है। रेगाड़ी, झुमका, दापु, ढोलकी, मर्दंग, नगडिया, झांस और मीके जैसे वाद्यों के साथ अपनी कला प्रस्तुत करते हैं। पूर्वकाल में शादियों तथा अन्य उत्सवों में इनके नृत्य को सर्वाधिक पसंद किया जाता था। यह नृत्य लोगों के घेरा में नृतकी ख्याल नामक गीत गाते हुए चक्राकार नाचती है। पुरुष ढोलकी बजाते हैं। यह नृत्य मणिपुरी में जैगोई नृत्य के भांगी पारंग से काफ़ी साम्य रखता है।

इसी तरह नवरात्री, दशहरा और अन्य त्योहारों और ईद में भी बहुरुपिया घुमंतू जनजाति समाज को प्रभावित करती है। जिनमें मदारी का खेल, बंदर-भालू का, टैटू बनाना, पैशा नौटंकी आदि द्वारा समाज के हर तबके को आकर्षित करती है। वे हिन्दू-मुस्लिम दोनों परंपराओं को अपनाते हैं। इनका पारंपरिक व्यवसाय मनोरंजन करना है। इसलिए यह बात इन लोगों की जिंदगी से साबित होती है कि धर्म परिवर्तन से उदरनिर्वाह नहीं होता, अर्थ की बहुत बड़ी भूमिका होती। बहुरुपिया कुछ राज्य में नट नाम से जानी जाती है, इनकी कला कमोबेश संपूर्ण देश में दिखाई देती है।

मध्यप्रदेश में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में 51 जातियाँ पाई जाती है। यह जनजातियाँ संपूर्ण राज्य में फैली हुई है। जिनमें मुख्यतः मोघिया, नट, बगरी, बेड़िया, कुचबंधिया, डबूडा, पासी बगडी, बिरहुल, बाजिला, गच्चा, मिरासी, सहरिया आदि। "कुचबंधिया पूर्ण रूप से जंगली जीवन-यापन करते रहे हैं। जंगल से प्राप्त होने वाली वनोपज और शिकार पर जीवन आश्रित रहा है। धीरे-धीरे जब जंगल से गाँव और शहर की ओर उन्मुख हुए तो इन्होंने उसी प्रकार के काम शुरू कर दिए जंगलों से शहद निकलना, गाँवों-शहरों में ले जाकर बेचना, को पेशा के रूप में अपनाया। कुचबंधिया समाज का पुश्तैनी और जातिगत धंधा

[10] भारत के विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदाय, संपा- व्यंकट धारासुरे, औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसा के तर्क और घुमंतू-विमुक्त समुदाय, खुशबू सिंह, डॉ. रमाशंकर सिंह, पृ.सं-182

कूच (झाड़ू) बनाना और बेचना है ।"[11] समय बदलता गया और इनका व्यवसाय संकुचित हो गया। इन्हें जंगल से सूखे मेवे, मांस आदि एकत्रित कर बेचन शुरू किया । 'पासी' घुमंतू जनजाति उत्तर भारत में निवास करने वाली एक जाति है । जिनमें गुजर पासी, कैथवास, बोरिया आदि कुल मिलते हैं । यह उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, ओड़िशा से होते हुए तेलंगाना और आंध्रप्रदेश में फैले हुई है । "पासी का पारंपरिक पेशा ताड़ी का दोहन है । पासी को ताडमाली के नाम से भी जाना जाता है । बिहार, ओड़िशा दक्षिण एशिया में ताड़ी बेचना पासी का व्यापार है ।"[12]

छत्तीसगढ़ में ढंगचघा (नट) और देवार घुमंतू जनजाति पाई जाती है । यह प्रमुख ख़ानाबदोश आदिम जनजाति है जिनका जीवन अनिश्चित भटकने में बीत जाता है । देवार समूह मुख्यतः ग्रामीण अंचल और कस्बाई इलाके में लोगों का मनोरंजन करते दिखते हैं । वैसे आजकल शहरों और नगरों के आसपास भी देवारों के डेरे दिख जाते हैं । अब वे बच्चों के लिए मनोरंजन की वस्तुएँ, स्त्रियों के लिए आभूषण बेचते हैं । बहुत पहले देवारों के कोई स्थायी निवास नहीं होते थे । दस-बीस के समूह में देवार पुरुष, महिला और बच्चे घूम-घूम कर जीवन-यापनकरते थे। पालतू कुत्ते, मुर्गियाँ और सुअर हमेशा इनके साथ होते थे, जहाँ भी उपयुक्त स्थान मिल जाता वहीं देवारों का डेरा पड़ जाता था । वहीं पर वे अपनी कला प्रस्तुत करके उदरनिर्वाह करते थे । आज भी उनका जीवन कमोबेश ऐसा ही है । इनकी स्त्रियों के बारे में विनय कुमार पाठक का कहना है-"नट और देवार जाति की स्त्रियाँ नृत्य में पारंगत होती हैं इसीलिए कहा गया है 'आन के नचाई और देवारिन के मटकई एक बराबर अर्थात 'दूसरों का नाचना और देवार महिलाओं का थिरकना एक ही बात है ।' जहं-जहं झलकत अंग, तहं बिजुरी तरंग' की तर्ज पर जहाँ देवारिन तहाँ चमकिन की उक्ति प्रचलित है ।"[13]

बिहार में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है । विमुक्त में लोधा, बहुरिया, धारी, दुशाधी, मुसाहर, रजवार आदि । घुमंतुओं में 64 के आसपास हैं । जिनमें मुख्यतः अगहोरी, बगडी, बेड़िया, बिहोर, चुरिहर (मुस्लिम), धारा, धरुआ, घासी, कहर, लखेरा, मदारी (मुस्लिम), मल्लाह, नट (मुस्लिम), तूरहा, साधी, मूला (मुस्लिम), भार आदि । बिहार, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल में भार घुमंतू जनजाति के बदलते स्वरूप पर हरिश्चंद्र उत्प्रेती की

---

[11] चौमासा, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, विशेषांक- 14, नवंबर 2020-फरवरी- 2021, पृ.सं- 78

[12] https://hi.m.wikipedia.org पासी- विकिपीडिया (25.04.2021. 02.00 pm)

[13] घुमंतू-लोकजीवन की संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्र., दिल्ली, प्र.सं- 2016, पृ.सं- 20

एक दृष्टि-"पश्चिम बंगाल में 'भार' जनजाति के लोग बिहार तथा उत्तरप्रदेश के भार लोगों की अपेक्षा अधिक ऊँची सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त होते हैं । जबकि बंगाल के 'भार' अधिक हिन्दूकृत हो चुके हैं तथा पुरोहित के रूप में ब्राह्मण को बुलाते हैं । बिहार एवं यु.पी. में इस जनजाति को लोग ब्राह्मण नहीं बुलाते ।"[14]

पश्चिम बंगाल में कुछ श्रमिक जनजातियाँ और कुछ जड़ी-बूटी बेचने एवं कलाबाजी दिखाने वाली घुमक्कड़ जनजातियाँ पाई जाती है । 'बगदी' यह पश्चिम बंगाल की कृषक श्रमिक जाति है । मध्यप्रदेश में इसे 'बेदिया' नाम से जानी जाती है । डॉ. हरिश्चंद्र उत्प्रेती के अनुसार- "बगदी' मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल की घुमंतू जनजाति है । इनका पारंपरिक व्यवसाय कृषक श्रमिक के रूप में रहा है । इनके अतिरिक्त ये लोग कुलीगिरी का कार्य, लकड़ी काटना तथा विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों में श्रमिक का कार्य करते हैं । इसी क्षेत्र की एक अन्य घुमंतू जनजाति है 'बेदिया' जो की वर्तमान में अनुसूचित जातियों की श्रेणी में भी रखी जाती है तथा इनका एक भाग जनजातियों का है । ये मछली पकड़ने के उपकरणों का निर्माण विशेषरूप से करते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ जैसे कंघा, डोरी आदि बनाने का कार्य भी करते हैं । हिन्दू लोग इन्हें अछूत जाति के रूप में मानते हैं ।"[15] इसी तरह मछली पकड़ने और जाल बुनने का कार्य करने वाली 'भोई' जनजाति महाराष्ट्र में पाई जाती है । बिहार तथा पश्चिम बंगाल में लोढ़ा और तूरी पाई जाने वाली घुमक्कड़ जातियाँ हैं ।

हैदराबाद के शोधकर्ता शिलापका व्यंकटाद्री के अनुसार-"तेलंगना और आंध्रप्रदेश में लगभग 63 घुमंतू जनजातियाँ हैं । इन जनजातियों को ओबीसी, एससी, एसटी आदि भागों में बांटा गया है । बीसी में कुल 45, एससी में 12, और एसटी में 6 इस प्रकार विभाजित किया गया है ।"[16] जिनमें मुख्यतः माला दासरी, दोम्मरुलू, बाला संतूलू, पामारु, मोंडीवारु, मंदुला, डम्मली, गोसंगी (मुस्लिम), अत्तार साहेब, फ़क़ीर साहेब (मुस्लिम), लंबाडी, ओंगोलू, बेदार, कैकाडी, पिच्चकुंटला, बैनोलू, गिरीकालू आदि । माला दासरी घुमंतू जनजाति तेलंगाना में पाई जाती है । जो पहले छोटी-मोटी चोरी करके अपना उदरनिर्वाह किया करती थी, परंतु अब वह ग्रामीण क्षेत्र में जमींदारों के खेत में मजदूरी का कार्य करती दिखाई देती है । इसी तरह एक कत्तेरा जनजाति है, यह अधिकांश तमिलनाडू, कर्नाटक तथा आंध्रप्रदेश के कुछ हिस्से में पाई

---

[14] भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृ. सं- 2007, पृ. सं- 81

[15] वही , पृ. सं- 81

[16] भारत के विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदाय, संपा- व्यंकट धारासुरे, आंध्रप्रदेश एवं तेलंगाना राज्य के घुमंतू जनजातियों की सामाजिक स्थिति, सिलापका वेंकटाद्री, पृ.सं-211

जाती है । इस जनजाति के कुछ लोग बड़ी चोरी करने के लिए जाने जाते हैं । जैसे रेल, मंदिरों जैसे स्थानों पर स्त्रियों के गहने हडपने में माहिर है ।

महाराष्ट्र और तेलंगाना के सीमावर्ती क्षेत्र (आदिलाबाद) में 'गिरिकालू' घुमंतू जनजाति पाई जाती है । जो मेले में नाचगाना और उत्सवों नृत्य करती है । संभवतः यह जनजाति महाराष्ट्र के 'कोल्हाटी' जनजाति से मेल खाती है । चिर्रावुरु नागभूषणाचार्युलू के अनुसार- "दोम्मरुलू' घुमंतू जनजाति जिसे ओडिशा से आयी हुई माना जाता है, उसकी भाषा और संस्कृति से वह विशिष्ठ दिखाई देती है । इस जनजाति के लोग सर्कस, कलाबाजी दिखाते हैं । जिनकी कला में स्त्रियों का ही अधिक योगदान होता है । 'बालासंतू' जनजाति के लोग मनोरंजन के लिए प्रसिद्ध हैं, जो खास कर बच्चों के लिए गाने गाते हैं । 'बैनोलू' जनजाति है, ये लोग देवी-देवताओं के नाम पर गाने गाते हैं और लोककथाएं बताते हैं । यह लोग कर्नूल तथा अनंतपुरम में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं ।"[17]

'मोंडीवारु' यह घुमंतू जनजाति तेलंगाना और आंध्रप्रदेश में अपनी प्रवृत्ति में हमेशा भिक्षाटन करती है, वहीं तमिलनाडू में 'मोंडीबांडा' नाम से जानी जाती है, वहाँ ये पशुपालन कर अपना उदरनिर्वाह करती है । आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में 'पिच्चकुंटला' घुमंतू जनजाति है, जो आयुर्वेदिक दवाई बनाने के लिए प्रचलित है । संपूर्ण कर्णाटक और महाराष्ट्र के पश्चिम तट पर 'बेरड़' जनजाति है, जिसे मराठी लोग 'रामवंशी' नाम से भी जानते हैं । यह जनजाति पूर्व काल में किलों, गाँवों, मंदिरों का रक्षण करने के लिए मशहूर थी । जेष्ठ साहित्यिक भीमराव गस्ती का मानना है कि-'बेरड़ों की वजह से ही दक्षिण भारत के मंदिर सुरक्षित रहे हैं ।'

अतः भारत में स्थित विमुक्त जातियाँ और घुमंतू जनजातियाँ लगभग एक जैसी पाई जाती है । जिनके व्यवसाय भिन्न होते हुए भी प्रवृत्ति में साम्यता अधिक पाई जाती है । जैसे तथाकथित समाज से इन जनजातियों की रुढी-परंपरा, देवी-देवता, रीति-रिवाज और मुख्यतः घुमक्कड़ प्रवृत्ति जिन्हें उभयनिष्ठ बनाती है । सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक रूप से कुछ घुमक्कड़ जनजाति के अलावा अधिकांश जनजातियों की स्थिति एक-सी है । नाचगाना, कलाबाजी करने वाली जनजातियों को पूर्व काल में अपने दरबार या गाँव में शौक से आमंत्रित किया जाता था । तब उनकी ज़रूरत थी । आज रेडिओ, टीवी, मोबाईल ने इन कलाकार जनजातियों का बहुत बड़ा अहित किया है । खिलौने, टोकरियाँ, फूलदान बनाने वाली

---

[17] संचार जतुलू, चिर्रावुरु नागभूषणाचार्युलू, विश्व श्री आर्ट प्रेस, पिछड़े जातियों का शोध अध्ययन केंद्र, नरसराव पेठ, गुंटूर, प्र.सं- 1977, पृ.सं- 15

जनजातियाँ बाज़ार में प्लास्टिक सामान के कारण नुकसान झेल रही है । भिक्षुक समुदाय ख़त्म होने के कगार पर हैं । आज वे भीख माँगते फुतपतों, स्टेशनों पर देखे जा सकते हैं । अपराधिक जनजातियाँ आज भी कलंकित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं । पशु पालक जनजातियाँ चारे के लिए जमीन के अभाव में भटक रही है । अब इन जनजातियों को वैकल्पिक कार्य करने पर मजबूर होना पड रहा है । जिसे महाराष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में विस्तार से समझा जाएगा ।

1.2. महाराष्ट्र में विमुक्त और घुमंतू जनजातियाँ

भारतीय समाज अनेक जातियों और जनजातियों से मिलकर बना हुआ है । उसी प्रकार वे जातिगत व्यवसायों और कार्यों में बंटे मिलते हैं । इनमें कुछ जातियों-जनजातियों को व्यवस्था द्वारा प्रताड़ना मिलती है । इनमें दलित, आदिवासी और विमुक्त-घुमंतू जनजातियाँ आती है । जो समाज के निचले पायदान में गिनी जाती है । ऐसी तमाम जातियों-जनजातियों को शरणकुमार लिंबाले दलितों की साहित्यिक परिभाषा में शामिल करते हुए लिखते हैं-"दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं । गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मज़दूर, श्रमिक, कष्टकरी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती है ।"[18] दलित केवल अछूत जातियों तक सीमित न होकर वह समाज से पीड़ित, प्रताड़ित लोगों का समूह है । इन्हीं में कुछ ऐसी जाति-जनजातियाँ है वह अपनी प्रवृत्ति के कारण अस्थायी भटकती रही । जिन्हें कोई व्यवसाय या काम नहीं मिला। वह अपनी प्रवृत्ति के अनुसार समाज के संपर्क में जो काम मिला वह करती रही । इनकी की आगे एक परंपरा निर्माण हुयी, जो घुमक्कड़ प्रवृत्ति से जानी जाती है । जो समाज में अलग परंपरागत रूपों में देखने को मिलती है । वे भारत के लगभग हर प्रांत में पाई जाती है । जिसे महाराष्ट्र के संदर्भ में देखा जा सकता है । वह निम्नलिखित-

महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की संख्या कुल बयालीस पाई जाती है । जिनमें विमुक्त जनजातियों की संख्या चौदह और घुमंतू जनजातियों की संख्या अठाईस है । विमुक्त जनजातियों में- बेरड़, बेस्तर, भामटा, कैकाडी, कंजारभाट, कटाबू, बंजारा, राजपारधी, राजपूत भामटा, रामोशी, वडार, वाघारी, छप्परबंद (मुस्लीम धर्मीय) आदी और घुमंतू जनजातियों में- गोसावी, बेलदार, भराड़ी, भुते, चित्रकथी, गारुडी, घिसाड़ी, गोल्ला, गोंधली, गोपाल, हेळवे, जोशी, काशीकापड़ी, कोल्हाटी, मेराल, मसनजोगी, नंदिवाले, पांगुल, रावळ, सिक्कालगार, वैदू, वासुदेव, भोई, बहुरूपी, ठेलारी, ओतारी, धनगर, वंजारी, मरिआइवाले,

---

[18] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनु- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प.सं- 2016, पृ.सं-42

गिहरा, गुसाई, मदारी, भारतीय इराणी, गवळी, दरवेसी आदि । इन सब जातियों के अपने-अपने देवी-देवता, रीति-रिवाज, प्रथा-परंपरा, जात पंचायत, व्यवसाय आदि अपने अनुसार अलग-अलग पाए जाते हैं। इन सब का विवेचन निम्नलिखित करने का प्रयास किया गया है-

1.2.1. महाराष्ट्र के विमुक्त जनजातियों का परिचय

1.भामटा समुदाय

'भामटा' महाराष्ट्र की एक विमुक्त-घुमंतू जनजाति है । यह समुदाय दक्षिण भारत में कर्नाटक, आन्द्रप्रदेश और महाराष्ट्र में पाया जाता है । महाराष्ट्र में यह मुख्यतः विदर्भ क्षेत्र में नागपुर, वर्धा, गडचिरोली, अमरावती और चंद्रपुर जिलों में पश्चिम क्षेत्र में पुणे, सातारा, कोल्हापुर, उत्तर में धुले, नाशिक, जलगाँव और मराठवाडा में औरंगाबाद, बीड, परभनी, उस्मानाबाद, लातूर के कुछ क्षेत्रों में पाई जाती है। इस समुदाय के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि वे राजस्थान से अपनी घुमक्कड़ प्रवृति से पलायन ऐसा प्रतीत होता है। वे अपने आपको राजा महाराणा प्रताप के वंशज मानते हैं तथा अपने नाम के सामने सिंह, राजपूत जैसे उपनाम लगाते हैं। मराठी भाषा में भामटा शब्द का अर्थ चोर या उठाईगीर है। इस समुदाय में प्रमुख रूप से दो उपजातियाँ पाई जाती है जो भामटा और राजपूत भामटा। इसी के अनुसार कर्नाटक में इस समुदाय को 'घंटीचोर' कहा जाता है । मराठी विश्व कोश में इस समुदाय को 'छत्री भामटा' अथवा 'भामटा' कहा जाता है । द्रोपदी पंदिलवाड के अनुसार-"कर्नाटक राज्य के 'कोनाली' स्थान इस समुदाय का कुलदेवता है। हर साल वहाँ पर मेला लगता है, तब महाराष्ट्र का भामटा समुदाय साल भर की मन्नतें पूरी करने के लिए एकत्रित होता है। इनमें 'शिडी' खेल का प्रकार प्रचलित है।"[19] महाराष्ट्र में भामटा जनजाति की परदेशी भामटा, कामाठी, टकारी, उचले, पाथरुट और गिरणी वड्डार इत्यादि उप- जातियाँ पाई जाती है। इनके उपनाम चौहान, परिहार, बडगुजर, भट्टी, गाहलोज, कछवा, तोमर, डोमाळ, गुडेकर, बेलखाड़े, कावठी आदि पाए जाते हैं। वे तूलजाभवानी, यल्लामा देवी, मरिआइ, अंबाबाई, खंडोबा, वेताळ आदि देवी-

---

[19] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं- 36

*कर्नाटक राज्यात 'कोनाली' या ठिकाणी असलेली देवता तकारींचे कुलदैवत आहे. तिथे महाराष्ट्रातूनही लोक यात्रेसाठी जातात. नवस फेडन्यासाठी 'शिडी' खेलाण्याचा प्रकार येथे प्रचलित आहे.

देवताओं की पूजा-आर्चना करते हैं । इस समुदाय की भाषा हिंदी, कन्नड़, तेलुगु भाषाओं से मिश्रित बनी सांकेतिक बोली है, जिसे 'पारुशी बोली' कहा जाता है ।

भामटा जनजातियों की सभी उपजातियाँ भले ही अलग-अलग नामों से जानी जाती हों, किंतु इनका व्यवसाय, रुढी-परंपरा, रीती-रिवाज, पूजा-अर्चना एक जैसी दिखाई पड़ती है । इस समाज में बाल विवाह पद्धति है । लड़के की शादी लगभग अठारा वर्ष की आयु में की जाती है तथा लड़कियों की शादी उसके मासिक धर्म शुरू होने के बाद की जाति है । "सगोत्र अथवा एक ही उपनाम के परिवार में विवाह नहीं होता है । वधुमूल्य की राशि पचास रुपये लड़की के चाचा को और हैसियत के अनुसार सौ-दो सौ रुपये लड़की के माता-पिता को देने पड़ते हैं । इस समुदाय में विधवा विवाह को मान्यता दी जाती है । तलाक देने का रिवाज रूढ़ है । यह सभी विधियाँ समुदाय के वरिष्ठ प्रमुख से करवाते हैं ।"[20] उपर्युक्त संदर्भ से स्पष्ट होता है कि इस समुदाय में अन्य तथाकथित समाज जैसे शादी-ब्याह में पुरोहित, पंडित बुलाने की प्रथा दिखाई नही देती है । दहेज़ वधू की ओर से देनी की बजाय वर पक्ष को देना पड़ता है । विधवा विवाह तथा तलाक देने के निर्णय भी समुदाय में इच्छा अनुसार होते हैं । इनके सभी रस्मे-कस्में जात पंचायत द्वारा बनायीं जाती है और संपन्न भी की जाती है ।

इस समुदाय में शादी की रस्म दो दिनों तक चलती हैं । पहले दिन वधू-वर को हल्दी लगाकर नहाया जाता है और उसी समय वर की सालियाँ वर के साथ हल्दी का खेल खेलती है । वर का मजाक करने हेतु उसके शरीर पर अधिक गरम पानी से नहलाने की चस्टा करती हैं । दूसरी ओर जात पंचायत के कुछ लोग 'कुली-कुली' ढूंढते हैं । "कुली-कुली अर्थात शादी के लिए आए हुए सगे-संबंधियों में कलंकित व्यक्ति को ढूंढना 'कुली-कुली' कहलाता है । कलंकित व्यक्ति को हल्दी खेलने का अधिकार नहीं होता है । जात पंचायत ऐसी स्त्री अथवा पुरुष को एक सौ इक्यावन से पाँच सौ एक रुपये तक का दंड वसूलती हैं ।"[21] ऐसे समय जात पंचायत के सदस्यों की नजर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के चरित्र पर अधिक होती है । उन्हें शुद्ध करने के लिए चरित्रवान व्यक्ति की जांगोंपर बैठाया जाता है । इस प्रकार के शुद्धिकरण की प्रक्रिया के बाद शादी का कार्यक्रम शुरू होता है । कई बार 'कुली-कुली' निकालने की रस्म दो-तीन दिनों तक

---

[20] http://mr.vikaspedia.in/social-welfare/92e93e92_ (22.04.2018, 11.00 am)

[21] भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, पृ.सं- 88

*लग्नात आलेल्यांपैकी अथवा त्यांच्या नातेवाकांपैकी कोणाला 'बट्टा' (कलंक) लागलेला आहे का ते पाहने म्हणजे 'कुली-मुली' होय. 'बट्टा' लागलेली बाई असेल, तर तिला हलद खेलता येत नाही. पंच अशा बाईला अथवा पुरुषाला 151 पासून 501 रुपयांपर्यंत दंड करतात.

चलती है । यह प्रकार हर किसी के शादी में होता है । बिना उसके शादी नहीं होती । इस कार्यक्रम के बाद दंड में मिली राशि का उपयोग सूअर खरीदने और शराब पीने के लिए किया जाता है । दूसरे दिन शादी संपन्न करके अपने-अपने काम-धंधे पर चले जाते हैं ।

वर्तमान समय भामटा समुदाय में कुछ परिवर्तन दिखाई देता है । शुद्धिकरण जैसे रीती-रिवाज कम होते हुए दिखाई देते हैं । जात पंचायत को बरखास्त करने समुदाय के कुछ कार्यकर्ताओं ने जनजागृति शुरू किया है, इसकी वजह से समुदाय में सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है, किंतु स्त्रियों पर पाबन्दी लगाना कम नहीं हुआ है । समुदाय में अज्ञानीता के कारण दरिद्रता, शराब खोरी और बेकारी अधिक है । समय के अनुसार चोरी करना बंद होते दिखाई देता है, परंतु इनके लिए रोज़ गार के मजबूत साधन नहीं है । पश्चिम महाराष्ट्र का भामटा समुदाय ताग से रस्सी बनाकर बेचता है और कुछ बंधुआ मजदूरी करते है । विदर्भ और उत्तर महाराष्ट्र में इस समुदाय के लोग रोजी-रोटी के लिए शहर की ओर दौड़ रहे हैं । जो ग्रामों में बसे हैं मजदूरी, बन्दुआ मजदूरी करके अपना उदरनिर्वाह करते है । इनके बच्चे स्कूल जाने लगे हैं । पर स्कूल आधे में ही छोड़ देने का प्रतिशत अधिक है । उनमें से कुछ युवा संघर्ष करके सरकारी-गैरसरकारी नौकरी कर रहें है, कुछ रेल, बस स्टॉप के फुटपातों पर वडापाव, पानी बोतल, पुरानी बैग आदि को चैन लगाने जैसे काम करते दिखाई देते हैं । आज समुदाय संघठित होते दिखाई दे रहा है, समाज के कार्यकर्ता युवाओं को प्रोत्साहित कर रहे हैं । किंतु इस समुदाय को मुख्यधारा में लाने के लिए सरकार को विशेष ध्यान देने की जरुत है । इनके लिए रोज़ गार, बच्चों को स्थायी स्कूल, महिलाओं के लिए कुटूर उद्योग और सुरक्षा की आवश्यकता है ।

2.कैकाड़ी समुदाय

कैकाड़ी विमुक्त घुमंतू जनजाति का मूल स्थान दक्षिण भारत माना जाता है । कैकाड़ी समुदाय महाराष्ट्र में मुख्यतः पश्चिम महाराष्ट्र में मुंबई, ठाणे, कुलाबा, रत्नागिरी, सांगली, सतारा, कोल्हापुर, अहमदनगर, पुणे मराठवाडा के औरंगाबाद, उस्मानाबाद, लातूर, नांदेड, सोलापुर, बीड तथा विदर्भ के चंद्रपुर के राजुरा तहसील आदि जिलों में पाया जाता है । इनकी भाषा तेलगु और कन्नड़ मिश्रित सांकेतिक बोली बोलते है, वे तथाकथित समाज में मराठी भाषा बोलते हैं । इनका पारंपरिक व्यवसाय बांस के पेड़ से टोकरियाँ बनाना, धान रखने के लिए कोठरियाँ बनाना है आदी के साथ-साथ जादू के खेल दिखाकर लोगों का मनोरंजन करना है, जैसे बंदर, सांप या भालू आदि के खेल दिख़ाना है । उसी के बदले जो चवन्नी- अठन्नी या बचा हुआ भोजन परोसा जाता है उसी से अपना उदरनिर्वाह चलते थे ।

कालांतर में कैकाड़ी जनजाति में अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हुई। प्रभाकर मांडे के अनुसार मुख्यतः कैकाडी जनजाति में चार उपजातियाँ है-"कुंची कोरवी (बंदरिया), गुलदे या धोंतले, पामलोर या कोरवी आदि के प्रमुख उपजातियाँ होते हुए भी अनेक उपप्रजाति मानते हैं।"[22] इनके पांरपरिक व्यवसाय भी जाति के अनुसार निर्माण हुए हैं। जैसे- कुची कोरवी यह समुदाय मुंबई के आसपास गिरणगाव, धारावी, ठाणे, कुलाबा में बसा हुआ है। यह समुदाय अंग्रेजों द्वारा बनाया गये 1871 के 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' का शिकार हुआ था, इस समुदाय को मुंबई के सेटलमेंट में बंदी किया गया था। जब सन् 1952 में इन्हें 'विमुक्त' किया गया तब यह समुदाय जहाँ जमीन मिल गयी वहीं बस गया। और कुछ लोग अपनी घुमंतू प्रवृत्ति के अनुसार अन्य जिलों में जाकर बसे हैं। अब वह बांस (बांबू) से चटाई, ब्रश, झाड़ू, टोकरियाँ, फूलदान, लकड़ियों के खिलौने आदि बनाकर बेचते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में यह समुदाय सोलापुर सेटलमेंट से 'विमुक्त' होकर औरंगाबाद, उस्मानाबाद, लातूर आदि जिलों में बस गए। वे भी बांस, पेड़ों की टहनियों (छड़ी) से कोठार, टोकरियाँ, डालियाँ आदि बनाकर बेचते हैं। पामलोर जनजाति, इस शब्द की उत्पत्ति तेलुगु भाषा के पाम अर्थात सांप, लोर अर्थात जाति से बना है। इस समुदाय के सांप का खेल दिखाकर समाज का मनोरंजन करते हैं। धोंतले समुदाय सूअर पालन करता है। इस तरह कैकाड़ी जनजाति में अनेक समुदाय का निर्माण हुआ है, किंतु इन सभी समुदायों में आज भी सांस्कृतिक रूप से इनकी मूल परंपरा अभिव्यक्त होती है।

कैकाड़ी समुदाय का पुरुष 'कैकाड़ी' और स्त्रियाँ 'कैकाडीन' या 'कैदासीन' अर्थात 'झगड़ालू औरत' कहलाती हैं। इस समुदाय में अंधविश्वास का अधिक बोलबाला है। बीमार होना, संतान न होना, संताने मर जाना, धंधा न चलना, काम न चलना आदि कामों में तरक्की न होने के कारण अपने देवी-देवताओं को मन्नते माँगते हैं। इनके देवी-देवताओं में गाँव देवी, द्वार देवी, वृक्ष देवी, घुमक्कड़ देवी, स्मशान देवी, कुलदेवी, भवानी आदि देवी-देवताओं का समय के अनूसार पूजा-आर्चना की जाती है। जैसे- किसी गाँव में रहते समय 'गाँव देवी' को, जंगल में 'वृक्ष देवी' को और भटकते समय कोई संकट आ जाता है तब 'घुमक्कड़ देवी' की पूजा-आर्चना करते हैं। समुदाय में विधवा विवाह, अंतरजातीय विवाह आदि को मान्यता है। परंतु इसके लिए प्रथम जात पंचायत की बैठक बुलवाकर पंचों के पास विधिवत राशि, शराब आदि का

---

[22] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, पृ.सं- 41

*कुंची कोरवा (माकडवाले), गुलदे किंवा धोंतले, पामलोर आणि कोरवी' या प्रमुख उपजाती असून इतरही अनेक पोटजाती मानल्या जातात.

खर्चा जमा करना पड़ता है, तब जाकर उस कार्य को अनुमति मिलती है । इस समुदाय में लड़का-लड़की से शादी के लिए मंगनी करता है । इनमें अधिकतर सगाईयाँ स्त्रियों के पेट को ही हल्दी-कुमकुम लगाकर होती थी । किंतु अब बचपन में सगाई होती है और वयस्क होने के बाद शादी कराई जाती है । इनकी शादी तीन दिनों तक चलती है । शादी का मुहूर्त सहूलियत के अनुसार तय किया जाता है, पंडित-पुरोहित को बुलाया नहीं जाता है । मराठी के जेष्ठ साहित्यकार उत्तम कांबले के अनुसार-"स्त्री तलाक दे सकती है । इसके लिए जात पंचायत के पंचों की अनुमति लेनी पड़ती है । तलाकशुदा स्त्री की शादी होती है, किंतु इसके लिए शादी का जितना खर्च लगे उसी को करना पड़ता है । पुनर्विवाह को 'उडकी' कहते हैं ।"[23] कालांतर में इनकी प्रथा-परंपरा में बदलाव दिखाई देता है । जात जात पंचायत का वर्चस्व कम होता हुआ देखने को मिलता है ।

वर्तमान समय कैकाड़ी समुदाय उदरनिर्वाह की खोज में दर-बदर भटकता हुआ दिखाई देता है । आधुनिकीकरण के कारण इन समुदायों का बहुत बड़ा अहित हुआ है । बाज़ार में प्लास्टिक्स के सामान उपलब्ध हुए हैं, इसलिए इनके हाथों से बनये गए वस्तुओं को कीमत नहीं मील रही है । घर में टीवी, लैपटॉप, मोबाईल जैसे उपकरणों की वजह से इनके द्वारा सांप, बंदर भालू के खेलों पर गहरा प्रभाव हुआ है । इस तरह कैकाड़ी समुदाय के व्यवसाय पर बाजारीकरण का भूत सवार गया है । इस कारण समुदाय के लोग अपने कौशल्य के अनुसार मेहनत-मजदूरी कर रहे हैं। कभी सण-उत्सव, जयंती या शादियों बैंड बजने, अँधेरे में लालटेन पकड़ने, कुछ मौसम के अनुसार मिठाई, आइसगोले, कुल्फी बेचने और स्त्रियाँ बर्तन मांजने, खेतों में खुर्पनी करने जैसे काम करती हैं ।

समय के साथ समाज में भी बदलाव हो रहा है । लोग बच्चों को स्कूल भेज रहे है । कुछ बच्चे, युवा शिक्षा ग्रहण करने शहर की ओर जा रहे है, तो कुछ आधे में ही स्कूल की राह छोड़ने को मजबूर होते दिखाई देते हैं । कुछ लोग संघर्ष को स्थायी-अस्थायी नौकरी में बदल रहे हैं । समुदाय कार्यकर्ता युवाओं को प्रोत्साहित करके अपने स्तर पर सामाजिक कार्य कर रहे हैं । किंतु इन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए सरकार को इनके लिए स्थायी जगह, रोज़ गार और बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा करना आवश्यक है ।

---

[23] भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ. सं- 31

3.बंजारा समुदाय

महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति मुख्यतः मराठवाडा क्षेत्र में, और विदर्भ के अकोला, यवतमाल, चंद्रपुर के अलावा लगभग संपूर्ण महाराष्ट्र में पाई जाती है। महाराष्ट्र में इस समुदाय की अनेक तत्सम जातियाँ हैं। महाराष्ट्र शासन के सामाजिक न्याय व सांस्कृतिक कार्य के विशेष सहाय्य विभाग (मंत्रालय) के अनुसार 'बंजारा जनजाति में गोर बंजारा, लांबडा/लंबारा, लंभाणी, चरण बंजारा, लभाण, मथुरा लाभण, कचकीवाले बंजारा, लमान बंजारा, लमाण/लामाणी, लबान, धाली/धालीया, धाडी/ धारी, सिंगारी, नावी बंजारा, जोगी बंजारा, बंजारी आदि उपजातियाँ पाई जाती है।' महाराष्ट्र में यह समुदाय लमाणी या बंजारा नाम से प्रचलित है। सामान्यतः लमाणी शब्द की उत्पत्ति 'लवण' अर्थात नमक (व्यापार) से मानी जाती है। बंजारा की मराठी शब्द वन+जरा= वनजारा का हिंदी में वन का बन हुआ और बनजारा या बंजारा काहलाने लगा। हुकुमचंद जाधव लिखते है-"इनमे लवण से उत्पन्न रूप लभान, लभाणी, लाबाडी आदि हैं तथा लवज या वाणिज्य से उत्पन्न बंजारा, बंजारी, बीन्जारी आदि हैं। ये दोनों रूप उनके व्यापारी होने को सूचित करते है। बैलों की पीठ पर नमक तथा आवश्यक चीजों को लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बेचना उनका मुख्य व्यवसाय था। इस व्यवसाय के बल-बूते पर वे अपना जीवन-यापन व्यतीत करते रहें हैं।"[24]

पूर्वकाल में बंजारा समुदाय मध्य भारत से गेंहू, ज्वारी, दाल, कपास, शक्कर आदि जैसा कच्चे माल को अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति से हजारों की संख्या में गाय, बैलों पर लादकर बंगाल, मद्रास और कालीकट प्रांतों में निर्यात करता था। बदले में नमक आयात करके मध्य भारत में व्यवसाय करते था। साथ ही अपने बंजारा संस्कृति को गीतों, नृत्यों द्वारा भारतीय संस्कृति के साथ संमन्वय रखता था। इस पर एक लोकगीत याद आता है-'बसती बसती परबत परबत गाता जाये बंजारा, लेकर दिल का एक तारा...' सन् 1857 के स्वतंत्रता समर की हार व रेल का जाल बिछाने के कारण और भारत में बढ़ते उपनिवेश के कारण भारत की घुमक्कड़ जनजातियों के छोटे-मोटे व्यवसायों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। धिरे-धीरे अंग्रेजों ने भारत में अपना अस्तित्व मजबूत हुआ और बंजारों का व्यवसाय बंद हुए। तब से बंजारा समुदाय अपने अस्तित्व की तलाश में दर-बदर भटकता रहा है।

---

[24] घुमंतू-लोकजीवन की संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं-2016, पृ.सं-48

बंजारा समुदाय का मूलस्थान निश्चित नहीं है, किंतु उनकी भाषा, रहन-सहन, खान-पान से पता चलता है की वे राजस्थान व गुजरात से अपनी घुमक्कड़ प्रवृति से आये हुए हैं। महाराष्ट्र में इस समुदाय की अलग संस्कृति है । इनकी अलग भाषा जो राजस्थानी, गुजराती, हिंदी, फारशी शब्दों से बनी सांकेतिक बोली है, जिसे 'लमाणी' या 'गोरमाटी' कहा जाता है । वे तथाकथित समाज में मराठी बोलते है और अपने समुदाय में सांकेतिक बोली बोलते हैं । पूर्वकाल से यह समुदाय गाँव से दूर जंगल-पहाड़ी के बिच अपनी तांडा व्यवस्था में जीवन व्यतित करता है। इस समुदाय के तांडो पर अन्य समाज को स्थान नहीं होता है। इनके पुरुष धोती-कुर्ता पहनते हैं और बुजूर्ग या समाज के संभ्रांत व्यक्ति सर पर गुलाबी या सफ़ेद रंग का फेटा बाँध लेते हैं। इनकी महिलाएँ घागरा और चोली पहनती है, जो भड़क रंग के कपड़ों पर कांच के टुकड़ों और कौड़ियों से सज़ाकर आकर्षक बनाया जाता है। शादी-ब्याह या अन्य सन-उत्सवों के समय महिलाऐं घूँघट और लडकियाँ ओढ़नी ओढ़ लेती हैं। वे हाथों में हड्डीयों से बने कंगन, पीतल या कांच के कंगन, कानों में झुमके और पावों में कडीयाँ पहनने के शौकिया होती हैं, के अलावा अपने हाथों पर गोद लेती है, जिनमें अपने भाई का नाम ज़रूर गुदवाती हैं । समाज में यह समुदाय अपना अलग अस्तित्व रखता है, जिनमें पेहराव (खासकर स्त्रियाँ) और भाषा का अधिक स्थान है।

बंजारा समुदाय राठोड, चव्हाण, जाधव, पवार, आड़े, आदि उपनाम पाए जाते हैं । इनमें एक कुल या उपनाम में शादी नहीं होती। शादी के लिए गाँव के मुखिया (नाईक) की अनुमति लेनी पड़ती है । विवाह विधि सीधी-साधी होती है । इस विधि के लिए पंडित या पुरोहित को बुलाया नहीं जाता है, नाईक के अनुमति से विवाह विधि संपन्न होती है । इस समुदाय में बंजारादेवी, आसावरी देवी के अलावा अन्य हिन्दू देवी-देवताओं का पूजा-पाठ करने लगे हैं। इस समुदाय में संत सेवादास महाराज (1739) हो चुके हैं। इनके सामाजिक कार्य पर बंजारा समुदाय का गहरा प्रभाव है । उनके नाम पर लोकगीत गाये जाते हैं, जिनमें संघर्ष, शिक्षा, व्यसनमुक्ति, तंटामुक्ति (विवाद), प्राणीमात्राओं पर प्रेम आदि विषयों पर प्रसिद्ध हैं।

इस समुदाय में होली का त्यौहार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। जिसे मनाने के लिए समुदाय में एक माह पहले से उसकी ही तैयारी शुरू होती है। फाग, पाल और गेर ऐसे तीन दिन लोकगीतों के साथ नृत्यांगन शुरू होता है। प्रथम (फाग) होली का दिन इस दिन जिस लड़कों की इस साल में शादी होगी वे ही होली के लिए लकड़ियाँ इकठ्ठा करते हैं, और होली जलाकर समुदाय के सभी पुरुष आग के गोल खड़े होकर हाथ में लाठी या गमछा लेकर नृत्य

करते हैं । दूसरा दिन (पाल), समुदाय के स्त्री-पुरुष एकत्रित आकार बाजा के ताल पर शाम से लेकर भोर होने तक 'लेंगी नृत्य' करते हैं । तीसरे दिन (गेर), दिनभर रंगोली खेली जाती है । रात में शादी-शुदा स्त्री-पुरुषों में नृत्य चलता है और अंत में महिलाएँ अपने पति को मरती हैं । 'इनका मानना है कि पूर्वकाल से चली आ रही परंपरा है, स्त्रियाँ साल भर पति अधिकार में होती हैं इसलिए साल में एक दिन अपने पति को मारने का रिवाज बंजारा समुदाय में है ।'

वर्तमान समय बंजारा घुमंतू समुदाय अपने सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था को संरक्षित करते अपनी तांडा संस्कृति में रहता हैं । इस समुदाय के कुछ लोग स्थायी होकर खेती तथा पशुपालन कर रहे हैं और कुछ शक्कर की मील तथा खेतों में गन्ने काटने आदि का अस्थायी काम (मजदूरी) करते हैं और काम ख़त्म होने पर अपने गाँव लौट आना इनकी नियति है । मूल गाँव का मतलब स्थिर बस्ती (तांडा) का स्थान, जो सौ वर्षों के स्थानान्तरण के पश्चात निश्चित किया हुआ गाँव तथा बस्ती का स्थान । अब इस समुदाय में परिवर्तन दिखाई देता है । युवा लोग काम (अस्तित्व) की तलाश में शहर की ओर दौड़ रहे हैं । कुछ समुदाय विशेष को एकत्रित करने हेतु संगटन बनाकर समुदाय के युवाओं में शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा कर रहे हैं, कुछ राजनीति में प्रवेश करके सरपंच से मंत्री पदों तक हासिल कर चुके हैं । बच्चे स्कूल जा रहे हैं । युवा शिक्षा में संघर्ष कर अच्छे पदों पर विराजमान हो रहे हैं । कुल मिलाकर आज समाज मुख्यधारा की ओर बढ़ रहा है । किंतु समुदाय का अधिकांश हिस्सा मुख्यधारा से वंचित है, उसे सरकार द्वारा समुदाय के युवा, राजनीतिक नेता प्रवाह में लाने के लिए तत्पर हैं ।

4.कंजरभाट समुदाय

इक्कीसवीं सदी में अपने विविध रूढी-परंपराओं के कारण चर्चाओं में बने रहने वाले समाज में कंजरभाट समुदाय भी एक है । यह समुदाय भारत के अनेक प्रांतों में बिखरा हुआ है । जहाँ पर इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है । जैसे- महाराष्ट्र में कंजारभाट, गुजरात में छारा, पश्चिम बंगाल में कूचा, राजस्थान में कंजर या नट, मध्यप्रदेश भान्तु या छारा और पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के क्षेत्र में साँसी आदि के अलावा जादूगर, बाजीगर, बेड़िया, बांछड़ा नामों से इस जनजाति की पहचान है । महाराष्ट्र में यह समुदाय उत्तर भारत के पंजाब, राजस्थान से घुम्मकड़ प्रवृति के कारण पलायन हुआ है । इनकी भाषा हिंदी और राजस्थान की मारवाड़ी मिश्रित बोली हैं । वे लोग तथाकथित समाज में मराठी भाषा बोलते हैं, और अपने समुदाय में सांकेतिक भाषा बोलते हैं । इस समुदाय के पुरुष शरीर से मजबूत है और महिलाएँ

सुन्दर होती हैं। इनका पारंपरिक व्यवसाय तथाकथित समाज का मनोरंजन करना है। जिसमें नृत्य, नौटंकी, जादूगरी आदि करते हुए हमेशा घुमक्कड़ी करता रहा है।

कंजरभाट समुदाय सन् 1871 के 'आपराधिक जनजाति अधिनियम' का शिकार बना हुआ है। पूर्वकाल में इस समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय 'नृत्य' रहा है। बदले में जो अनाज, रुपये मिलते थे उसी पर अपना उदरनिर्वाह चलता था। सन् 1857 के स्वातंत्रता संग्राम में अंगेजों के खिलाफ, अपनी चतूराई, बहादुरी के साथ उनका गोला-बारूद, बंदूके, खजाना लूटकर स्थानिक समाज में बांटकर कंजरभाट समुदाय ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आगे भी अंग्रेजों के प्रति समुदाय उद्देश्य आज़ादी प्राप्ति का ही रहा। इसलिए अंग्रेज इस जनजाति को चिन्हित किया था। और चोरी का इल्जाम लगाकर बेवक्त तांडों पर छापा मरना शुरू किया। उनके लुटे हुए खजाने की जाँच-पड़ताल के बहाने इनकी बस्तियों में आकार महिलाओं के साथ अत्याचार करने लगे। यह सिलसिला अनेक वर्षों तक जारी रहा। अत्याचारों से बच्चे उत्पन्न होने लगे। आगे चलकर इन बच्चों का पालन-पोषण करना भी मुश्किल हो गया। अंग्रेजों के बड़ते अन्याय-अत्याचार को जनजाति सहन नहीं कर पाई और आखिर जात पंचायत ने एक भयावह हुक्म फ़रमाया कि-"अपने समुदाय के प्रत्येक परिवार में जो पहली लड़की जन्म लेगी उसे 'गोरे साहब की बेटी' के रूप में छोड़ना है।"[25] इस तरह अंग्रेजों ने कंजरभाट समुदाय को अपना शिकार बनाया, कुछ महिलाओं को मनोरंजन के लिए उनके आसपास के क्षेत्र में ले जाकर 'नृत्य' करने के लिए मजबूर किया गया। उनके पुरुषों को इस प्रकार मजबूर किया कि वे अंग्रेजों के गुलाम बनकर अपने जातीय व्यवसाय, शराब पिलाने और बेचने का काम करने के लिए विवश किया। यही सिलसिला भारत की आज़ादी तक चलता रहा।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ, फिर भी इस समुदाय को स्वतंत्रता नहीं मिली। सन् 1949 में 'संविधान' में शामिल नहीं किया गया। आखिर 31 अगस्त 1952 के दिन सवेरा हुआ और इस प्रकार की अनेक घुमंतू जनजातियों को 'विमुक्त' किया गया। किंतु इनके विकास के लिए किसी भी प्रकार के बजेट अथवा सरकारी या गैरसरकारी योजना का प्रावधान नहीं किया गया। सेटलमेंट के बाहर आने के बाद और अंग्रेजी शासन ख़त्म होने पर भी इस समुदाय के माथे का 'अपराधी' नाम का ठप्पा नहीं मिट पाया। गोरे अंग्रेजों के बाद काले अंग्रेज (पुलिस) आए और अंग्रेजों द्वारा बनाया गया कानून, वही कानून स्वतंत्र भारत में लागू किया जाने लगा।

---

[25] सकाळ समाचार, सप्तरंग, रविवार, 23 मार्च 2014 (मराठी दैनिक समाचार)

उदरनिर्वाह् के लिए निश्चित साधन और तथाकथित समाज के अस्वीकार ने इस समुदाय को निहत्था बना दिया था । चोरी अथवा गैरकानूनी शराब बेचने के आरोप में कंजरभाट समुदाय फिर से सामने आने लगा । चोरी करने और शराब बनाकर बेचने के जुल्म में पुरुषों को जेल में भर्ती करने लगे । गाँव में किसी के घर में चोरी होती है तो बिना अपराध के इन लोगों को ले जाना, इनके परिवार की महिलाओं के साथ अत्याचार करना, इस कारण कंजरभाट समुदाय तंग गया था । आज़ादी के बाद फिर वही 'गोरे साहब की बेटी' अब 'पुलिस साहब की बेटी' बन गयी...!

जैसे-जैसे समय बदलता गया, वैसे इस जनजाति का स्वरूप बदलता गया और उदरनिर्वाह् के साधन भी अलग-अलग बन गए । इसी साधनों के अनुसार कंजरभाट जनजाति में अनेक उपजातियाँ निर्माण हुई । जिसमें- कंजर, छारा और नट आदि । इनके व्यवसाय क्रमशः कंजर समुदाय चोरी-चकारी करना, छारा समुदाय देशी शराब बनाकर बेचना, नट समुदाय जादूगरी-कलाकारी करना आदि । इन सब के अलावा तीनों समुदायों की रुढी-परंपरा, रीती-रिवाज, पूजा-अनुष्ठान, जात पंचायत आदि एक जैसे दिखाई देते हैं । कंजरभाट समुदाय की विवाह् पद्धति विलक्षण होती है । उत्तम कांबले के अनुसार-"लड़का लड़की को पसंद करता है । बाद में सगाई के लिए माता-पिता लड़की के घर जाते हैं । वहाँ जात पंचायत के लोगों को आमंत्रित किया जाता है । लड़का और लड़की के घर की ओर से जात पंचायत के सदस्यों को प्रति दस-दस रूपये देने पड़ते हैं । शादी होने पर बिरादरी को लड़के की ओर से चाय-पाने की रस्म पूरी करनी पड़ती है ।"[26] किंतु वर्तमान समय दहेज़ हजारों में बढ़ गया है । इस समुदाय में शादी लड़की के घर में होती है और उसकी रस्म दो दिन तक चलती है । पहले दिन हल्दी की रस्म होती है जो दूल्हा-दुल्हन को हल्दी लगाकर स्नान करवाया जाता है । शाम के समय ग्राम देवी- देवताओं के लिए बरात निकाली जाती है और रात में बिरादरी को भोजन दिया जाता है । शादी के दिन बराती आने के बाद ब्राम्हण को बुलाया जाता है । वह नहीं मिले तो जात पंचायत के सदस्य ही मंगलाष्टक दोहरा देते हैं । शादी संपन्न होती है ।

कंजरभाट समुदाय में शादी के दूसरे दिन लड़की के 'चरित्र' शुद्धि के नाम पर 'रजस्वला' (कौमार्य) परीक्षा ली जाती है । सुहागरात की रात को दुल्हे को एक सफ़ेद कपड़ा दिया जाता है

---

[26] भटक्यांचे लग्न, उत्तम काम्बले, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, सुधारित आ- 2010, पृ.सं- 40

*मुलगाच मुलगी पसंद करतो. त्यानंतर 'बात' (साखरपुडा) करण्यासाठी त्याचे आईवडील मुलीच्या घरी जातात. तेथे जातपंचायत बोलावली जाते. मुलगा आणि मुलीच्या आईवडीलांना पंचायतीला दहा-दहा रूपये द्यावे लागतात. लग्न ठरल्यानंतर मुलाने सर्वांना चहा-पाणी द्यावे लागते.

। इसे जाँचने के लिए परिवार की महिलाएँ दूसरे दिन सुहागरातवाले कमरे के बाहर भीड़ लगाये रहती हैं । लड़के को पूछा जाता है लड़की का 'चरित्र' ठीक है या नहीं । अगर खून के निशान न मिले तो उसे जात पंचायत को सौंपा जाता है । जात पंचायत उस लड़की को दंड के रूप में अनेक तरह की सज़ाएँ दी जाती है । जिसमें- उस स्त्री को कपड़े उतारना, शरीर के अंगों को दागना, खौलते तेल में से सिक्का निकालने के लिए कहना और अंततः उसे 'चरित्रहीन' समझकर मायके वापस भेज दिया जाता है । फिर इस लड़की की शादी कभी नहीं हो पाती । इस क्षेत्र में काम कर रहे एक सामाजिक कार्यकर्ता नाम न बताने की शर्त पर कहते हैं-"कौमार्य परीक्षण बहुत गलत प्रथा है लेकिन पंचायतों के डर की वजह से कोई इसके खिलाफ आवाज नहीं उठाता । ये पंचायतें तो हत्या और बलात्कार तक के मामलों में फैसला सुना देती हैं और सबको उन्हें मानना पड़ता है ।"[27] इस से साफ स्पष्ट होता है कि कंजरभाट समुदाय की जातपंचायतों में महिला सदस्यों की भागीदारी ना के बराबर होती है और अपनी बात रखने का अधिकार भी नहीं होता है । इसलिए सबसे ज्यादा शोषण उन्हीं का होता है ।

महाराष्ट्र के गृहमंत्रालय में सन् 2013 को जात पंचायतों के सामाजिक बहिष्कार को रोकने के लिए अधिसूचना (नोटीफोकेशन) जारी किया था । इसके मुताबिक-"इस तरह की घटनाओं पर भारतीय दंड संहिता की कुछ धाराओं के तहत मुक़दमा दर्ज किये जाने का प्रावधान था लेकिन राज्य में यह इसलिए अप्रभावी है क्योंकि जात पंचायतों से जुडी घटनाएँ बमुश्किल ही उजागर हो पाती हैं ।"[28] इससे स्पष्ट होता है यहाँ पर इससे जुड़े कोई विशेष कानून नहीं है और सरकारें भी इन समुदायों का भला नहीं करना चाहती है । महाराष्ट्र में अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के सदस्य कृष्णा चान्दगुडे ने 2013 से जात पंचायतों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की है । किंतु आज भी जात पंचायतों का आतंक कायम दिखाई देता है । 20/01/2018 'मुंबई मिरर' समाचार पत्र के अनुसार महाराष्ट्र के पुणे के पिंपरी चिंचवड में कंजरभाट समुदाय के युवाओं ने एक नयी तकनीक को अपनाया है । इस तकनीक के जरिए अपने समाज में जागरूकता लाने के लिए मुहिम चलायी । इस मुहिम का मकसद कंजरभाट जनजाति में शादी की पहली रात लड़की की कौमार्य (Virginity) को चेक करने की कुप्रथा बंद हो, इसी के खिलाफ

[27] https://satyagrah.scroll.in/article/100068/maharashtra-jati-panchayats-atrocities, 02/06/2017, 04.20pm

[28] https://satyagrah.scroll.in/article/100068/maharashtra-jati-panchayats-atrocities, 02/06/2017, 04.20pm

युवाओं ने व्हाट्सअप के जरिए **stop the ‘v’ ritual** नाम से ग्रुप बनाऐ गए युवाओं को समुदाय विशेष के लोगों ने पीटने की खबर सामने आई है।

कंजरभाट समुदाय में परिवर्तन दिखाई देता है किंतु आज भी इस समुदाय का कुछ हिस्सा मुख्यधारा से बाहर दिखाई देता है। आज भी इस समाज की मानसिकता रुढी-परंपरा और स्त्रियों को गुलाम बनाकर रखने वाले कुप्रथाओं में उलझी हुई दिखाई देती है। इसलिए जनजाति के युवाओं ने समुदाय को एकत्रित करने हेतु, समुदाय में स्थित अनिष्ट प्रथाओं को ख़त्म करने और युवाओं को प्रोत्साहित करने हेतु संगठन बनाये है। इससे समुदाय के बच्चों और युवा शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं। नौकरी कर रहे हैं, तो कुछ अशिक्षा के कारण शहर में जाकर साफ-सफाई से लेकर कंपनियों में मजदूरी तक का काम करके अपना उदरनिर्वाह करते हैं। ग्रामों में आज भी अशिक्षा के कारण दरिद्रता, भुखमरी, शराबखोरी जारी है। इसके लिए समुदाय के संघटन जागरूकता लेन के लिए तत्पर है। किंतु युवाओं के लिए रोज़ गार, किसानी के लिए जमीन, बच्चों के लिए स्थायी स्कूल और महिलाओं पर जात पंचायत द्वारा होने वाले अन्याय को रोकने के कानून और उन्हें बुनियादी सुविधा दिलाने के लिए सरकार को इस समुदाय की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

5.पारधी समुदाय

‘पारध’ इस मराठी शब्द से ‘पारधी’ शब्द की उत्पत्ति हुई है। मराठी ‘पारध’ शब्द का मतलब ‘शिकार’ होता है। पारधी समुदाय प्राचीन काल से जंगलों में भटकने वाली एक जनजाति है। वे लोग जंगल में रहने के कारण शिकार करके वे अपनी उपजीविका चलाते थे, आज भी अनेक गावों में देखतें हैं, इनका गाँव से कोई संपर्क नहीं हैं। यह जनजाति महाराष्ट्र के अहमदनगर, नाशिक, सोलापुर, उस्मानाबाद, परभनी, बीड, नांदेड़, हिंगोली, जालना (परतूर), औरंगाबाद, कोल्हापुर, पूना के अलावा विदर्भ के कुछ जिलों में इनकी बस्तियाँ है।

पारधी जनजाति में अनेक उपजातियाँ पाई जाती है। जैसे- राजपारधी, पालपारधी, हिरणपारधी, फासेपारधी, चित्तेपारधी, गायपारधी आदि। पारधी अपने-आपको उत्तर भारत के राजस्थान, गुजरात की ओर से आये हुए और राजपूत घराने के वंशज मानते हैं। इसी कारण इनके उपनाम चौहान, पवार, शिंदे, भोसले, काले आदि प्रतीत होते हैं। ये अपने नाम के अंत में ‘सिंग’ या ‘सिंह’ शब्द लगाते हैं। इनकी भाषा राजस्थानी और गुजराती के करीब मराठी मिश्रित बोली है। वे अपनी बिरादरी में अपनी बोली और बाहर मराठी बोलते हैं। इनके

शिकार करने के अलग-अलग प्रकार के कारण इस जनजाति में अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हुई हैं। प्राचीन काल से यह जनजाति शिकार करके अपना उदरर्निवाह करती हैं । भारत में ब्रिटिश सरकारने सन् 1871 में 'जंगल अधिनियम' बनाकर जंगलों पर 'प्रतिबंध' लगाया, इस कारण इनकी रोजी-रोटी बंद हो गयी । रोजी-रोटी के लिए इन्होनें छोटी-मोटी चोरियाँ करके उदरर्निवाह करते थे। किंतु वे भी रास नहीं आया और 'गुनहगार जनजाति अधिनियम' बनाकर इन्हें 'अपराधी' घोषित किया। इस अपराध का ठप्पा आज़ादी के बाद आजतक इस जनजाति के माथेपर कायम है । समाज ने इसे स्वीकार नहीं किया, रोज़ गार, स्थायी जमीन न होने के कारण ये जनजातियाँ जंगल-पहाड़ियों में भटकती रही।

पारधी जनजाति में शादी के लिए लड़का या लड़की के पसंद का विचार नहीं किया जाता है। माँ-पिता ने जिस लड़की या लड़के से शादी करने का निर्णय लेते है उसी के साथ शादी होती है। "इस जनजाति में विनियम विवाह पद्धति पाई जाती है। जैसे-वधु के भाई की शादी वर के बहन के साथ करके दो शादियाँ करते है।"[29] इस प्रकार की शादियों में दहेज़ का लेन-देन तो नहीं होता है, किंतु बालविवाह अधिकतर होते हैं। किसी के घर में केवल वधु देना है तो जात पंचायत की बैठक बुलवाकर पंचों के पास बारह रुपये राशि जमा करनी पड़ती है। शादी में वर की हैसियत के अनुसार वधु को कपड़े खरीद लेते हैं। इनकी शादी में अन्य समाज की तरह मुहूर्त या ब्राह्मण को बुलवाने की ज़रूरत नहीं होती है, सहूलियत के अनुसार समय तय करके शादी का दिन निश्चित किया जाता है। शादी वर के घर में संपन्न की जाति है। पति या पत्नी को तलाक देना है तो जात पंचायत की बैठक बुलवाई जाती है। जिसकी गलती है वह अगले वाले पक्ष को शादी में जितना खर्चा हुआ उतना देकर अलग हो सकते हैं।

वर्तमान समय में पारधी यह जनजाति सरकारी सुख-सुविधाओं से दूर है। इनके माथे पर जो अपराधी का धब्बा है, वह आज भी लोगों के मन में बसा हुआ है। मारोतराव जाधव अपनी आत्मकथा 'पारधी का छोरा' (पारध्याचं पोर) में लिखते है -"अंग्रेजी सरकार को भारत से भागने से लेकर देश को स्वतंत्रता दिलवाने तक विमुक्त घुमंतू जनजाति ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें पारधी जनजाति का प्रमुख स्थान है। देश को स्वतंत्रता प्राप्ति के 70 सालों बाद भी यह समुदाय मुलभुत सुख-सुविधाओं से कोसों दूर हैं।"[30] इस समुदाय में शिक्षा की अच्छी

---

[29] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं- 58

[30] पारध्याचं पोर, मारोतराव जाधव, सुगावा प्रकाशन, पुणे, पहली आवृत्ति-2017, पृ.सं- 3

सुविधाएँ नहीं हैं। स्थायी जगह का मालिकाना हक नहीं है। रोज़ गार की उपलब्धि नहीं है। आसपास कहीं चोरी होती है तो पुलिसवाले इनके बस्तियों में आकार बेवजह लोगों को उठाकर ले जाते हैं। इनके महिलाओं के साथ बदसलूकी करते हैं।

पारधी समुदाय के लोग आज भी शिकार पर निर्भर हैं, शहरों में खरगोश, तीतर, छत्ते, महुआ के फूलों की शराब आदि को बेचकर खाने के लिए मजबूर हैं। इनके लिए स्थायी बस्तियाँ तो मिल गयी है पर रोज़ गार की व्यवस्था नहीं। बच्चे स्कूल जा रहे है, किंतु रहने के लिए अच्छा छत नहीं और बिजली की सुविधा नहीं है। पहचान पत्र, आधार कार्ड है किंतु आवास प्रमाणपत्र और जाति-प्रमाणपत्र नहीं हैं। सरकार से सुविधाओं की घोषणा की जाती है, पर इन तक नहीं पहुँचती है। आज इस समुदाय को रोज़ गार, स्थायी जमीन, सुरक्षा और शिक्षा की ज़रूरत है। इसी कारण वर्तमान समय महाराष्ट्र सरकार ने इस समुदाय को अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल किया है। फिर भी इनके बच्चों को अच्छे दिशानिर्देशन की ज़रूरत है।

6.वडार समुदाय

भारत में वडार जनजाति लगभग सभी स्थानों पर पाया जाता है। महाराष्ट्र के लगभग सभी जिलों में पाई जाती है। यह समुदाय महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा मेहनतकश समुदाय के नाम से जाना जाता है। इस समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय पत्थर तोडना है। यह समुदाय पूर्वकाल में गढ़, किले, रजवाड़े, रास्ते आदि के लिए पत्थर तोडना, तराशना और मूर्तियाँ बनाने का काम करता था। टी.एस चव्हाण लिखते हैं-"वडार समाज ओडिशा से स्थलांतरित होते हुए दिखाई देता है। यह समाज श्रीलंका में 'भोवी' नाम से जाना जाता है। नेपाल में वडार समुदाय पाया जाता है।...वहाँ भी इनका मुख्य व्यवसाय पत्थर टांकना उसी से दीवार रचाना है।"[31]

इस समुदाय की भाषा तेलुगु है, वे तथाकथित समाज में मराठी और अपने समुदाय में तेलुगु बोलते हैं। वडार समुदाय में अनेक उपजातियाँ पाई जाती है। जिनमें-गाड़ी वडार, माती वडार, जाति वडार, पथरवट, संगतराश, वडार आदि। यह समुदाय वंश परंपरा से व्यवसाय

---

*गोर्यांना भारतातून 'सालो की पलो' करुन सोडण्यापासून ते देशाला स्वातंत्र मिलवून देण्यापर्यंत भटके-विमुक्त जाति-जमातीच अग्रेसर होत्या. त्यात पारधी समाजाचा सिंहाचा वाटा होता. देशाला स्वातंत्र मिळून सत्तर वर्ष झाले तरी नागरी सुखसोयींपासून हा समाज हजारों कोस दूर आहे.

[31] वडार समाज परंपरा व इतिहास, टी.एस चव्हाण, कवी सचिन टी.चव्हाण, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति-2016, पृ. सं-33-34

*वडार समाज ओरिसामधून स्थलांतर झाल्याचे दिसून येते. श्रीलंकेत भोवी म्हणून ओलखला जातो. तसेच नेपालमध्ये सुद्धा वडार समाज आहे...पोटासाठी भटकंती करीत असलेला वडार समाजाचा प्रमुख व्यवसाय दगड फोड़ने बांधकाम करने आहे.

करते हैं। एक जाति दूसरी जाति का व्यवसाय नहीं करती। इनमें 'जाति वडार' अपने आपको श्रेष्ठ मानते हैं। इनके उपनाम भी लगभग एक जैसे हैं, किंतु एक उपनाम के चलते शादी नहीं हो सकती। वडार समुदायों में रोटी व्यवहार चलता है, किंतु बेटी व्यवहार नहीं।

वडार समुदाय में शादी के लिए लडके की ओर से लड़की के लिए प्रस्ताव रखा जाता है। संभवतः अधिकतर रिश्तेदारी में ही प्रस्ताव रखते हैं। इनमे वधू को दहेज़ दी जाने की प्रथा है। वर के घर देने के लिए पैसे न हो तो वधू के घर रहकर कीमत चुकानी पड़ती है । वडार समुदाय में ममेरे बहन या ममरे भाई के साथ शादी की जाती है। पहले इस समुदाय में जाति के प्रमुख तांत्रिक विधियाँ अपनाकर शादी करवाते थे। अब ब्राह्मण या जंगम (लिंगायत जाति का व्यक्ति) के द्वारा करवाते हैं। शादी तीन दिनों तक चलती है। पहले दिन स्त्रियों को चूड़ियाँ पहनाया जाता है, और वधू-वर को हल्दी से स्नान करवाते है। दूसरे दिन स्त्रियाँ गाने गाती हैं। तीसरे दिन शादी। भोजन मांसाहारी तथा शराब दी जाती है।

वर्तमान समय इस समुदाय की स्थिति बहुत ही दयनीय है। आधुनिकीकरण ने इनके व्यवसाय (पेट) पर लात मारी है, पत्थर की जगह ईट आ गयी और पत्थर तोड़ने की जगह क्रेषर मशीन ने व्यवसाय को चौपट कर रखा है। युवा शहर की ओर दौड़ रहे है, बचे ये दिहाड़ी मजदूरी करते हैं, कुछ सूअर पालन करते हैं और कुछ शिकार में मिले पशु-पंछी बेच करके जीविका चले है। शहर में ठेकेदार इनका शोषण करके गब्बर होते जा रहे हैं। समुदाय में अशिक्षा के कारण सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है। बच्चे स्कूल की राह पकड़े हैं, कुछ युवा छोटी-मोटी नौकरी कर रहे हैं, स्थायी हो रहे हैं। कुछ लोगों को स्थायी जगह मील गयी है, परंतु भटकना जारी है। इस समुदाय का राजनीतिक प्रभाव नहीं है और अच्छी राह दिखने वाला नेतृत्व नहीं मिलता है, इसलिए राजनीतिक पार्टियाँ इस समुदाय को अपने-अपने ढंग से उपयोग करते हैं, किंतु अब समुदाय तंबूओं के बाहर मुख्यधारा में आने के लिए तैयार है। सरकार की इस समुदाय की ओर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है।

7.रामोशी/बेरड़ समुदाय

महाराष्ट्र में रामोशी समुदाय मुख्यतः पश्चिम महाराष्ट्र में पाया जाता है। अलावा कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश-ओडिशा के सीमाओं पर तथा महाराष्ट्र-मध्यप्रदेश के सीमा पर पाया जाता है। मराराष्ट्र में इस समुदाय को रामोशी रान + वासी, रान अर्थात जंगल, वासी मतलब निवासी अर्थात रानवासी कहलाता है। कुछ साहित्यिक

इस समुदाय को राम + वंशी = रामोशी आदि। किंतु प्रश्न उत्पन्न होता है कि, राम के वंशज होते तो किसी ऊँचे कुल के कहलाते चूंकि समाज में इन्हें अस्पृश्य तथा चोर समझा जाता है। खैर, रामोशी समुदाय को कर्णाटक में बेडर या बेरड़, तमिलनाडु में वेदना, आंध्रप्रदेश और तेलंगाना में बोया अथवा दोरा विद्दू नाम से जाना जाता है। किंतु महाराष्ट्र में "रामोशी समुदाय में कोली रामोशी, व्हलगे रामोशी, भिल्ल रामोशी, माँग रामोशी और लिंगायत रामोशी जैसी विविध उपजातियाँ पाई जाती हैं।"[32] पूर्वकाल से इस समुदाय कोई का व्यवसाय निश्चित नहीं था। इसलिए इन्हें समाज में अस्पृश्य समझकर काम या मजदूरी नहीं मिलती। मजबूरन समुदाय के लोग छोटी-मोटी चोरी करके अपना उदरनिर्वाह करते थे। आगे इन लोगों की चतूराई और शरीरयष्टि को देखकर राजा शिवाजी ने अपने कार्यकाल में इन्हें सैनिक का काम दिया। विशेषकर शिवाजी ने इस समुदाय को गढ़, किले और गाँव की रक्षा करने का काम सौंप दिया। आगे चलकर इनकी बहादूरी के कारण राजा शिवाजी ने इस समुदाय को 'नाईक' की उपाधि प्रधान की। राजा शिवाजी के बाद रामोशी समुदाय ने मुघल साम्राज्य से समाज को बचाने की ठान लिया, उनकी ओर से महिलाओं पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार और मंदिरों लूटने से बचाकर समाज की रक्षा की है। इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यिक भीमराव गस्ती कहते हैं-"मुघलों ने उत्तर भारत की स्थिति जैसे बनायी है, वैसे दक्षिण भारत की नहीं बनी है। जिसमें खासकर किले, मंदिरों की स्थितियों को देखा जाए तो मंदिर बचे हुए मिलते हैं। इसका कारण उस समय रामोशी, दायी और बेडर कहे जानेवाले समुदाय ने अपनी बहादुरी से रक्षा की।"[33]

सन् 1803 में महाराष्ट्र पूना के दूसरा बाजीराव पेशवा ने अंग्रेजों के अधिपत्य को स्वीकार किया था। आगे चलकर 1819 से 1832 तक रामोशी समुदाय के जननायक उमाजी नाईक ने राजा शिवाजी को अपना श्रद्धास्थान बनाकर लगातार तेरह साल अपने नेतृत्व में अपने साथियों के साथ गोरिल्ला युद्ध अपनाकर अन्याय-अत्याचारों से समाज बचाने और अंग्रजों से उनका खजाना लुटकर गोर-गरीब जनता में बाँटने का काम किया हैं। इस तरह पश्चिम तथा दक्षिण भारत को बचाया था। उमाजी नाईक की इस निति से तंग आकार अंग्रेजी प्रशासन ने उन्हें पकड़ ने के लिए इनाम रखा गया। "उमाजी नाईक के बारे में जानकारी देने वाले को 10 हज़ार का इनाम घोषित किया गया। तब उसी समुदाय के नाना चव्हाण नामक

---

[32] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं- 32

*रामोशीमध्ये कोळी रामोशी, व्हलगे रामोशी, भील रामोशी, मांग रामोशी असे विविध प्रकार आहेत.

[33] https://www.youtube.com/watch?v=XliKK1trhvI 15/06/2017, 02.00 pm

आदमी ने अंग्रेजों को उमाजी नाईक के बारे में खबर दे दी ।"[34] उमाजी नाईक को पकड़ा गया और 3 फरवरी 1832 के दिन पूना में स्थित खडकमाळ आळी नामक कचेरी (जेल) में फांसी दी गयी । तब से रामोशी समुदाय के लोगों से 'नाईक उपाधि' छिनी गयी और गाँवों, ग्रामों का कारोबार देशमुख और वतनदार संभालने लगे । रामोशी समुदाय दोबारा अनिश्चित, व्यवसायहिन बन गया । फिर से छोटी-मोटी चोरी करके अपनी आजीविका चलाने लगा । सन् 1857 स्वातंत्रता संग्राम में अंग्रेजी शासन के खिलाफ जाकर उनका खजाना, गोला-बारूद लूटकर स्वतंत्र सेनानियों को दिया था । सन् 1870 में क्रांतिकारी वासुदेव बलवंत फडके ने अपने नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ मिसाइल तैयार की थी, उनमें सबसे अधिक संख्या रामोशी समुदाय के युवाओं की थी । इसी कारण सन् 1871 में 'गुनहगार जनजाति कानून' तहत अपराधी घोषित किया गया । उसी अपराध का ठप्पा आज तक इनके माथेपर कायम है । अब इन्हें रामवंशी या राम के वंशज कहकर सहानुभूति दर्शाते हैं, तो कोई चोर-डाकू कहकर इस समुदाय को इतिहास के पन्नों में बदनाम करता है ।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ है और 1950 ई. में भारतीय संविधान लागू हुआ है किंतु कई समुदायों को इससे वंचित रखा गया । 31 अगस्त 1952 को 'विमुक्त' नाम देकर स्वतंत्र की किंतु इनके लिए किसी भी प्रकार के बजेट या सहायता नहीं की । तब से लेकर आजतक यह समुदाय अपने अनिश्चित आवास, व्यवसाय के कारण हमेशा भटकता रहा है । समुदाय में अज्ञानीता, अशिक्षा, व्यसनाधीनता, अंधविश्वास और जात पंचायत जैसी कुप्रथाएँ अधिक दिखाई देती है । समुदाय का कुलदेवता जेजुरी (पुणे जिला) के खंडोबा हैं, अलावा मरिआई, कालुबाई, जाने, फिरंजाई, तूकाई, भैरोबा, यल्लम्मा आदि देवी-देवताओं की पूजा-आर्चना करते हैं । समुदाय में विधवा विवाह को मान्यता है, परंतु उसके लिए जात पंचायत द्वारा बनाये गए नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है और वधु-वर के परिवार की सहमति से विवाह संपन्न होता है । इनमें लड़का लड़की को मंगनी करने आता है । सगाई के बाद शादी की तिथि तय की जाती है । शादी दो-तीन दिनों तक चलती है । शादी के बाद तलाक दे सकते हैं। इसके लिए जात पंचायत द्वारा बनाये गए नियम-कानून का पालन करना पड़ता है । इसका फैसला जात पंचायत का मुखिया 'नायक' करता है । मुख्यतः तलाक देने या लेने से बचाने की

---

[34] https://mr,wikipedia.org/wiki/उमाजी_नाईक_विकिपीडिया (15/06/2017, 04.30 pm)

कोशिश की जाती है । मामला जब अधिक कठिन हो जाता है, तब उसकी गलती होती है, उसे शादी में जितना खर्च हुआ, उसे उतना जमा कर तलाक दे सकता है ।

वर्तमान समय इस समुदाय के लोग देशी शराब बेचने, गन्ने काटने, बंधुआ मजदूरी, शहरों में मजदूरी आदि जैसे काम करते हैं । युवा-बच्चे परिवार को हाथ बाँटने में मद्द करते हैं तो कुछ पढ़ाई करने के लिए स्कूल का रास्ता पकड़े हैं । युवा शहरों में जाकर स्थायी-अस्थायी नोकरी और पढ़ाई कर रहे है । किंतु शिक्षा में स्पर्धा और आरक्षण के लाभ से कुछ तबका वंचित है । इसके लिए समुदाय का युवा वर्ग संघठित होकर अपने जनजाति के लिए स्थायी जगह, रोज़ गार, शिक्षा आरक्षण माँग के साथ-साथ समाज में स्थित कुरीतियों, शराब-खोरी आदि को मिटने के लिए जनजागृति कर रहा है । किंतु सरकार को इस समुदाय के बारे में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

1.2.2. महाराष्ट्र के घुमंतू जनजातियों का परिचय

1.बेलदार समुदाय

बेलदार समुदाय मुख्यतः महाराष्ट्र के विदर्भ, मराठवाडा तथा पश्चिम महाराष्ट्र के जिलों में पाया जाता है । इनका पारंपरिक व्यवसाय दीवार बनाना है । पूर्वकाल में यह समुदाय गढ़, किले, रजवाड़े आदि बनाने का काम करता था । कालांतर में राजा महाराजाओं का पतन होते गया और भारत में अंग्रेजों ने अपना वर्चस्व बना लिया । अंग्रेजों ने इस जनजाति से पैलेस, महल बनवाने का काम करवा लिया । भारत स्वतंत्रता के बाद भी इस समुदाय की भटकन बंद नहीं हुई ।

इस समुदाय में एक-दूसरे के प्रति बहुत स्नेह भाव रखते हैं । वे मुसीबतों का सामना और आपस की समस्याओं को एकत्रित होकर समाधान ढूंढते हैं । उदरनिर्वाह के लिए दर-दर भटकने वाले बेलदार देवधर्म, भूतदया पर अधिक विश्वास करते है । किसी भी प्रकार का रोग, नुकसान का मतलब भगवान की लीला समझते हैं । उसे ख़तम करने के लिए भगवान को मनौतियाँ माँगते है । वे यल्लामा, मरिआइ, म्हसोबा आदि देवी-देवताओं को अधिक मानते है और हिस्से में आयी जिंदगी को अपने नसीब का कारण मानकर स्वीकारते हैं ।

बेलदार समुदाय में लड़का-लड़की की शादी 15-16 साल की उम्र में करवाते हैं । इनमें वर वधू को दहेज़ देने की प्रथा है । बहुपत्नीत्व और विधवा विवाह को मान्यता दी जाति है ।

वर्तमान समय बहुपत्नीत्व की मान्यता कम होते दिखाई देती है । किंतु इस समुदाय की स्त्रियाँ रसोई घर और बच्चों को संभालने तक ही सीमित रही है । फिर भी स्त्रियों को पुरुषों बराबर काम करना पड़ता है । इस समुदाय में गधे को महत्वपूर्ण स्थान है, हर किसी के घर में पाँच-छह गधे होते ही है । अशोक पवार अपनी आत्मकथा में लिखते है-"गधा हमारे घर की लक्ष्मी है ।"

वर्तमान समय में बेलदार समुदाय उदरनिर्वाह के लिए अलग-अलग काम करके आजीविका चला रहा है । शहरी-ग्रामीण क्षेत्र में जाकर खुदाई, पत्थर तोडना, मिस्त्री का काम, खेत मजदूरी करते हैं । कुछ लोग भटकते हुये शहरों के झुग्गी-झोपड़ियों में आश्रय पा रहे हैं । शहर में आने से इनके बच्चे स्कूल में जाने लगे है । किंतु इनके ऊपर रुढी-परंपरा भूत आज भी सवार है । इसको लेकर जनजागृति आवश्यक है ।

2.कोल्हाटी समुदाय

महाराष्ट्र में कोल्हाटी समुदाय मुख्यतः पश्चिम महाराष्ट्र में कोल्हापुर, सांगली, सातारा, पुणे, सोलापुर और मराठवाडा के बीड, उस्मानाबाद, परभणी अधिक संख्या में पाया जाता है । कोल्हाटी समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय नृत्य करना, तमाशा अर्थात नाच-गाना करना है । यह समुदाय मुख्यतः स्त्रियों पर आधारित होता है । संभवतः कोल्हाटी समुदाय की स्त्रियाँ पूर्वकाल में राजा-महाराजाओं के दरबार में नृत्य करने का काम करती थी, और इनके पुरुष राजा के दरबार में सैनिक या रसोइया का काम करते थे । समय के अनुसार राजाओं का पतन हो गया और यह समुदाय अपने उदरनिर्वाह के खोज में लोगों का मनोरंजन करते हुए गाँव-गाँव भटकने लगा । समय के अनुसार इस जनजाति में दो उपजातियाँ निर्माण होती दिखाई देती है, जिनमें कोल्हाटी और डोंबारी । कोल्हाटी समुदाय शहरी-ग्रामीण क्षेत्र के मेलों, सन-उत्संवों के दिन अपने पांरपरिक व्यवसाय नाच-गाने (नृत्य) को अपने आजीविका का साधन बनाया । डोंबारी समुदाय ग्रामों-शहरों में समाज का मनोरंजन करने के लिए कसरतों का खेल करने लगा। उसी से मिले अन्न-धान्य, रुपये-दो रुपये पर अपनी आजीविका करने लगे ।

कोल्हाटी समुदाय की स्त्रियाँ नाच-गाने के पेशे से जुडी होने के कारण वह शादी नहीं कर सकती । अगर इनकी शादी हो भी जाति है तो इनके पति बदलते रहते हैं । पतियों के लिए इन महिलाओं की सार्वजानिक निलमी होती है । जिसके कारण उनके बच्चे पढ़-लिख नही सकते । इनका सिर्फ चीरा उतरा जाता है । किशोर शांताबाई काले अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-"चीरा उतरने की रस्म शादी-ब्याह जैसी होती है । नाचने वाली के जीवन में जो पहला आदमी आता है

उस नाचनेवाली के परिवार द्वारा मांगी गयी रकम अदा करनी पड़ती है । आदमी सोना, जमीन-जायजाद या रूपये के माध्यम से भी हो सकती है । चीरा उतरने को नाचने वाली के जीवन में पति का स्थान मिल जाता है ।...कोल्हाटी समाज में उसे 'कजा' कहते है ।"[35]

वास्तव में स्त्रियों की गुलामी का सबसे बड़ा कारण धार्मिक-सामाजिक मूल्य और प्रथा-परंपराएँ है, जो स्त्रियों को बंदी बनाकर रखती है । इस समुदाय में बेटी पैदा होने पर खुशियाँ मनाई जाती है । जब लड़की 5-6 साल की हो जाती है तब उसके परिवार वाले क़िताब-कापियों की जगह घुँघरू और शृंगार की वस्तुएँ देते है । लडकियाँ बचपन से ही पांवों में घुँघरू बांदती है, जो आगे चलकर बेड़िया साबित होती है ।

वर्तमान समय में कोल्हाटी समुदाय में सुधार दिखाई देता है किंतु शिक्षा, रोज़ गार, स्त्रियों की स्थिति में बदलाव दिखाई नहीं देता है । अंतर केवल इतना है पुरुष पहले परिवार का बोझ सिर पर ढोते थे और स्त्रियाँ तमाशा करते समय लोगों के बिच (घेरे) नाच-गाना करती थी। अब नाच-गाना मंच पर करती है और परिवार का सामान बैलगाड़ी की बजाय ट्रक, टेंपो जैसे वाहनों में लादकर ले जाने की सुविधा हुई है । पार्टी (नाच-गाने का पेशा) अब आर्केस्ट्रा में बदल गयी परंतु स्त्रियों को देखने का नजरिया नहीं बदला है । जितना कमाई होती है उतनी ही ख्वाहिशें बदलती जाती है । जिसके कारण महिलाएँ शेट-धन्नाओं की शिकार बनती है ।

3.गोंधली समुदाय

महाराष्ट्र में गोंधली समुदाय मुख्यतः पश्चिम महाराष्ट्र में सातारा, कोल्हापुर, सोलापुर, पुणे और मराठवाडा के तूलजापुर, माहुर तथा तेलंगाना, कर्नाटक सीमांत क्षेत्र में पाया जाता है। इस समुदाय के लोग खुद को भवानी और अम्बामाता के अनुयायी समझाते है । इनका मुख्य व्यवसाय शादी-ब्याह, सन-उत्सव, नामकरण या किसी ख़ुशी के कार्यक्रम के दौरान भवानी माता, अम्बामाता, रेणुकामाता, खंडेराय आदि देवी-देवताओं, राजा-महाराजाओं के नामस्मरण कर गीतों, लोकगीतों और गाणों का गोंधळ/जागर (महफ़िल) चलती है । गोंधळ के समय विशिष्ट तरह का पोशाख परिधान करते है, जिसमें सफ़ेद या लाल चोंगा/लबादा, लाल पगड़ी, गले में कौड़ियों को माला डालकर प्रस्तुत करते हैं । खासतौर यह गोंधळ रात में शुरू होता है और भोर होते-होते ख़त्म किया जाता है ।

---

[35] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1997, पृ. सं-17

पूर्वकाल में राजा-महाराजाओं के दरबारों में गोंधली समुदाय के लोग बच्चों के नामकरण, मुंडन, राज्याभिषेक आदि पर गोंधळ करते थे । महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष में श्रीधर केतकर लिखते है-"गोंधली जनजाति का मूल क्षेत्र हैदराबाद संस्थान और मध्यप्रांत के अलावा गुजरात के कुछ क्षेत्र में फैले हुए हैं । वे माहुर और तूलजापुर के निवासी हैं, वे कहते हैं की दो सौ या तीन सौ साल पहले वे दक्षिण भारत से आयें हैं । चूंकि वे अंबाबाई, भवानी की सेवा करते है, इसलिए उन्हें निचली जाति के लोगों से अच्छी प्रतिष्ठा मिलती है । मराठा शासन की शुरुआत में गोंधली समुदाय पोहाड़े, गीत गाकर अशिक्षित जनता में देश भक्ति के प्रति स्वाभिमान जागृत करते थे । यह लोग 'गोंधळ' करके और 'भवानीमाता' के नाम पर जोगवा (भिक्षा) माँगकर अपना उदरनिर्वाह चलाते थे ।"[36]

पूर्वकाल में इस समुदाय में बाल विवाह धड़ल्ले से होता था । कालांतर में यह प्रथा कम होती दिखाई देती है । इनमें शादी एक उपनाम में नहीं होती, परंतु मामा अपनी भांजी से शादी कर सकता है । शादी माता-पिता के अनुसार की जाती है, इनमें लड़की या लड़के की पसंद देखी नहीं जाती । लड़की देखने के लिए माता-पिता, सगे-संबंधी और जात पंचायत के लोग जाते है । लड़की पसंद आती है तो कुछ दिनों में ही शादी की तिथि निकली तय की जाती है । वर के परिवार से शराब दी जाती है, उसे पंचायत के पंच लोग बाँटते हैं । दहेज़ में पैसे का लेन-देन नहीं होता है, परंतु कपड़े, आभूषण, घरेलू वस्तुएँ स्वीकार करते हैं ।

वर्तमान समय गोंधली समुदाय के लोग पहले जैसे ही देव-देवताओं के नाम पर गोंधळ करते है, अब हमेशा की बजाय सन्-उत्सव के दिन प्रस्तुत करते हैं । परंपरा बचाए रखने हेतु हर मंगलवार को पाँच घरों में जोगवा माँगने की प्रथा इस समुदाय में आज भी देखी जा सकती है ।

4.घिसाड़ी समुदाय

घिसाड़ी यह समुदाय महाराष्ट्र के लगभग सभी जिलों में पाया जाता है । संभवतः इस समुदाय का उद्भव लुहार जाति से हुआ है, अब लुहार जाति स्थायी बनकर अपना पारंपरिक व्यवसाय करती है, किंतु घिसाड़ी समुदाय (घुमंतू प्रवृत्ति से) जहाँ काम मिले वहीं अपना डेरा जमा लेते हैं । काम पूरा होने पर काम की खोज में निकल पड़ते हैं । इस समुदाय की अपनी बोली, रीती-रिवाज, रुढी-परंपरा, देवी-देवता हैं ।

---

[36] Ketkardnyankosh.com/index.php/2012-09-06-10-42-09/7537-2013-02-09-24-28, (20/06/2017, 08.00pm)

घिसाड़ी समुदाय पूर्वकाल से अपने पारंपरिक व्यवसाय का काम करते हुए लोहे के साहित्य, लोहे के आवजार, हत्यार जिनमें दानपेटी, तोफ, भाले, बरची, तलवार दरवाजे आदि उत्कृष्ट एवं नक्षिदार वस्तुएँ बनाते थे। कालांतर में राजा-महाराजाओं का अधिपत्य समाप्त हुआ। तब से यह जनजाति काम की खोज में भटकती है। भारत स्वतंत्रता के बाद भी यह जनजाति स्थायी ठौर-ठेकाना नहीं जमा सकी। कालांतर में घिसाड़ी समुदाय औजार बनाने के अलावा घरेलु वस्तुएँ, टूटे-फूटे घड़े, बर्तन, कैची को धार देने और दुरुस्त करने का काम करते हुए भटकते हैं। बदले में जो रोटी-सब्जी, धान्य-राशि मिलती है, उसी पर अपनी जीविका चलते हैं।

घिसाड़ी समुदाय में किसी भी प्रकार का दहेज़ लेना जात पंचायत के विरोध में होता है। इस समुदाय में पोवार, शेलार, सुर्यवंसी, पड्वल, चव्हाण, सालुंके आदि उपनाम है। एक उपनाम में शादी नहीं कर सकते। शादी के समय वर पक्ष की ओर से वधू के पिता को दो सौ रुपये 'दहेज़' के रूप में दिया जाता है, वधू पक्ष की ओर से वर को वस्त्र का उपहार दिया जाता है। हैसियत के अनुसार आभूषण पहनाये जाते है। शादी वधू के घर संपन्न होती है। शादी के दूसरे दिन वर वधू को अपने घर ले जाता है। उसी दिन अपनी बिरादरी के लोगों को माँसाहार भोजन देना पड़ता है।

वर्तमान समय घिसाड़ी समुदाय अपना डेरा बैलगाड़ी के बजाय किराये के ऑटो-रिक्शा पर लादकर काम की खोज में निकलते हैं, किंतु इस समुदाय का घूमना अब कम होते दिखाई देता है। वे अब बारिश के दिनों किसान जमीन में बिज बोने से पंद्रह-बीस दिन पहले से इस समुदाय के लोग घर छोड़ते है। ग्रामों-शहरों के बगल में अपना डेरा बसाते हैं, खेती से उपयुक्त सामान की दुरुस्ती करते है। जिनमें हल की फाल, खुरपा, दरानी, सब्बल, कुल्हाड़ी, बैलगाड़ी के चक्के आदि वस्तुओं को बनाने का काम करते है। अब वे अपने काम के बदले राशि लेते हैं। किंतु आधुनिक वस्तुओं के कारण इनके बनाये गए सामान को भाव (कीमत) कम मिलती है, और लोगों का इनके सामन के प्रति जितना आकर्षण पहले था उतना नहीं रहा है। इनके बच्चे शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ स्थायी-अस्थायी नोकरियाँ कर रहे है परंतु अधिकत्तर युवा अपने पुरखों की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। शिक्षा में अन्य समाज की अपेक्षा प्रगति होनी बाकी है। इनके लिए सरकार को विशेष लक्ष्य देने की ज़रूरत है।

5.जोशी समुदाय

लोगों का भविष्य देखने वाली यह घुमंतू जनजाति भारत के लगभग सभी राज्यों में पाई जाती है । महाराष्ट्र में मुख्यतः ज्योतिष या जोशी नाम से जानी जाती है । इस जनजाति में भविष्य देखने के अनेक प्रकार है, और उतनी ही उपजातियाँ पाई जाती है । 'महाराष्ट्र शासन द्वारा सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक कार्य व विशेष सहाय्य विभाग (मंत्रालय) के अनुसार तत्सम जनजातियाँ हैं । जिनमें-बुडबुडकी, डमरुवाले, कुडमुडे, मेंढगी, सरोदे-सरोदी, सहदेव जोशी, सरवदे, सरोदा आदि ।' यह समुदाय भविष्य देखने के लिए अलग सामग्रियों का उपयोग करते है । जैसे- तोते की सहायता, पंचाग, हस्तमुद्रा देखकर, व्यक्ति के नाम तथा उपनाम की सहायता, चेहरा देखकर आदि की सहायता से बताते हैं । इन सभी समुदायों में अपने-अपने अलग रीति-रिवाज, प्रथा-परंपराएँ मनी जाती है । यह समुदाय महाराष्ट्र में मुख्यतः पश्चिम महाराष्ट्र, के अलावा कमोबेश संपूर्ण महाराष्ट्र में पाया जाता है ।

जोशी यह घुमंतू समुदाय हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण होता रहता है । लोगों का भविष्य देखकर अपना उदरनिर्वाह करने वाला या समुदाय 'भविष्य तो दूसरों का देखता है किंतु अपने भविष्य के बारे में कभी विचार नहीं करता है ।' वह अपना जीवन अस्तित्वहिन जीता है, दूसरों के अस्तित्व के बारे में बड़ी-बड़ी बाते करता है । जोशी समुदाय के पुरुष लोगों का भविष्य देखते हैं और बदले में जो अनाज, रोटी, इक्का-दुक्का रूपया मिलता । इनके बच्चे हाथों में थालि लेकर घर-घर घूमते हैं इसका चित्रण दादासाहब मोरे अपनी आत्मकथा में करते हैं-"प्रत्येक घर के सामने एक भिकमंगा लड़का दिखाई देने लगा । हाथ में थालियाँ, पतौली आदि लेकर बच्चे दर-दर भटकते थे ।"[37] इस प्रकार जोशी समुदाय उदरनिर्वाह करने के लिए बच्चों तक को भीख माँगने के लिए भेज देता है । दूसरों का उज्ज्वल भविष्य बताने वाला यह समुदाय यदि ऐसा होता तो वे मरियाल घोड़े पर अपना डेरा डालकर दर-दर न भटकरहा होता ।

जोशी समुदाय में नैतिक संबंध या प्रेम विवाह को मान्यता नहीं है । किसी ने ऐसा करने कोशिश की तो उसे जाति से बहिष्कृत कर उसका हुक्का-पानी बंद कर दिया जाता है । ऐसे व्यक्ति

---

[37] डेराडंगर, दादासाहेब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प.सं- 2001, पृ.सं- 29

को अपनी जाति में रहना है तो जात पंचायत के पंचों के पांव पकड़ना पड़ता है । उत्तम कांबले लिखते हैं-"पंच जो निर्णय या दंड देते हैं उसे स्वीकार करना पड़ता है । जात पंचायत के कानून में 'कलम' भी मजेदार होते हैं, जो 'मांडी कलम', 'दांडी कलम'। यह लागू होने पर उस अपराधिक व्यक्ति को मांडी कलम के अनुसार दंड होने पर इक्यावन रुपये जुरमान भरना पड़ता है । दांडी कलम के अनुसार एक सौ एक रुपया जुरमान देना पड़ता है । दंड में जमा हुई राशि जात पंचायत के सदस्यों के पास जमा की जाती है ।"[38]

जोशी समुदाय में शादियाँ दस-बारा साल की उम्र में की जाती है । सगाई के समय जात पंचायत के सदस्यों को बुलाया जाता है । जिन्हें 'पाटिल' नाम से जाना जाता है । न्याय देने का काम उन्हीं सदस्यों के हाथ में होता है । जो उदरनिर्वाह के लिए भविष्य बताने से लेकर भीख माँगने तक का काम करते हैं । वहीं लोग समुदाय के किसी भी कार्य विधि में 'पाटिल' होते हैं । जोशी समुदाय जात पंचायत (सुप्रीमकोर्ट) के बारे रामनाथ चव्हाण लिखते हैं-"मढ़ी का निर्णय अंतिम समझा जाता है । मढ़ी को सुप्रीमकोर्ट समझा जाता है । इस कोर्ट का निर्णय स्वयं कानिफनाथ द्वारा दिया गया मानते हैं ।"[39] इस प्रकार जोशी समुदाय में जात पंचायत के निर्णय को महत्व दिया जाता है । इस समुदाय में शादी कार्ड की जगह घर जाकर परिवार मुखिया को चावल दिया जाता है और आमंत्रित किया जाता है । शादी के अंतिम दिन हिन्दू धर्म के अनुसार शादी संपन्न की जाती है । पहले दिनों से अलग-अलग रीति-रिवाजों के अनुसार शादी पाँच दिनों तक चलती है । शादी के लिए चार-पाँच हज़ार रुपये तक का खर्च होता है, उसके लिए वे कर्ज लेना, मुर्गियाँ, बकरियाँ बेचना तथा भविष्य देखने पर मिली पाई-पाई राशि को वे एकत्रित करके खर्चा चलते हैं ।

6.मसनजोगी समुदाय

मसनजोगी घुमंतू जनजाति पूर्व काल में लड़ाकू हुआ करती थी । कालांतर में राजा-महाराजाओं का पराजय हो गया, तब यह जनजाति गांवों के श्मशानभूमि पर आश्रय ली । तब

---

[38] भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं-37

*पंच देतील तो न्याय स्वीकारावा लागतो. आकारतील तो दंड भरावा लागतो. पंचांच्या कायद्यातील कलमेही मजेशीर आहेत. 'मांडी कलम', 'दांडी कलम' इत्यादि नावे आहेत. मांडी कलमानुसार दंड झाल्यास 51 रुपये भरावे लागतात. दांडी कलम लागल्यावर 101 रूपये द्यावे लागतात. दंडाचा पंचांकड़े जमा होतो.

[39] भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत, रामनाथ चव्हाण, खंड-1, पृ.सं-100

* मढ़ीचा' निर्णय हा अंतिम निर्णय समजला जातो. मढ़ीला सुप्रीम कोर्ट समजले जाते. या कोर्टात निर्णय लागने म्हणजे खुद्द कानिफनाथाने निकाल देणे असे समजले जाते.

से यह जनजाति श्मशान में आये शव को आग देने के लिए लकड़ियाँ आदि जुटाने का काम करती थी। उसी के बदले में जो कुछ रासी, अनाज मिलता है उस पर आजिविका चलती। जिस दिन शव नहीं आता है तो गाँव में भिक्षा माँगने, तालाब में मछलियाँ पकड़ने अथवा जंगल में शिकार करने जाति थी। हुकुमचंद जाधव के अनुसार-"पुराने ज़माने में यह लोग श्मशान में चिता रचाने में सहायता तथा शव की रक्षा करते थे। कफ़न से कपड़े सिलाकर पहना करते थे। चिता से बची लकड़ियों से श्मशान के आस-पास ही झोंपड़ी बनाकर रहा करते थे। श्मशान सेवा के मुआवजे में लोग इन्हें बख्शीश दिया करते थे। जिस दिन चिता नहीं जला करती, उस दिन ये लोग गले में रुद्राक्ष की मणियाँ और देवी-देवता की गृहायों की माला, मोरपंखों से बनी टोपी और टोपी के ऊपर इंसानी खोपड़ी पहनकर भीख माँगा करते थे।"[40] उनके इस वेशभूषा में जाने का कारण लोग उन्हें समाज का हिसा नहीं मानते थे, और भीख भी नहीं देते थे। बच्चे, महिलाएँ इनके बहुरूपी वेशभूषा, केशभूषा, गायन-वादन को डर के मारे भीख दे देते हैं।

मसनजोगी जनजाति खुद को शंकर-पार्वती का वंशज मानती है और भैरवनाथ, गोरखनाथ के भक्त। महाराष्ट्र में इस जनजाति के लोग व्यवहार में मराठी भाषा बोलते है और अपनी बिरादरी में सांकेतिक भाषा में बोलते हैं। इन्हें मराठी, हिंदी के अलावा तेलगु और कन्नड़ समझ में आती है।

इस जनजाति में जादू-टोना, भुत-पिशाच, अन्धविश्वास से लोग अधिक ग्रस्त हैं। उसे महत्व भी उतनाही देते हैं। मांसाहार, शराबखोरी, जात पंचायत जैसी परंपरा का पालन करते हैं। इस समुदाय में लड़का हो या लड़की इनका बाल विवाह किया जाता है। इनकी शादी में आपने जनजाति के अलावा किसी अन्य जाति के लोगों को नहीं बुलाया जाता। शादी का दिन सुविधा के अनुसार तय किया जाता है। शादी के बच्चों (दूल्हा-दुल्हन) से लेकर बुजुर्ग महिलाएँ, पुरुष सब शराब (ताड़ी, जो छाज के नाम पर बनायी हुई केमिकल मिश्रित घटिया शराब) पीते है। इस तरह शराब का शवन शादी-ब्याह के अलावा मृत्यु, जतापंचायत आदि के औसर पर करते हैं। इस प्रकार की कु-प्रथाओं में लिप्त होने के कारण मसनजोगी जनजाति में साक्षरता का प्रमाण नहीं के बराबर दिखाई देता है।

वर्तमान समय मसनजोगी जनजाति के लड़के-पुरुष चिता जलने के अलावा धुप के दिनों में ठेकेपर मिले पेप्सी, आइस्क्रेट, आइसगोले गाँव-गाँव घूमकर बेचते हैं तो बारिश के दिनों में शिकार, मजदूरी करते हैं। इनकी महिलाएँ बाज़ार के और अन्य दिनों गाँव-गाँव घूमकर स्त्रियों

[40] घुमंतू-लोकजीन की संस्कृति के विविध आयाम,डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं-2016, पृ.सं-47

के शृंगारिक सामान बेचती हैं । महाराष्ट्र में यह जनजाति मराठवाड़ा के नांदेड़, उस्मानाबाद, परभानी, लातूर और विदर्भ के यवतमाल और चंद्रपुर में तथा पश्चिम के पूना में पाई जाती है । इस समय मसनजोगी जनजाति की जन संख्या बहुत कम हैं । इनके लिए मुलभुत चीज़ें रोटी, कपड़ा, माकन और शिक्षा के अलावा रोजी-रोटी के लिए रोज़ गार की आवश्यकता हैं ।

7.वंजारी समुदाय

महाराष्ट्र में वंजारी समुदाय मुख्यतः मराठवाड़ा क्षेत्र के बीड, उस्मानाबाद, परभणी, लातूर, नांदेड, जालना तथा पश्चिम महाराष्ट्र के अहमदनगर, नाशिक, धुले तथा विदर्भ के बुलढाणा में पाया जाता है । इनका मुख्य व्यवसाय वनों में जानवरों को चराना है । वे राजा शिवाजी के कार्यकाल में वन्य जानवरों के सहायता से युद्ध में सैनिकों के भोजन बनाने काम करते थे । समय-समय पर गोला-बारूद की आपूर्ति का भी कार्य करते थे । संजय सोनवानी कहते हैं- “वंजारी जनजाति का कार्य मात्र व्यापारियों का माल आदान-प्रदान करना ही नहीं था, किंतु इस जनजाति का सबसे महत्वपूर्ण योगदान युद्ध के समय सैन्यों को भोजन संबंधित अनाज, धान्य, पानी आदि को प्रदान करते थे ।”[41] वंजारी समुदाय का यह कार्य पेशवाओं के कार्यकाल तक चलता रहा है । जैसे-जैसे राजा-महाराजाओं का पतन होता गया वैसे-वैसे अंग्रेजों ने भारत में अपनी जगह बनायी ।

सन् 1850 के आसपास अंग्रेजों ने भारत में औद्योगीकरण का जाल बिछाया गया । इसमें रेल और सडकों के जाल बिच्छाने के कारण भारत की अनेक जनजातियों के छोटे-मोटे व्यवसाय छीन गये । इस कारण घुमंतू समुदाय अपने अस्तित्व के लिए भटकने लगी । इसमें वंजारी समुदाय अपना अस्थायी पारंपरिक व्यवसाय पशुपालन, पशु व्यापार, खेती, मजदूरी करते हुए भटकने लगे । वे महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, कर्णाटक, आंध्रप्रदेश आदि पडोसी राज्यों में उदरनिर्वाह के लिए भटकते है । यह समुदाय ‘बैल’ को अपनी लक्ष्मी मानता है, क्योंकि वे बैल का उपयोग उसकी पीठ पर सामान लादकर एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए करते है । महाराष्ट्र में बीड जिले का वंजारी समुदाय गन्ने काटने के काम के लिए प्रचलित है । ये लोग अपनी घुमंतू प्रवृत्ति में साल के छह-सात महीनों तक संपूर्ण महाराष्ट्र और कर्णाटक के सीमा पार

---

[41] https://sanjaysonawani.blogspot.in/2012/09/blog-post_15.html (28/06/2017, 12.20 pm)

काम के लिए टोलियों के रूप में जाते हैं । वहाँ पर काम ख़त्म होनेपर अपने मूल स्थान पर वापस आते हैं ।

प्रकृति के गोद में रहने वाली यह समुदाय प्राकृतिक आपदाओं से छुटकारा पाने के लिए वृक्षों की पूजा करने लगा । जैसें- बड, पीपल, बेर, बाबुल, बांस, आदि । इस कारण इनके उपनाम भी लगभग ऐसे ही है, जैसे- बड़े, फड, पिंपले, पालवे, बोरे, दहिफले, नागरे, नागरगोजे, मुंडे, फुंदे, ढाकने, बांगर आदि । इस समुदाय में शादी अन्य गोत्र में नहीं की जाती है । पहले इनमें बालविवाह प्रथा थी, कालांतर में यह प्रथा बंद होती जा रही है । शादी लड़का-लड़की के माँ-पिता ही तय करते है, इसमें उन्हें ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता है । इस समुदाय में पहले दहेज़ की पद्धति नहीं थी, किंतु अब दहेज़ धडल्ले से वधु की ओर से लिया जा रहा है । शादी में वर की ओर से वधु के भाई के लिए कपड़े लिए जाते है । शादी में दूल्हा-दुल्हन के मामा के बगैर शादी नहीं होती, चाहे वह सगा हो या चचेरा मामा उसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। शादी सुविधा के अनुसार वर या वधु के घर पर होती है । इनकी शादी के लिए ब्राह्मण अथवा जंगम (लिंगायत समाज का पुजारी) को बुलाया जाता है । वंजारी समुदाय हिन्दू धर्म के सभी रीति-रिवाज, त्यौहार-उत्सव, देवी-देवता, पूजा-अर्चा, शादी-ब्याह का विधिवत प्रचलन के साथ ही वे वारकरी संप्रदाय को अत्यधिक महत्व देते हैं ।

वंजारी घुमंतू जनजाति के भटकने की प्रवृत्ति बहुत कम हुई है । इस जनजाति के कुछ साहित्यकार अपनी जाति को बंजारा या लंबाडा जनजाति से जोड़कर अपने आप को महाराणा प्रताप के वंशज या बंजारा जनजाति से उत्पन्न हुई उपजाति मानते है । किंतु वंजारी समुदाय में ऐसे प्रमाण (सामाजिक, सांस्कृतिक, वंशिक) (रोटी-बेटी, भाषिक) नहीं है जो उनके साथ मिलते-जुलते हैं अथवा प्रमाणित कर सके ।

वर्तमान समय में वंजारी जनजाति अपने अस्तित्व को मुख्याधारा में जोड़ने को संघर्षरत है । इस समुदाय के युवा हर क्षेत्र में जगह बनाने की कोशिश में है । इसी समुदाय के लोकनेता गोपीनाथ मुंडे ने महाराष्ट्र की राजनीति में सन् 1980 के आसपास बहुजन समाज के कार्यकर्त्ता के रूप में नींव डाली । महाराष्ट्र में खासकर पिछड़ा वर्ग को लेकर गोपीनाथ मुंडे ने बहुजन नेता के रूप में अपनी जगह बनायी है । इसी कारण वंजारी समुदाय को दिशा मिली है । इस समुदाय के

युवाओं ने राजनीतिक, शैक्षणिक और सामाजिक क्षेत्र में पहल की है । इस समुदाय के युवा भारतीय सेवा में आईएएस, आईपीएस, प्रोफ़ेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, सैनिक आदि सभी क्षेत्रों में अपना अस्तित्व बना रहे हैं। ऐसा होते हुए भी इस समुदाय का कुछ तबका अपने उदरर्निवाह के लिए गन्ने काटने के लिए दूर-दूर तक जाता है । इस समुदाय को मुख्यधारा में लाने के लिए वंजारी जनजाति का युवा और सरकार का कार्य जारी है। फिर भी विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक स्थिति अपेक्षा वंजारी समुदाय अपने संघर्ष से उभरा हुआ प्रमुख समुदाय कहा जा सकता है।

8.वासुदेव समुदाय

महाराष्ट्र में वासुदेव समुदाय पारंपरिक व्यवसाय के अनुसार भिक्षा पर अपना उदरनिर्वाह चलता है। वह अपने-आप को श्री कृष्ण का वंशज मानता है। इस समुदाय के लोग सुबह-सुबह भगवान कृष्ण की तरह मोर के पंखों से बनी टोपी, एक हाथ में बजाने के लिए टाल और दूसरे में चिपलियाँ, वेशभूषा केसरिया कुरता और सफ़ेद धोती परिधान करते है, कभी सफ़ेद कुरता-धोती, साथ ही गुलाबी रंग का बड़ा गमछा परिधान करके, वेदों पर रचे गीत और कृष्ण का गुणगान गाते हुए घर-घर, गाँव-गाँव भिक्षा माँगते हैं। लोग भी उनका सम्मान करते हुए दान के रूप में अनाज और रुपये देते हैं। इसका कारण है कि यह समुदाय पूर्वकाल से भिक्षा माँगने के साथ-साथ राजाओं को अपने दुश्मनों की सूचनाएँ देने का काम करते थे । इसे स्पष्ट करते हुए विधाते वासुदेव के अनुसार-"महाराष्ट्र में वासुदेव समुदाय शिवाजी महाराज के काल में मुग़लों की ख़बरें राजा तक पहुँचने और समय-समय पर लोगों को बाहरी आक्रमणों की खबर देकर सावधान करते थे। तभी से वासुदेव समुदाय का समाज से नाता सा जुड़ गया है।"[42]

कालांतर में राजाओं का काल समाप्त हो गया । तब से यह घुमंतू समुदाय अपने उदरनिर्वाह चलाने के लिए पूरी तरह समाज निर्भर हो गया। इस समुदाय में वासुदेव के चार प्रकार हैं । जैसे- ओम नमो भगवते वासुदेव, यादव कुलीन वासुदेव, संत ज्ञानेश्वर के पिता वासुदेव, श्रावण के पिता वासुदेव इत्यादि । इनमें कुल तेरह घराने है । जैसे-कामड़े, विधाते, सनेस्वर, गुरव, गुर्वंडे, सिपेकर, वाकोडे, दोइजड, सोनुने, हादवे, दूर्वे, पेंदारकर, रेनके आदि । इनके देवता भगवान कृष्ण, तूलजा भवानी, खंडोबा, नरसोबा, भैरोबा, बड़ा महादेव आदि। इस समुदाय की भिक्षा माँगने की परंपरा कम होते दिखाई देती है । कृष्ण वासुदेव के अनुसार-

[42] https://www.youtube.com/watch?v=hJLxWFpbDdM (02/07/2017, 11.11 pm)

"समुदाय इनका मानना है की प्रथा,परंपरा के अनुसार घर का कम से कम एक आदमी वासुदेव की परंपरा को बचने के लिए समाज में भिक्षा माँगने के लिए जाना बंधनकारक है । और परिवार के अन्य लोग खेती-बाड़ी, मजदूरी करते हैं ।"[43] अब लोगों ने भी देना बंद कर दिया है । धिरे-धिरे वे भी खेती, मजदूरी करके अपनी जीविका चलाते हैं ।

वर्तमान समय में वासुदेव समुदाय मुख्यतः महाराष्ट्र के पुणे, धुले, नाशिक, जलगाँव, अहमदनगर तथा पश्चिम के कोल्हापुर, सांगली, रत्नागिरी और मराठवाडा के सोलापुर, लातूर, नांदेड, औरंगाबाद में पाया जाता है । कमोबेश संपूर्ण महाराष्ट्र में पाया जाता है । वासुदेव समुदाय खेती, मजदूरी के साथ अपनी प्रथा-परंपरा बचने के लिए भटक रहा है । यह समुदाय स्थायी घर तो पाया है मगर इनमें अज्ञानी, दरिद्रता, व्यसनाधीनता और असंघठितता का बड़ा मुद्दा नजर आता है । इनके बच्चे स्कूल जा रहे हैं, कुछ युवा लोग दूध बेचते हैं तो कुछ होटल मजदूरी करते हैं । इस समाज को मुख्यधारा लाने के लिए इनके बच्चों के लिए स्कूल सुविधा, युवाओं के लिए रोज़ गार उपलब्धि और इनकी संस्कृति को बचने के लिए सरकार को ही मदत करनी होगी ।

9.गोपाल समुदाय

महाराष्ट्र में गोपल यह जनजाति पश्चिम क्षेत्र के अहमदनगर, पुणे, सांगली, सातारा, उत्तर में धुले, जलगाँव, नाशिक, नंदुरबार, मराठवाडा में औरंगाबाद, जालना, परभानी,और विदर्भ में बुलढाना आदि जिलों में मुख्यतः पाई जाती हैं । पूर्वकाल से इनका पारंपरिक व्यवसाय गाय पालना है, साथ ही यह समुदाय गाय, भैंस और बकरियाँ रखता हैं । इनके गौ पालन व्यवसाय के कारण इनका नाम 'गोपाल' पड़ा है । गोपाल समुदाय में दो तत्सम उपजातियाँ है एक-गोपाल भोरपी और दूसरी-खेलकरी (नट) है । यह जनजातियाँ अपना पारंपरिक व्यवसाय करते हुए हमेशा एक गाँव से दूसरे गाँव भटकती हैं । गोपाल भोरपी समुदाय के लोग जहाँ पर उनके पशुओं को चराने के लिए बंजर जमीन मिलती हैं वहीं पर ये अपना डेरा जमा देते हैं । वहीं आस-पास के गावों में दूध बेचते हैं । जब गाय-भैसें दूध देना बंद करते हैं, तो यह लोग गाँव के भैसों के बाल काटने का काम करते हैं । बदले में जो अनाज और रुपया मिलता है उसी से अपना उदरनिर्वाह करते हैं ।

---

[43] https://www.youtube.com/watch?v=rwa7NkkBuLA (05/07/2017, 02.00 pm)

खेलकरी (नट) यह समुदाय सीर पर सामान उठाये गाँव-गाँव, शहर-शहर अपने पूर्वजों का गान गाते हुए रस्सी पर चलना, दांत से पत्थर तोड़ना-उठाना, बालों से पानी से भरा घड़ा उठाना, हल को मुह में पकड़कर उठाने जैसी कसरतें करके समाज का मनोरंजन करते हैं। बदले में जो खाने की चीज़ें और रूपये-दो रुपये मिलते हैं, उसी से अपना उदरनिर्वाह करते हैं। इस समुदाय में बालविवाह प्रथा है। कसरत करने वाली लड़की को शादी के लिए जल्दी ही मंगनी होती है। कसरत करने वाली लड़की इनके उदरनिर्वाह का साधन होती है। शादी होने के कारण कसरत करना बंद करते हैं; इसलिए लड़कियों शादी बचपन में कर दी जाती है। कुछ परिवारों को छोड़ अधिकत्तर परिवारों में महिलाएँ उदरनिर्वाह के लिए काम करती है।

गोपाल जनजाति में पवार, शिंदे, नलकुले, चौगुले, चव्हाण, गिर्हे, गव्हाने आदि उपनाम पाए जाते हैं। इनके देवी-देवता मरिआई, जोखाई, मानकेसरकी, म्हसोबा, खंडोबा, पीरबाबा और मढ़ी का कान्होबा आदि। घुमंतू समुदायों का कुलदेवता मढ़ी का कान्होबा है। जो महाराष्ट्र में स्थित अहमदनगर जिले में है। हर साल वहाँ पर बहुत बड़ा मेला भरता है, और सभी घुमंतू जनजातियों के लोग एकत्रित होते हैं। यहाँ वे अपने दूर-दराज के सगे-संबंधियों की भेंट कर लेते हैं, कुलदेवता को मांगी गयी मन्नते जिसमें-नैवद्य (प्रसाद), पशु बलि चढाते हैं। सालभर में हुए विवादों पर जात पंचायत द्वारा फैसले भी होते है। डॉ. द्रोपदी पदिलवाड लिखती हैं-"मढ़ी गोपाल जनजाति का सुप्रीम कोर्ट समझा जाता है। वहाँ का निर्णय अंतिम होता है, क्यों की वह कानिफनाथ के समक्ष दिया जाता है।"[44] यदि कोई पंचों का निर्णय ठुकरा देता है तो उसे समुदाय से बहिष्कृत किया जाता है। स्त्रियों के लिए निर्णय बहुत कठोर होते हैं। स्त्रियाँ समुदाय का हिस्सा होते हुए भी उन्हें मशीन या वस्तु की तरह देखा जाता है।

भोरपी गोपाल समुदाय में भी बाल विवाह की प्रथा है। परंतु इस समुदाय का कुछ हिस्सा शहर में बसने के कारण बाल विवाह प्रथा कम हुई है, अधिकांश कस्बों-ग्रामों में रहने वाले समुदाय है उनमें में यह प्रथा जारी है। इन दोनों उपजातियों में रोटी व्यवहार चलता है, किंतु बेटी व्यवहार नहीं चलता है। मराठी साहित्यकार उत्तम कांबले लिखते हैं-"शादी के लिए लड़की देखने लड़का, लड़के के माता-पिता, भाई और जात पंचायत के पंच जाते हैं। लड़का लड़की को पसंद करता है तो लेन-देन की बातचीत होती है। लड़की पसंद है तो लड़की को केले

---

[44] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं-87

*मढ़ी हे गोपलांचे सुप्रीमकोर्ट समजले जाते. तेथील निर्णय सेवटचा असतो. कारण तो कनिफनाथाच्या साक्षीने दिला जातो.

के पत्तों में नारियल, साडी-चोली का बीड़ा दिया जाता है । लड़की के पिता को कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती है । लड़के वाले जब शादी करना चाहते हैं तब लड़की के पिता को तीन सौ रूपये की राशि अदा करनी पड़ती है । इसके अलावा पंचों को इक्कीस रुपये देने पड़ते हैं । तब शादी के लिए दोनों परिवारों की सहूलियत के अनुसार समय निकलकर शादी का मुहुर्त तय किया जाता है ।"[45] यह शादी लगभग तीन दिनों तक चलती हैं । पहले के दो दिन दुल्हे को सज़ाकर ग्राम देवी-देवताओं के लिए बरात निकली जाती है । अंतिम दिन शादी । उस दिन सभी बराती आने के बाद शादी संपन्न होती है । इस जनजाति में शादी के लिए ब्राह्मण या पंडित का काम इस समुदाय का मुखिया करता है । शादी के दूसरे दिन वर अपने परिजनों को लेकर अपने कुलदेवता का दर्शन करने चले जाता है ।

वर्तमान समय गोपाल जनजाति अपने अस्तित्व की खोज में हैं । वे मुख्याधरा में आना चाह रही हैं, समुदाय के लोग अपना संगठन बनाकर एकत्रित हो रहे हैं । इनमें के.ओ.गिर्हे, जनाबाई गिर्हे, प्रभाकर तपासे, शहाजी गिर्हे, नंदकुमार पवार आदि साहित्यकार और समाजसेवी लोगों ने अपने समाज को मुख्यधारा में लाने के लिए प्रयासरत हैं । इस समुदाय में कुछ परिवर्तन दिखाई देता हैं, जात पंचायत जैसी अनिष्ट परंपरा का विरोध हुआ है । वह tv9 रिपोर्ट 1 मार्च 2016 के अनुसार-"गोपाल समाज संघटन औरंगाबाद ने अपने समुदाय में स्थित जात पंचायत बर्खास्त करने का निर्णय लिया है ।"[46] इस समुदाय के महत्वपूर्ण निर्णय का स्वागत होना चाहिए । किंतु अज्ञानी, दरिद्रता, व्यसनाधीनता के कारण इनका भटकना जारी है । 'हिन्दू गोपाल समाज की वर्तमान स्थिति' नामक लेख में लिखते हैं-"गोपाल समुदाय घुमंतू जनजाति में है । इसका कारण वे हमेशा स्थान बदलते रहते हैं । अचल संपत्ति का अभाव, अंधश्रद्धा, लत और निरक्षरता आदि समस्याओं के कारण समुदाय पिछड़ा है । पारंपरिक

[45] भटक्यांचे लग्न, उत्तम काम्बले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं-77

*मुलगी बघण्यासाठी मुलगा, त्याचे आईवडील, भाऊबंध आणि पंच जातात. पण ते मोकलेच जातात. मुलगा मुलगी पसंद करतो. त्याला मुलगी पसंद पडली की, वाटाघाटीसाठी बैठक बसते. मुलीला केल, नारल, पानाचा विडा आणि साड़ी-चोली दिली जाते. मुलीचे वडिल जावयासाठी काहीच करत नाहित. याउलट लग्न करुन घेणारा मुलगाच हुंडा म्हणून मुलीच्या वडिलांना तीनसे पाच रुपये देतो. एवढी रक्कम दिल्या शिवाय लग्न होत नाही. या शिवाय पंचांना एकवीस रुपये द्यावे लागतात.

[46] https://www.youtube.com/watch?v=PYDg3QXbRHc **(12:05 pm 13/01/2018)**

व्यवसाय गाय-भैंसों के पालन के अलावा वे महाराष्ट्र के विविध जगहों पर स्थायी-अस्थायी मेहनत-मजदूरी करते हैं।"[47]

इस प्रकार गोपाल जनजाति धीरे-धीरे स्थिर होते दिखाई देती है। समुदाय के नौजवान लोग गया-भैंसे खरीदने-बेचने का व्यवसाय के साथ शहर में जाकर दूध बेचने का व्यापार कर रहे हैं। कुछ रोजी-रोटी तलाश में शहर की दौड़ रहे हैं। इनके बच्चे स्कूल की राह पकड़ते दिखाई दे रहे हैं। गोपाल समुदाय के प्रथम आईएएस नागनाथ गव्हाने (upsc-2016) जैसे युवाने अपनी मेहनत और लगन से समाज के सामने आदर्श रखा है, जो समस्त गोपाल समाज युवाओं को प्रेरित करता है। फलतः इस समुदाय के लोग नौकरियाँ कर रहे हैं तो कुछ सामाजिक संगठन बनाये समुदाय को मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। फिर भी इस समुदाय को शिक्षा, रोज़ गार, सरकारी योजनाएँ तथा प्रोत्साहन की जरुरी है।

10.वैदू समुदाय

वैदू जनजाति महाराष्ट्र के लगभग सभी जगहों पर पाई जाती है। यह जनजाति पूर्वकाल से गाँव-ग्राम के संपर्क में रहते थे। वे दस-बारह परिवारों के साथ घासफूस की झोपडी बनाकर पारंपरिक व्यवसाय 'वैद्यकी' करते हुए भटकते। इनकी स्त्रियाँ घर के अलावा पुरुषों के साथ जंगलों में जड़ी-बूटी लाने में हाथ बाँटती है। दवाईयाँ बनाकर गावों-ग्रामों में बेचकर बदले में जो धन्य, रुपये मिलते। उसी पर अपना उदरनिर्वाह चलते थे। वैदू समुदाय राजाओं के राज्य में दवाई बाँटने के अलावा गुप्त सुचना देने का भी कार्य करते थे। विनायक दामोदर सावरकर अपनी क़िताब '1857 का स्वतंत्र समर' में लिखते हैं-"भारतीय स्त्रियों की मन:सामर्थ संपादन हेतु इस गुप्त सगठन के कार्यक्रम में वैदू लोगों की महिलाओं को लगाया गया था। वैदू महिलाओं की घरेलू दवाईयों एवं सामान्य ज्योतिष्य कार्य के लिए हिन्दुस्थान के सामान्य वर्ग की महिलाओं में हमेशा आवाजाही होती है।"[48]

जैसे-जैसे समय बदलता गया, वैसे-वैसे इस जनजातियों के उदरनिर्वाह करने के संसाधन बदलते गए। संभवतः इसी समय वैदू जनजातियों में कार्य के अनुसार उपजातियाँ निर्माण हुई। जैसे-मंदलोड वैदू, दासर वैदू, नंदिवाले वैदू और घोड़े वैदू आदि। क्रमशः वैद्य (मंदलोड तेलगू

---

[47] https://enavnath.wordpress.com/2013/12/30/हिन्दू-गोपाळ-समाजाची-सध्य/ **(11:15 am 13/01/2018)**

[48] 1857 का स्वतंत्र समर, वि.दा.सावरकर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति- 2000, पृ.सं- 85

शब्द है) जो आज भी पहले के जैसे जंगलों से लायी गयी जड़ी-बूटीयों द्वारा दवाईयाँ बनाकर बेचने का काम करते हैं। दासर वैदू जो नाडी, हाथ देखकर भविष्य बताते हैं। नंदिवाले वैदू जो नाम, उपनाम से भविष्य बताते है तथा पुर्वजों का गुणगान गाते हुए भिक्षा माँगते हैं। घोड़े वैदू जो अपने मरियल घोडे पर बैठकर एक गाँव से दूसरे गाँव का संदेश पहुँचना। जंगलों से पेडों कि खाल से बनाये लेप को लगाकर घाव को दूर करना आदि का काम करते हैं।

वैदू जनजाति अलग-अलग समुदायों में विभाजित हुआ। समुदाय में रोटी-बेटी व्यवहार नहीं होता है। समुदाय लड़की के जन्म से घर में खुशियाँ मनाई जाती थी। इनकी शादी के लिए कोई शर्त नहीं होती थी। माँ के गर्भ को हल्दी-कुमकुम लगाकर सगाई हुआ करती थी। उत्तम कांबले लिखते हैं-"अतीत में लड़के का पिता लड़की के पिता को सोलह रुपये देने की प्रथा थी। कहीं जगहों पर पचास रुपये, तो कहीं केवल सुपारी देकर शादी हुआ करती थी। किंतु लड़की के पिता को रुपये देने की परंपरा स्थायी है।"[49] जैसे महगाई बढ़ती गयी वैसे लड़कियों के पिताओं का लालच बढ़ गया और लड़की की कीमत भी हजारों में होने लगी। कुछ इस प्रकार की घटनाएँ घटित हुई कि लालच के कारण पिताओं ने अपने बेटियों की शादी तोडकर अनेक जगहों पर कर पैसे एठने का काम किया है। कुछ ऐसी भी शादियाँ होने लगी जो एक बहन-भाई को अगले वाले घर के भाई-बहनें के साथ शादी करते है। ऐसी शादी को समुदाय में 'साट-लोट' कहते हैं। इसे लेन-देन शादी भी कह सकते हैं। इससे खर्चा तो बच जाता है किंतु बाल विवाह की संख्या बढती है।

वैदू समुदाय में शादी की रस्म तीन दिन चलती है। पहले दिन वधु-वर को हल्दी लगाकर नहाया जाता है। उन्हें दूध पिलाया जाता है और गाँव या घुमक्कड़ देवताओं पूजा की जाती है। दूसरे दिन छोटे बच्चों के साथ फिर से हल्दी लगाकर नहाया जाता है। बाद में मृत इंसान की याद में वधु के हाथों से उसकी पूजा की जाती है और उसी की स्मृति में मुर्गा या बकरा कटाकर बलि दिया जाता है। तीसरा शादी का दिन होता है। उस दिन बरात आने के बाद समुदाय से एक बुजुर्ग आदमी अपनी सांकेतिक भाषा में कुछ उच्चारण करता है। अंत में सभी लोग हल्दी से पिला किया हुआ ज्वार अक्षत के रूप में वधु-वर पर डालते हैं। शादी संपन्न होती है। शादी के बाद किसी को तलाक देना होता है तो जात पंचायत बुलाई जाती है। गलती किसकी है जाँचकर उसे दण्डित किया जाता है। इस समुदाय में पुरुषों की जादती के कारण स्त्रियों को

---

[49] भटक्यांचे लग्न, उत्तम काम्बले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं- 99

*पूर्वी मुलाचा बाप मुलीच्या बापाला 16 रूपये द्यायचा. काही ठिकाणी 50 रूपये, तर काही ठिकाणी निव्वळ सुपारी देऊन लग्न केले जायचे. पण मुलीच्या बापालाच मुलाने पैसे द्यायची प्रथा कायम आहे.

अन्याय सहन करना पड़ता है । पुरुषों के लिए पंचायत कानून अलग है, महिलाओं के लिए अलग होते हैं । पुरुष एक से अधिक शादियाँ कर सकता है । कोई स्त्री पर पुरुष से संबंध रखती है या भागकर विवाह करती है, ऐसी स्त्री के सहपरिवार को जात पंचायत द्वारा समुदाय से बहिष्कृत कर दिया जाता है ।

मुंबई में 2014, नांदेड में 2015 घटित वैदू समुदाय के जात पंचायत की अनेक घटनाओं ने पिछले चार-पाँच सालों में संपूर्ण महाराष्ट्र का ध्यान खींच लिया था । जात पंचायत का समुदाय से विरोध भी होता है, वह खुलकर नहीं कर पते है । उन्हें डर होता है कि आवाज उठायेंगे तो समाज से बहिष्कृत कर देंगे । इस डर की वजह से समूह की खास बाते बाहर नहीं आती है । परंतु सन् 2014 में देश की आर्थिक राजधानी कही जानेवाली मुंबई में घटित घटना की पीडिता लड़की 'दुर्गा गुडेलु' ने जात पंचायत जैसी अनिष्ठ प्रथा से लोहा लिया और उसका भंडाफोड़ किया है। वह 'महाराष्ट्र वन टीवी' पर दिए गए साक्षात्कार में कहती हैं-'हमारे समाज में जात पंचायत का बहुत बड़ा गुंथा है । इसमें पैसे लेकर न्याय देना और गरीबों को लूटने का धंधा बन गया है ।'[50] इस अमानवीय प्रथा के सामने और कोई दुर्गा को खड़ा न किया जाये इसलिए इसी समय जात पंचायत बर्खास्त हो, यही दुर्गा का लक्ष्य है । महाराष्ट्र में जात पंचायत का समय-समय पर विरोध करने वाली अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति (अनिस) की सर्वेसर्वा मुक्ता दाभोलकर ने पहल किया है । परंतु घुमंतू समुदाय के लोगों ने उसे हमेशा दबाने में कामियाब रहे हैं । परंतु दुर्गा के प्रकरण में कुछ समाजसेवी संगठन और प्रसार माध्यम भी जुड़े हुए है । इस वजह से घुमंतू समुदाय में एक सकारात्मकता दिखाई देती है ।

वर्तमान समय में यह समुदाय अपने पारंपरिक व्यवसाय के साथ गांवों-शहरों में पुरुष टिन, फायबर के बने घरेलू सामान और बच्चों के खिलौने बनाकर बेचते हैं । स्त्रियाँ महिलाओं के शृंगार की सस्ती वस्तुएँ बेचती हैं । जिनमें- बालियाँ, चूड़ियाँ, अंगूठी, नथुनी, कलाइयाँ, सुई, छाननी आदि छोटे-बड़े सामान बेचते हुए शहर, गाँव, बस्ती, गलियों में बेचते हुए भटकते हैं । इस समुदाय के लोग में एकता दिखाई नहीं देती हैं । इसी के कारण समाज बिखरा हुआ अज्ञानी, व्यसनाधीन, असंघठित है । इसी कारण बड़े शहर में बसने के बावजूद भी बहुत बड़े पैमाने पर दरिद्रता फैली हुई है । आज इनके युवा ग्रामों में साइकल पर भटकते हुए बर्फी, बुड्डी के बाल, गुब्बारे आदि जैसी बच्चों की खाने-खेलने जैसी वस्तुएँ बेचते है । कुछ लोग शहरों में इसी प्रकार के छोटे-मोटे काम करके उदरनिर्वाह करते हैं । आज इस समाज को रोज़ गार और शिक्षा की

---

50 https://www.youtu.be/V4VPJY3iWkg (22/03/2018, 03.30 pm)

आवश्यकता है । कुछ लोग नोकरी करते हैं । वे समाज को मुख्यधारा में लाने की कोशिश तत्परता से करते हैं । सरकारी योजनाएँ इन समुदायों तक पहुँचने की ज़रूरत है, जो पहुँच नहीं पाती । अब इनके कुछ बच्चे स्कूल की राह पकड़े हुए हैं । इन्हें अच्छे स्कूल और क़िताब-कॉपीयों आवश्यकता है । शिक्षा का माहोल निर्माण करने के लिए नाईट स्कूल का निर्माण करने की आवश्यकता है । ताकि आनेवाली नस्ल को अच्छी राह दिखा सके और समुदाय जल्द से जल्द सुसंस्कृत बन सके ।

11.डोंबारी समुदाय

महाराष्ट्र में यह समुदाय कसरतें करके लोगों का मनोरंजन करता है । वैसे इस समुदाय की उत्पत्ति कोल्हाटी जनजाति से होते दिखाई देती है । पूर्वकाल में इस जनजाति की महिलाएँ राज दरबार में नाच-गाना करके राजा-महाराजाओं का मनोरंजन किया करती थी । और इनके पुरुष सैनिक का काम करते थे । इनमें कुछ ऐसा तबका था जो समाज में लोगों के बीच और समय-समय पर दुश्मनों के कबीलों पर जाकर सैनिकों का मनोरंजन करके उनका ध्यान आकर्षित किया करता था । दूसरी ओर से चालाकी से विरोधी पक्ष को घेरा डाला जाता था और दुश्मनों का गोरिल्ला युद्ध से पराजय किया जाता था । कालांतर में राजाओं का पतन होते गया । तब से कोल्हाटी समुदाय अपना पारंपरिक व्यवसाय नाच-गाना करता रहा और उसी में से उत्पन्न हुआ डोंबारी समुदाय कसरतों से समाज का मनोरंजन करते हुए भटकते रहा है । वे जिस गाँव में जाते है उस गाँव की चावड़ी, समाजमंदिर या स्कूल के आसपास की जगह पर अपना डेरा जमाते हैं । यह समुदाय अपने कसरतों का खेल ग्रामीण क्षेत्र में सुबह के समय दिखाते हैं, क्योंकि दिनभर लोग गाँव में नहीं होते हैं । शाम के समय दिनभर की मेहनत से थके होते हैं । इसलिए यह वे किसान, मज़दूर और स्कूल जानेवाले बच्चों का ध्यान आकर्षित हैं । ताकि अधिक से अधिक लोग कसरतों का आनंद ले सकें । शहर में यह समुदाय खासकर बाज़ार के दिन और बाकी दिनों में भीड़भाड़ की गल्ली-बस्ती में कसरतें दिखाते हैं ।

डोंबारी समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय कसरतें करके मनोरंजन करना है, बदले में भोजन, अनाज, रुपया मिलता है । उसी से अपना उदार्निवाह चलते हैं । इस समुदाय में अजीबो-गरीब प्रथा परंपराएँ मौजूद हैं । जिनमें यह लोग महीनों तक स्नान नहीं करते है । खासकर महिलाओं को स्नान करने नहीं दिया जाता है । समुदाय का मानना है कि इनके शरीर की दुर्गन्ध के कारण पर पुरुष इन स्त्रियों से आकर्षित नहीं होता है । वे अस्पताल भी नहीं जाते हैं, इसका कारण स्त्रियों को डॉक्टर हाथ लगाने से वे अपवित्र हो जाते है और कुछ लोगों को

डॉक्टर के पेट काटने का डर होता है । इस समुदाय में ख़ाना बनाने की प्रथा नहीं है । ये लोग अपने बच्चों और महिलाओं को भीख माँगने के लिए भेज देते हैं । भीख में जो अन्न मिलता है उसी से अपनी आजीविका चलते हैं । दिनभर की थकान के कारण ज्यादातर स्त्री-पुरुष शराब के नशे में होते हैं । और अपने छोटे-छोटे बच्चों को भी शराब पिलाते है, इसलिए की वे ज्यादा शरारत न करें । वे बच्चों को साल-दो साल की उम्र में ही कूदना, लांघना, डांकना, फांदना, उछलना, और रस्सी पर चलना सिखाते हैं । बचपन से ही वे बच्चों को सय्यमित, एकाग्रत और जिद्दी बनाते हैं । जो बच्चे कसरत करने में उत्सुकता नहीं दिखाते हैं, उन्हें देशी शराब पिलाकर नशे में उनके शरीर को लचीला बनाते है । शराब के कारण समुदाय के अधिकत्तर स्त्री-पुरुषों की मृत्यु होती है ।

इस समुदाय में व्यवसाय के लिए लड़कियों को अधिक महत्व दिया जाता है । लडकियाँ ही इस समुदाय के उत्पादन का साधन होती हैं । लड़कों का कुछ ही सालों बाद शरीर दृढ़ होता है । वे बैंड, ढोल बजाते हुए गाना गाने का काम करते हैं । लड़कियों का शरीर नाजुक होने के कारण उन्हीं को ज्यादा कसरतें करनी पड़ते हैं । समुदाय में लचीले शरीर यष्टि वाली लड़कियों की अधिक कीमत होती हैं । शादी जल्दी कराई जाती हैं । शादी इसलिए भी जल्दी की जाती है, लड़की पवित्र रहें और कम उम्र में कसरतें करके अपना पारंपरिक व्यवसाय चलाए । और परिवार का उदरनिर्वाह भी करें । इस दोहरे उद्देश्य से डोंबारी समुदाय लड़कियों को महत्वपूर्ण समझा जाता है ।

डोंबारी समुदाय में लड़का-लड़की के पिता को दहेज़ देता है । इसलिए समुदाय में लड़की को महत्व दिया जाता है । लड़की के पिता को महत्वपूर्ण स्थान होता है । लड़का जब लड़की को देखने जाता है, उस समय माता-पिता और समुदाय के प्रतिष्ठित लोगों को साथ लिया जाता है । लड़के को लड़की के परिवार को भोजन और उसके पिता को शराब की बोतल देनी पड़ती है । जब सगाई की बाते करते है तब अधिकत्तर लोग विनियम विवाह के बारे में बात करते हैं । ताकि कम खर्चे में शादी हो जाए । जैसे- वधू के भाई की शादी वर के बहन के साथ करके दोनों शादियाँ एक साथ करने पर महत्व दिया जाता है । दहेज़ की बात को यहाँ ख़त्म किया जाता है । पहली मुलाकात में लड़की पसंद आती है तो लड़के का आना-जाना शुरू रहता है । सगाई के लिए दिन तय करके लड़का और लड़की के सगे-संबंधित लोग और जात पंचायत के अपने-अपने मुखिया (पटेल) को साथ लेते हैं । पटेल दोनों परिवारों की सहमती से दहेज़ तय करके पान-

सुपारी बांटता है, तब सगाई निर्धारित समझी जाती है । फिर लड़के की ओर से दोनों पटेलों कों शराब पिलाई जाती है । इस समुदाय में शादी की रस्म दो-तीन दिन चलती है ।

डोंबारी समुदाय में जात पंचायत को महत्वपूर्ण स्थान है । मराठी साहित्यकार उत्तम कांबले लिखते हैं-"इस समुदाय में पत्नी को तलाक देने की प्रथा नहीं है, क्योंकि पुरुषों को शादी करने में दिक्कतें आती है । तलाक के बाद पुनः शादी करनी है तो पहले जैसे संपूर्ण रीति-रिवाज करने पड़ते है । उसके लिए खर्चा अधिक होता है, इसलिए पुरुष तलाक देने की मुसीबत में नहीं पड़ते हैं । किंतु पहली पत्नी का देहाँत अथवा बाँझ होती है तो उसकी अनुमति से दूसरी शादी हो सकती है । स्त्री का पुनर्विवाह नहीं होता है ।"[51] इसी प्रकार कोई लड़का या लड़की अंतरजातीय विवाह करता या करती है तो उसे जात पंचायत द्वारा बहिष्कृत किया जाता है । उस लड़के या लड़की को मृत समझकर श्राद्ध करके भोजन दिया जाता है । इस समुदाय में किसी व्यक्ति का देहाँत होता है तो उसे बारह दिनों तक एक ही जगह बसाते हैं । जो लोग इन नियमों को नहीं मानते हैं, उन्हें बड़ी पंचायत में बैठाया जाता है । डॉ. कल्पना पाटिल के अनुसार-"महाराष्ट्र में डोंबारी समुदाय के जात पंचायत का प्रमुख स्थान अथवा सुप्रीमकोर्ट पूना है । महाराष्ट्र में डोंबारी समुदाय के किसी प्रकरण का मुक़दमा हल नहीं होता है तो ऐसे मुक़दमों की सुनवाई पूना के जात पंचायत में की जाती है ।"[52]

विगत कुछ सालों से कोल्हाटी और डोंबारी समुदायों के अंतर्गत विवाद चल रहा था । इस विवाद की कानाफ़ूसी पुलिसवालों तक पहुँच गयी और इस जनजाति के जात पंचायत का भांडा फुट गया । सदियों से चली आ रही जात पंचायत जैसी कुप्रथा को दिसंबर 2014 में पुलिस अधिकारीयों और समुदाय के कुछ लोगों ने मिलकर इस सदियों पुरानी जात पंचायत को ख़त्म करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया है ।

---

[51] भाटक्यांच लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं- 46

या समाजात पत्नी घटस्फोट देण्याची प्रथा नाही. कारण लग्न करने हे पुरुषाला कठीण जाते. घटस्फोट झाल्यानंतर पुन्हा त्याला लग्न करायचे असेल तर ते पुर्वीप्रमानेच रीति-रिवाजाने करावे लागते. त्यासाठी मोठा खर्च येतो.म्हणून पत्नीला घटस्फोट देण्याच्या भानगडित पुरुष मंडली पडत नाहीत. मात्र पहली पत्नी मरण पावल्यास अथवा तिला मुले होत नसतील, तर तिच्या परवानगीने दुसरे लग्न होते. महिलेचा पुनर्विवाह होत नाही.

[52] घुमंतू-लोकजीवन की संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. हुकुमचंद जाधव, डोंबारी जनजाति की लोकसंस्कृति, डॉ. कल्पना पाटिल, पृ.सं-313

वर्तमान समय शिक्षा से दूर भटकता हुआ डोंबारी समुदाय अपनी कला, कसरतों द्वारा स्वावलंबन, सय्यम, एकाग्रता, सुरक्षा, सन्मान और संघर्ष सिखलाने वाली जनजाति आज अपने अस्तित्व को तलाशते हुए दर-दर भटक रही है । आज के आधुनिक युग में टीवी, मोबाईल, इंटरनेट के कारण डोंबारी समुदाय द्वारा की जानेवाली कसरतें किसी राष्ट्रीय खेलों से कम नहीं । परंतु इन्हें परखा नहीं जाता है । आधुनिक सुविधाओं ने कैमरे द्वारा सबकुछ मोबाईल, टीवी, इंटरनेट में भर लिया है, इस कारण कसरतों को देखने के लिए अब पहले जैसी भीड़ नहीं दिखाई देती है ।

इसलिए इस समुदाय के कुछ युवाओं ने अपने कला का रास्ता बदलकर शादियों, जयंतियों जैसे कार्यकर्मों में बैंड बजने, डी.जे. चलाने और सांस्कृतिक कार्यकर्मों में स्त्री-पुरुषों के आवाज में गाने गाने का काम कर रहे हैं । इनकी स्त्रियाँ शादी-ब्याह जैसे कार्यकर्मों में बर्तन आदि मांजने का काम करते दिखाई देती है । डोंबारी समुदाय के सामाजिक कार्यकर्त्ता नरसिंग झरे ने विगत कुछ वर्षों से महाराष्ट्र के लातूर तथा अन्य जिलों में अपना सामाजिक कार्य शुरू किया है । इसमें महिलाओं को रोटियाँ बनाने से लेकर, स्नान करके स्वच्छ रहने, घर स्वच्छ रखने, बच्चों की देखभाल करने आदि के पाठ पढ़ा रहे हैं । गुरूजी के कारण आज बच्चे स्कूल की राह पकड़ रहे हैं । फिर भी इस समुदाय के लोगों को घर बनाने के लिए स्थायी जगह और रोज़ गार के साथ बच्चों को स्कूल की मुलभुत सुविधाएँ देना अत्यंत आवश्यक है ।

12.धनगर समुदाय

‘पशुपालन’ शब्द जीवन में उदरनिर्वाह के लिए लागू होता है । और उस समुदाय का जीवन स्तर केवल टोली और पशुओं पर आश्रित है उन्हें ‘पशुपालक’ जनजाति कहा जाता है । जिनमें धनगर एक समुदाय भी आता है । इसके संदर्भ में गणपत राठोड लिखते है-“दन+पशु, गर+गार= धनगर पशुपालन करने वाला यह समुदाय आज भी पशुपालन के साथ खेती करता है । लेकिन मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरियों का पालन-पोषण करना है ।”[53] वे जहाँ पर जाते हैं वहीं बंजर जमीन पर अपना डेरा जेमा लेते हैं । महाराष्ट्र में धनगर जनजाति में अनेक उपजातियाँ पाई जाती हैं । महाराष्ट्र शासन द्वारा सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक कार्य व विशेष सहाय्य विभाग (मंत्रालय) के अनुसार जैसे-अहीर, डांगे, गटरी, हंडे, तेलवर हाटकर, हाटकर, शेगर,

[53] घुमंतू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, प्र.सं- 2015, पृ.सं-28

खुटेकर तेलंगी, तेल्लारी, कोकणी धनगर, कानडे, वऱ्हाडे धनगर, झाडे, झेंडे, कुरमार, माहुरे, लाडसे, सनगर, धनगर, गडारिया, गड्री, गढ़री, दंगे धनगर, और डोंगरी धनगर आदि । भारत के अनेक राज्यों में यह समुदाय अलग-अलग नामों से पाया जाता है । जैसे- आंध्रप्रदेश- गडारी, बिहार- पाल, गडेरी, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा- गडरिया, जम्मू कश्मीर- गद्दी, कर्नाटक- कुरबार, गुजरात- भाखाड, मध्यप्रदेश- धनगर, हाटकर पाल, पंजाब- गडरिया आदि नामों से जाने जाते हैं ।

महाराष्ट्र धनगर यह घुमंतू समुदाय है । इस समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय 'भेड़ पालन' है । साथ में एकाध घोडा, भैंस होती है जिन पर अपने उदरनिर्वाह का सामन लादकर एक स्थान से दूसरे ले जाने लिए मदद होते हैं । साथ ही दो-चार कुत्ते होते है, जो भेड़ों पर होनेवाले जंगली जानवरों के आक्रमण से बचाते हैं । यह समुदाय अपनी घुमंतू प्रवृति में भेड़-बकरियों की चरवाई करते वक्त किसानों के खेतों में बैठाते है । बदले में जो राशि या अनाज मिलता है उसी पर अपना उदरनिर्वाह करते हैं । अब इस समुदाय का भटकना कम हुआ है । अब वे साल में चार-पाँच महीने भटकते है, और सात-आठ महीने अपनी स्थायी बस्तियों में रहकर भेड़ के बालों से बनाये गये कंबल, भेड़-बकरियाँ खरेदी-बिक्री, जानवरों का खाद बेचने के अलावा किसानी, मजदूरी का भी काम करने लगे हैं ।

इस समुदाय में बाल विवाह की पद्धति भी दिखाई देती है । एक ही उपजाति या उपनाम में शादी नहीं की जाती । लड़कियों की शादी चौदह-पंद्रह साल में ही संपन्न की जाती है । विवाह में हल्दी लगाना, सीमांत पूजन, देवक प्रतिष्ठा होम आदि विधियाँ सामान्य रूप से संपन्न होती है । वर्तमान समय इस समुदाय में परिवर्तन दिखाई देता है । लड़का-लड़की की शादी उनके वयस्क होने पर करवाई जा रही है । अतीत में पुनर्विवाह नहीं होते थे । लेकिन वर्तमान समय में उपजातियों में भी विवाह हो रहे हैं । लेकिन विवाह की पद्धति बिल्कुल अलग है । इस संदर्भ में गणपत राठोड लिखते है-"विधवा का विवाह रात में होता है, सामान्यतः आषाढ़, पौंष अथवा भाद्रपद में संपन्न किया जाता है । किंतु विधवा के साथ शादी करने से पहले वर की शादी कपास के पेड़ से संपन्न होती है, फिर विधवा के साथ संपन्न होता है ।"[54] संपूर्ण महाराष्ट्र में सामान्यतः मार्च-से-मई के बीच में शादियाँ संपन्न होती है । किंतु धनगर समुदाय में आज भी 'विवाह विधियाँ सितंबर के आसपास संपन्न करते हैं । क्योंकि दीपावली संपन्न होते ही यह लोग भेड़-

[54] घुमंतू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, प्र.सं- 2015, पृ.सं-60

बकरियों को चराने के लिए अन्य प्रदेशों में निकल जाते हैं । इसलिए बारिश के दिनों में विवाह संपन्न करने की प्रथा है ।' परंतु आज कुछ विवाह मार्च-मई में भी संपन्न करते हैं।

धनगर समुदाय का 'कुलदेवता' पुणे जिला के जेजुरी का 'खंडोबा' है । इस समुदाय के लोग विवाह के दूसरे दिन अपने कुलदेवता का दर्शन लेने जाते है, तब ही नये परिवार (जिन्दगी) की शुरुआत करने की प्रथा है । के अलावा बिरोबा, म्हसोबा, बहिरोबा, धुलोबा, आसरादेवी, मरिआइ आदि देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं । इस समुदाय में लोकगीतों की पुरानी परंपरा है । जिसके माध्यम से समाज की संरचना के दर्शन होते हैं और विविध देवी-देवताओं के दर्शन हो जाते हैं । इसलिए इस समुदाय के लोकगीत लोकगीत संपूर्ण महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं ।

वर्तमान समय धनगर समुदाय के लोग स्थायी हो रहे हैं । इनके बच्चे शिक्षा ग्रहण के रहे है । युवा अपने मेहनत और लगन के कारण भारतीय प्रशासन में उच्च पदों पर नौकरी हासिल कर रहे है । कुछ युवा समुदाय को संगठन का रूप देकर राजनीति में शामिल हो रहे हैं । और अन्य राष्ट्रीय संघटनों की सहायता से अपने समाज को मुख्यधारा में जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं । धनगर समुदाय का राजनीतिक प्रभाव किसी भी घुमंतू जनजातियों की तूलना में अधिक है । इस समुदाय के सरपंच से लेकर मंत्री पदों की संख्या दर्जनों में है । इस समुदाय में आज भी कुछ इस तरह का तबका है, जो मुख्यधारा में आने के लिए छटपटा रहे है । इस समुदाय द्वारा 2014 में एक विशाल मार्च निकला गया था, जो इस समुदाय को 'अनुसूचित जनजाति' का दर्जे की माँग के लिए निकला था । इस तरह संगठित होकर समुदाय के युवा, राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता उन्हें प्रवाह में लेने के लिए तत्पर हैं ।

13.नाथपंथी डवरी गोसावी समुदाय

नाथपंथी डवरी गोसावी समुदाय भारत के अनेक प्रांतों में पाया जाता है । मुख्यतः उत्तरी भारत के राज्यों में और महाराष्ट्र में लगभग सभी जिलों में बिखरा हुआ है । इस समुदाय का संबंध एक धार्मिक पंथ से है, जिसके आराध्य शिव हैं । यह समुदाय पूर्व से ही नाथ संप्रदाय का हिस्सा रहा है । नाथपंथी 'नाथ' भगवान मानकर योगाचरण करते हैं । नाथ अर्थात रक्षणकर्ता या स्वामी । नाथ संप्रदाय का मतलब रक्षण करनेवाले स्वामियों का संप्रदाय कहलाता है । इस संप्रदाय में (नाथ समुदाय में भी) साधक दीक्षा लेने पर अपने नाम के आगे 'नाथ' की उपाधि लगाते है । वे देश के अलग-अलग प्रांतों में यात्रा करते हैं, और अपने संप्रदाय का धार्मिक प्रचार करते हैं ।

महाराष्ट्र में नाथपंथी डावरी गोसावी समुदाय को दो जातियों में देख सकते हैं । जैसे- नाथपंथी और डावरी गोसावी । इन दो जातियों को महाराष्ट्र शासन सामाजिक मंत्रालय की सूची के अनुसार इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है । 'जैसे- नाथपंथियों में बाल संतोशी, किंगरी वाले, नाथ बाबा, नाथ जोगी, गारपगारी, नाथपंथी डावरी गोसावी, नाथ, जोगी, डावरी आदि । गोसावी जाति में बाबा, वैरागी, भारती, गिरी गोसावी, भारती गोसावी, सरस्वती पर्वत, सागर, बान अथवा वान तीर्थ आश्रम, अरण्य घरभारी, सन्यासी, नाथपंथी गोसावी आदि ।' इन दो समुदायों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवहार एक जैसा दिखाई पड़ता है । इन दो समुदायों में रोटी व्यवहार चलता है, किंतु बेटी व्यवहार नहीं होता है।

पूर्वकाल से यह समुदाय 'शिव' और 'भैरवनाथ' का भक्त है । द्रोपदी पंदिलवाड के अनुसार-"नाथजोगी अपने आपको शिव के उपासक मानते हैं और उनके जैसी ही वेशभूषा परिधान करते हैं । इस समुदाय में उपनयन विधि को महत्वपूर्ण स्थान है ।"[55] इस संस्कार विधि में उपासक बनाने की दीक्षा दी जाती हैं । महाराष्ट्र में दीक्षा देने के दो आराध्य देवता (कुलदैवत) हैं, जो पश्चिम महाराष्ट्र में पंढरपुर और विदर्भ के समुद्रपुर है । पंढरपुर में धर्मनाथ महाराज के मठ और समुद्रपुर में गुरु पुजारी महाराज के मंदिर में विधिवत दीक्षा ग्रहण की जाती है । दीक्षा के बाद उस व्यक्ति को हमेशा के लिए भगवा कपड़ा पहनकर शिव और भैरवनाथ के नाम पर जोगवा (भिक्षा) माँगकर जीवन-यापन करना पड़ता है । इस संप्रदाय में दीक्षा लिया गया व्यक्ति को एक दिन में मात्र सात घरों में जोगवा माँगकर अपनी आजीविका चलानी पड़ती हैं ।

नाथपंथी डावरी गोसावी अपनी वेशभूषा में परंपरागत व्यवसाय जोगवा (भिक्षा) माँगना है, बावजूद बदलते समय के अनुसार वे मेहनत-मजदूरी करके अपना उदरनिर्वाह करते हैं । किंतु समुदाय का अधिकत्तम हिस्सा आज भी भैरव्रनाथ, मछिन्द्रनाथ, दत्तगुरु, शंकरबाबा, साईबाबा के नाम पर सुविधाजनक छोटासा टेंपो सज़ाकर अथवा बैलगाड़ी को सज़ाकर, चार चक्केवाला वाहन, दुचाकी आदि के साथ गाय, नंदीबैल को लेकर शहरी-ग्रामीण क्षेत्र में उदरनिर्वाह के लिए भटकते हैं । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की कार्यकर्ता पल्लवी रेनके लिखती हैं-"केवल मुंबई व उपनगर में कुल सत्ताईस सौ मंदिरों के सामने घुमंतू जनजातियों के लगभग चार हज़ार स्त्रियाँ गाय लेकर बैठती हैं । इनमें बहुसंख्य स्त्रियाँ निरक्षर और इक्यावन

---

[55] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं-79

*नाथजोगी स्वतःला शिवाचे उपासक समजत असल्यामुले शिवा सारखी वेशभूषा करतात या जमातीत उपनयन संस्काराला विशेष महत्व आहे.

प्रतिशत विधवा हैं ।"[56] नाथपंथी डावरी गोसावी समुदायों के शहरी और ग्रामीण क्षेत्र पर दृष्टी डालने पर पाते हैं कि, पुरुषों के प्रतिशत में स्त्रियाँ अधिक जिम्मेदार दिखाई देती हैं । पुरुषों में अधिकत्तम शराबी बेरोज़ गार दिखाई पड़ते हैं । कुछ पुरुष दिनभर अपनी वेशभूषा में जोगवा माँगकर आते है और थकान के नामपर शराब के नशे में लत रहतें हैं । सच कहें तो इनकी स्त्रियाँ ही परिवार संभालते दिखाई देती है । मंदिर अथवा मठों के सामने जोगवा माँगते वक्त स्त्रियों को अनेक प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ता हैं । जिसमें प्रशासन द्वारा अतिक्रमण की, पुलिस द्वारा घूस माँगने की, गुंडे-लफंगों द्वारा छेड़-छाड़ की, मंदिर-मठों के पुजारियों को हफ्ता देने और किराये की गाय का भाड़ा चुकाने जैसी तमाम दिक्कतों से रोजाना गुजरना पड़ता है । ग्रामीण क्षेत्र में कुछ श्रद्धालुओं द्वारा अन्न, आनाज देते हैं, किंतु वे भी देना धीरे-धीरे बंद होता दिखाई पड़ता है।

नाथपंथी डावरी गोसावी समुदाय की स्थिति में थोडा बहुत परिवर्तन आ गया हैं । किंतु अधिकतम तबका वर्तमान समय भी मुख्यधारा से कोसों दूर, अपने पारंपरिक व्यवसाय और रुढी-परंपरा, रीती-रिवाज, पूजा-आर्चा, जात पंचायत आदि में लिप्त हैं । एक समाचार के अनुसार-"नांदेड जिला मुखेड तहसील के अंतर्गत बेटमोगारा गाँव के नाथपंथी डावरी गोसावी समुदाय में 'पारिवारिक हत्या' के बदले पचपन परिवारों को बहिष्कृत करके रोटी-बेटी, पारिवारिक संबंधों के और पारंपरिक व्यवसाय पर बंदी डालने का शर्मनाक प्रकरण सामने आया है ।"[57] इस प्रकार की अनेक घटनाएँ घटित होती हैं, किंतु लोग जात पंचायत के डर की वजह से आवाज नहीं उठा पाते हैं ।

इस समुदाय में आज भी बाल विवाह की प्रथा जारी है लड़का हो या लड़की चौदह-पंद्रह साल की उम्र में शादी करवाते हैं । लड़का-लड़की को देखने के लिए मेलों का सहारा लेते हैं, पूर्व तैयारी करके आए हुए लोग पसंद आने पर सगाई तय करके अपनी घुमंतू प्रवृति में अथवा स्थायी जगह पर निकल पड़ते हैं । शादी के लिए दोनों परिवारों की सहूलियत अनुसार दिन तय करते हैं ।

वर्तमान समय में यह समुदाय अपने पारंपरिक व्यवसाय-गाय के आशीर्वाद से जोगवा (भिक्षा) माँगने से लेकर दिहाड़ी मजदूरी, स्थायी-अस्थायी नौकरियाँ करके अपना उदरनिर्वाह करते हैं । इनके बच्चे स्कूल में जाने लगे हैं और कुछ उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु शहर में पहुँच रहे

---

[56] लोकसत्ता समाचार, चतुरंग पुरवणी, 14 मार्च 2015, (मराठी दैनिक समाचार पत्र)

[57] दैनिक लोकमत समाचार पत्र, 20 अगस्त 2015, (मराठी दैनिक समाचार पत्र)

हैं । किंतु इनके लिए शिक्षा में जो आरक्षण है उसका लाभ बहुत कम लोग उठा पाते हैं । इनके लिए अधिकतर दिक्कतें जाति-प्रमाणपत्र की है । इस समस्या का निराकरण करने के लिए समाज के कार्यकर्त्ता और युवा अनशन, निवेदन कर रहे हैं, किंतु समाज के एकत्रित न होने कारण कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । इसलिए सरकार को इस समुदाय की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है, तभी यह समुदाय मुख्यधारा से जुड़ पाएगा ।

अतः कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र की विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में कुछ असामनताओं के बावजूद काफ़ी अधिक समानताएँ दिखाई देती हैं । गाँव के बाहर तंबूओं में जीवन जी रही घुमक्कड़ जनजातियाँ अब भी पाई जाती हैं । इनके सांस्कृतिक कार्य (इनके द्वारा बनाई गई वस्तुएँ, खेल, कलाबाजी, बहुरुपिया भेष, भविष्यवाणी आदि) आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण किसी को पसंद नहीं आ रहे रही हैं । इनके द्वारा बनाये गए सामान एवं वस्तुएँ पुरानी लगती हैं अथवा मोलभाव कर खरीदी जाती हैं । इस कारण व्यवसाय भी प्रभावित हुए हैं । सांस्कृतिक एवं व्यवसायिक असमानता के कारण इन्हें मजदूरी करनी पड़ती है । वहाँ पर भी इनका शोषण होता है । जनजातियों के युवा दर-बदर की ठोकरें खा रहे हैं । अशिक्षा के कारण कोई बैंड बजाते है, कोई प्लास्टिक की वस्तुएँ बचते हैं, कोई न चाहते हुए भी पारंपरिक व्यवसाय को आगे बड़ा रहे हैं । इनके लिए किसी प्रकार की सुरक्षा, न्यूनतम वेतन, सुविधा, बीमा सुविधाएँ इत्यादि नहीं मिलती है । इनके लिए रोटी, कपड़ा, मकान के अलावा शिक्षा, रोज़ गार और सुरक्षा की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ती की ज़रूरत है ।

दूसरा अध्याय

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर आधारित आत्मकथाएँ

2.1. आत्मकथा : परिभाषा एवं स्वरूप

आधुनिक गद्य साहित्य में आत्मकथा ने एक स्वतंत्र विधागत स्वरूप प्राप्त किया है। व्यक्ति द्वारा सच्चाई के आधार पर अपने स्वयं के जीवन का इतिहास प्रस्तुत करना 'आत्मकथा' कहलाता है। आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ है 'अपनी कथा' अर्थात इसमें लेखक स्वयं के बीते हुए जीवन की कहानी का विवेचन यथार्थता के साथ करता है। साहित्य में जैसे-जैसे यथार्थता का समावेश होता जाता है, वैसे-वैसे उसमें गद्यात्मक विधाओं की समृद्धि होती जाती है। यही कारण है कि आधुनिक युग में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि विधाओं के अतिरिक्त आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृतांत, डायरी, पत्राचार, रिपोर्ताज, तथा इन्टरव्यू आदि नवीन विधाओं का विकास हुआ है। इन सभी विधाओं में आत्मकथा साहित्य सर्वोत्तम तथा मानवीय विधा है, जिसने अपनी विशिष्टता से लोकप्रिय विधा के रूप में प्रभाव स्थापित किया है।

आत्मकथा हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं में से एक है। पाश्चात्य सभ्यता का वहन करने वाली अंग्रेजी भाषा के अध्ययन एवं अध्यापन के परिणाम स्वरूप हिंदी में विकसित एवं पल्लवित हुई है। अंग्रेजी में आत्मकथा के लिए Autobiography और Biography संज्ञा प्रचलित है। Autobiography को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि-"Person's life written or otherwise recorded by that person."[58] हिंदी में आत्मकथा को आत्मचरित्र, आत्मकहानी, आत्मविश्लेषण, स्ववृत्तान्त, जीवनगाथा आदि कई नाम भी दिये गये हैं, किंतु इसे 'आत्मकथा' संज्ञा देना ही सबसे उपयुक्त माना गया है।

आत्मकथा के वास्तविक अभिप्राय को समझने के लिए विभिन्न शब्दकोशों, पाश्चात्य व भारतीय विद्वान साहित्यकारों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

ऑक्सफ़र्ड डिक्शनरी में आत्मकथा की परिभाषा इस प्रकार है-

---

[58] file:///E:/आत्मकथा इतिहास/हिंदी साहित्य%20%20एक परिचय.htm (10.15 am, 15/12/2017)
*व्यक्ति का जीवन लिखा या अन्यथा उस व्यक्ति द्वारा दर्ज किया गया.

"आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है । स्वयं के द्वारा लिखी गयी स्वयं की कहानी है।"[59]

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए कैसेल महोदय कहते हैं-"आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । इसमें जीवनी के अन्य प्रकारों से सत्य का अधिकतम समावेश होना चाहिए।"[60]

इसी प्रकार एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के लेखक ने आत्मकथा की परिभाषा देते हुए कहा है कि-"आत्मकथा, व्यक्ति के जिए हुए जीवन का ब्यौरा है, जो कि स्वयं उसके द्वारा लिखा जाता है ।"[61]

यूनिवर्सल इंग्लिश डिक्शनरी में-"आत्मकथा को कला और लेखन क्षमता का परिचयक मानते हुए उसे स्वयं के द्वारा प्रस्तुत स्वयं का लेखा-जोखा बतलाया गया है ।"[62]

डिजाईन एंड ट्रुथ इन ऑटोबायोग्राफी में राय पास्कल ने आत्मकथा की परिभाषा के लिए विशेष रूप से ज़ोर देकर कहा है कि-"इसकी रूचि का केंद्र स्व होता है, बाह्य संसार नहीं । बाह्य संसार का प्रयोग इतने तक ही सीमित रहता है, जितने में व्यक्ति का व्यक्तित्व विशिष्ट रूप ग्रहण कर सके ।"[63]

बृहत् हिंदी कोश में आत्मकथा की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है-"यह आत्मन शब्द का समास व्यवहृत रूप है जिसका अर्थ है अपना, निज का, आत्मा का, मन के कथा का अर्थ है जीवन कहानी अतः आत्मकथा का अर्थ हुआ स्वलिखित जीवन चरित ।"[64]

हिंदी साहित्य कोश में आत्मकथा की परिभाषा देते हुए लिखा गया है-"आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का संबद्ध वर्णन है ।"[65]

---

[59] हिंदी आत्मकथा : स्वरुप एवं साहित्य, डॉ. कमलेश सिंह, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, प्रथम सं- 1989, पृ.सं- 3

[60] हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरकांत, राजकमल प्र., दिल्ली, चौथा छात्र सं- 2016, पृ. सं- 51

[61] वही, पृ. सं- 51

[62] हिंदी आत्मकथा : स्वरुप एवं साहित्य, डॉ. कमलेश सिंह, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, प्रथम सं- 1989, पृ.सं- 3

[63] हिंदी आत्मकथा : स्वरुप एवं साहित्य, डॉ. कमलेश सिंह, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, प्रथम सं- 1989, पृ.सं- 3

[64] बृहत् हिंदी कोश खंड- 1

[65] हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, बनारस ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस, संवत- 2015, पृ.सं- 98

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार-"आत्मकथा, लेखक के अपने अतीत का समग्र वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्टभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाता है।"[66]

पोद्दार रामावतार 'अरुण' के अनुसार-"आत्मकथा व्यक्ति के संघर्षमय जीवन का वह सत्यांकित इतिहास है, जो स्वयं मेघ की तरह उमड़कर बरस जाता है, जो स्वयं फूल की तरह खिलकर झड़ जाता है।"[67]

पंजाबी साहित्य की लेखिका अमृता प्रीतम के अनुसार-"आत्मकथा यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया है।"[68]

त्रिलोकीनाथ शर्मा के अनुसार-"आत्मकथा, आत्मकथाकार के द्वारा लिखित उसके निज जीवन की अनुमतियों एवं जीवन के विकासात्मक इतिहास की कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें जीवन-सत्य और युग-सत्य का समावेश रहता है।"[69]

मैनेजर पाण्डेय के अनुसार-"पूरा-पूरा सच बोलना आत्मकथा व जीवनी लेखक की नैतिक ही नहीं, सौन्दर्यबोध की शर्त भी है।"[70]

मराठी शोधकर्ता सदा कर्‍हाड़े ने स्वलिखित जीवनी से कुछ कलात्मक एवं गुणात्मक गुणों की अपेक्षा-"स्वयं के जीवन का तटस्थता से सिंहावलोकन वृत्ति से किया हुआ अवलोकन और उस बारे में प्रांजल निवेदन याने आत्मचरित्र।"[71]

'साहित्य जीवन की आलोचना है' के परिप्रेक्ष्य में डॉ. कमलेश सिंह आत्मकथा को जीवन की आलोचना मानते हुए लिखते हैं-"आत्मकथा में जिए हुए जीवन का, भोगे हुए क्षणों का, झेले हुए

---

[66] हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ. चंम्पा श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2013, पृ.सं- 13

[67] वही, पृ.सं- 13

[68] वही, पृ.सं- 13

[69] वही, पृ.सं- 13-14

[70] हिंदी आत्मकथा विधा शास्त्र और इतिहास, डॉ. बापूराव देसाई, गरिमा प्रकाशन, कानपूर, प्रथम.सं- 2011, पृ.सं- 27

[71] चरित्र आणि आत्मचरित्र, सदा कर्‍हाड़े, लोकवांग्मय गृह प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं- 1976, पृ. सं- 101

सुख-दुखों का और वैदिक और आध्यात्मिक सुख-दुखों का सच्चा लेखा-जोखा आत्मकथा लेखक अपने समग्र जीवन के पुनरीक्षण के रूप में करता है।"[72]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का विवेचन-विश्लेषण करने के उपरान्त हमें आत्मकथा का स्वरूप निर्धारण करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है-

• आत्मकथा स्वयं द्वारा लिखा गया स्वयं का इतिहास है।

• आत्मकथा स्वयं की कथा होने के साथ-साथ अपने आप में एक समाज वर्ग विशेष को भी समेटे होती है।

• आत्मकथा, आत्मकथाकार के जीवन जिए हुए, भोगे हुए क्षणों का लेखा-जोखा होती है।

• आत्मकथा दर्पण के सामान स्पष्ट, सत्य, निश्छल, सहज, सरल एवं निर्भीक आभिव्यक्ति है।

• यह विधा व्यक्तिगत अनुभवों, अनुभूतियों और संवेदनाओं की त्रिवेणी है।

• आत्मकथा में यथार्थ का होना आवश्यक है।

इन प्रमुख बिंदुओं के आधार पर आत्मकथा की परिभाषा करने की कोशिश की जा सकती है। हालाँकि आत्मकथा की कोई मुकम्मल या सटीक परिभाषा करना आत्मकथा को एकांगी बनाना होगा। इसी संदर्भ में पंकज चतूर्वेदी ने आत्मकथा को दूसरों के साथ अपने जीवन प्रसंगों को साझा करने पर ज़ोर देते हुए कहा है कि-"आत्मकथा की एक स्वाभाविक आधारभूत परिभाषा यही हो सकती है कि उसमें व्यक्ति समूचे समाज और समाज के संदर्भ में रखकर अपने शब्द और कर्म, अपनी वैचारिकता और व्यक्तित्व की गहन और पारदर्शी पड़ताल करने की रचनात्मक कोशिश करता है। गहनता 'आत्म' के आद्यन्त विश्लेषण के लिए जरुरी है,...क्योंकि आत्मकथा 'दूसरों' के साथ 'अपने' जीवन-प्रसंगों का साझा है।"[73] अतः स्पष्ट होता है कि आत्मकथा स्वयं के द्वारा लिखी हुई वह कथा है जिसमें आत्मकथाकार अपने जीवन की परतें

---

[72] हिंदी आत्मकथा का स्वरुप एवं साहित्य, डॉ. कमलेश सिंह, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, प्रथम सं- 1989, पृ.सं-1

[73] आत्मकथा की संस्कृति, पंकज चतुर्वेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2003, पृ.सं- 13

स्वयं खोलते हुए एक-एक कड़ियाँ जोड़ता है तथा अपने जीवनानुभव एवं भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

2.2. हिंदी में आत्मकथा लेखन का उद्भव और विकास

आत्मकथा अन्य गद्य विधाओं की तरह हिंदी साहित्य में आधुनिक युग की देन है। आत्मकथा विधा यह साहित्य की अन्य विधाओं में से अधिक विश्वसनीय एवं सत्याश्रित मानी जाती है। आत्मकथा का उद्भव कब हुआ इस संबंध में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं। अनेक विद्वान आत्मकथा को अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही पाश्चात्य साहित्य में लेखन की सुदृढ़ परंपरा से मानते हैं। किंतु हिंदी साहित्य में आत्मकथा की परंपरा आधुनिक युग में सुदृढ़ हुई। इससे पहले मानने वाले विद्वानों में बच्चन सिंह का मानना है कि-"हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसीदास जैन की 'अर्द्धकथानक' (1641ई.) है।"[74]

लेकिन अन्य गद्य विधाओं की भाँति ही आत्मकथा लेखन की सुदृढ़ परंपरा की शुरुआत आधुनिक काल के भारतेंदु युग में ही होती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नाम से आत्मकथा लिखी है। इसका प्रकाशन 'कविवचन सुधा' (सन् 1876) के भाग आठ में हुआ था। कुछ विद्वान आत्मकथा की व्यवस्थित शुरुआत भारतेंदु से मानते हैं। जबकि भारतेंदु ने अपनी आत्मकथा विस्तृत नहीं लिखी है, बल्कि इसे आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका तो निभाती ही है।

भारतेंदु युग के आत्मकथाकारों में प्रताप नारायण मिश्र ने 'प्रताप चरित्र' शीर्षक से आत्मचरित्र लिखना आरंभ किया था। जोकि अधूरा रह गया। राधाचरण गोस्वामी द्वारा लिखित 'मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र' सन् 1884, अंबिकादत्त व्यास रचित 'निजवृत्तांत' 1901 तथा सुधाकर द्विवेदी की 'रामकहानी' को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

द्विवेदी युग : आत्मकथा की दृष्टि से द्विवेदी युग 'पल्लवकाल' कहा जा सकता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'मेरी जीवन रेखा' नाम से पाँच पृष्ठों में अपने व्यक्तित्व के कतिपय पहलुओं को व जीवन विकास के कुछ महत्वपूर्ण अंशों को अत्यंत नम्रता के साथ प्रस्तुत किया। इसके बाद दयानन्द सरस्वती द्वारा 'जीवन चरित्र'(1917ई.), सत्यानंद अग्निहोत्री कृत 'मुझ में देव जीवन का विकास'(1910ई.), भाई परमानंद रचित 'आपबीती'(1921ई.)। इसके पश्चात

[74] हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पांचवा सं- 2017, पृ.सं- 502

श्रीधर पाठक ने 'स्वजीवनी' लिखी है, जिसमें उन्होंने स्वयं वंश परिचय, जन्म स्थान, जन्म तिथि तथा जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय दिया है । डॉ. सुंदरदास रचित 'मेरी आत्मकहानी' महत्वपूर्ण है । आत्मकथा विधा के ऐतिहासिक विकास में प्रेमचंद ने सन् 1932 में 'हंस' में आत्मकथा अंक निकला है । इस अंक में जयशंकर प्रसाद, वैद्य हरिदास, विनोद शंकर व्यास, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', दयाराम निगन, राधाकृष्ण दास, श्रीराम शर्मा आदि साहित्यकारों और गैर-साहित्यकारों के जीवन के कुछ अंशों को प्रेमचंद ने स्थान दिया है । प्रेमचंद द्वारा संपादित इस आत्मकथा अंक के उपरांत भवानी दयाल संन्यासी कृत 'प्रवासी की कहानी'(1939ई.), डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'मेरी आत्मकहानी'(1941ई.) एक श्रेष्ठ आत्मकथा है । सन् 1941 बाबू गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ' आत्मकथा है, जिसमें लेखक ने हलके हास्य-व्यंग्य शैली में आलंबन के रूप में अपने को चित्रित किया है । सन् 1946 में हिंदी के घुमक्कड़ साहित्यकार महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' में नाम से पाँच खण्डों में लिखी । इनके जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा देश-विदेश में घुमक्कड़ी करने रहा । राहुल सांकृत्यायन ने अपनी विशद आत्मकथा में अपने जीवन के साथ-साथ अपने समाज की कथा भी कही है । मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में वे-"मूलतः इतिहास बनाने के प्रयत्न में लगे विचारक थे।"[75] उनकी आत्मकथा में अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक और उनसे जुड़े व्यक्तिगत अनुभाव, बुद्ध दर्शन और मार्क्सवाद का समायोजन देखने को मिलता है । जिसमें तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों एवं साधु समाज, पाखण्ड आदि का जीवित चित्रण किया है । इसी शृंखला में वियोगी हरि कृत 'मेरा जीवन प्रवाह' (1948ई.), शांतिप्रिय द्विवेदी कृत 'परिव्रजाक की प्रजा' (1952ई.), देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'चन्द्र सूरज के बीरन' (1953ई.), सेठ गोविन्ददास कृत 'आत्मनिरीक्षण' (1958ई.), सुमित्रानंदन पन्त कृत 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' (1960ई.), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'अपनी खबर' (1960ई.), आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'मेरी आत्मकहानी' (1963ई.), आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं । 1951-55 के दौरान यशपाल की 'सिंहावलोकन' आत्मकथा और संस्मरण का मिलाजुला रूप (तीन खण्डों में) है, जिसमें यशपाल के जीवन का क्रांतिकारी तथा संघर्षपूर्ण जीवन का सफल चित्रण किया है ।

वर्तमान युग : इस युग में 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969ई.), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970ई.), 'बसेरे से दूर' (1978ई.), 'दस द्वार से सोपान तक' (1985ई.) चार खण्डों में हरिवंशराय बच्चन ने अपने अतीत की घटनाओं को रेखांकित है । डॉ. देवराज उपाध्याय कृत

[75] आत्मकथा की संस्कृति, पंकज चतुर्वेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2003, पृ.सं- 54

‘यौवन के द्वार’ (1970ई.), वृन्दावनलाल वर्मा कृत ‘अपनी कहानी’ (1970ई.), बलराज साहनी कृत ‘मेरी फ़िल्मी आत्मकथा’ (1974ई.), रामविलास शर्मा कृत ‘घर की बात’ (1983ई.), शिवपूजन सहाय ‘मेरा जीवन’ (1985ई.), हंसराज रहबर कृत ‘मेरे सात जनम’ (तीन खण्डों में), यशपाल जैन कृत ‘मेरी जीवन धारा’(1987ई.), डॉ. नगेन्द्र ‘अर्धकथा’, रामदरश मिश्र ‘सहचर है समय’, देवेन्द्र सत्यार्थी ‘चाँद सूरज के बीरन’, मोहन राकेश ‘आखिरी चट्टान तक’ तथा ‘बकलमखुद’ दो पुस्तकों का प्रणयन आत्मकथा के रूप में किया है। कृष्ण चंदर, राजेंद्र यादव तथा पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम की आत्मकथाएँ क्रमशः आधे सफ़र की पूरी कहानी, मुड़ मुड़ के देखता हूँ और रासीदी टिकट महत्वपूर्ण हैं।

1980 के बाद महिला आत्मकथाकारों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। जिसके अंतर्गत मध्यवर्गीय जीवन, पारिवारिक जीवन, स्त्री-पुरुष संबंध, रिश्तों की कड़वाहट तथा स्त्रियों की आपबीती देखी जा सकती है। महिला आत्मकथाकारों में दिनेश नंदिनी डालमिया की ‘मुझे माफ़ करना’ (1985ई.), कुसुम अंसल ‘जो कहा नही गया’ (1996ई.), कृष्ण आग्निहोत्री ‘लगता नहीं है दिल मेरा’ (1997ई.) में अपनों को खोने का दर्द, उनसे मिली रिश्तों की कडवाहट साफ़ देखी जा सकती है। पद्मा सचदेव ‘बूंदबावड़ी’ (1999ई.), शीला झुनझुनवाला ‘कुछ कही कुछ अनकही’, मैत्रेयी पुष्पा की ‘कस्तुरी कुंडल बसै’ (2002ई.), महत्वपूर्ण है। इसी कड़ी में प्रभा खेतान की ‘अन्य से अनन्या (2007ई.), रमणिका गुप्ता ‘हादसे’, मन्नू भंडारी की ‘एक कहानी यह भी’ (2007ई.) और चन्द्रकिरण सोनेरेक्सा की ‘पिंजरे की मैना’ आत्मकथाएँ हिंदी आत्मकथा लेखन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

2.3. विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथा लेखन एवं प्रेरणास्त्रोत

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में दलित साहित्य ने अपना स्थान बनाया। यह सर्वविदित है कि हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा मराठी साहित्य के बाद हुई। इसकी प्रेरणा अमेरिका में चले ब्लैक पैंथर और डॉ.बाबासाहब अंबेडकर को जाती है। यह सच है कि डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के चिंतन, मनन और दर्शन के पीछे गौतम बुद्ध, संत कबीर, महात्मा फुले के विचारों का प्रभाव हैं। यही प्रभाव दलित मराठी कविताओं में विद्रोही स्वर बनकर उभर आया। ऐसी कविता लिखने में दया पवार, नामदेव ढसाल, वामन निम्बालकर, अर्जुन डांगले, वामन कर्डक आदि प्रमुख कवि माने जाते हैं। कविता-गीतों के अलावा मराठी दलित साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएँ आदि का लेखन हुआ है। दलित साहित्य को बढ़ावा देने में मराठी में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. तेज सिंह इस ऐतिहासिक सत्य

के बारे में लिखते हैं कि-"मराठी दलित साहित्य में आत्मवृत्त लेखन की शुरूआत गंगाधर पानतावने द्वारा संपादित पत्रिका 'अस्मितादर्श' 1976 के दीपावली विशेषांक में प्रकाशित आत्मकथ्यों के बाद से मानी जा सकती है, जिसमें मराठी के प्रसिद्ध दलित लेखकों के 'मैं और मेरा जीवन' शीर्षक से संक्षिप्त आत्मकथ्य प्रकाशित हुए थे । ठीक उसी तरह हिंदी के दलित साहित्य में आत्मवृत लेखन की शुरूआत प्रसिद्ध दलित लेखकों के विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित आत्मकथ्यों के बाद ही हुई ।...दलित साहित्य में आत्मकथ्य- लेखन की शुरूआत दलित लेखकों के आत्मकथ्यों के प्रकाशन के बाद हुई । इस तरह सबसे पहले दलितों ने अपने जीवनगत अनुभवों को पहले-पहल आत्मकथ्यों के रूप में अभिव्यक्त करने की कोशिश की है ।"[76] इसी तरह 'अस्मितादर्श' (गंगाधर पनतावने, औरंगाबाद) साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से समय-समय पर दलित साहित्यकारों की कविता, कहानी, उपन्यास तथा आत्मकथ्य प्रकाशित हुए हैं ।

दलित साहित्य की अन्य विधाओं की तरह मराठी में अनेक दलित आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं । जिनमें दया पवार कृत 'अछूत' (1980), प्र.ई.सोनकांबले कृत 'यादों के पंछी' (1983), शरणकुमार लिंबाले कृत 'आक्करमासी' (1984), शंकरराव खरात कृत 'तरल-अंतराल' (1986), बेबी कांबले कृत 'जीवन हमारा' (1986), माधव कोंडविलकर कृत 'मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठने' (1979) नरेन्द्र जाधव कृत 'असीम है आसमां' (1993), आदि प्रमुख माने जाते हैं । इन रचनाकारों की प्रेरणा पाकर अन्य भारतीय भाषाओं के दलित रचनाकार खास कर हिंदी के भगवानदास कृत 'मै भंगी हूँ' (1981), मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे' (1995), ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन' (1996), कौशल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' (1999), डॉ.डी.आर जाटव कृत 'मेरा सफ़र मेरी मंजिल' (2000), सूरजपाल चौहान कृत 'तिरस्कृत' (2002), माताप्रसाद कृत 'झोपडी से राजभवन तक' (2002), डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन कृत 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', डॉ.तूलसी राम कृत 'मुर्दहिया तथा मणिकर्णिका', सुशीला टाकभौरे कृत 'शिकंजे का दर्द' आदि प्रमुख साहित्यकारों ने आत्मकथाएँ लिखी । इन आत्मकथाओं ने हिंदी में हलचल पैदा कर दी थी । हलचल पैदा करने का कारण, इन आत्मकथाओं में मानवता को शर्मसार कर देने वाला जीवन यथार्थ जो बेहद अमानवीय है और जिसको इन दलित लेखकों के साथ-साथ संपूर्ण दलित समाज ने भोगा है ।

हाशियेकृत विमर्श में मूल स्वर अस्मिता है । दलित साहित्य ने दलित अस्मिता की तलाश का कदम उठाकर इस वर्ग को जागृत किया । दलित साहित्यकारों ने इस संदर्भ में

[76] हिंदी दलित आत्मकथा, डॉ. संजय नवले, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं-2011, पृ.सं- 15

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और बंध और पीड़ित की स्थिति से बाहर आने का रास्ता भी दिखाया है । अस्मिता की पहचान करते हुए साक्षांत मस्के कहते हैं-"अस्मिता की पहचान का अर्थ अपने आपको उसी स्थिति में बनाये रखकर संघर्ष करना नहीं है इसका वास्तविक उद्देश्य जातीय जकड़नों से मुक्ति के पश्चात खुले में साँस लेना है और सारे समाज के साथ समानता स्थापित करना है ।"[77] इसी तरह अस्मिता को बचाए रखने के लिए व्यक्ति और समुदाय संघर्षरत रहते हैं और अस्मिता के प्रति जागरूकता इन्हें दिशाहीन होने से बचाती है ।

अस्मिता प्राप्ति के संघर्ष की शुरुआत अपने वंचित, पीड़ित और प्रताड़ित होने के अहसास से शुरू हो जाती है । जिससे अपनी पहचान को प्राप्त करना सबसे बड़ा उद्देश्य हो जाता है । यह बहुत आवश्यक है कि उनकी अस्मिता को उचित स्थान मिले । आज भी ऐसे साहित्यकार हैं जो विमर्श द्वारा वर्गीकृत समाज से अधिक किसी अन्य समाज से संबंध रखते हैं । यह बहुत आवश्यक है कि उनकी अस्मिता को उचित स्थान मिलें । हम देखते हैं कि हमारी नजर में कई ऐसे साहित्यकार हैं जो मूलतः विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों से हैं । किंतु उनके साहित्य को दलित साहित्य के अंतर्गत मानकर या रखकर अध्ययन-अध्यापन किया जाता रहा है । परंतु हमें विमुक्त एवं घुमंतू जैसे वंचित, हाशिये के विमर्श में अस्मिता के महत्व को देखते हुए यह जरुरी हो जाता है कि, विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के साहित्यकारों को उनकी मूल अस्मिता के अंतर्गत रखने का प्रयास किया जाए ।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की घोषणा 'शिक्षित बनो, संघठित हो और संघर्ष करो' की प्रेरणा के साथ तमाम हाशियाकृत समाजों के कार्यकर्ता आंदोलन में शामिल हुए थे । जिसमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के कार्यकर्ता भी अपने सामुदायिक संघटनों के साथ दलित आंदोलन में सम्मिलित हुए थे । विमुक्त एवं घुमंतू जाति के युवाओं ने फुले, शाहू, अंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर सामाजिक एवं साहित्यिक आंदोलन में सहभाग लिया । जिनमें दौलतराव भोसले, बालकृष्ण रेणके, लक्ष्मण माने, लक्ष्मण गायकवाड़, दादासाहब मोरे, भीमराव गस्ती, डॉ. किशोर काले आदि प्रमुख थे ।

मराठी साहित्य में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का पदार्पण 1980 में लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'पराया' से हुआ है । इसके उपरांत आजतक विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की पैंतीस के आसपास आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं । आत्मकथाओं के साथ-साथ

[77] परंपरागत वर्णव्यवस्था और दलित साहित्य, साक्षांत मस्के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं-2009, पृ.सं- 30

उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, संस्मरण आदि विधाओं का भी लेखन हुआ है। किंतु विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के साहित्य में आत्मकथा के अलावा अन्य विधाएँ समृद्ध नहीं हो पायीं। यही कारण है कि इनके द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य के अंतर्गत रखकर पढ़ा गया। और विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का अध्ययन-अध्यापन दलित आत्मकथाएँ समझकर किया गया, इनमें अंतर नहीं किया गया।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अपेक्षा दलित और आदिवासी जाति-जनजाति की भौगोलिक सीमा निश्चित है। परन्तु विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की नहीं, इस संदर्भ में डॉ.शरणकुमार लिंबाले का कहना उचित है। वे लिखते हैं-"गाँव के बाहर दलितों के लिए अलग बस्ती, अलग श्मशान और अलग पनघट है। यायावर जमातों के लिए तो न कोई गाँव है, न ही कोई घर। आज यहाँ तो कल वहाँ, ऐसे ही दौड़-धूप की जिंदगी जीते हैं वे। पेट के लिए भीख माँगे अथवा चोरी करें, यही विकल्प है। आदिवासी समाज तो वनों में जंगली पशु जैसा जीवन जी रहा है। उनका गाँव से रिश्ता केवल साप्ताहिक बाज़ार तक ही सीमित रहता है। इसके विपरीत गाँव वालों की ओर से दलितों, यायावर जातियों और आदिवासियों को यातनाएँ दी जाती हैं। यही वास्तविक स्थिति है।"[78] इससे स्पष्ट होता है कि, इन तीनों समुदायों के जीवन में कुछ समस्याएँ उभयनिष्ठ हैं, किंतु रहने के लिए स्थायी जगह, उदरनिर्वाह के लिए रोज़ गार, व्यवसाय, जात पंचायत, रूढ़ि-परंपरा, भाषा के कारण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का दुःख व्यापक और असीमित हो जाता है। इसलिए दलित-आदिवासी समुदायों की अपेक्षा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का जीवन अधिक कष्टप्रद है। यही अथाह पीड़ाएँ आत्मकथाओं के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। ये आत्मकथाएँ केवल एक व्यक्ति विशेष का संदर्भ नहीं देती, बल्कि समूची जाति-जनजाति के जीवन को प्रस्तुत करती हैं; जिनमें दर्ज जीवन-पद्धति, रूढ़ि-परंपरा, जात पंचायत, दरिद्रता, बेरोज़ गारी, भुखमरी, लाचारी, संघर्ष और अस्थिरता घुमक्कड़ी का भी परिचय देती हैं। इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का अध्ययन अलग से करने की आवश्यकता है। जिनका संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है, वह निम्नलिखित है।

2.3.1. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ

विमुक्त जनजातियों की आत्मकथाएँ- उपरा(पराया)- लक्ष्मण माने, बेरड़- भीमराव गस्ती, उचल्या(उचक्का)- लक्ष्मण गायकवाड़, तांडा- आत्माराम राठोड़, आक्रोश- भीमराव गस्ती, टाबरो- शिवाजी राठोड़, आलेख समाज प्रगतिचा- बलिराम पाटिल, काटेरी तारेच्या

[78] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनु- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प.सं- 2016, पृ.सं- 41

कुंपणाची- भीमराव जाधव, तांडेल- रावजी राठोड़, दगडफोद्या- रामचंद्र नलावडे, याडी- पंजाब चव्हाण, पारध्याचं जिण- रत्नेश काले, चोरटा- संतोष पवार, मी एक दगडफोद्या- बाबा वडार, झगड़ा- रामचंद्र नलावडे, एका तांड्याची यशोगाथा- मधुकर पवार, वलंबा- शिवमूर्ति भांडेकर, सिटी ऑफ़ मांडवी- उमा राठोड़ तिम्मा- प्रकाश जाधव, उदई- प्रकाश चव्हाण आदि ।

घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ- गबाळ(डेराडंगर)- दादासाहब मोरे, आयरनीच्या घना- वैजनाथ कलसे, भटक्या- मारोतराव जाधव, भटक्या- के.ओ. गिर्हे, हातोडा- पुंडलिक गवंडी, मरणकला- जनाबाई गिर्हे, कोल्हात्याच पोर (छोरा कोल्हाटी का)- किशोर शांताबाई काले, मी डॉक्टर झालो- किशोर शांताबाई काले, तीन दगडाची चूल- बापूसाहेब चव्हाण, तीन दगडाची चूल- विमल मोरे, बिराड- अशोक पवार, यातनापर्व- के.ओ. गिर्हे, धडपड- गणेश जाधव आदि ।

2.3.2. मराठी में लिखित विमुक्त जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

1.तांडा- आत्माराम राठोड

आत्माराम राठोड 'तांडा' यह आत्मकथन सन् 1989 में अभिजित प्रकाशन, नागपुर द्वारा प्रकाशित है । जिसके अंतर्गत नायक प्रधान बंजारा समुदाय का जीवन चित्रण किया गया है । तांडे पर राजनीतिक दलों की मिलीभगत से अवैध शराब का धंधा चलाया जाता है । अवैध व्यवसाय के नाम पर पुलिस वालों की नजर ऐसे तमाम तांडों पर होती है इससे लेखक का तांडा अछूता नहीं । शराब बंजारों के जीवन का हिस्सा बनती है । बच्चों को बचपन से ही शराब पिलाई जाती है, जिसका कारण आगे चलकर बच्चे इसी धंधे में लगे रहें । अवैध समझकर जब बंजारों को पुलिस उठा ले जाती है तब इनकी महिलाएँ अपने पति को छुड़वाने के लिए भागदौड़ करती हैं जिसमें मन्नतें माँगना, उपवास रखना, पूजा-अर्चना करना आदि करती हैं । कई बार ये महिलाएँ राजनीतिक लोगों की शिकार बन जाती हैं तो समुदाय में जात पंचायत द्वारा प्रताड़ित होती हैं ।

लेखक के जीवन में अपनी चाची का प्यार और माँ द्वारा सुनाया गया संत सेवादास का चरित्र प्रभावित करता है । आगे बाबासाहब अंबेडकर को शोषित वर्गों का उद्धारकर्ता मानकर सामाजिक परिवर्तन शुरू करता है । बंजारा समुदाय में स्थित देववाद, अन्धविश्वास, शराबखोरी, सामाजिक, राजनीतिक छलों की उपाय-योजना आत्मकथा के माध्यम से हमारे सामने रखी गई है ।

2.आक्रोश- भीमराव गस्ती

भीमराव गस्ती की आत्मकथा का दूसरा खंड 'आक्रोश' है जो सन् 1993 में राजहंस प्रकाशन, पुणे द्वारा प्रकाशित हुआ है । 'आक्रोश' में भीमराव गस्ती द्वारा की गयी निस्वार्थ समाज सेवा, आंदोलन में कार्य करते समय किया गया संघर्ष, अपनों के द्वारा मिली उपेक्षा, व्यवस्था द्वारा विमुक्त घुमंतू समुदायों तथा देवदासियों को मिली हुई उपेक्षा और रूढ़ि-परंपरा, जात पंचायत, व्यसन मुक्ति के लिए उठाई गयी आवाज, निवेदन, मोर्चे, आंदोलन का दस्तावेज 'आक्रोश' है ।

3.काटेरी तारेच्या कुंपनाची- भीमराव जाधव

'कंटीले तारों के बीच' आत्मकथा भीमराव जाधव द्वारा चन्द्रकला प्रकाशन से 1998 में प्रकाशित हुई है । गुनहगार की जिंदगी जी रहे राजाराम और सावित्री के 'कल्यानपुर सेटलमेंट' में 19 फरवरी 1923 के दिन भीमराव का जन्म हुआ । माँ-बाप गुनहगार कहलाये गए इसलिए बेटा भी जन्मतः अपराधी ठहराया गया । जाति से भामटा हैं, तो कुछ क्षेत्र में अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे- घंटी चोर, बाजीगर, टकारी, कामाटी । इस समुदाय का मुख्य व्यवसाय चोरी करना और डाका डालना था ।

लेखक के बचपन में ही क्षयरोग से माँ की मृत्यु होती है । अनपढ़ पिताजी पढ़े-लिखे अंग्रेजों को देखकर अपने बेटे को पढ़ाने की ठान लेते हैं । बेटे को सेटलमेंट के स्कूल में भर्ती किया जाता है । बेटे की बेहतर जिंदगी के लिए बाप खूब मेहनत करता है । लेखक को स्कूल में घोडके नामक टीचर के संपर्क से कक्षा पाँचवी में ही टीचर होने की ठान लेता है । बिगड़ते हालत देखकर लेखक ग्यारहवीं तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं और आगे स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो जाते हैं । सन् 1934 के आसपास लेखक 'सेटलमेंट सेवा संघ' नाम से संगठन की स्थापना करते हैं । इस सामाजिक कार्य के दौरान अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक विद्वानों से मुलाकातें-बैठकें होती हैं, जिनमें तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू, डॉ. बाबासाहब अंबेडकर, राजीव गाँधी आदि का चित्रण मिलता है । इस प्रकार 'काटेरी तारेच्या कुंपनाची' अर्थात 'कंटीले तारों के बीच' आत्मकथा में लेखक ने अपने बचपन से लेकर सामाजिक जीवन का परिचय दिया है ।

4.दगडफोडया- रामचंद्र नलावडे

वडार समुदाय की जीवन पद्धति व लेखक रामचंद्र नलावडे के शैक्षणिक संघर्ष की कथा का चित्रण 'दगडफोडया' अर्थात 'पत्थर तोड़ने वाला' में है । आत्मकथा सन् 2000 में देशमुख एंड कंपनी पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित हुई है ।

लेखक एक ऐसे समुदाय से होता है जिन्हें रहने के लिए न घर, जमीन और न ही गाँव हैं । जहाँ पर काम मिले वहीं पर ठेकेदार के पीछे निकल पड़ते हैं । ठेकेदार ही इनका माई-बाप होता है । काम किया हुआ पैसा नहीं मिला तो पानी पीकर रात बितानी पड़ती हैं । इस लाचार जिंदगी पर लेखक लिखता है-'वडारों की अपेक्षा कुत्तों का जीवन बेहतर होता है । हमारे जीवन में केवल नरक यातनाएँ लिखी गयी हैं । हम सब को एक लाइन में खडा करके गोलियों से दाग देना चाहिए । यहाँ रोज़ -रोज़ मरने की बजाये एक ही दिन मरना पसंद करेंगे ।' वडार समुदाय के साथ इतना छल होता है कि ठेकेदार मनमर्जी से काम लेता है । न पूरी मजदूरी देता है, न समय पर पैसा देता है । इस समुदाय के लोग अज्ञानीता और गरीबी के कारण ठेकेदार के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते ।

अशिक्षा और व्यसनाधीनता भी वडार समुदाय की दरिद्रता का महत्वपूर्ण कारण है । जीवन बर्बाद हो जाता है फिर भी शराब नहीं छोड़ते । इसका कारण दिन भर की थकान दूर करना होता है । इस कारण शराब समुदाय के जीवन का हिस्सा बन जाती है । इतना महत्व दिया जाता है कि बच्चों को सुलाने के लिए, बूढ़े लोगों में जान लाने के लिए, जख्म भरने के लिए, शादी-ब्याह, उत्सव, आदि में बिना शराब के काम नहीं चलता ।

जात पंचायत में हमेशा स्त्रियों पर अन्याय होते दिखाई देता है । ऐसे ही जात पंचायत द्वारा एक परिवार को भीख माँगकर जीने की सज़ा देते हैं । बोलते समय हर शब्द में गाली-गलौच होता है । गाली बिना भाषा अधूरी होती है । दुःख भरा प्रसंग भी गाली से समझाते हैं । लेखक की माँ उसे समझाते हुए कहती है-'ये भाड्खाऊ आराम से खाले नहीं तो निवाला गले में अटक जायेगा ।' इस तरह के तमाम उदाहरण वडार समुदाय के जीवन का हिस्सा बनते हैं ।

5.चोरटा- संतोष पवार

जन्मतः अपराधी ठहराई गयी 'आदिवासी पारधी' जनजाति की दर्दभरी कहानी का नाम 'चोरटा' कह सकते हैं । संतोष पवार लिखित 'चोरी करनेवाला' आत्मकथा की प्रथम आवृत्ति

2007 में सुधीर प्रकाशन, वर्धा से प्रकाशित हुई है । यह आत्मकथा डॉ. बाबासाहब अंबेडकर और हाथ में भीख की कटोरी की बजाय क़िताब-कलम थामने वाली माँ को समर्पित है ।

पारधी समुदाय गाय के पीठ पर सामान लादकर एक गाँव से दूसरा गाँव बदलनेवाली घुमंतू जनजाति है । वह गाँव के हगनहट में अस्थिर जीविका करती है । निरंतर भटकने वाला लेखक का परिवार चार माह एक ही गाँव (धनगरवाडी) में जीविका करता है । तब स्थायित्व को लेकर लेखक की माँ कहती है, 'हम एक ही जगह पर रहेंगे तो हमें लोग जीने नहीं देंगे ।'

पारधी समुदाय चोरी, डाका, लूट यह माना हुआ धंधा होने की वजह से बेगुनाह पारधियों को पुलिस उठा ले जाती हैं । अन्न,वस्त्र, आश्रय और शिक्षा के लिए हमेशा झगड़ना पड़ता है । उच्चवर्ग के लोग चोर समझकर रोज़ गार नहीं देते हैं, मजबूर होकर कई बार चोरी करना पड़ता है । जब पुलिस उठा ले जाती है तो नैसर्गिक क्रियाक्रर्म के लिए भी नहीं छोडती । समुदाय में जन्म लिया हुआ लेखक शिक्षा ग्रहण करते समय प्रश्न उत्पन्न करता है-'गुरूजी अपने मराठी की क़िताब के पहले पन्ने पर भारत मेरा देश है और सारे भारतीय मेरे भाई-बहन हैं तो मेरी माँ-बहनों पर अत्याचार क्यों होता है ? और पिताजी को पुलिस चोर समझकर कुत्ते जैसी क्यों पीटती हैं ? पेट के लिए चोरी करना गुनाह है क्या ?' शिक्षा के कारण जागरूकता निर्माण होती है । इस कारण लेखक समाज परिवर्तन के लिए आंदोलन करता है । पारधियों की लाचार जिंदगी में बदलाव लाने के संघर्ष का चित्रण किया गया है ।

6.झगड़ा- रामचंद्र नलावडे

'झगड़ा' यह रामचंद्र नलावडे की दूसरी आत्मकथा है । जो सन् 2007 में सुगावा प्रकाशन, पुणे द्वारा प्रकाशित की गयी है । जिसमें 1975 से 1998 के बीच के कालखंड का घटनात्मक चित्रण किया गया है । आत्मकथा में लेखक के जीवन में नौकरी, परिवार, सामाजिक, शैक्षणिक सुधार की जिम्मेदारी का चित्रण हुआ है ।

समुदाय में स्थित विषमता, इंसान के जंगली व्यवहार आत्मकथा में बार-बार आते हैं । नौकरी करते समय आये हुए अनुभव मन को बेचैन करने वाले हैं । जैसे- संजय गाँधी निराधार योजना का फ़ायदा लेने के लिए जीवित पति की मृत बताने वाली स्त्री या घरकुल योजना के तहत आया हुआ मुआवज़ा शराब में बर्बाद कर देना और लेखक के घर का काम पूरा होने के बाद भी मुसीबतें आती हैं । गरीबी किसी के नसीब में न आए यह मानसिकता ध्यान में आती है । शिक्षा के लिए परिश्रम करनेवाले लेखक अपने ही महाविद्यालय के लिए पत्थर तोड़ने का काम

करते हैं। और उसी कॉलेज में एक दिन अतिथि के रूप में उपस्थित रहना गौरवान्वित करता है। इस प्रकार लेखक 'झगड़ा' में सुख-दुःखपूर्ण संघर्ष के जीवन का दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

7.वलंबा- शिवमूर्ति भांडेकर

'वलंबा' शिवमूर्ति भांडेकर द्वारा लिखित आत्मकथा सन् 2007 में भूमि प्रकाशन, लातूर द्वारा प्रकाशित की गयी है। आत्मकथा वडार समुदाय का जीवन वृत्तांत दर्शाती है। वडार समुदाय के लोग जमीन से पत्थर निकालने और उसे आकार देने का काम करते हैं। लेखक का समुदाय काम के लिए हमेशा भटकता रहता है। लेकिन लेखक के पिताजी को मंजूर नहीं होता है। क्योंकि इनकी स्त्रियों को पत्थर से बनायी गयी वस्तुएँ सिर पर ढोकर बेचना पड़ता है। उन्हें एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए दाखिला (प्रमाणपत्र) दिख़ाना पड़ता है। कभी-कभार दाखिला न हो तो बड़ी घूस देनी पड़ती है अथवा पुलिस को पकड़ा दिया जाता है। यह सब सोचकर लेखक के पिताजी एक ही गाँव में स्थिर होने की ठान लेते हैं। समुदाय विशेष के लोगों का विरोध होता है, फिर भी लेखक के पिताजी 'आलुर' नामक गाँव में स्थायी हो जाते हैं।

लेखक के पिताजी अपने अज्ञानी समुदाय में सुधार लाने के लिए प्रयत्न करते हैं। सत्य का समर्थन और अन्याय के खिलाफ हमेशा डटे रहते हैं। समुदाय में स्थित रूढ़ि-परंपरा, अंधविश्वास का निराकरण करने के लिए कार्य करते हैं। समुदाय को बीमारियों से मुक्त करने के लिए घर के सामने कुआं खोदते हैं और शुद्ध पानी की व्यवस्था करते हैं। झोपड़ियों को कभी भी आग लग सकती है इसलिए पक्के माकन बनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। स्कूल में दाखिला न देने पर टीचर से विनती कर दाखिला दिलाते हैं। इन सब में लेखक के मामा सहायता करते हैं।

लेखक अपने पिताजी का परिश्रम देखकर प्रोत्साहित होते हैं। लेखक पार्ट टाइम जॉब करके शिक्षा ग्रहण करते हैं। शिक्षा में जॉब बाधा आती है तो जॉब छोड़कर पढ़ाई करते हैं। प्रथम बैंक में नौकरी मिलती हैं। समाज में हिस्सा लेकर सामाजिक कार्य करने की दृष्टि से बैंक की नौकरी छोड़कर अचलेर नामक गाँव के स्कूल में टीचर की नौकरी करते हैं। बाद में उसी स्कूल में मुख्याध्यापक (Headmaster) पद संभालते हैं। टीचर की नौकरी के दौरान स्कूल में गुणात्मक वृद्धि करते हैं फिर भी वहाँ के टीचर इनको नीचा दिखाते हैं। वहाँ से बदली करके भारत महाविद्यालय में आने के बाद शिक्षक संघटन से जुड़ जाते हैं। शिक्षक संघटना में ज़िलाध्यक्ष बनकर मोर्चे, आंदोलन और शिक्षकों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ आयोजित करते हैं। 1987 में आदर्श महाविद्यालय के प्रधानाचार्य (Principal) पद का पदभार ग्रहण करते हैं।

8.उदई- प्रकाश चव्हाण

उपेक्षित पारधी जनजाति जो शिक्षा से कोसों दूर शिक्षा के प्रति जागरूक, संघर्षरत समुदाय का चित्रण 'उदई' है। प्रकाश चव्हाण लिखित यह आत्मकथा 2009 में ग्रंथाली प्रकाशन मुंबई द्वारा प्रकाशित है। इस समुदाय के लोग जिस गाँव में डेरा बसाते उसी गाँव में देशी शराब बेचना, शिकार करना, छोटी-मोटी चोरी के साथ-साथ ही बेल-फूल बेचकर अपना उदरनिर्वाह करते हैं। लेखक के पिताजी बेटे की पढ़ाई के लिए दिन-रात मेहनत-मजदूरी करते हैं। घर चलाने और बेटे की पढ़ाई के लिए शराब बेचने का धंधा करते हैं। एक दिन बेटे के शराब पीने की खबर लगती है तो शराब का धंधा ही बंद कर देते हैं।

पारधी समुदाय में स्नान करना पता ही नहीं होता है, अपवाद एकाध परिवार सन्-उत्सव के दिन स्नान किया हुआ दिखाई देता है। इस अस्वच्छता के कारण समुदाय में बीमारी फैलती है। इसके लिए लोग मन्नतें माँगना, भभूत लगाना, मलीदा चढ़ाना आदि करते हैं। समुदाय में जात पंचायत का प्रभाव अधिक गहरा दिखाई देता है। जिसके अंतर्गत हर तरह के झगड़े, लफड़े, प्रेमविवाह, तलाक मिटाए जाते हैं। लेखक के पिताजी द्वारा बेटे को स्कूल भेजने के कारण परिवार को जात पंचायत द्वारा बहिष्कृत किया जाता है। बाद में जुर्माना भरने पर विधिवत समुदाय में शामिल किया जाता है।

पारधी समाज में अशिक्षा के कारण दरिद्रता और बेरोज़ गारी अधिक दिखाई देती है। भूख के कारण लोगों को शादियों, तेरहवीं में जाकर जूठी पत्तलों पर जानवरों की तरह टूट पड़ना भोजन को लेकर जीवन संघर्ष दर्शाता है। पेट की आग बुझाने के लिए पारधी लोग चोरी-चाकरी करते हैं। पकड़े जाने पर पुलिस परिवार की तलाशी के नाम पर सारे सदस्यों से मार-पीट करती है। पारधी चोरी करके जिसके पास माल रखते हैं वे मालामाल होते हैं। पर जो चोरी करते हैं वे हमेशा कंगाल रहते हैं। कई बार पुलिस पारधियों को बेवजह गुनहगार ठहराती हैं।

पारधी समाज के लिए शासन द्वारा सुनिश्चित की गयी योजनाएँ पता भी नहीं होती। अज्ञानीता का फ़ायदा लेकर दलाल ही गायब करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि आत्मकथा में अज्ञानीता, रूढ़ि-परंपरा, स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, शिक्षा के लिए पिता ने किया हुआ संघर्ष, लेखक के वैवाहिक जीवन का संघर्ष आदि आत्मकथा में दर्शाया गया है।

2.3.3. मराठी में लिखित घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

1.आभारान- पार्थ पोलके

'आभारान' यह पार्थ पोलके द्वारा लिखित आत्मकथा 1984 में 'ग्रंथाली प्रकाशन', मुंबई से प्रकाशित है । पोतराज समुदाय के लोग शरीर पर रंग-बिरंगे टुकड़ों से बने कपड़े पहन कर चाबुक से अपने शरीर पर वार करते हुए भीख माँगते हैं । उस रंगीन कपड़ों को 'आभारान' कहा जाता है । पूर्वकाल दलित और घुमंतू जनजातियों में भगवान के नाम पर बच्चा छोड़ने की प्रथा थी । डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर दलित समाज ने यह प्रथा छोड़ दी है, परंतु घुमंतू समुदायों में यह प्रथा जारी रही । जब भगवान के नाम पर बच्ची छोड़ी जाती है तो वह 'देवदासी' या 'मुरली' कहलाती है और बच्चा छोड़ा जाता है तो उसे 'पोतराज' या 'वाघ्या' नाम से जीवन-यापन करना पड़ता है । यह पोतराज जब भगवान के नाम पर भिक्षा माँगते हैं तब शरीर पर 'आभराण' पहनना पड़ता है । लेखक के पिताजी आभरान पहनकर खुद के शरीर पर चाबुक से वार (फटके) करते हुए भीख माँगते है । इसी पर लेखक के परिवार का उदरनिर्वाह चलता है । पोतराज यह परंपरा आदमी को भिखारी कैसे बनती है और शिक्षा इंसान को कैसे समर्थ बनाती है । इसकी संघर्षमय गाथा 'आभारान' है ।

2.रानभैरी- गुलाबराव वाघमोडे

'रानभैरी' यह गुलाबराव वाघमोडे द्वारा लिखित आत्मकथा 1986 में वनश्री प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित है । यह आत्मकथा घुमंतू वैदू समुदाय के नवयुवक की कथा-व्यथा है । 'रानभैरी' का मतलब दिशाहीन, बिछड़ा हुआ । जड़ी-बूटी द्वारा औषधि तैयार करने के लिए अनवरत घुमंतू प्रवृत्ति में जीवन-यापन करनेवाला रानभैरी कहलाता है । दवाई बनाकर बेचना ही वैदुओं का पारंपरिक व्यवसाय है । ग्रामीण क्षेत्र में घूमकर आयुर्वेदिक दवाई बाँटने वाला वैदू चलता-फिरता अस्पताल कहलता है । रोगियों को उपचारक औषधि देकर बदले बासी अन्न लेकर खाकर उदरनिर्वाह करना पड़ता है । वैदू महिलाएँ भी अपने परिवार के लिए हाथ बाँटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । वैदू स्त्रियाँ यानि चलता-फिरता जनरल स्टोर होती है । लेखक के पिता जंगल से जड़ी-बूटी (वनस्पति) लाते हैं तो माँ गली-गली घूमकर सुई-धागा, कलाई, अंगूठी, काजल, बालियाँ, नथ आदि बेचकर परिवार की सहायक बनती हैं । वैदू समुदाय की स्त्री पर गाँव के उच्चवर्ग के गुंडों की बुरी नजर हमेशा होती हैं । लेखक की माँ की अनेक बार कुचेष्टा होती है तो समुदाय के चिन्काबाई नाम की वैदू महिला गाँव के गुंडों की शिकार बनायी जाती है

। इस प्रकार के अन्याय, अन्धविश्वास, जात पंचायत, आंधी बारिश से परेशानी, घर नीलामी हो जाना जैसे प्रश्न पाठक के मन को अस्वस्थ कर देते हैं।

3.आयरनीच्या घना- वैजनाथ कलसे

'आयरनीच्या घना' वैजनाथ कलसे द्वारा लिखित आत्मकथा साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद से सन् 1986 में प्रकाशित की गयी है । उदरनिर्वाह के लिए एक के बाद एक गाँव बदलना पड़ता है। लेखक का परिवार नए गाँव में डेरा बसाता है । पानी के लिए लेखक की माँ कुंए पर जाती है और जान गवां देती है । मृत्यु क्या है, इसकी कल्पना भी लेखक को नहीं होती तब माँ का निधन हो जाता है । जब मृत्यु का मतलब अपनी माँ कभी नहीं मिलेगी, यह जब लेखक को पता चलता है तो 'सिर पर आसमान गिरने' जैसी स्थिति बन जाती है ।

'आयरनीच्या घना' इस आत्मकथा को तीन भागों में देख सकते हैं । पहले भाग में लेखक का बचपन व शिक्षा के दौरान किया गया संघर्ष, सगे-संबंधियों की ओर से मिली उपेक्षा का चित्रण है । दूसरे भाग में महाविद्यालयीन पढ़ाई के समय मिली सहायता, हॉस्टल का वातावरण, काम करके शिक्षा प्राप्त करने की योजना में श्रमदान, लेखक को मिली आर्थिक सहायता, पढ़ने की रूचि, शिक्षा के बाद बिना जुगाड़ के नौकरी नहीं मिलेगी इसका अनुभव होता है । तीसरे भाग में स्नातकोत्तर की पढ़ाई से लेकर प्राध्यापक बनने तक का सफ़र रेखांकित किया गया है ।

4.भटक्या- के.ओ. गिर्हे

'भटक्या' यह के.ओ.गिर्हे द्वारा लिखित आत्मकथा प्रियदर्शनी प्रकाशन, कोल्हापुर से सन् 1991 में प्रकाशित की गयी है । भटक्या आत्मकथा के पन्ने-पन्ने पर लेखक द्वारा किया गया संघर्ष है । एक गाँव में तीन दिन से अधिक बसने की इजाजत न होने के कारण एक गाँव से दूसरे गाँव भटकने का चक्र जारी रहता है । जिस गाँव में जाते हैं उस गाँव की भैंसों के बाल काटने का काम करते हैं । बदले में मिले अन्न तथा मछलियाँ, केकड़े, नेवले आदि पकड़कर उदरनिर्वाह करते हैं । गोपाल जनजाति की दरिद्रता का अनुभव लेखक को बचपन से ही होता है । कासखेडा में मारवाड़ी के घर शादी होती है । तब लेखक और उसकी बुआ अनसाई भोजन माँगकर थक जाते है परंतु नही परोसा जाता, अंत में पेट की आग बुझाने लेखक जूठे पत्तलों पर जाकर ख़ाना खाता है ।

उदरनिर्वाह के लिए घुमक्कड़ी करनेवाले गोपाल समुदाय के लोग आपस में मिलने पर गले लगकर रो पड़ते हैं । जीवन का मतलब पेट की आग बुझाने के लिए ज़िन्दा रहना गोपाल समाज की संकल्पना बनी है । अज्ञानी और अंधविश्वास में लिप्त गोपाल बीमार होने पर अस्पताल नहीं जाते, भभूत लगाकर भगवान पर विश्वास रखते हैं । लेखक के पिताजी बीमार होते है तो भगवान की लीला समझकर सैलानी बाबा को मलीदा चढाते हैं । आगे कुछ ही दिनों में उनका निधन हो जाता है ।

गोपाल समुदाय के लोगों की मानसिकता शिक्षा प्राप्त करके अधिकारी बने ऐसी नहीं होती। इस कारण लेखक के स्कूल जाने की बात समुदाय को पता चलती है तो आश्चर्यचकित होते हैं । जब लेखक स्कूल जाता है तो आँखों के सामने घर, भैसें, मित्र दिखाई देते हैं । समय के चलते लेखक को स्कूल की आदत लगती है । वे शिक्षा ग्रहण करके नौकरी करते हैं । किंतु उदरनिर्वाह के लिए भटकना बंद नहीं होता। ऐसे संघर्षमय जीवन का चित्रण 'भटक्या' अर्थात 'भटकनेवाला' के माध्यम से लेखक व्यक्त करता है ।

5.मरणकला- जनाबाई गिर्हे

'मरणकला' यह आत्मकथा जनाबाई गिर्हे द्वारा 1992 में प्रचार प्रकाशन, कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित की गयी है । लेखिका अपने जीवन वृतांत के साथ अपने समुदाय गोपाल जाति की स्त्रियों की भी वास्तविक कथा कहती हैं । आत्मकथा का एक-एक प्रसंग पाठक को विचलित कर देता है । हर तीन दिन को गाँव बदलना और जहाँ जानवरों को चारा-पानी मिले वहीं डेरा बसाना इनकी नियति होती है । ऐसे में लेखिका के पिताजी उसे स्कूल में भेजने की ठान लेते हैं, तब समुदाय व घर के अन्य सदस्यों का विरोध होता है । स्त्री शिक्षा को समुदाय में पाप समझा जाता है । बात यहीं पर नहीं रुक जाती है, जात पंचायत बुलाकर परिवार को बहिष्कृत किया जाता है । फिर भी लेखिका के पिताजी अपने दृढ़निश्चय पर अड़े रहते हैं ।

जात पंचायत द्वारा बहिष्कृत परिवार को अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है । फिर भी लेखिका के पिताजी मेहनत-मजदूरी कर अपनी बेटी को शिक्षित बनाते हैं । तमाम संकटों का सामना करके लेखिका समुदाय की प्रथम शिक्षिका बनकर समाज के सामने आदर्श रखती है । लेखिका को शिक्षिका पद के लिए ऐसे क्षेत्र में भेजा जाता है जहाँ शिक्षा भी पहुँची नहीं थी । आत्मकथा में लेखिका और उनके पति के.ओ.गिर्हे ने गोपाल समुदाय की स्त्रियों पर होने वाले

अन्याय-अत्याचार के तमाम उदाहरणों का विरोध करके अंततः समाज कार्य में जुट जाते हैं । ऐसे दर्जनों उदाहरण लेखिका ने आत्मकथा में कलमबद्ध किये हैं ।

6.मी डॉक्टर झालो- डॉ. किशोर शांताबाई काले

'मैं डॉक्टर बना' यह किशोर काले की 'छोरा कोल्हाटी का' आत्मकथा का अगला हिस्सा है । इस आत्मकथा को आपलं प्रकाशन, मुंबई द्वारा 1995 में प्रकाशित किया गया है । यह आत्मकथा लेखक एम.बी.बी.एस की शिक्षा के दौरान प्रेरित किये गए लोगों का तथा महाराष्ट्र की लावनी (लोकनाट्य) परंपरा को जिवित रखनेवाली महिलाओं को समर्पित किया है ।

'मैं डॉक्टर बना' में किशोर काले ने मुंबई जैसे महानगर में वैद्यकीय शिक्षा प्राप्त करते समय आई हुई दिक्कतों का घटनात्मक चित्रण किया है । जैसे- धनाढ्य बाप के बेटों द्वारा ली जानेवाली रैंगिंग, मस्ती, वैद्यकीय कॉलेज में चलनेवाला भ्रष्टाचार, गरीब विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति में गड़बड़ी, लेखक कोल्हाटी समुदाय का होने के कारण बेवजह चोरी का आरोप आदि संकटों में मित्रों द्वारा मिला सहयोग, हॉस्टल में मिला आश्रय आदि को दर्शाती है ।

माँ की ममता से बिछड़ा हुआ किशोर माँ के सपने को अपना समझकर पूरा करता है । माँ के प्यार का भूखा, ममता से वंचित किशोर प्यार को बरक़रार रखने के लिए कहता है-'उसे उठाकर मेरे कलेजे के कोने में समाना चाहता हूँ । उसकी शांति को बाधा न पहुँचे, इसलिए मेरे दिल की धडकनों को स्थिर कर देना चाहता हूँ ।' माँ की ममता पाने के लिए किशोर अपना वक्तव्य देता है । यह भावना किसी भी सहृदय इंसान के दिल को स्पर्श करने वाली है । उपर्युक्त भावना से लेखक की माँ के प्रति श्रद्धा व्यक्त होती है ।

नाचनेवाली मतलब पैसे कमाने वाली मशीन के नाम से समाज देखता है । मशीन ख़राब हुई तो उसे भंगार में बेच देते हैं । ऐसी स्थिति कोल्हाटी समुदाय के स्त्रियों की होती है । उसके कमाए हुए पैसों पर मौज, अय्यासी करनेवाले पिता, भाई उससे जानवर की तरह व्यवहार करते हैं । नाचनेवाली स्त्रियों को समाज भी धंधेवाली कहकर तुच्छता की नजर से देखता हैं । लेखक इंसान में इंसानियत जागृत करने का काम करने का कार्य शुरू करता है । पर नियति को मंजूर नहीं था, सभी सपने छोड़कर डॉ.किशोर काले 37 वर्ष की आयु में दुनिया से विदा (मुंबई-पुणे हायवे पर अपघात में) लेते हैं ।

7.तीन दगडाची चुल- बापूसाहेब चव्हाण

आर्थिक समस्याओं का सामना करते शिक्षा प्राप्त किये कार्यकर्ता की जीवनगाथा 'तीन दगडाची चुल' है । बापूसाहेब चव्हाण लिखित 'तीन पत्थरों का चूल्हा' 1997 में 'स्वयं प्रकाशन' वैदूवाडी द्वारा प्रकाशित किया। वैदू जनजाति शिकार करके, आयुर्वेदिक औषधि बेचकर व डिब्बे, छननियाँ तैयार करके ईमानदारी पूर्ण जीवन-यापन करती है । इस समुदाय के लोग सामान बनाने के लिए कच्चे माल की तलाश में जाते हैं । स्त्रियाँ गाँव में जाकर भीख माँगती हैं । इनके पास न अपना गाँव है और न जमीन, शिकार और आयुर्वेदिक जड़ी-बूटी के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पलायन करते हैं । पेट की आग बुझाने के लिए स्थिरता न होने के कारण परिवार को कुछ सहायता होगी यह सोचकर माँ लेखक को स्कूल नहीं भेजतीं । किंतु लेखक के पिता किसी की न सुनते हुए बेटे को स्कूल भेजना शुरू करते हैं । उसके कुछ ही दिन बाद लेखक के दादा की मृत्यु हो जाती है । शिक्षा से दूर समुदाय विशेष के लोग दादा की मृत्यु का कारण लेखक का स्कूल जाना बताते हैं । जात पंचायत द्वारा शिक्षा को पाप घोषित करके समुदाय द्वारा लेखक के परिवार को धमकियाँ मिलती हैं ।

वैदू जनजाति में स्त्रियों को बेचा जाता है । उनकी अनेक शादियाँ होती है । स्त्रियों को जानवरों के दाम में सौदा करते हैं । कभी-कभी पिता लड़की को मायके लाकर दूसरे ही आदमी को अधिक दाम में बेचता है । इस प्रकार स्त्रियों को खरीदने-बेचने का व्यवहार इस समुदाय में चलता है । लेखक कॉलेज के दिनों में ही सामाजिक कार्य में रूचि रखता है । कई बार दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, ऐसे में लेखक अलग-अलग तरह की मजदूरी कर उदरनिर्वाह के लिए घर की सहायता करता है । लेखक हमेशा परिवर्तन को अपना लक्ष्य बनाकर कार्य करता है ।

8.कोल्हाटउडी- गोपीचंद पवार

'कोल्हाटउडी' यह गोपीचंद पवार की आत्मकथा सन् 1998 में 'शब्दांकन प्रकाशन', नांदेड द्वारा प्रकाशित है । कोल्हाटी समुदाय पर आधारित किशोर काले की 'छोरा कोल्हाटी का' आत्मकथा के बाद दूसरी 'कोल्हाटउडी' यह आत्मकथा पाठक के सामने नए रूप में प्रस्तुत हुई है। किंतु जितना किशोर काले की आत्मकथा को प्रसिद्धि मिली, उतनी गोपीचंद पवार को नहीं मिल पाई । फिर इस 'कोल्हाटउडी' आत्मकथा से कोल्हाटी समुदाय की अलग छवि प्रस्तुत हुई है।

कोल्हाटी समुदाय का स्थायी गाँव या जमीन नहीं होती है । उन्हें अपना सामान सिर या घोड़े-गधों पर लादकर स्थान बदलना पड़ता है । इस समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय नाच-गाना होता है, उसी से उदरनिर्वाह करते हैं । महाराष्ट्र के हिंगोली जिले में टाकली नामक गाँव लेखक के बचपन से लेकर स्कूल तक का गाँव है । इसलिए लेखक इसे अपना पैतृक गाँव मानता है ।

कोल्हाटी समुदाय में लड़कियों की शादी नहीं होती, उन्हें बचपन से ही नाच-गाने के लिए तैयार किया जाता है । समाज में वह 'मोटयारणी' कहलाती है । इस समुदाय में लड़की को सोने का अंडा देने वाली मुर्गी समझा जाता है । परिवार में लड़की पैदा होना शुभ माना जाता है । किंतु लेखक के पिताजी अपने समुदाय के खिलाफ जाकर अपनी बेटियों की शादी करते हैं । तब लेखक के परिवार को समुदाय द्वारा बहिष्कृत किया जाता है । कुछ ही दिनों में पिताजी का छोड़ जाना लेखक को कष्टदायक होता है ।

लेखक बचपन से लेकर कॉलेज के दिनों में दोस्तों द्वारा समुदाय की स्त्रियों के बारे में पूछकर मजाक करना, जाति छुपाकर नीचा दिखाना, समुदाय में स्थित रूढ़ि-परंपरा, जात पंचायत के विविध अनुभवों को सहना पड़ता है । आगे चलकर लेखक समुदाय में परिवर्तन के लिए समाज-कार्य करता है । लेखक आत्मकथा में अपने और अपने समुदाय के संघर्षपूर्ण जीवन को प्रस्तुत करता है ।

9.तीन दगडाची चुल- विमल मोरे

'तीन दगडाची चुल' अर्थात 'तीन पत्थरों का चूल्हा' नाम से विमल मोरे की आत्मकथा मेहता पब्लिकेशन हाऊस, पुणे द्वारा सन् 2000 में प्रकाशित हुई है । लेखिका आत्मकथा में अपने जीवन वृत्तांत के साथ अपने समुदाय का भी चित्रण किया है । गोंधाली यह एक लोक परंपरा है जो देवी-देवताओं के नाम पर रातभर गोंधळ (जागरण) किया जाता है । सन-उत्सव के दिन घर-घर जाकर गाने गाना और भिक्षा में जो अनाज मिले उसी पर उदरनिर्वाह करते हैं। लेखिका के पिताजी मेहनत मजदूरी करके बेटे को पुलिस बनाते हैं । भाई अपना कर्त्तव्य समझकर बहन (विमल) को अपने साथ पढ़ाई के लिए ले जाता है । तब समुदाय का विरोध भी होता है । माँ अकेलापन महसूस करती हैं । इस कारण लेखिका की स्थिति 'इधर-न-उधर बीच में आधर' जैसी बन जाती है । लेखिका को अपनी भाभी का साथ मिलता है, फिर भी नौवीं कक्षा तक ही पढ़ पाती हैं ।

लेखिका के सयानी होने के कारण समुदाय के लोग माँ-बाप को हमेशा टोकते रहते हैं। इस कारण लेखिका की शादी दादासाहब मोरे से कर दी जाती है। दादासाहब जैसे बेरोज़ गार और आंदोलनकारी युवक के घर आकार लेखिका को कई बार भूखा सोना पड़ता है। बाद में विमल और दादासाहब मिलकर सामाजिक कार्य में पूर्ण समय के कार्यकर्ता बन जाते हैं। दोनों मिलकर समुदाय में स्थित जात पंचायत, अंधविश्वास, रूढ़ि-परंपरा, स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार को रोकने का प्रयास इस आत्मकथा में व्यक्त होता है।

10.बिराड- अशोक पवार

'बिराड' यह आत्मकथा अशोक पवार द्वारा लिखित 'दिलिपराज प्रकाशन', पुणे से 2001 में प्रकाशित हुई है। उदरनिर्वाह के लिए भटकने वाले बेलदार जिस गाँव में काम मिले उसी गाँव के हगनहट में डेरा डालकर रहते हैं। उस गाँव का काम पूरा होने पर, गधों पर 'बिराड' (सामान) लादकर रोज़ गार की तालाश में निकलते हैं। बिना गधों का बेलदार निरर्थक माना जाता है। इसलिए गधा बेलदारों की 'लक्ष्मी' माना जाता है।

घुमंतू जनजातियों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता है। अडचनों के समय एक-दूसरे की सहायता करते हैं। पेट की आग बुझाने के लिए गाँव-गाँव भटकनेवाले बेलदार देव-धर्म, भुत-बाधाओं में गहरा विश्वास करते हैं। किसी भी प्रकार की बीमारी का इलाज भभूत लगाकर करते हैं। सफलता नहीं मिलती है तब देवी-देवताओं का संदूक खोलकर भूतबाधा देखते है। मन्नतें, भभूत करने/लगाने में ही मरीज को गवां बैठते हैं। हिस्से में आया दुःख केवल नसीब समझकर भूल जाते हैं। बोरियों का तंबू बनाकर रहनेवाले बेलदार समुदाय के लोग वर (लड़का) पक्ष की ओर से वधु (लड़की) पक्ष को दहेज़ दिया जाता है। बेलदारों का कोई भी समारंभ, प्रसंग हो सभी में बकरे, मुर्गे, शराब का भोजन होता है। इनके भगवान् को भी शराब और मांसाहारी नैवद्य लगता है।

बेलदारों का जीवन अमानुष वास्तविकता का परिचय 'बिराड' कर देता है। इस कारण पाठक के मन में चीड़, घृणा निर्माण होती है। इंसान को इंसान की तरह जीवन जीने नहीं देते हैं तो स्वातंत्र्य, समता, बंधुता इन तत्वों का क्या मतलब है ? इस प्रकार आत्मकथा में पढ़ाई के दौरान आई मुश्किलें, जात पंचायत द्वारा स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार, वैवाहिक जीवन में भोगे गए अनुभवों का चित्रण पाठक को विचलित कर देता है।

11.यातनापर्व- के.ओ. गिर्हे

के. ओ. गिर्हे 'भटक्या' आत्मकथा के उपरान्त दूसरा खंड 'यातनापर्व' गिर्हे प्रकाशन, औरंगाबाद से 2005 में प्रकाशित हुआ है । लेखक अन्याय-अत्याचार का भंडाफोड़ 'यातनापर्व' के माध्यम से करते हैं । लेखक नौकरी के दौरान घटित घटनाओं का चित्रण, अपनी माता, प्रिय मित्र और मार्गदर्शक का दुःखद निधन होने के कारण जीवन में आयी उदासीनता, स्वतंत्र होते हुए भी पिछड़े वर्ग को उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है ? आदि का चित्रण 'यातनापर्व' के माध्यम से हुआ है ।

12.धडपड- गणेश जाधव

गणेश जाधव द्वारा लिखित 'धडपड' यह आत्मकथा लेखक ने 'स्वयं' जून 2006 में प्रकाशित की है । आत्मकथा में शिक्षा के प्रति गहरा खिंचाव, सामाजिक, आर्थिक, भावुक हालातों का चित्रण किया गया है । 'धडपड' यह आत्मकथा बहुत रफ़्तार से लिखी गयी है । संपूर्ण जीवन का परिचय चव्वालिस पृष्टों में देने का मतलब जीवन का सारांश बताने जैसा ही है । जिसमें केवल जीवन का सर्वांगीण चित्रण न होकर मात्र शिक्षा ग्रहण करते समय किये गए सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक समस्याओं के संघर्ष (धडपड) का चित्रण कह सकते हैं । आत्मकथा में कई जगह लिखने की सहूलियत थी । किंतु उस तरह के विस्तार से लेखन नहीं हुआ है ।

2.3.4. मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का परिचय

1. पराया- लक्ष्मण माने

लक्ष्मण बापू माने का जन्म 1 जून 1949 में सोमथली (फलटण, जिला-सातारा) में हुआ। लेखक लेखन के साथ सामाजिक कार्यकर्ता हैं । भारत में स्थित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों तथा पिछडे वर्गों का अध्ययन करते हैं । वे महाराष्ट्र राज्य के विधान परिषद सदस्य रह चुके हैं । लक्ष्मण माने सन् 2007 में अपने एक लाख विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार किया है । 'पराया' लक्ष्मण माने की आत्मकथा जो मराठी में 'उपरा' के नाम से सन् 1980 में ग्रंथाली प्रकाशन, मुंबई द्वारा प्रकाशित हुई । इसका हिंदी में अनुवाद 'पराया' नाम से सन् 1993 में अनूदित होकर प्रकाशित हुई । यह आत्मकथा मराठी में विमुक्त एवं घुमंतू जातियों की आत्मकथाओं में भी प्रथम है । जिसे प्रसिद्ध साहित्यकार दामोदर खडसे ने अनुवाद करके 'साहित्य अकादमी' दिल्ली से प्रकाशित कराया है । यह आत्मकथा हिंदी के

अलावा अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, मलयालम, फ्रेंच आदि भाषाओं में अनूदित हुई है । इनकी पुस्तकें पराया के अलावा उद्ध्वस्त, क्रांतिपथ, खेल साडेतीन टक्यांचा, पलावरचं जग, प्रकाशपुत्र, बंद दरवाजा, भाटक्यांच भारुड, विमुक्तायन आदि हैं । पुरस्कार एवं सम्मान में पद्मश्री पुरस्कार-2008, साहित्य अकादमी पुरस्कार-1981, अंबेडकर व्याख्याता पुरस्कार, न.चिं.केलकर पुरस्कार, मुकादम पुरस्कार, भारती विद्यापीठ पुरस्कार, महाराष्ट्र फाउन्डेशन पुरस्कार, सर होमी भाभा फेलोशिप आदि पुरस्कारों से नवाजा गया है । उन्हें 'स्मितादर्श साहित्य सम्मेलन', 'आदिवासी साहित्य सम्मेलन', 'अंबेडकरवादी दलित सम्मेलन' तथा 'द्वितीय समतावादी साहित्य सम्मेलन' की अध्यक्षता करने का सम्मान मिला है ।

यह आत्मकथा महाराष्ट्र में घुमंतू कैकाडी समुदाय के जीवन की दयनीय अवस्था को हमारे सामने रखती है । उपेक्षित जीवन जीनेवाला कैकाडी समुदाय पेट की आग बुझाने के लिए गधों पर डेरा लादकर गाँव-गाँव भटकता है । इस समुदाय को एक गाँव में तीन दिन के अलावा नहीं रह सकता । इसलिए भी गाँव के पाटिल की इजाजत लेनी पड़ती है । लेखक लिखते हैं कि-" गाँव में आने के बाद गाँव के पाटिल के मकान पर हाज़िरी बजानी पड़ती । गधे, कुत्ते, मुर्गियां, आदमी सब का हिसाब बताना पड़ता ।"[79] तब जाकर इस समुदाय को गाँव के बाहर हगनहट में अपना डेरा बसाने की इजाजत मिलती । गाँव छोड़ते समय पाटिल के सामने खुलासा करना पड़ता कि हम जा रहे हैं । हमारा सामान जाँच कर सकते हैं ।

दिशाहीन घुमक्कड़ी करनेवाले इस समुदाय को समाज में शक की नजर से देखा जाता है । कई बार गाँव के लोग इस समुदाय को चोर समझकर मजदूरी नहीं देते । आसपास के गाँव में कहीं पर भी चोरी होती है तो पुलिस वाले सबसे पहले कैकाड़ी समुदाय के तंबूओं की तलाशी लेते हैं । गाँव के गुंडाबाजी प्रवृत्ति के लोग इस समुदाय की गलतियों पर ध्यान रखते हैं । और अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए बेवजह तलाशी लेते हैं । लेखक के पिताजी गाँव के पाटिल को बिना बताए गाँव छोड़ते हैं तब गाँव के पाटिल का बेटा रास्ता रोककर कहता है-"तुम लोगों का क्या भरोसा! भिकारी...सालों ! किसी का कुछ ले जा रहे होंगे तो ?"[80] लेखक के पिताजी पाटिल के बेटे के पाँव पकड़ते हैं, माफी माँगते हैं । फिर भी नहीं मानता, तब लेखक के पिताजी जेब से पैसे निकाल कर पाटिल बेटे के हाथ में रखते हैं । फिर भी नहीं मानता । वह पैसे के साथ मुर्गी की माँग करता है । अतः दोनों लेकर पाटिल का बेटा रास्ता देता है ।

---

[79] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, प्रकाशन, दिल्ली, पांचवा सं-2016, पृ. सं-19

[80] वही, पृ. सं-16

कैकाड़ी समुदाय का शिक्षा के साथ सदियों से संबंध नहीं रहा है । उनके बच्चे अपने मां-बाप के काम में हाथ बाँटते हैं । इस समुदाय में बच्चों को बचपन से ही आदत डाली जाती है कि गधों को चराना है, भीख माँगना है, उपले, लकड़ियाँ चुनना है आदि काम इनकी प्रवृत्ति बन जाती है । अचानक एक दिन लेखक के पिताजी लक्ष्मण को पढ़ा कर टीचर बनाने का सपना देखते हैं । दूसरे दिन सुबह उठकर पिताजी लक्ष्मण को उठने का आदेश देते हैं । लेखक के पिता जब स्कूल में दाखिला लेने जाते हैं तो मास्टर कहता है-"अरे भिखारियों के लिए भी कहीं स्कूल होता है?...अरे, उसके पढ़ने के बाद टोकरियाँ कौन तैयार करेगा ! यह सब नहीं चलेगा ! बड़े आए पढ़ने वाले !"[81]

अज्ञानीता, गरीबी, अंधविश्वास एवं रूढ़ि-परंपराओं से ग्रस्त कैकाडी समुदाय में सन्-उत्सव, शादी-ब्याह, पूजा-अर्चना, मन्नतें बिना बकरी, मुर्गी, शराब के नहीं होती । समुदाय में कोई भी बीमार होता है तो उसे अस्पताल की बजाय यल्लम्मा, कालूबाई, लमान देवताओं का भभूत लगाकर नैवद्य चढ़ाते हैं । लेखक के पिता में सात आसरादेवी (स्त्री देवता) तथा खंडोबा शरीर में संचार होता है । समूह में किसी को तनिक भी बुखार आये तो लेखक के पिताजी में देवी संचार होती है । इसलिए लेखक के परिवार से गाँव के लोग डरते हैं । लेखक के पिताजी हमेशा कहा करते हैं, 'रस्सी का बल निकल जाएगा पर कैकाडियों का भूत नहीं भागता' ।

कैकाड़ी समुदाय में जात पंचायत का वर्चस्व दिखाई देता है । जिसके अपने नियम-कानून होते हैं । जिसके अंतर्गत सगाई, तलाक, विधवा विवाह, पुनर्विवाह, अनैतिक संबंध, घर वापसी, गोद लेना आदि के निर्णय समुदाय के वरिष्ठ व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं । समुदाय की जात पंचायत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर अधिक पाबंदियाँ लगायी हुई दिखाई देती हैं । चाहे तथाकथित समाज हो या समुदाय उन्हें भिखारिन की तरह रहने की अपील करते हैं, नहीं तो आफत को अंजाम देना पड़ता है । लेखक अपनी मामी पारुबाई का उदाहरण देते हैं । पारुबाई की सुंदरता पर लेखक की माँ को हमेशा डर होता है । पारुबाई हर दिन केवल नहा-धोकर, बाल व्यवस्थित कर संवरने के कारण सुंदर दिखाई देती है । इस कारण गाँव के गुंडों की नजर पारुबाई पर होती है । एक दिन उच्च वर्ग के गुंडों द्वारा बलात्कार होता है । इस कारण लेखक के मामा मारुति अपनी पत्नी (पारुबाई) को छोड़ देता है । पारुबाई के प्रसंग पर लेखक की माँ

[81] वही, पृ. सं-21

कहती है-"भिकारी पतिवृता-सी रहनी चाहिए ! नौटंकी या नचनिया-सी नाज-नखरे नहीं करना चाहिए नहीं तो पारुबाई जैसा हाल होता है !"[82]

कैकाड़ी समुदाय में जातिगत ऊँच-नीचता की भावना भी दिखाई देती है । कैकाड़ी सूरज निकालने से पहले गाँव से बाहर पड़ते हैं । उनकी धारणा है कि 'अगर उनका रास्ता महार काटे तो अपशकुन एवं बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा ।' इससे समुदाय का जातिगत बड़प्पन दिखाई देता है । उनका मानना है कि-'अच्छे बुरे ख्याल आते रहते हैं, पर जाति के लिए माटी खानी पड़े तो तैयार रहना चाहिए...जाति के बिना सब बेकार है ।'[83]

लेखक को कॉलेज के दिनों से जाति व्यवस्था पर टिकी इस व्यवस्था पर चिढ़ आती है । इसलिए मित्रों से विवाद करता है, वह किस तरह सही या गलत की जाँच-पड़ताल करता है । फिर उसका अध्ययन करने लगाता । जब सही-गलत समझता है तो आंदोलनों, परिषदों, जुलूसों में अन्याय के खिलाफ अपनी बातें रखता है । शामिल होता है । लेखक राष्ट्रीय सेवा दल संगठन में शामिल होकर शंकराचार्य के विरोध में खड़ा होता है । लेखक हमेशा सोचता है कि समाज में स्थित रूढ़ि-परंपरा, जात पंचायत, अंधविश्वास, रोटी-बेटी, जाति व्यवस्था खत्म होनी चाहिए । यह सोचकर लेखक अंतर जातीय विवाह करता है । किंतु समुदाय की जड़ें घोर अंधविश्वास में मजबूत होने के कारण उन्हें जाति बाह्य विवाह मान्य नहीं होता है । लेखक के परिवार को समुदाय से बहिष्कृत किया जाता है । इसमें से मार्ग निकालने के लिए समुदाय द्वारा जात पंचायत का आयोजन होता है । लेखक की प्रेमिका (पत्नी) शशि को कैकाडी समाज का हिस्सा बनाने के लिए गोद में लिया जाता है । समुदाय परंपरा के अनुसार दुबारा शादी की जाती है । अतः समुदाय में शामिल किया जाता है ।

लेखक किसी भी समुदाय का सकारात्मक, उत्साहपूर्ण और नियमित कार्य करता हुआ दिखाई देता है । भीख माँगने से लेकर गधों को संभालने तक हो या पढ़ाई से लेकर सामाजिक संगठनों में सहभागिता तक हमेशा तत्पर दिखाई देता है । पर समुदाय में जब जाता है तो उदास हो जाता है । जाति का दाग़ मिटाने के लिए संघर्ष करनेवाले लक्ष्मण को परिवार, समुदाय के सामने झुकना पड़ता है । परंतु तमाम समस्याओं में से किसी जानलेवा दुःख (बीमारी) से जैसे उठकर खड़े होते हैं, वैसे ही खड़े हो रहे थे ।

[82] वही, पृ. सं-56
[83] वही, पृ. सं-117

2. डेराडंगर- दादासाहब मोरे

'गबाळ' यह दादासाहब मोरे लिखित आत्मकथा श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे से 1983 में प्रकाशित की गयी है। जिसका हिंदी में अनुवाद डॉ. अर्जुन चव्हाण द्वारा 'डेराडंगर' शीर्षक से राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली द्वारा 2001 में प्रकाशित किया गया है । दादासाहब मेरे की आत्मकथा 'कुडमुड़े जोशी' घुमंतू जनजाति का दस्तावेज प्रस्तुत करने वाला आत्मकथन है । जिसमें कुडमुड़े जोशी और पिंगला जोशी दो उपजातियाँ पाई जाती है। कुडमुड़े जोशी यह डुग्गी बजाकर सुबह भोर से लेकर सूर्योदय के बीच भिक्षा माँगते हैं और पिंगला जोशी भविष्य बताकर भिक्षावृत्ति करते हैं। यह सब करते समय आये हुए अनुभव केवल लेखक तक ही सीमित न होकर जोशी समुदाय के भयावह जीवन, स्त्रियों का पशुवत जीवन और समुदाय के रीति-रिवाज विषयक सत्य वृतांत दादासाहब मोरे ने 'डेराडंगर' में व्यक्त किया है।

जोशी समुदाय यह एक घुमंतू समुदाय है। उदरनिर्वाह के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान घुमक्कड़ी करता है। स्थानांतरणण के लिए मरियल घोड़े का सहारा लेते हैं, उसका इनके जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । वे एक गाँव में चार-आठ दिन रहते हैं। जीवन-यापन के लिए ये लोगों का भविष्य बताते हैं। स्वंय के भविष्य का पता नहीं पर समाज को जूठी आशा में 'घर में शांति लाने, संपत्ति में वृद्धि करने, झगड़ा मिटाने, बच्चे बात सुने आदि-आदि । शायद यही समुदाय हमारे समाज को एक दैवी आशा पर ज़िन्दा रखने की कवायद पूरी करते आ रहे हैं, लोग भी भिक्षा में अनाज, धनधान्य देते हैं।

इस समुदाय में भविष्य बताने और भिक्षा माँगने के गाँव निश्चित किये जाते हैं। एक-दूसरे के गाँव में भविष्य दिखाने या भिक्षा माँगने नहीं जा सकते। सच तो यह है कि इस समुदाय के लोग मिट्टी का भी दवा के रूप में इस्तेमाल करके लाभ उठा सकते हैं। ठीक इसी तरह इस समुदाय की स्थिति है। एकाध व्यक्ति का समय अच्छा हो और उसी के गाँव में एकाध दूसरा जोशी उसके अच्छे होने की भविष्यवाणी बता दे और इत्तेफाक से अच्छी घटना घटित होती है तो उस गाँव के लोगों को लगता है कि जोशी सच्चा भविष्य बताता है । दूसरा आकार झूठ भविष्य साबित न करे या इत्तेफाक से झूठ साबित न हो इसलिए जोशी समुदाय हर गाँव में एकाधिकार दिया जाता है।

जोशी समुदाय चार-पाँच गृहस्थी की संख्या में घुमक्कड़ी करता है । अलग-अलग प्रांतों में घुमक्कड़ी करने वाला यह समुदाय साल में एक बार एकत्रित होता है। वे नवंबर से दिसंबर तक

एक महीने के लिए अपने मूल गाँव में आते हैं । उनके एकत्रित होने पर खुशियों का उफान आ जाता है । मानो जैसे एक-दूसरे से बिछड़े हुए पंछी की तरह एक-दूसरे मिलते हैं । किसी की बेटी आती है तो उसकी माँ भारी अंतकरण से उसे बाहों में लेती है । इसी प्रकार किसी का भाई, बेटा, दामाद अपनी घुमक्कड़ी गृहस्थी लेकर आते हैं, और एक-दूसरे को अपना सुख-दुःख बांटते हैं । कुल मिलाकर इस महीने में खुशियों की कोई सीमा नहीं होती । फिर गर्व से एक-दूसरे को आमंत्रित करते हैं-"अरे रे ओ रामा...। चाय पीने आ...।" राम जल्दी ही कहता है-"मैंने पी ली...सुबह माँगने जाते वकत...तू पी ले...।"[84] तब फिर दूसरे को बुलाते । कुल मिलाकर जोशी समुदाय हमेशा एक दूसरे की सहायता करते हुए जीवन जीता है ।

एक दिन सुबह लेखक के पिताजी लेखक को स्कूल भेजने की बात करते हैं । बगल में बैठे पिताजी के चाचा खीज कर कहते हैं-"अरे मलारी...तू पागल-वागल हुआ की क्या ? छोरे को इस्कूल में भेजना हो तो किसी-न-किसी गाँव में रहना होगा...इस्कूल ऐसे जंगल में तिरपाल के साथ आटा है क्या ?"[85] लेखक के पिताजी अपने चाचा को समझा-बुझाकर दादासाहब को स्कूल में दाखिला दिलाने की ठान लेते हैं । लेखक अपनी बिरादरी में स्कूल जाने वाला पहला व्यक्ति था । सुबह-सुबह पिताजी लेखक को स्कूल में भेज देते हैं । स्कूल में लेखक को अन्य बच्चे सर्कस के विदूषक की भाँति देखते हैं । बेढंग बाल, फटी हुई कमीज जो चड्डी का काम कर रही थी । ऐसा हुलिया देखते ही स्कूल मास्टर चिल्ला उठते-"ऐ छोरे..., किसका है तू...?" वह आवाज सुनकर मैं डर गया । जैसी-तैसे डरते हुए उत्तर दिया-"मैं जोशी का हूँ...।" तब मास्टर फिर से गुस्से में बोले-"यहाँ क्यों आया है...? मैंने रोयी-सी आवाज में उत्तर दिया-"इस्कूलमें पढ़ने के लिए आया हूँ ।...मास्टर नम्रता से बोले-"तू भिखारी का बेटा...तेरा नाम कैसे दाखिल करें स्कूल में...जा...तेरे बाप को बोल...तुझे स्कूल में प्रवेश नहीं दिया जा सकता । जा...भाग...।"[86] इन दो उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जोशी समुदाय में शिक्षा के प्रति ऐसी मानसिकता बनी हुई है कि शिक्षा उनके लिए न होकर बड़े लोगों तक ही सीमित है । स्कूल में शिक्षक के दबाव से समुदाय के मन में और हीनभावना निर्मित होती है । फिर ज्योतिराव फुले की वे लाइनें याद आती हैं- 'विद्या बिन मति गयी...।'

[84] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.,लि., दिल्ली, प. सं- 2001, पृ.सं-15-16
[85] वही, पृ.सं-17
[86] वही, पृ.सं-17

जोशी समुदाय में अपने नियम-कानून बने हुए हैं । जिसका नेतृत्व जात पंचायत करती है। यह जात पंचायत किसी मेले या देवी के कार्यक्रम में बुलाई जाती है । जिसके अंतर्गत विवाह विधि, तलाक, विधवा विवाह, प्रेम विवाह और अनैतिक संबंधों पर निर्णय तथा न्याय किया जाता है । पंचायत में यदि किसी परिवार को बहिष्कृत किया जाता है तो वह किसी की शादी या अन्य कार्यक्रम में नहीं जा सकते हैं । उस परिवार को स्वयं (अकेला) भटकना पड़ता है । डेराडंगर आत्मकथा में कृष्णा शिंदे का बेटा केशव का अपनी प्रेमिका बकुला के साथ जंगल में लगाव हो जाता है । लगाव का परिवर्तन प्रेम विवाह में बदल जाता है । पर वह विवाह समुदाय के नियमों से न होने के कारण जात पंचायत बुलाई जाती है । पंचों द्वारा कृष्णा शिंदे के परिवार का 'न्याय' होनेवाला था । बहस सुबह शुरू हुई और शाम देर तक चलती रही । पंचायत की न्याय व्यवस्था पर लेखक लिखते हैं-"दांडी' और 'मांडी' ये दो हमारी जाति की धाराएँ थीं । 'दांडी' लागू करने पर सौ रुपये तक तावान होता औए 'मांडी' धारा लागू होने पर एक सौ पचास रुपये तावान देना होता है ।"[87] अतः मांडी धारा के अनुसार कृष्णा शिंदे के परिवार को एक सौ पचास रूपये का जुर्माना ले कर जाति में प्रवेश दिया जाता है । जोशी समुदाय में शादी-शुदा स्त्री पति के अलावा किसी के साथ अनैतिक संबंधी नही रख सकती । पुरुष अपनी पत्नी के होते हुए भी अनेक शादियाँ कर सकता है । इससे पता चलता है कि इस समुदाय में पितृसत्ता का वर्चस्व है और स्त्री के लिए कड़े कानून बनाये गए हैं ।

इस समुदाय के लोग आपदाओं से बचने के लिए मन्नतें माँगते हैं । जिसके लिए वे देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं । समुदाय के अनेक देवता होते हैं, जिसमें- अंबादेवी, अभूअंबादेवी, मार्गम्मा देवी, मसोबा, ग्राम देवी, आदि । देवी-देवताओं से इच्छा पूरी करने के लिए मांसाहार का उपहार चढ़ाया जाता है । ये लोग अपनी मन्नतें पूरी करने के लिए हर साल अपने मूल गाँव बावची पहुँच जाते हैं । लेखक अपने परिवार की बात बताते हैं कि एक साल पिताजी के पास मन्नतें पूरी करने के लिए पैसा नही होता है तो लेखक के पिताजी अपने भाई नागु चाचा को यह बात बताते है और यहीं पर एकाध मुर्गा चढ़ाकर रहेंगे । गाँव नहीं आएँगे । तब नागू चाचा भड़क उठते हैं । कहते है-"मलारी तेरे कु दिमाग है कि नहीं...?अरे...! उसके बलबूते पर तो अपुन जीते हैं...आउर उसे ही बिसरना क्या...?अन्न मिलेगा नहीं तेरे कु...चुपचाप गाँव वहल...!"[88]

---

[87] वही, पृ.सं- 17
[88] वही, पृ.सं- 64

'डेराडंगर' यानी घुमंतू जोशी समुदाय का एक मरियल घोड़े पर लदा हुआ परिवार है । दादासाहब ने अपने परिवार को 'गबाळ' अर्थात 'डेराडंगर' नाम दिया है । इस समुदाय की समाज में एक टुकड़े की भी कीमत नहीं होती है । इनके समूह में जीवन जीने की लिए दरवाजे-दरवाजे पर भिक्षा माँगनी पड़ती है, तभी जाकर पेट भरता है । इस तरह के दरिद्रता से भरी जीवन कथा है । वह खुद एक समाज से कटा हुआ होकर भी विश्वकल्याण के सपने बांटता है । लेखक के शिक्षा की डगर बहुत मुश्किलों भरी होती है परंतु लेखक का स्वाभाव और पढ़ाई को लेकर जो जूनून होता है तो कई शिक्षकों की सहायता मिलती है । इस संघर्षपूर्ण सफ़र में 'डेराडंगर' का जो वास्तविक चित्रण हुआ है, वह पाठकों का अंतःकरण हिला देता है ।

3. उचक्का- लक्ष्मण गायकवाड़

लक्ष्मण गायकवाड़ का जन्म 23, जुलाई 1956 को महाराष्ट्र के लातूर जिले में 'धनेगाँव' नामक गाँव में 'पथरवट' समुदाय में हुआ । जो आत्मकथा में 'उठाईगीर' नाम से जाना जाता है । लेखक अपने जीवन के साथ-साथ अपने समुदाय का भी चित्रण करते हैं । वे लेखन के साथ विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति संघटन द्वारा पिछड़ों, मजदूरों के हक़ के लिए सामाजिक कार्य करते हैं । इनकी कृतियाँ उचक्का के अलावा वकील पारधी, पत्थरकटवा, दुभंग, उठाव, चीनी मातीतील दिवस, गाव कुसाबाहेरील मानसं आदि । इन्हें कई तरह के पुरस्कारों से नवाजा गया है । इस कड़ी में 'उचक्का' को साहित्य अकादमी पुरस्कार 1988, महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार, बाबासाहब अंबेडकर पुरस्कार, अण्णाभाऊ साठे पुरस्कार, पनघंटी पुरस्कार, महाराष्ट्र फाउन्डेशन मराठी साहित्य पुरस्कार, मुकादम पुरस्कार, सार्क आवार्ड, समता तथा संजीवनी आवार्ड से सम्मानित किया गया है । यह आत्मकथा लक्ष्मण गायकवाड़ द्वारा मराठी में 'उचल्या' नाम से 1987 में 'श्रीविद्या प्रकाशन पुणे से प्रकाशित हुई । जिसका हिंदी में अनुवाद 'उचक्का' नाम से डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे ने किया और सन् 1992 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित किया । 'उचक्का' हिंदी के अलावा मलयाली, गुजराती, पंजाबी, अंग्रेजी, और फ्रेंच भाषाओं में अनूदित हुई है ।

लक्ष्मण गायकवाड़ ने अपनी आपबीती के सहारे पूरे समाज की पीड़ा और दर्द को व्यक्त किया है । वे कहते हैं-"जिस समूह के पास न कोई अपना गाँव है, न खेती, न कोई जाति और जन्मदिन के हिसाब-क़िताब की पद्धति-ऐसी ही एक जाति में मैं जनमा ।"[89] वे अपने परिवार का वर्णन एक घटना द्वारा करते हैं, जब पुलिस ने लेखक के दादा को रंगे हाथों चोरी करते पकड़

[89] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ती- 2011, पृ.सं-9

लिया था । तब पुलिस ने दादा को खूब पीटा । दादा को लेकर घर की तलाशी के लिए आते हैं । तब लेखक डर के मारे कंबल ओढ़े लाश की तरह पड़ा रहता है । दादा के हाथ में हथकड़ियाँ थी। पुलिसवाले चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे 'बोल कहाँ रखा है माल' दादा गिडगिड़ा कर कह रहे थे 'देखो साहब कुछ भी नही है घर में ।' पुलिसवाले अनसुना करके कह रहे थे 'तेरी रांड को पता होगा ।' और दादा के बाल खींचकर उसे पीटने लगे । लेखक की माँ 'धोडाबाई' बस्ती में पुलिस की सुगबुगाहट सुनकर डर के मारे जंगल भाग जाती है । पुलिसवालों को जो भी दिखाई देता उससे वे जो भी (स्त्री, पुरुष, बच्चे) दिखाई देते उसे पीटते हैं ।

जहाँ एक ओर समाज में अन्याय और अत्याचार को पूरी सच्चाई के साथ उकेरा गया है । और दूसरी ओर समुदाय के बीच में संबंधों को लेकर भी बखूबी चित्रण किया है । समुदाय से त्रस्त होकर लेखक के दादा पुलिसवालों के मुखबिर बन जाते हैं । इस कारण पकड़े जाने लगे, उनकी रोजी-रोटी बंद होने लगी । इसलिए समुदाय की जात पंचायत निर्णय लेती है कि लिंगप्पा (लेखक के दादा) को ख़त्म करना जरुरी समझते है । बुढ़ापे में पुलिसिया पीटाई सहन न कर पाने की वजह से समुदाय के लोगों के नाम बता देता है । इसलिए उसका स्थायी बंदोबस्त करना जरुरी समझा जाता है । अतः एक दिन आधी रात को दादा के मुह में कपड़ा ठूंस कर कुल्हाड़ी से उसका क़त्ल किया जाता है । इस घटना को बाहर फैलने नहीं दिया, दादा की लाश को रात में रफा-दफा कर दिया । ताकि मृत्यु स्वाभाविक रूप से हुई हो । घर के लोग बिरादरी के खिलाफ कोई आवाज भी नही उठाए । शिकायत करने का बदला जात पंचायत बुरी तरह से लेगी, इसका डर सबको सता रहा था । गरीबी और भुखमरी आदमी को कितना अमानवीय बना देती है । रोजी-रोटी चलाने के लिए अपने ही परिवार के सदस्य की हत्या के लिए मजबूर होना पड़ता है । आत्मकथा में गरीबी और भुखमरी का विवरण हर दूसरे-तीसरे पन्ने पर दृष्टिगोचर होता है ।

आत्मकथा में पुलिसिया दरिंदगी के दर्जनों किस्से दर्ज हैं । लेखक इन सवालों से हमेशा दो-चार होता है कि समुदाय चोरी करने के लिए क्यों मजबूर है ? पूरी दुनिया में यही समुदाय है जिसके माथे पर जन्म से अपराधी की मुहर लगा दी और रोजी-रोटी के सभी संसाधन और मार्ग बंद कर दिए हैं । इसलिए चोरी करने के अलावा कोई पर्याय बाकी नहीं रहा था । समाज भी इनसे पूर्वाग्रह की नजर से पेश आता है, और रोज़ गार देने से दूर रखता है । इस कारण मणिकदादा के साथ छोटे भाई भगवान और संभा भी उनके साथ सामान संभालने के लिए निकल पड़ते हैं । मजबूरन चोरी करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं ।

लोगों के पास खाने के लिए अनाजों के गोदाम भरे पड़े होते हैं, और खाने वाले दो-चार होते हैं। उठाईगीर समुदाय में लोग दाने-दाने के लिए तरस जाते हैं। लेखक के परिवार के लोग घास खाने तक के लिए मजबूर हो जाते हैं। भूख से बेहाल होकर लोग आम की गुठलियाँ, भूत-प्रेत के टोटके करके फेंके गए नारियल, मंदिर का प्रसाद या फल चुराकर भूख मिटने के लिए मजबूर होते हैं। ऐसी ही एक घटना का वर्णन लेखक ने किया है। जब लेखक के पिताजी अपने मालिक के खेत से शकरकंद की पत्तियाँ लाकर उसे उबालकर परिवार की भूख मिटाते हैं। लेखक आगे लिखते हैं-"आषाढ़-श्रावण में तो रोटियाँ देखने को भी न मिलती। इन दिनों हम बाबा के बगीचे से शकरकंद की पत्तियां तोड़कर ले आते। उन्हें पकाकर पानी निकाल देते। उबले पत्तों को पीस लेते। उनके लड्डू बनाकर कई दिन इसी पर निकालते। चामले के खेत की हरी पट्टियां साफ़ कर दीं। जब चामले को पता चलता है तो उन्होंने पिताजी को गालियां देकर काम पर से हटा दिया। हम भूखों मर रहे थे, इसलिए बाबा हमें कुछ कह नहीं पा रहा था। बाबा ने मालिक को सब कुछ बता दिया। फिर भी मालिक नहीं माना। जिन पत्तियों को जानवर तक नहीं खाते थे, उन्हें हम खा रहे थे ,तो भी बाबा को काम से निकाल दिया गया।"[90]

लेखक के पिताजी की इच्छा होती है कि एक बेटा तो स्कूल जा कर अपनी जिंदगी को बेहतर बनाये। जब स्कूल जाना शुरू कर देते हैं तो अचानक बिरादरी में कुछ बच्चे बीमार हो जाते हैं। जिसके कारण सारी बिरादरी लेखक के पिताजी पर दबाव डालती है। "तूने अपने लड़के लक्ष्या को स्कूल में भरती कर दिया है, इसी कारण हमारे बच्चों को उलटियाँ और टट्टी हो रही हैं।...देख मारतंड, (मेरे बाबा का नाम) हम लोग बामन-लाल तो है नहीं कि लड़कों को पढ़ाई करवाएँ। हमारी बिरादरी में आज तक क्या कोई स्कूल गया है ?"[91] इस कारण वे मानते हैं कि हमारी बिरादरी को स्कूल जाना फलता ही नहीं। लेखक का स्कूल छूट जाता है। जब स्कूल मास्टर को इस बात का पता चलता है तो वे बस्ती में आ कर बिरादरी को बीमारी का कारण समझाते हैं। तब लेखक के पिताजी उस उस टीचर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। टीचर जैसे इमानदार लोगों की वजह से समाज में थोड़ी बहुत ईमानदारी बची हुई है।

लेखक के घर की माली हालत से परिस्थितियाँ और जटिल बनती है। एक दिन स्कूल छोड़कर मिल में काम करना शुरू करते हैं। मिल में काम करते हुए महीनों बीत जाते हैं, पर वेतन नहीं मिलता है। सुपरवाइजर हमेशा अपना रौब दिखाते हैं। भोजन के समय 15 मिनट पहले ही काम पर बुला लेते हैं। आठ घंटे काम करवाकर 4-6 घंटे ही लिखते हैं। सुबह दो मिनट

---

[90] वही, पृ.सं- 34
[91] वही, पृ.सं- 19

की देरी पर मन चाहा सुनाते हैं। इन बातों को लेकर लेखक हमेशा बेचैन रहते हैं। मजदूरों की हालत इतनी बुरी थी कि वे किसी के खिलाफ कुछ बोल नहीं सकते थे। संगठन कुछ नहीं करते हैं, इसलिए मजदूरों की मारपीट बंद करने के लिए आवाज उठाते हैं। मजदूरों के मन में काम से निकाल देने का डर होता है। लेखक कई बार सुपरवाइजर को समझाने की कोशिश करते हैं। कई बार मजदूरों को एकत्रित करने की कोशिश करते हैं। एक बार लेखक को मिल से निकाल दिया जाता है। किंतु, लेखक निराश नही होते हैं। वह परिवर्तनवादी होते हैं, वैसे लोगों के साथ उठाने-बैठने लगते हैं। यहीं से समाजकार्य करना शुरू करते हैं।

नेतृत्व करते समय अनेक कटु अनुभवों को झेलना पड़ता है। सन् 1985 के चुनाव में दलित राजनीति करने वाले बहुजन समाज पार्टी ने लेखक को लातूर चुनाव क्षेत्र से सांसद के लिए उम्मीदवार घोषित किया था। उस समय के चुनाव में लेखक सबसे गरीब और पिछड़ी जाति के उम्मीदवार थे। उम्मीदवार बनाते समय पार्टी ने जो खर्च पर चर्चा की थी, वह नहीं निभाई। लेखक चुनाव के अंत तक अपनी बिरादरी के कुछ लोगों के साथ प्रचार करते हैं। ब्याज से पैसे लेकर लोगों के भोजन खर्चा चलाते हैं। पार्टी के लोग अपने वादों से मुकर जाते हैं, और लेखक में छुपाकर अगले उम्मीदवार का समर्थक कर रहे हैं कहकर बदनाम करते हैं। लेखक कहते हैं-"उस समय की राजनीति ने मुझे बलि का बकरा बना दिया था, यह सच है। मैं इसे बलि न समझते हुए कटु राजनीतिक अनुभव ही समझता हूँ।"[92] इस चुनाव ने उनके भविष्य को अस्थिर कर दिया था।

फिर भी उनकी हिम्मत नहीं टूटी थी। उन्होंने बैंक से कर्ज लेकर पत्नी को जनरल स्टोर खुलवा दिया, जिससे घर की रोजी-रोटी चलने लगी। स्वयं को सामाजिक कार्य में पूर्ण समय के कार्यकर्ता निश्चित किया। तब से शोषितों, पीड़ितों, मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह आत्मकथा बिना आत्मदया या किसी किस्म की आत्मश्लाघा के हमारे सामाजिक यथार्थ को सामने लाती है।

4. बेरड़- भीमराव गस्ती

'बेरड़' यह भीमराव गस्ती द्वारा मराठी में लिखित आत्मकथा की प्रथम आवृत्ति सन् 1987 में पारख प्रकाशन, बेलगाँव से तथा तृतीय आवृत्ति 1998 में राजहंस प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित किया है। जिसे साहित्यकार गुलाबराव हाडे ने हिंदी में अनूदित करके सन् 2006 में

---

[92] वही, पृ.सं- 158

विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर से प्रकाशित किया । भीमराव गस्ती का जन्म 1950 में बेलगाँव (महाराष्ट्र, कर्णाटक सीमा) के यमनापुर में बेरड़ जनजाति में हुआ है । इनकी प्राथमिक-माध्यमिक शिक्षा क्रमशः यमनापुर और बेलगाँव में हुई । महाविद्यालयीन शिक्षा हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय से एम.एस्सी इलेक्ट्रॉनिक्स और उच्च शिक्षा रशिया के पेट्रिक लुमुम्बा विश्वविद्यालय, मास्को से डॉक्टरेट पदवी प्राप्त की । भारत में लौटकर हैदराबाद के 'डिफेन्स रिसर्च एन्ड डेवलोप्मेंट आर्गनाइजेशन' में वैज्ञानिक के रूप में कार्य किया । कुछ ही दिनों में नौकरी छोड़कर पूर्णकालिक के समाजकार्य में जुट गए । इनकी साहित्यिक कृतियाँ बेरड़ के अलावा आक्रोश और सांजवारा है । भीमराव गस्ती को अनेक पुरस्कार और सम्मान से नवाजा गया जिनमें, महाराष्ट्र राज्य साहित्य पुरस्कार, कर्णाटक राज्य साहित्य पुरस्कार, मुकादम साहित्य पुरस्कार, मुंबई मराठी साहित्य संघ की ओर से बा.सी. मर्ढेकर साहित्य पुरस्कार, समता साहित्य पुरस्कार (बेलगाँव), गोदावरी गौरव पुरस्कार आदि । वे 9 वें समरसता साहित्य सम्मलेन के अध्यक्ष रह चुके हैं । हाल ही में 8 अगस्त 2017 को कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में इनका निधन हुआ ।

यह आत्मकथा महाराष्ट्र, कर्णाटक के सीमावर्ती बेलगाँव तथा आसपास के यमनापुर, दुड्डी, काकती, धनत्ती, चिलदिनी गांवों आदि में बसे बेरड़ समुदयों पर किये जानेवाले पुलिसियाँ जादती, कारखानों, खदानों के ठेकेदारों द्वारा शोषण जैसे अहम् घटनाओं की पोल खोल देती हैं। साथ ही बेरड़ समुदायों में स्थित रूढ़ि-परंपरा, अंधविश्वास, त्यौहार, पर्व, अस्वच्छता, गरीबी, बेरोज़ गारी आदि का परिचय कराती है ।

महाराष्ट्र, कर्णाटक के सीमावर्ती क्षेत्र में बेरड़ जनजाति का जीविका अधिक मात्रा में है । बेलगाँव से चार, पाँच मिलों के अंतर पर यमनापुर गाँव में बेरड़ों की बस्ती है । जिसमें लेखक का परिवार भी जीविका करता है । इस समुदाय के कुछ लोग शक्कर मिल, भूमि खदानों में मजदूरी करते हैं तो कुछ पशु-पंछियों का शिकार कर अपना उदरनिर्वाह करते हैं । यह समुदाय एक तरफ़ खदानों और कारखानदारों के शोषण का शिकार बनते हैं तो दूसरी तरफ़ पुलिसवालों के अन्याय-अत्याचार से पीड़ित होते हैं । इस कारण समुदाय के अधिकत्तर पुरुषों को मृत्यु पुलिसवालों की मार से या जेल में ही होती है । आये दिन किसी-न-किसी घटना को अंजाम देते हुए जीवन-यापन करते हैं ।

बेरड़ समुदाय के बच्चे जब स्कूल जाते हैं, तो बिना नहाये, नंग-धडंग, ही जाते हैं । तब मास्टर बेरड़ समुदाय के बच्चों को चिल्लाकर सख्त हिदायत करते हैं 'मांस-वांस खाकर स्कूल

आया न करो, अगर किसी ने खा-पी लिया तो स्नान करके आया करो ।' तब टीचर और समाज द्वारा किया जा रहा व्यवहार लेखक को समझने लगा था । इसी के संकेत लेखक स्कूल, मंदिर में मांस खाकर नही जाना चाहिए, नियमित स्नान करना चाहिए आदि भलीभांति समझने लगा था। किंतु मास्टर की मंशा से क्यों न मांस ख़ाना वाकई छोड़ देना चाहिए ! मन ही मन तय कर लेता है और मांस न खाने का निर्णय लेता है । तब वास्तविकता की अनुभूति करते समय लेखक की माँ कहती है-"मांस ख़ाना छोड़ देने से तुझे कौन 'बामन' कहनेवाला है ? चल चुपचाप ख़ाना खा ले और जल्दी से सोए जा !"[93]

लेखक को स्कूल, महाविद्यालय की शिक्षा के दौरान सैकड़ों समस्याओं, कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है । लेखक स्कूल में जिस अध्यापक को अपना परिचय देता है वह गोली की तरह सवाल दाग देते हैं, 'तू बेरड़ जाति का है न ? तेरा बाप चोरी करता होगा ।' जैसे उपेक्षा भरे तथा क्षोभ व्यक्त करनेवाले सवालों का सामना करना पड़ता है । एक बार कक्षा में अध्यापक एक-एक को पूछने लगता है कि कौन क्या बनेगा । 'कई कहता है डॉक्टर, इन्जीनियर, प्राध्यापक...इसी क्रम में जब लेखक की बारी आती है तो लेखक कुछ कहने से पहले ही सभी विद्यार्थी एक सुर में 'चोर' कहते हैं ।' यह सिलसिला महाविद्यालय के समय भी चलता है । लेखक जब विज्ञान शाखा में प्रवेश लेकर किराये का कमरा देखने जाता है तो नाम, गाँव, जाति पूछ कर कमरा देने से मना कर देते हैं । दोस्त चोरी करनेवाली जाति का समझकर भगा देते हैं । महाविद्यालय में ग्रंथपाल सभी विद्यार्थियों से अलग पेश आता है-"अक्सर मुझे शक की निगाह से देखा करता । जबकि अन्य छात्रों को उनके मुँह माँगे कीमती ग्रन्थ घर ले जाने की खुली छूट दिया करता ।"[94]

बेरड़ समुदाय में श्रद्धा भाव से सन्-उत्सव, त्यौहार मनाये जाते है । जिसमें- होली, दिवाली, कामन्णा, भोग, ईर, बाबा पीर का उर्स आदि । इन सभी त्योहारों में देवी-देवताओं को खुश करने पशुबलि दी जाती है । त्यौहार के दिन पूजा करने के लिए विधिवत् जुट जाते हैं । अगरबत्ती जलायी जाती है । नैवेद्य के लिए एक थाली सज़ायी जाती है जिसमें दिए के लिए मिट्टी का तेल, मांस, भात, शराब की बोतल, माचिस, बीड़ी का बण्डल आदि चीज़ें बड़े आदर भाव के साथ रखी जाती हैं । विधिवत् पूजा-अर्चना करके सब लोग दर्शन करते हैं । उत्सव में शामिल हुए अन्य सगे, संबंधियों को आदर भाव से बुलाया जाता है । बुजुर्गों के लिए आदमी भेजा जाता है । अंत में देवी को बलि चढ़ाए मांस को पकाकर भोजन करते हैं । भोजन के बाद

[93] बेरड, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं-2006, पृ. सं-8
[94] वही, पृ. सं-166

घर लौटते समय बेरड़ लोग अगली बार नैवेद्य चढ़ाने की बात करते हैं । तब अगली बार आने और न आने की औपचारिकता नहीं होती है । इनके लोक विश्वास के बारे में लेखक लिखता है- "अच्छा तो आता हूँ ।' कहने की औपचारिकता हार्गिज न निभाते । अगर कोई 'अच्छा तो आता हूँ !' कह देता तो फिर से इस तरह के दुःखद मौके-प्रसंग निकल आएँगे ! यह सोचकर लोग चुपचाप निकल जाया करते थे ।"[95]

लेखक हैदराबाद की नौकरी छोड़कर बेरड़ों पर होनेवाले अन्याय-अत्याचारों का पर्दाफाश करने के लिए संगठन तैयार करता है । धनत्ती के बेरड़ समुदाय के टोले पर पुलिसवालों द्वारा की गयी गोलीबारी और वारदात में मारे गये बेरड़ों के संदर्भ में तथा हुलिवूर में बेरड़ों पर पुलिसों द्वारा किये गए अत्याचारों के संदर्भ में लेखक समाचार पत्रों में वारदात छपवाता है । अपने सर्वोदयी कार्यकर्ताओं के साथ बेलगाँव तहसील के बेरड़ों के साथ पदयात्रा निकालता है । इस प्रकार लेखक समाज सुधार के लिए मोर्चे, आंदोलन, निवेदन के साथ डॉ बाबासाहब अंबेडकर, महात्मा फुले, छत्रपति शिवाजी, बसवेश्वर आदि महान विभूतियों के जयंती, पुण्यतिथि के अवसरों पर बैठकों, कार्यक्रमों द्वारा समाज में जनजागृती करता रहा है ।

5. छोरा कोल्हाटी का- किशोर शांताबाई काले

डॉ.किशोर शांताबाई काले का जन्म ई.स.1970 में हुआ । 37 साल की आयु में (21 फरवरी 2007) किशोर काले की दुर्घटना में मृत्यु हुई । 21 फरवरी 2007 के दिन किशोर काले की दुर्घटना में मृत्यु हुआ 'छोरा कोल्हाटी का' यह किशोर काले आत्मकथा जो मराठी में 'कोल्हाटयाच पोर' नाम से ग्रंथाली प्रकाशन, मुंबई द्वारा 1994 में प्रकाशित हुई । जिसका अनुवाद अरुंधती देवस्थले ने सन् 1997 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित किया । यह आत्मकथा कोल्हाटी घुमंतू समुदाय के तमाशा में नाचनेवाली स्त्री के गर्भ से 'नाजायज औलाद' समझ कर तुच्छ समझा गया और प्रतिकूल परिस्थितियों को मात देकर एम.बी.बी.एस होने वाले किशोर शांताबाई काले की यह विद्यार्थियों के लिए प्रेरणादायक ठहराई गयी । इस कथा में इसके साथ-साथ कोल्हाटी समाज की महिलाओं की जीवन स्थिति का पर्दाफाश किया ।

कोल्हाटी समुदाय में बेटी के जन्म से परिवार में खुशियाँ मनाई जाती हैं । क्योंकि यह समुदाय लड़कियों को बचपन से ही नाच-गाना सिखाता है । लड़की 5-6 साल की होती है तब समुदाय के लोग उसे स्कूल भेजने की वजह नृत्यशाला में भेजते हैं । उनके हाथ में पुस्तक कलम

[95] वही, पृ. सं-92

देने की बजाय उनके पैरों में घुंघरू बांध देते हैं जो घुँघरू नहीं बेड़ियों जैसा महसूस करती हैं। लेखक की माँ शांताबाई की किस्मत अच्छी थी जो पढ़ने का मौका मिला और वो भी सातवीं कक्षा तक ही। सातवीं कक्षा के बाद स्कूल छोड़कर मजबूरन नाच-गाने से जुड़ना पड़ा। लेखक लिखते हैं-"कोंडीबा मेरी मां के पिता, मेरे नाना जी। मेरी माँ को नाचने के लिए मजबूर किया। उसे काफ़ी मारा-पीटा। माँ सातवीं कक्षा में पढ़ रही थीं। लेकिन बीच में ही उसकी पढ़ाई छुड़वाई गयी। अब माँ के नये और अजीब-से जीवन की शुरुआत हुई। नाचने के लिए उसे चंद्रकला भाई की 'जलसा पार्टी' में भेजा गया।"[96]

कोल्हाटी समुदाय में जो स्त्रियाँ नाच-गाना करती हैं वे शादी नहीं कर सकतीं। अगर इनकी शादी हो भी जाती हैं तो वह इनके पति बदलते रहते हैं, नाच देखते समय ये जिनको पसंद होती है वह आदमी रख सकता है। जिनके बच्चे पढ़-लिख नहीं सकते है। इन स्त्रियों का केवल 'चीरा' ही उतारा जाता है। लेखक के अनुसार-'चीरा उतारने की रस्म शादी-ब्याह जैसी ही होती है। नाचनेवाली के जीवन में जो भी पहला आदमी आता है उसे नाचनेवाली के परिवार द्वारा मांगी गयी रकम अदा करनी पड़ती है। अदायगी में सोना, जमीन-जायदाद या रुपयों के माध्यम से भी हो सकती है।...चीरा उतारने वालों को नाचनेवाली के जीवन में पति का स्थान मिल जाता है। फिर वह 'चीरा' उसकी मर्जी से हो या किसी और की मर्जी से। जब तक वह उसकी देखभाल करता है नाचनेवाली किसी और से यौन-संबंध नहीं रखती। नाचनेवाली के साथ यौन-संबंध रखनेवाले को उसका मालिक कहा जाता है, कोल्हाटी समाज में उसे 'कजा' कहते हैं।'[97]

लेखक किशोर काले लिखते हैं-'नाचनेवाली पार्टी एक दिन बेड़ेगाँव के मेले में गयी थीं। तब मैं चार-पाँच महीने का था। माँ की बुआ सब उसे जीजी कहते थे। नाच-गाना चलते वक्त जीजी मेरा ख्याल रखती थीं। गाँव में एक पुलिसवाले ने भगाकर ले जाने की धमकी दी गयी थी। बेड़ेगाँव के किशन पाटिल ने शराब के नशे में धुत मां का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचने की कोशिश की तब मां नीचे गिर गयी थीं जीजी ने चप्पलों से पाटिल की खूब पीटाई की, और कहा हरामजादे यह नाचने वाली है, यह कलाकार है। वेश्या नहीं। पाटिल ने कहा देखता हूँ, तू यहाँ पर कैसे नाचती है। तंबू उतार और सामान बांधकर रातों रात बेडेगाँव छोड़ दिया। और

[96] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्र., दिल्ली, पहला सं- 1997, पृ.सं-15

[97] वही, पृ.सं-18

पार्टी सांगली आयी । यहाँ ज़मींदार गुंडप्पा गाँव के दादा थे । गुंडप्पा ने जीजी से कहा शांता को मेरे पास छोड़ दो । गुंडप्पा सचमुच गुंडा था । चार-पाँच लोगों को लेकर धमकाया और उसने जीजी से कहा शांता को एक रात मेरे पास छोड़ दो, वरना मैं उसे उठा कर ले जाऊंगा और उसकी हड्डी तक आपको कहीं नजर नहीं आएगी । गुंडों को देखकर जीजी के छक्के छूट गए और उसने हाँ कर दी । वहाँ से भागना तो था लेकिन कैसे ? मां और जीजी टट्टी के बहाने बाहर गयी । मां, जीजी से बोली रात भर खेतों में छुपकर गुजारेंगे और सुबह होते ही निकल चलेंगे । मैं बीच में रो पड़ता तो जीजी मेरा मुंह दबा कर रखती । रो रोकर दोनों का बुरा हाल हुआ था। सुबह जीजी और मां घर पहुँची तो माँ को लगा जैसे वह यमराज के जंगल से अपना प्राण बचाकर आई हो । यह किस्सा रोते-रोते कई बार जीजी सुनाया करती थीं । यह घटना होने के बाद परिवार वालों से माँ ने लाख मना किया । फिर भी उसे नाचने के लिए भेजते । किसी ने उसकी बात नहीं मानी । माँ को मज़बूरी में नाचने के सिवा कोई और चारा नहीं बचा था ।'

लेखक की माँ जब अपने यार के साथ जाकर घर बसाती है, तब किशोर महज पाँच-छह साल की उम्र का होता है । वह अपनी माँ को हमेशा पागलों की तरह याद करता पर कोई हल नहीं था । क्योंकि नाना को लेखक के माँ द्वारा भेजा गया मनीऑर्डर मिलता । इस कारण लेखक नाना के घर (नेरला) में ही पला-बड़ा हुआ । घर के सभी बच्चे स्कूल जाते पर वह टूटे तारे की तरह अकेलापन महसूस करता । यहाँ उसे स्कूल भेजने की बजाय गाय-भैंसें चराने भेजा करते । जब घर में होता तो आटा गूंथने से लेकर मेहमानों की मालिश करने तक के काम करने पड़ते । स्कूल का नाम लेने पर नाना कहते-'तू पढ़कर क्या करेगा ।' कहकर टाल देते । एक दिन किशोर हिम्मत करके स्कूल जाता है । वहाँ के टीचर गवली सर किशोर को जानते थे । क्योंकि गवली मास्टर लेखक की माँ के क्लासमेट थे । बातों-बातों में किशोर गवली मास्टर को कहता है-"मेरा भी बड़ा मन करता है पढ़ने का ! मेरा स्कूल में दाखिला करा दीजिये ना ।"[98] तब गवली मास्टर ने लेखक का नाम 'किशोर शांताबाई काले' लिखवाया ।

कॉलेज के दिनों में कई बार जाति पता चलने पर कमरे बदलने पड़ते हैं । कई बार तो दोस्तों को पता चलने पर वे दोस्ती तोड़ते । नाम में माँ का नाम होने के कारण लड़के प्रश्न करते । एक बार लेखक जिस गाँव (अंबेजोगाई) में पढ़ता था उसी गाँव में मौसी की 'लोकनाट्य पार्टी' आया करती थी । मौसी कई बार लेखक को पत्र लिखकर सन्देश भेजा करती पर लेखक लज्जा

[98] वही, पृ.सं-43

वश अपनी सगी मौसी को मिल नहीं पता। लेखक लिखता है-"मेरी अपनी मौसी इसी शहर में होते हुए भी मै उससे बात तक नहीं कर पाया था और न ही उसमें यह साहस था कि वह मुझसे बात करने आती। मैंने उसकी आँखों में आँसू देखे थे। मैं सोचता था कि रात चोरी-छिपे चला जाऊं और उससे मिल आऊँ...मिलने पर मौसी ने कहा-'तू हमारे सामाज में क्यों पैदा हुआ?' तब हम दोनों रोकर जी हल्का कर लिया।"[99]

नाचनेवाली के मन, भावनाओं का जीवन में कोई स्थान नहीं होता है। उसे अपने ही परिवार बाप, भाई ऐय्यासी के लिए अपनी ही माँ-बहनों को नचवाते हैं और समाज के लोग पैसा उड़ाकर नचवाते हैं। एक जलसे में अगर चार-पाँच पार्टियाँ शामिल होती हैं तो कार्यक्रम ख़त्म होने में रात के एक-दो बजे तक कार्यक्रम खत्म होने पर दर्शकों को बाहर निकाला जाता है। नाचनेवाली थककर चूर हो जाती है। कार्यक्रम तो खत्म होता है लेकिन असली मजा तो अब शुरू होता है। क्योंकि इस के तुरंत बाद ही रईस लोगों के बैठक की शुरुआत होती है। इसमें यह दर्शक ज्यादा पैसे देकर अपनी पसंद की नाचवाली का नाच देखते हैं। नाचनेवाली थककर भी नाचने से मना नहीं करती क्योंकि इस बैठक में ज्यादा पैसा मिलने की आशा होती है। इस बैठक का मानधन तीन सौ रुपये से ज्यादा होता। जो बैठक रखवाता है उसके चार-पाँच दो दोस्त आ सकते हैं। लेखक कहता है-"मंच पर नाच देखते हुए दर्शक नाचवाली को पैसे देते हैं...पैसे लेते वक्त नाचनेवाली को अलग-अलग चालों में नाचकर पैसा लेना पड़ता है...ढोलकवाला और तबलेवाला उसका साथ देते हैं। वे बजाते जाते हैं और पार्टी की अन्य नाचनेवाली एक ही ताल में पाँव के घुंघरू ज़ोर-ज़ोर से बजा कर उसका साथ देती है...आख़िर में वह थककर चूर हो जाती है लेकिन रुपये देने वाला नहीं थकता।"[100]

लेखक को पढ़ाई के दौरान नाच-गाना करनेवाली कोल्हाटी जाति से ताल्लुक होने के कारण तमाम तरह की समस्याएँ आती हैं, किंतु लेखक कभी किसी के सामने अपनी असलियत का बखान नहीं गाता। कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ता है, पर लेखक हार नहीं मानता है। कॉलेज के समय सीनियर डहाले नाम का दोस्त हौसला बढ़ता है। बारहवीं के बाद बम्बई जैसे महानगर में एम.बी.बी.एस की पढ़ाई के लिए दाखिला लेता। किंतु समाज और कॉलेज के दोस्तों द्वारा अवहेलना कभी कम नहीं होती। यहाँ पर भी हॉस्टल कमरे को खटखटाया जाता है, कभी बाहर से बंद किया जाता है तो कभी कमरे से क़िताब, नोट्स की चोरी होती है। तंग आकार लेखक घर जाने कि ठान लेता है तब प्रसाद, अरुण, रमण, कल्याण जैसे सहपाठी मिलकर

---

[99] वही, पृ.सं-114
[100] वही, पृ.सं-25

हिम्मत बढ़ाते हैं-“भागने से तो बेहतर होगा कि तुम इनसे लड़कर चले जाओ। तुम ऐसे ही इनसे डरकर भागते रहे तो यह तुम्हें होस्टल में नहीं रहने देंगे।”[101]

लेखक बचपन से ही झगड़ा-दंगा फसाद से बचकर रहता है। क्योंकि बचपन से ही वह तमाम तरह की यातनाएँ सहता रहता है। पहचान की समस्या, स्थिर रहने की समस्या, पैसों की समस्या, नाचनेवालियों और उनके बच्चों की चिंता, भाई के भविष्य की चिंता, नाना के मटका, शराब और दो पत्नियाँ होते हुए अन्य औरतों पर पैसे उड़ना आदि समस्याएँ और चिंताएँ हमेशा सताती हैं। हालत ने मुँह पर ताला लगाता है और रोना, अपमान लाचारी के हिस्से बन जाते हैं। कोल्हाटी समुदाय के पुरुषों को लालच और लाचारी ने बैठे-बैठे खाने की आदत ने उनके स्वाभिमान का गला ही घोंट दिया था। ऐसी परिस्थितियों से झगड़ता हुआ लेखक अपनी डॉक्टर की पढ़ाई पूरी करता है और ध्येयवादी दृष्टिकोण का आदर्श समुदाय के सामने रखता है। इस प्रकार डॉ.किशोर शांताबाई काले ने ‘छोरा कोल्हाटी का’ आत्मकथा के माध्यम से बड़ी मार्मिकता से बताया है।

अतः आत्मकथा व्यक्ति द्वारा अपने तथा अपने समाज का बखूबी चित्रण है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में जीवन अस्थिरता, लाचारी, अपमान से संघर्ष की ओर बढ़ता है। हर एक समुदाय का अपना संघर्ष है। हर एक की अपनी व्यथा है। आत्मकथाओं में सवर्ण समाज का शिकार तो घुमंतू स्त्रियाँ है, साथ-साथ स्त्रियाँ घुमंतू पुरुषों की भी गुलाम हैं। जो पुरुष भिक्षाटन कर अपना जीवन-यापन करते हैं, वे जात पंचायत में सबसे अधिक शोषण स्त्रियों का ही करते हैं। स्त्रियाँ सवर्ण समाज के पुरुषों की हवस का शिकार बनती हैं। छोरा कोल्हाटी का आत्मकथा के साथ अन्य आत्मकथाओं में भी स्त्रियों के शोषण का चित्रण रेखांकित किया है। अस्थिर घुमक्कड़ी, अपमानित जीवन पराया, डेराडंगर व उचक्का आत्मकथाओं में दिखाई देता है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथा में विशेषता वर्णन और चित्रण की वह कला है जो समाज के दस्तावेज की सच्चाई को प्रमाणित करती है। घुमंतू जीवन का यथार्थ, कटु सत्य विलक्षण ही नहीं विरूप और वीभत्स भी है। विमुक्त-घुमंतुओं के जीवन की वस्तुस्थिति का आत्मीय और सहानुभूतिपूर्वक वर्णन शायद ही अन्य साहित्य तथा विधा में देखने को मिलता है।

[101] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्र., दिल्ली, पहला सं- 1997, पृ.सं-139

तीसरा अध्याय

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ

3.1. यथार्थ से तात्पर्य

शोधार्थी का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में यथार्थ' है । वैसे आत्मकथा अपने आपमें 'यथार्थ' होती है । परंतु यथार्थ को साहित्य में किस प्रकार देखा जाता है ? उसका अर्थ एवं स्वरूप क्या है ? विद्वानों के क्या मत हैं ? और आत्मकथाओं में किस रूप में व्यक्त होता है । इसे हमें शोध की दृष्टि से देखना आवश्यक ही नहीं बल्कि जरुरी हो जाता है । वह निम्नलिखित देख सकते हैं-

'यथार्थ' के लिए अंग्रेजी में 'Reality' पद उपयोग होता है । संस्कृत/हिंदी में इसके लिए समानार्थी शब्द सत्य, तथ्य, उचित, वास्तव, यथार्थ आदि । इनमें यथार्थ ही 'Reality' का समानार्थी बनने में समर्थ हुआ है, अन्य शब्दों को भाव के अनुसार प्रयोग में लाया जाता है । 'यथार्थ' दो पदों की संधि से निर्मित है; 'यथा' और 'अर्थ' । 'यथा' अव्यय है जिसका हिंदी में समानार्थी पद है-'जैसा' । 'अर्थ' के प्रमुख हिंदी समानार्थी पद हैं- वस्तु, तत्व, द्रव्य, पदार्थ आदि । यथार्थ का सामान्यतः अर्थ है, जैसा होना चाहिए ठीक वैसा, वाजिब, उचित, सच्चा, असली । अर्थात जो वस्तु जैसी भी है, उसे उसी रूप में चित्रित करना ।

स्थूल रूप से यथार्थ की मूल संकल्पना यह है कि जो हम वर्तमान में देख रहे हैं, जिन परिस्थितियों से हमारा पारंपरिक संबंध है जिन घटनाओं से हमें घृणा, मन में द्वेष, राग निर्माण होने लगता है उसका साहित्य के माध्यम से सही-सही संप्रेषण करना है । हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. गुलाबराय के शब्दों के माध्यम से हम यथार्थ को समझना चाहेंगे-

"यथार्थ वह जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है । उसमें पाप-पुण्य, धूप-छाँव और सुख-दुःख मिश्रित रहता है । यह सामान्य भाव भूमि के समतल रहता है और वर्तमान की वास्तविकता में सीमाबद्ध रहता है । स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परदेश की वस्तु है जो

उसकी पहुँच के बाहर हैं। भविष्य उसके लिए कल्पना का खेल है। वह संसार के हाहाकार और करूँ क्रंदन का यथातथ्य वर्णन करता है। वह कठोर सत्य को कहने में नहीं हिचकिचाता। वह वास्तविकता के नाते संसार में पाप और बुराई का विजय घोष करने में संकुचित नहीं होता। वह संसार की कलुष-कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता वह स्वर्ण को भी कालिमामय मिट्टी के कणों से मिश्रित हो देखना चाहता है। वह उसे तपा-गला कर और उसमें चमक उत्पन्न कर लोगों को चकाचौंध में नहीं डालना चाहता।"[102]

यथार्थ अपने में एकांगी नहीं होता, अनेक प्रासंगिक स्थितियाँ उसे कार्यान्वित करती हैं। यथार्थ के उत्स में पीड़ा समाई है जो व्यक्ति की अपनी है पर वह व्यक्तिगत न होकर समाज की चेतना का स्वरूप धारण कर लेती है। जिसे समष्टिकरण की परिभाषा दी जा सकती है, यही चेतना सामाजिक मूल्यों को निर्धारित करती है जब रचनाकार रचना करता है तो इन जीवन निर्मित मूल्यों का आश्रय लेता है। हमारा साहित्य जनसामान्य के लिए हो, वह यथार्थ जीवन में हस्तक्षेप करे, इसे बदले, इसी उद्देश्य से प्रेमचंद द्वारा की गयी परिवर्तनीय स्थापना को देख सकते हैं-"निष्पक्षता, निरुद्देश्य एवं व्यक्ति की कुंठा और घुटन के लिए नहीं, गरिब जनता के लिए दर्द, उसका आत्मसम्मान और भाग्य को पलटने के लिए साहित्य रचना-यह नए यथार्थ का उद्देश्य है। इसके लिए साहित्यकार का तटस्थ दर्शक रहना पर्याप्त नहीं है। उसे सक्रीय रूप से सामाजिक जीवन में सहभाग लेना होगा। यथार्थ की समस्या लेखन के अपने जीवन से संबद्ध हो जाती है।"[103] साथ ही यथार्थ जगत् में हस्तक्षेप किये बिना उसे जानना संभव नहीं होता और हस्तक्षेप करते ही उसकी यथार्थता दूषित हो जाती है। इस संबंध में मैरिस कौर्नफोर्थ का कहना है कि-"पुरानी नाप-खोज की पद्धति से यह कठिनाई उत्पन्न होती है। इससे परिणाम यह नहीं निकालता कि हम यथार्थ जगत् को जान नहीं सकते वरन् यह निकालता है कि उसे जानने की पुरानी पद्धति बदलना आवश्यक है।"[104]

यथार्थ व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण अंग होता है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में यथार्थ का प्रयोग नहीं करता है, तो वह कभी-न-कभी बुरी तरह से मात खाता है। सच्चा यथार्थवादी अपने जीवन के साथ-साथ मनुष्य और समाज को पूर्ण सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार के यथार्थवादी दृष्टिकोण के लेखन को लेकर रूस में एक समय यह विवाद बहुत ज़ोर से चला कि गोर्की शोषित जनता का लेखक है या नहीं ? इस बात पर मजदूरों ने सीधे

---

[102] Shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/14558/6/08_chapter1.pdf (09:30 pm, 26.04.19)

[103] भाषा साहित्य और जातीयता, रामविलास शर्मा, किताबघर प्र., नई दिल्ली, प्र.सं- 2012, पृ.सं- 81

[104] वही, पृ.सं- 80

गोर्की को पत्र भेज दिया- बताइये आप शोषित जनता के लेखक हैं या नहीं ? सच्चे जनता के लेखक के क्या लक्षण हैं ? गोर्की ने इसका उत्तर दिया जो हर दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । गोर्की का पत्र इस प्रकार था-"मैं समझाता हूँ वे लक्षण बहुत नहीं हैं । वे यह हैं कि उन सभी चीजों के लिए लेखक के मन में सक्रिय घृणा हो जो मनुष्य को बाहर से या अंदर ही अंदर क्लेश पहुँचतीं हैं, उन सभी चीजों के लिए जो मनुष्य की शक्तियों का स्वतंत्र विकास और स्वाभाविक प्रस्फुटन नहीं होने देती; आलसियों, उपजीवियों, सरकारी पट्ठुओं, लफंगों और इस तरह के हर रूप रंग के बदमाशों के लिए उसके ह्रदय में निर्मम घृणा हो । पृथ्वी के समस्त आश्चर्यों, प्रत्येक वस्तु के सृष्टा और रचनात्मक शक्ति के स्त्री-पुरुष के लिए लेखक के मन में श्रद्धा हो- प्राकृतिक शक्तियों से लड़नेवाले और अपने औजारों, अपने विज्ञान, अपनी निर्माण कला द्वारा इस प्रकृति के अलावा अन्य एक प्रकृति, उसकी रचना का उद्देश्य है मानव-शक्ति को व्यर्थ बरबाद होने से बचाना, के रचयिता मनुष्य के लिए उसकी आतंरिक श्रद्धा हो ।"[105]

यथार्थ के बारे में बहुत-सी आपत्तियाँ उन लोगों से की होती हैं जिनका दृष्टिकोण पुराने तर्कशास्त्र पर निर्भर होता है, जो ऐहिक या मानसिक आदान-प्रदान का परस्पर संबंध नहीं देखते, जो किसी प्रक्रिया का अध्ययन करते समय उसके एक ही पक्ष को देखते हैं, उसके विरोध करनेवाले पक्ष को छोड़ देते हैं । इस तरह का एकांगी विश्लेषण कभी-कभी उन लोगों के यहाँ भी मिलता है जो द्वन्द्वात्मक पद्धति अपनाते हैं । इसमें दोष उस पद्धति का नहीं है, दोष उनके विश्लेषण का है । वे प्रश्न करते हैं । इस पर रामविलास शर्मा का मत है-"व्यक्ति और समाज इनमें किसका चित्रण करें ? वास्तव में यह प्रश्न ही गलत है । समाज के बाहर व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है और व्यक्ति का चित्रण किये बिना समाज का करना असंभव है ।"[106]

अतः हम कह सकते हैं कि भोगे हुए जीवन सत्य को यथार्थ कहते हैं । इसका संबंध वास्तविकता और सच्चाई के अलावा वह भी आता है, जो घटित नहीं हुआ या जिसे घटित होना चाहिए । यथार्थ मानव जीवन एवं समाज का संपूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का वस्तु विषय काल्पनिक संसार से न होकर वास्तविक संसार से लेता है, इसमें समाज के सुंदर और कुरूप दोनों अंगों का चित्रण किया जाता है ।

---

[105] नई समीक्षा, अमृतराय, हिंदुस्थानी पब्लिकेशन हाऊस, बनारस, प्र. सं- 1950, पृ.सं- 108

[106] भाषा साहित्य और जातीयता, रामविलास शर्मा, किताबघर प्र., नई दिल्ली, प्र.सं- 2012, पृ.सं- 87

3.2. विवेच्य रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

आत्मकथा यह शब्द ‘आत्म’ और ‘कथा’ इन दो शब्दों से बना है । जब कोई व्यक्ति अपने आत्मगत भावों को कथा का रूप देता है तो वह आत्मकथा बनती है । आत्मकथाओं का विषय कल्पना से संबंधित न होकर वास्तविकता से होता है । आत्मकथा में प्रस्तुत विषय का प्रमुख गुण- सत्यता और यथार्थता से होता है । आत्मकथा का यथार्थ आत्मकथाकार और उसके समाज की सच्चाई से संबंधित है । आत्मकथाओं के अध्ययन से साफ़ पता चलता है कि आत्मकथाकारों ने सत्य एवं यथार्थ को आधार बनाकर क्षोभ और पीड़ा को व्यक्त किया है । डॉ. हरिनारायण ठाकुर के शब्दों में-“दलित साहित्य की भाषा और उसकी यथार्थ चेतना का सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है । पहली नजर में लगता है कि दलित साहित्य की भाषा गाली-गलौज की अश्लील भाषा है । किंतु ध्यान देने की बात यह है कि दलित साहित्य प्रतिरोध और बहुत हद तक प्रतिक्रिया का भी साहित्य है । अतः उसमें क्षोभ, पीड़ा और आक्रोश स्वाभाविक है । दूसरी बात दलित साहित्य ने परंपरागत तत्सम प्रधान, संस्कृतनिष्ठ भाषा, काव्यशैली और प्रस्तुतीकरण को नकारकर जनसामान्य को समझने लायक सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है । वह ऐसी भाषा का इस्तेमाल करता है, जो दलितों की पीड़ा, अपमान और व्यथा तथा जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं के यथार्थ को सही अभिव्यक्ति दे सके ।”[107] इसी तरह की अभिव्यक्ति विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में व्यक्त हुई है । जो अपनी चरमोत्कर्ष में दिखाई देती है । विवेच्य आत्मकथाओं के सोदाहरण देते हुए संदर्भ द्रष्टव्य हैं-

‘पराया’ आत्मकथा में लेखक का परिवार एक गाँव में कुछ दिन तक रहकर अपना उदरनिर्वाह करता है । जब उनके द्वारा बनाये गए सामान खरीदना बंद हो जाता है, रोज़गार नहीं मिल पाता है, ऐसी स्थिति में दूसरे गाँव जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है । तब लेखक के पिताजी और गाँव के लोगों के बीच की बातचीत घुमंतू जीवन के यथार्थ की सच्चाई को दर्शाती है । यथा-“गधे जैसे ही गाँव में घुसे, कुत्तों ने भौंकना शुरू किया । अब पूरी तरह सुबह हो चुकी थी । सब पूछते, “बापू, क्यों जा रहे हो ?” बाप पेट पर हाथ फेरकर संकेतों में कहता । हाथ जोड़ता, “अगले वर्ष फिर आएँगे । भगवान् कृपा दृष्टि रहने दो !”[108] उदरनिर्वाह एकमेव ऐसा कारण है, जो घुमंतू जनजातियों को अस्थिर बना देता है ।

---

[107] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प.सं- 2009, पृ.सं- 115

[108] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 15

डेराडंगर आत्मकथा में लेखक का परिवार अनिश्चित घुमक्कड़ी करते हुए एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहे हैं । भोर से शुरू हुआ कारवाँ जंगल-पहाड़ियों से गुजरता है । लेखक और उसके भाई-बहनें घोड़े पर बैठे हुए हैं । पिताजी भोजन की व्यवस्था करने पहले ही निकल पड़े हैं । इस बीच माँ और बेटे के बीच की बातचीत की सच्चाई पाठक के मन को छू लेती है । यथा-“सफ़र का आधे से ज्यादा रास्ता हमने समाप्त किया था । रस्ते में यह दृश्य मेले के समान दिखाई देता था। माँ घोड़े के साथ चलती थी । बच्चे गिरेंगे यह उसे चिंता थी । मैंने माँ से कहा-‘माँ तू घोड़े पर बैठ...तेरे पैर दुःखते होंगे...।’ माँ ने कहा-‘नजिक आ गया...अपुन के रहने का गाँव...तब तक मैं चलती हूँ...तुम बैठो...।’ माँ चलती ही रही ।”[109] वह अपने बच्चों के लिए, परिवार के लिए हमेशा दुखों को पीछे छोड़ दिया है ।

‘उचक्का’ आत्मकथा में समाज का नकारात्मक दृष्टिकोण और पुलिस प्रशासन से प्रताड़ित उठाईगीर समुदाय पेट की आग बुझाने में भ्रमित रहता है । सवर्ण समाज ने रोज़ गार से दूर रखने के कारण मजबूरन चोरी कर उदरनिर्वाह करना पड़ता है । चोरी करते समय पकड़े जाने पर मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना से गुजरना पड़ता है । ऐसे समय जिमींदारों के खेत से साग-पात उबालकर ख़ाना पड़ता है । ज़मींदार वह भी लेने से मना करता है । तब लेखक आम की गुठलियाँ और इमली के बीज इकठ्ठा करते हैं । इस वास्तविकता को रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं-“उस दिन बाबा हम सबको अपनी बाहों में लेकर रोया । उन दिनों मैं दिन-भर घूरे पर भटकता इमली के बीज या आम की गुठलियाँ इकट्ठी करता और उन्हें भूनकर खाता । कभी-कभार बाबा या दादा किसी दूसरे गाँव से जाकर सुअर के किसी पिल्ले को पकड़कर ले आते । उसे भूनकर सब लोग खा लेते । पेट की इस आग से परेशान होकर मैं कई बार चक्की के दो पाटों पर नमक छिड़ककर उन्हें चाटता ।”[110] भूख आदमी को दुनिया का सबसे नीच समझने वाला काम करवाती है । इसके उदाहरण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में पाए जाते हैं ।

छोरा कोल्हाटी का आत्मकथा में ‘कोल्हाटी’ समुदाय की स्त्रियाँ अपने परिवार के आय का स्त्रोत होती है । उनके बिना घर का खर्चा ही नहीं चलता है । कई परिवार के पुरुष काम ही नहीं करते हैं, वे अपनी बहन, बेटियों की माया पर जीते हैं । उनकी खातिरदारी कर परिवार को हथियाते हैं । स्त्रियों को नाचने के लिए मजबूर करते है । कई बार अधेड़ावस्था या लोगों की नापसंद के

---

[109] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प्र.सं- 2001, पृ.सं- 37

[110] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, दू. आ-2011, पृ.सं-35

कारण आय कमाने में मुश्किलें खड़ी हो जाती है । ऐसी स्थिति में पुरुष इन स्त्रियों का फ़ायदा उठाते हैं । इसी का नग्न यथार्थ डॉ. किशोर अपनी आत्मकथा में व्यक्त करते हैं-“एक दिन दुपहर में मैं स्टेज पर सोया था तो देखा कि एक औरत किसी आदमी से बात कर रही है । मैंने सुना तो वह उससे कह रही थी, “मुझे दो सौ रुपये दे दो, गाँव से चिट्ठी आयी है, बाद में लौटा दूँगी ।” तो उस आदमी ने कहा, “ठीक है तो फिर आज हो जाए...।” उससे हाँ की । और वे दोनों पर्दे के पीछे चले गये ।”[111]

इसी तरह विमुक्त एवं घुमंतू जनजतियों की आत्मकथाओं में यथार्थ की सच्चाई को रेखांकित किया गया है । जो पाठक के मन को झकझोर देती हैं । यह आत्मकथाएँ भारतीय साहित्य में यथार्थ की दृष्टि से प्रथम श्रेणी में आती है । यह जनजातियाँ भारतीय समाज का ऐसा हिस्सा रही है जो दोहरे अन्याय से पिसती आ रही है । वे अपने ऊपर समाज द्वारा वंचित, उपेक्षित किये गए अनुभवों का क्षोभ और आक्रोश है । जिसे आत्मकथा के माध्यम से पाठक के सामने यथार्थता के साथ रखा गया है, जिसे लक्ष्मण गायकवाड़ के शब्दों में ‘अपने पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर प्रस्थापित समाज हमारी ओर देखें, विचार करें । और मूल्यांकन करें । इस उद्देश से आत्मकथा लिखी गयी है ।’ यथार्थ आत्मकथाओं का मूल गुण है । जिसे अगले अध्यायों में विस्तार से समझने का प्रयास किया गया है ।

3.3. सामाजिक स्थिति

3.3.1 जातीयता के लेखकीय अनुभव

भारतीय समाज व्यवस्था का आधार जाति-व्यवस्था बन चुका है । जिसे आज के सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है । ऊपरी और बाह्य तौर पर प्रगतिशील दिखाई देने वाले उच्च शिक्षित व्यक्ति भी जाति की गिरफ्त में फंसे होते हैं । ऐसे अनेक उदाहरण और अनुभव दिखने में आते हैं, अब सार्वजानिक निर्णय भी जातीय वर्चस्व को ध्यान में रखकर लिए जाते हैं यानी जीवन को संचालित करने का एक महत्वपूर्ण घटक है । जिसे स्वीकार कर पाना एक विवशता ही कही जाएगी । भारतीय समाज-व्यवस्था का सबसे घृणित रूप है कि एक जाति दूसरी जाति को निम्नतर मानती है । इसके कारण समाज में लगातार घृणा और द्वेष का वातावरण बन रहा

---

[111] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प.सं- 1994, पृ.सं- 127

है। इनमें वंचित जातियों और जनजातियों की तो और भी ज्यादा दयनीय स्थिति रही है। उन्हें हीनता बोध से भरने के लिए उनकी जातियों को गाली की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा है, जो आज भी जारी है। हिंदी के बड़े-बड़े रचनाकारों ने वंचित जातियों और जनजातियों के लिए 'नीची जाति' शब्द का प्रयोग किया है जिसे किसी भी तर्क से जायज नहीं ठहराया जा सकता है पर यहाँ हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा कही हुई बात याद आती है कि 'कोई भी जाति अपनी निचली जाति को ढूंढ़ लेती है'। 'जाति' सामाजिक जीवन का कटु यथार्थ है। यह समस्या होते हुए भी उच्च जाति के लोग इसे नहीं मानते है। आज भी वर्ण-व्यवस्था के उन्मूलन के प्रति कोई गंभीर नहीं है, जबकि इस व्यवस्था ने देश को भीतर से खोखला कर दिया है। दलितों, वंचितों की चिंता किसी को भी नहीं है बल्कि जातीय आधार पर इनको जलील कर देने का कोई भी मौका लोग हाथ से जाने नहीं देते। यह प्रवृत्ति केवल ग्रामीण या अशिक्षित लोगों में ही नहीं है, बल्कि उच्च शिक्षित लोगों में भी देखी जाती है। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज में आपसी सौहार्द को विखंडित किया है।...प्रेम और भाईचारे की भावना को रोका है। उपरी तौर पर सब शांत दिखाई देते है लेकिन भीतर आपसी द्वेष की गहराई का अंदाज उसी वक्त होता है जब कोई रुके हुए तालाब के पानी में कंकड़ फेंकता है, जिसे बौद्धिकता के महिमा मंडन में अनेकता में एकता जैसे लुभावने नारों से छिपाने की कोशिश की जाती है।

भारतीय समाज व्यवस्था में सदियों से व्यक्ति का अस्तित्व वर्ण-व्यवस्था और जाति-भेद के दोहरे अनुशासन के दायरे में बंधा रहा है, जिसमें ब्राम्हणवादियों और सवर्ण-सामन्तियों के द्वारा 'शास्त्रों' के बल पर वंचित जातियों का दमन और शोषण हुआ, जिसके संदर्भ में शरणकुमार लिम्बाले कहते हैं-"हिन्दू धर्म व्यवस्था ने दलितों की छाया, स्पर्श और वाणी अस्पृश्य मानी है। जन्मतः मनुष्य को 'अस्पृश्य' और 'गुनहगार' माना है। दलित संपत्ति जमा न करे, वे गाँव के बाहर रहे, वे मिट्टी के बर्तनों में ही अन्न ग्रहण करें, कपड़े के रूप में कफ़न प्रयोग करें, अपने नाम अमंगल और अभद्र रखें-ऐसे आदेश हिन्दू धर्म में भरे पड़े है।"[112] अंततः उक्त विवेचन इन तथ्यों की ओर संकेत देता है कि, सवर्णों ने अपनी बाहुबली परंपरा और धर्मशास्त्रों के आदेशों से कूटनीति द्वारा दलितों को पशुवत स्थिति में अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर किया। इस संदर्भ में रविदास कहते हैं-

"जात-जात में जात है, ज्यों केलन के पात।

[112] हाशिए का वृतांत, संपा- दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे, आधार प्रकाशन, पंचकुला, प्र. सं- 2011, पृ. सं- 308

रैदास न मानुष जुड़ सकैं, जों लों जात-न-जात । ।"[113]

महाराष्ट्र के प्रत्येक गाँव का नाम भले ही अलग-अलग हो पर वंचित जातियों और जनजातियों के जुल्म का स्वरूप समान है- समाज से बहिष्कृत, अलग पनघट, अलग शमशान, अलग बस्ती, किराये पर घर न मिलना, मजदूरी न मिलना, जाति छुपाने की विवशता, सार्वजानिक स्थान पर प्रवेश के लिए मना, वंचित जाति-जनजातियों के स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय, नाई द्वारा बाल न काटना आदि । वास्तव में सदियों से देहाथ से लेकर नगरों-महानगरों के परिवेश में वंचित जातियाँ सवर्णों द्वारा उत्पीड़न का शिकार बनती रही हैं ।

अंग्रेजों ने भी अपने स्वार्थ के लिए 'गुनहगार कानून' (1871) बनाया तब से जनजातियों को और भी अधिक त्रासदी सहन करनी पड़ी । इस संदर्भ में लक्ष्मण गायकवाड़ कहते है-"जिस समाज में मैं जनमा, उसे यहाँ की वर्ण-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था ने नकारा है । सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों से मनुष्य के रूप में इस व्यवस्था द्वारा नकारा गया मेरा यह समाज पशुवत् जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया । अंग्रेजी सरकार ने तो 'गुनहगार' का ठप्पा हमारे समाज पर लगा दिया और सब ने हमारी ओर गुनहगार के रूप में ही देखा और आज भी उसी रूप में देख रहे हैं ।''[114]

घुमंतू जनजातियाँ अपनी अनिश्चित, दिशाहीन घुमक्कड़ी करते वक्त कभी समतल जंगल तो कभी पहाड़ी इलाखों से गुजरते हैं । जहाँ पेट के लिए भोजन, रहने के लिए जगह, जानवरों को चरने के लिए घास होगी और पानी की सुविधा पास में होगी उसी गाँव के आसपास अपना डेराडंगर उतारते हैं । स्थान निश्चित न होने के कारण एकाध बार तो सुबह से शाम तक चलते रहते हैं । बच्चे धूप में प्यासे हो जाते हैं । पैर जलते रहते । एकाध छोटा जानवर किसी की फसल में जाता है तो वहाँ का किसान इंसानियत को किनारे रखकर तुच्छ सोच के सहारे घुमंतू जनजातियों के साथ भेदभाव करते नजर आ जाते हैं । इन्हें अपने पाँव की धूल समझते हैं । अत्यंत क्रूर कृत्य पर उतर आते हैं । तब दादासाहब मोरे लिखते हैं-"क्योंकि समाज की अत्यंत हीन जाति में हम जन्मे थे । इसलिए हमें उनकी गाली-गलौज, मारपीट चुपचाप सहनी पड़ती थी ।"[115]

---

[113] महान आजीवक कबीर रैदास और गोसाल, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2017, पृ.सं-499

[114] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, दू.आ. 2011, पृ.सं-5

[115] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प.सं- 2001, पृ. सं- 21

मनुष्य के जीवन में शिक्षा को अनिवार्य माना जाता है, क्योंकि शिक्षा से मनुष्य का विकास होता है। उसी के माध्यम से वह संस्कृति व सभ्यता की उपलब्धियों को प्राप्त करता है। लेकिन भारतीय समाज का एक दुःखद व शर्मनाक अध्याय यह भी रहा है कि समाज के बहुत बड़े वर्ग (तबके) को धर्म का वास्ता देकर इससे वंचित कर दिया गया। वर्ण-धर्म के पालन को मनुष्य के लिए मोक्ष प्राप्त करने का और समाज को सुचारू रूप से चलने का आधार माना गया। वर्ण-धर्म के चार वर्ण बनाये गए हैं जो श्रेष्ठता के क्रम में हैं। शूद्र वर्ण को सदियों से ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रखा गया। यदि किसी ने ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की भी तो उसको सज़ा दी गयी। इस कथित आदर्श व्यवस्था ने अधिकांश शूद्र आबादी वाले समाज को दूर कर दिया। इस वर्ग को न केवल ज्ञान से वंचित किया, बल्कि गुजारा करने व जीने के सारे साधन भी इनसे बंद किये या छीन लिए गए। इस प्रकार वंचित जाति और जनजातियों को मुख्य धारा से दूर रखा गया। इस पर डॉ. अम्बेडकर कहते हैं-"इस बारे में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता है कि आदिम जातियों, जरामय-पेशा जातियों और अस्पृश्य वर्गों की जो दशा है, वह हिन्दू सभ्यता के मूल सिद्धांतों का ही कुफल है।"[116]

इसी व्यवस्था के चलते (अप्रैल 2016) महाराष्ट्र के सूखाग्रस्त जिले वाशिम (विदर्भ) के गाँव कलंबेश्वर का दलित बापुराव ताजने। जो पढ़ा-लिखा दलित है, मजदूरी कर अपना घर चलाता है। पानी का अभाव झेल रहे दलित परिवारों को इस गाँव के उच्च वर्ग ने पानी देने से इन्कार किया गया और कहा गया कि-"तुम मर रहे हो मरो...हम पानी नहीं देंगे। हमें अपने जानवरों के लिए पानी चाहिए।"[117] यह बात बापुराव को ज्ञात हुई तो उसका स्वाभिमान आहत हो उठा। लगभग 40 दिनों में कुआं खोद निकाला और अपनी बस्ती को पानी पिलाने का कार्य किया। लेकिन दलित बापूराव ने अपने संस्कारों से बडप्पन दिखाया। किसी के विरूद्ध शिकायत दर्ज करा कर वह गाँव के माहोल को बिगाड़ना नहीं चाहता था। वह सचमुच बुद्ध का अनुयायी आदमी निकला। उसने उन सारे इंन्सानी गुणों का प्रदर्शन किया जो एक आदमी को आदमी के तौर पर बड़ा बनाते हैं। उसका स्वाभिमान, उसकी कर्मठता, उसकी लगन, आत्मविश्वास और सबसे बड़कर वह उदात्तता, जो शत्रु को भी सहजता से क्षमा कर देती है।

---

116 डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय खंड-10, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सा.सं- 2013, पृ.सं-16

117 By reposrted by himanshu shekhar mishra, edited by suryakant pathak (9 may 2016 ,10:50 am)

अंतः बापूराव की कहानी दशरथ मांझी जैसी एक प्रेरक की कहानी बनी, जो असंभव से कार्य को भी संभव बना सकता है। वैसे, यह कहानी इतनी भर नहीं है। भले ही बापूराव ने अपने प्रतिपक्ष के विरूद्ध कोई कानूनी कारवाई होने से इनकार कर दिया हो, पर प्रतिपक्ष पूरे वजूद के साथ मौजूद है। शताब्दियों की बात छोड़ दे तो भी यह सवाल तीखे काँटे की तरह चुभता है कि आखिर, संविधान मिलने के 71 वर्षों के बाद भी यह स्थिति क्यों बनी हुई है कि जन्मतः जाति के आधार पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कुएँ की जगत पर नहीं चढ़ सकता। दलितों के पास आज राजनीतिक शक्ति है, पर्याप्त आर्थिक शक्ति भी है, सामाजिक प्रतिरोध की शक्ति भी उनके पास है, उनके अधिकारों की रक्षा करने वाले कानून भी अपनी जगह पर हैं, बौद्धिकता के स्तर पर भी उन्होंने अपना लोहा मनवाया है और उनके विरूद्ध किसी भी तरह के अन्याय की आवाज मीडिया के माध्यम से देश भर में गूँजने लगती है। इसके बावजूद, समाज में सवर्णवादी, सामंतवादी मानसिकता है जो ऐसा कथित अगड़ी जाति का कोई व्यक्ति किसी बापूराव की पत्नी को पानी लेने से रोक लेता है।

एक कारण तो यह है कि वंचित जातीय समूह सामाजिक तौर पर इतने मजबूर नहीं हुए कि अपने बूते अपमान से मुक्त हो जाएँ। देश के आधिकांश अंचल ऐसे हैं, खास तौर पर ग्रामीण अंचल, जहाँ वंचित जातियों के साथ किसी न किसी तरह का अन्याय जारी है। जिन बस्तियों में वंचित समुदाय अन्य जातियों की तूलना में असंख्य हैं, और उनका प्रभावशाली राजनीतिक नेतृत्व नहीं है, वहाँ उत्पीड़न बहुत ज्यादा है। कारण, आर्थिक तौर पर कमज़ोर ये वंचित समुदाय अजीविका के लिए उच्चवर्ग पर निर्भर करते हैं। इसलिए वे अन्याय और अपमान को चुपचाप सहन करते रहने में ही अपनी भलाई समझते हैं। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में बच्चों को बचपन से ही नियमित रूप से सूचनाएँ दी जातीं कि-“कोई कुछ भी कहे तो भी चुप नीचे देखकर आना...उनकी ओर देखना तक नहीं...उल्टे बोलना नहीं...नहीं तो कुत्ते की मौत मारे जाओगे...किसी के कुछ कहने से शरीर में छेद नहीं पड़ते...।”[118]

जाति वंचित समूहों के भी आड़े आती है। अगर एक जाति का वंचित उत्पीड़न का शिकार है, तो दूसरी जाति का वंचित अपनी आँखें बंद करना ही ज्यादा ठीक समझता है। सामूहिक वंचितों की चेतना का अभाव दलित-दलित बनाये और कमज़ोर रखने में बड़ी भूमिका निभा रहा है। वंचित उत्पीड़न के आख्यान में एक नया क्षेपक और जुड़ा है, और वह है वंचितों को संविधान द्वारा दिए गए आरक्षण जैसे-अधिकार के प्रति अगड़े-पिछड़े जाति समूहों का

[118] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प.सं- 2001, पृ. सं-110

आक्रोश। उन्हें अब भी लगता है कि संविधान ने वंचितों को जो अधिकार दिए हैं, वे अनुचित अधिकार हैं, और वंचित इन अधिकारों का उपयोग उनकी कीमत पर कर रहे हैं। वे संविधान को तो मिटा नहीं सकते, इसलिए जब भी उन्हें मौका मिलता है। अपनी खीज कमज़ोर वंचितों पर उतार डालते हैं। यानी वंचितों के प्रति इर्ष्या, फिर चाहे यह कितनी भी निराधार क्यों न हो, वंचित उत्पीड़न का नया कारण बनी है। इस ईर्ष्या का एक रूप गैर आरक्षित पिछ्ड़ी जाति समूहों द्वारा दलितों की तर्ज पर आरक्षण की माँग है, और दूसरा रूप है आरक्षण प्राप्त दलितों के प्रति सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर द्वेष का विस्तार जिनके अंतर्गत 'सरकारी उच्चवर्ग' जैसी व्यंग्योक्तियाँ प्रचलित की गयी हैं। हैरानी की बात यह है कि अगड़े-पिछ्ड़े जाति समूह के सामाजिक व्यवहार में दलितों के प्रति सहानुभूति नहीं है। उनके शताब्दियों पुराने वर्णवादी संस्कार ऐसी सहानुभूति के लिए जगह पैदा नहीं होने देते। इसलिए जब तक वर्णवादी संस्कारों के विरूद्ध स्वंय सवर्ण जाति समूह के बीच से उग्र सामाजिक पहल नहीं होगी, तब तक दलित उत्पीड़न और अपमान की कहानियाँ सामने आती ही रहेंगीं।

हर आदमी को आज़ाद होना चाहिए। भेद-भाव से मुक्त अपना स्वतंत्र घर, जमीन और हाथ के लिए काम (रोज़ गार) यही उनकी बुनियादी ज़रूरत है। पर ऐसा न होने का कारण सामंतवादी वर्ण व्यवस्था है। इसके बारे में महात्मा फुले 'गुलामगीरी' में कहते हैं-"मन-मस्तिष्क पर हमारे हमेशा के लिए वर्चस्व बना रहे इसलिए उन्हें ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझा गया है। उपर जिनका नाम निर्देश किया गया है, उनमें से कही अंग्रेज लोगों ने इतिहास आदि ग्रंथों में कई जगह यह लिख रखा है कि ब्राम्हण-पंडा-पुरोहितों ने अपने निजी स्वार्थ के लिए अन्य लोगों को यानी शूद्रादि-अतिशूद्रों को अपना गुलाम बना रख लिया है।"[119] उनकी मान्यता थी कि गुलामी कहीं भी हो और किसी भी रूप में हो, वह अमानवीय होती है। वैसे ही लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उचक्का' आत्मकथा में दिखाई देती है। उठाईगीर (पाथरूट) समाज का मुख्य व्यवसाय पत्थर टांकना है। जिसमें- आटे की चक्की, मूर्तियाँ आदि बनाते हैं। पर उठाईगीर समाज को कभी उन मूर्तियों को छूने का हक नहीं है। राजेंद्र यादव के शब्दों में-"हम नीचों से अपने मंदिरों का एक-एक कंभुरा कलश, पूजागृह सब कुछ बनाएंगे, कुँए बनाएँगे, खेत जुतवाएँगे, फसले लदवाएँगे और सबसे पहले उन्हीं का वहाँ प्रवेश वर्जित कर देंगे। जिस मूर्ति को कल तक मैंने अपने पांव के पंजों में दबाकर बारीक छेनी-हाथौड़ी से तिल-तिल तराशा है, कल मुझे उसके दर्शन का

[119] गुलामगीरी, महात्मा फुले, अनु- विमल कीर्ति, पृ, सं- 52

अधिकार नहीं होगा ? जिस रसोई के हर चूल्हे और आल्हे को मैंने बनाया है, उसके पास जाने पर मेरा सिर फोड दिया जाएगा । जिस रामायण, महाभारत को लिखकर मैंने लाखों परोजीवी, जोंक और निकम्मे ब्राम्हणों की हजारों पीढ़ियों के लिए हलवा-पूरी भकोसने का इंतजाम किया है, वही मुझे भंगी (वाल्मीकि) और हरामज्यादा मछुआरा (वेदव्यास) बताकर एक तरफ़ दुत्कार देंगे । स्वतंत्र भारत की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक 'भारतीय संविधान' तैयार करने वाला नीच और फ्रेस्ट्रेटेड महार है क्योंकि उसने आपके शास्त्रों और व्यवहार के चिथड़े उड़ाने का दुस्साहस किया है ।"[120]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में बचपन से ही अपने अछूत होने का अहसास हो जाता है। लेखक जब (लक्ष्मण माने) अपनी माँ के साथ गाँव में टोकरियाँ बेचने जाते हैं तब माँ उन्हें किसी सवर्ण के घर जाने से पहले समझाती है । जब बैंड-बाजा बजने जाते हैं तब पिताजी हिदायत देते हैं । एकबार की बात है सांगवी नामक गाँव में बाजा बजाने जाते हैं तब लेखक को बाजा बजाबजाकर प्यास लगती है । पास ही पानी का पीपा भरा हुआ है । उसमें बच्चे हाथ डालकर खेल रहे थे । घराती महिलाएँ पीपे से पानी ले रही थी । लेखक पानी माँग रहा था पर कोई पानी देने को तैयार नहीं था । जब पिताजी ने माँगा तो एक महिला उपर से पानी दे रही थी । शरीर पर पानी गिर रहा था, इसलिए लेखन ने पीछे सरक लिया, तब लेखक का संतूलन बिगड़ा और पीपे को स्पर्श हुआ । तब औरत ने ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया,"अरे...अरे ! मुझे अपवित्र कर दिया...अब पानी कहाँ ? अब क्या तेरा मुरदा पीना ?' बस देखते-देखते साड़ी औरतें चिल्लाने लगीं ।...बाप भीतर से छटपटा रहा था, 'जहाँ जाता है, वहाँ अपनी ऐसी-तैसी करवाता है ! अपनी औकात में नहीं रहता है ! ज्यों उनके दिमाग में अंडे चढ़ गए हों । मुझे तो सिर्फ टट्टी खाने के लिए रख छोड़ा है ।"[121] समाज में इन्हें इतना नीच और अछूत समझा जाता है कि इनके द्वारा छुए गए किसी भी सामान तथा वस्तु को बड़े तबके के लोग इस्तेमाल करना तो दूर दोबारा छूते भी नहीं है । इस तरह की मानसिकता में दूसरों की अपेक्षा खुद को श्रेष्ठ समझने की वृत्ति निर्मित हुई । इस मानसिकता की शिकार से विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय भी अछूता नहीं रहा ।

---

[120] हाशिए का वृतांत, संपा- दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे, आधार प्रकाशन, पंचकुला, प्र. सं- 2011, पृ. सं- 315

[121] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं-76

समाज मानवीय संबंधों से बनता है और इन संबंधों के मूलभूत तत्व हैं प्रेम और सहयोग की भावना । भारतीय सामाजिक संरचना में पीड़ा का अलग समाजशास्त्र है । वर्चस्ववादी वर्णाश्रम धर्म ने अपने वर्णाश्रमी मूल्यों की रक्षा के लिए, किसी भी तर्क, विचार का सीधा विरोध करते हुए उसका दमन किया । वेदों के अनुसार "मनुष्यों को गति, मति, स्थिति और कृति के लिए चरण, मस्तिष्क, उदर और कर है । उसी प्रकार समाज पुरूष के भी चार अंग हैं – ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । समाज का मुख ब्राम्हण, भुजाएँ क्षत्रिय, उदर वैश्य और चरण शूद्र हैं ।"[122] वेदों का यह विभाजन तुच्छता के आधार पर नहीं योग्यता के आधार पर था, लेकिन आज भारतीय हिंदू समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित है । "ब्राम्हणों के नाम विद्याधर, क्षत्रिय के बलराम, वैश्यों के लक्ष्मीकांत और शूद्र के शूद्रक, मातंग । वही परंपरा बीसवीं सदीं के अंत में भी जारी है ।"[123] यह वर्ण व्यवस्था की परंपरा भारतीय समाज में आज भी देखी जा सकती है ।

कोल्हाटी घुमंतू समुदाय के तमाशा में नाचनेवाली स्त्री के गर्भ से 'नाजायज औलाद' समझ कर तुच्छ समझा गया । कॉलेज के दिनों में कई बार जाति पता चलने पर कमरे बदलने पड़ते हैं । कई बार तो दोस्तों को पता चलने पर वे दोस्ती तोड़ते । नाम में माँ (शांताबाई) का नाम होने के कारण लड़के प्रश्न करते । लेखक जिस गाँव (अंबेजोगाई) में पढ़ता था उसी गाँव में मौसी की 'लोकनाट्य पार्टी' आया करती थी । एक बार की घटना है । मौसी ने कई बार लेखक को पत्र लिखकर सन्देश भेजा पर लेखक लज्जा वश अपनी सगी मौसी को मिलने नहीं जा पाते । लेखक लिखते हैं-"मेरी अपनी मौसी इसी शहर में होते हुए भी मैं उससे बात तक नहीं कर पाया था और न ही उसमें यह साहस था कि वह मुझसे बात करने आती । मैंने उसकी आँखों में आँसू देखे थे । मैं सोचता था कि रात चोरी-छिपे चला जाऊं और उससे मिल आऊँ...मिलने पर मौसी कहा-'तू हमारे समाज में क्यों पैदा हुआ?' तब हम दोनों रोकर जी हल्का कर लिया ।"[124]

---

122 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना, डॉ. सौफिया मैथ्यू, हिंदी विभाग, कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन, सं- 1991, पृ. सं- 6 (शोधग्रंथ)

123 अछूत, दया पवार, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आ-2016, पृ- सं.12

124 छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.,नई दिल्ली, प.सं- 1997, पृ.सं- 114

वर्ण व्यवस्था के आधार पर ही जाति व्यवस्था का जन्म हुआ। इसी चातुर्य वर्ण व्यवस्था से चौथा वर्ण 'अस्पृश्यता' का जन्म हुआ। आज देश जो पिछड़ा है उसके लिए केवल जाति व्यवस्था ही जिम्मेदार है। डॉ.अंबेडकर का मानना है कि-"क्या हिंदूओं ने अपनी जाति के हितों-स्वार्थ के रक्षा करने में अपने देश के प्रति विश्वासघात नहीं किया है ?"[125]

इस प्रकार वर्ण एवं जाति की अभिव्यक्ति ही अस्पृश्यता में बदल गयी। जो भयंकर, कठोर और कष्टदायक है। 'अस्पृश्यता' के कारण विमुक्त एवं घुमंतू जाति-जनजातियों का उत्पीड़न हर दिन बढ़ता ही जाता है। जीवन के हर पहलू पर उन्हें यातनाओं का शिकार बनना पड़ता हैं। सभी दलित एक समान रहते हुए उनमें विभिन्न जातियाँ, समूह आदि दिखाई देते हैं। ये वैयक्तिक व पारिवारिक स्तर पर भिन्न हैं। परंतु 'जाति समस्या' को सभी ने भोगा है।

परंतु वर्तमान समय में फुले, शाहू, अम्बेडकर के चिंतन के केंद्र में 'वंचित मुक्ति का प्रश्न' रहा है। उन्होंने समाज में लोकतंत्र स्थापित करने के लिए स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, न्याय आदि मानवीय मूल्यों की गरिमा, प्रज्ञा, शील, करुणा- इन नीतिमूल्यों की महत्ता को उजागर किया है। वंचितों के लिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष की प्रेरणा दी है। इसलिए समाज में कुछ परिवर्तन दिखाई देता है, फिर भी जितना होना चाहिए था उतना दिखाई नहीं देता है। आज भी 'छुआछूत' की मानसिकता समाज के हर तबके में देखी जा सकती है। इस संदर्भ में लक्ष्मण गायकवाड़ बहुत ही सरल शब्दों में जाति व्यवस्था के ढकोसले को बेबुनियाद ठहराते हुए लिखते हैं कि-"हम लोगों ने प्रत्येक जाति के चरित्र को लेकर, उसकी ईमानदारी को लेकर भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ बना रखी है। इन परिधियों के अनुसार ही हम प्रत्येक का मूल्यांकन करते रहे है। इन भिन्न-भिन्न परिधियों के कारण ही पूरा समाज एक ढोंगी जीवन जी रहा है।"[126] अतः कहा जा सकता है कि अगर हम किसी ऊँची या नीची जाति में पैदा हो गए तो इसमें हमारी कोई गलती नहीं लेकिन जाति व्यवस्था और छुआछूत को कमज़ोर करने की जिम्मेदारी हम सबकी बनती है।

---

[125] बाबासाहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाड़मय खंड- 1, पृ. सं- 78

[126] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ.सं-6

3.3.2. 1871 का एक्ट और समाज की मानसिकता

31 अगस्त 1952 के दिन 'विमुक्त जनजातियों' को भारत में स्थित 52 सेटलमेंटों से लगभग दो सौ से अधिक जातियों को तत्कालीन सरकार ने 'आदतन अपराधिक अधिनियम' (हैविचुअल आफेंडर्स एक्ट) बनाकर 'विमुक्त' किया । किंतु इन पर लगाए गए 1871 के 'अपराधिक जनजाति कानून' (क्रिमिनल ट्राइब एक्ट) जन्मतः अपराधिक का लाँछन मिटाने और उनके भविष्य में उत्थान के लिए किसी भी प्रकार के सरकारी अथवा गैरसरकारी क़ानून या योजना का प्रावधान नहीं किया गया । अंग्रेजों द्वारा चलाई गयी, इस कुरीति के चलते समाज और पुलिस इन समुदायों को शक और घृणा की नजर से देखती हैं । इनके मामलों में न्याय के मूलभूत नियमों तक का उल्लंघन किया जाता है । इसलिए यह जनजातियाँ गाँवों-कस्बों से दूर तथा कई बार स्टेशनों के आसपास उदरनिर्वाह के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान अनवरत ख़ानाबदोशी करती देखी जा सकती हैं । इस कारण यह जनजातियाँ समाज में सबसे कमज़ोर तथा निचले स्तर पर हैं ।

विमुक्त घुमंतू जनजातियों को 1871 में बेवजह 'अपराधी' घोषित किया गया था । इन्हें भारत स्वतंत्रता के बाद भी आजादी नहीं मिली । इन्हें आजादी दिलाने के लिए डॉ.बाबासाहब अंबेडकर और साथी सांसदों ने संसद में प्रस्ताव दिया । तब भारत स्वतंत्रता के पाँच साल बाद 1952 में 'आदतन अपराधिक अधिनियम' बनाकर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने इन्हें मुक्त किया । कानून में 'अपराधिक' नाम की पूछ भी छोड़ी । जिससे समाज और कानून का व्यवहार पहले जैसा रहा । विमुक्त तो किया गया परंतु इनके आवास, रोज़ गार, शिक्षा को लेकर किसी भी सरकारी या गैर सरकारी योजना का प्रावधान नहीं किया गया । आगे भी क्षेत्रीय नेताओं ने इन्हें आरक्षण एवं स्थायी बनने के नाम पर वोटबैंक बनाया । इन भोली-भली जनजातियों को ठगा गया । समाज की नजरों में ऐसी प्रतिमा निर्माण की गयी कि वे इन जनजातियों के लोगों को चोर, उचक्के की नजरों से देखा जाने लगा । इस पर 'क्रांतिवीर विमुक्त घुमंतुओं की गाथा' में लेखक कहते हैं-"हमारा मन तो संशय का मायका है । हमें कंटीले तारों से मुक्त किया, फिर भी उन तारों की जंग खाती दीवार समाज के मन में भूत की तरह बैठी हुई है।"[127] जो अब तक समाज में प्रताड़ित करती आ रही है ।

---

[127] क्रांतिवीर विमुक्त भाटक्यांची गाथा, नागनाथ गायकवाड़, गवळी प्र. इस्लापूर, जि.सांगली, प्र.आ- 2013, पृ. सं- 11

* आमच मन गैरसमजाचं माहेर घर आहे. म्हणून सेटलमेंटच्या कुंपनाच्या तारा तोडल्या असल्या तरी, तेथल्या भिंती जमीनदोस्त केल्या असल्या तरी, गैरसमजाचं भूत निघत नाही.

जब समाज ने ही नकार दिया तो इनके सामने जीवन-यापन का प्रश्न खड़ा हुआ । आजीविका के लिए चोरी करने के लिए मजबूर होना पड़ा है । चोरी करने के कारण इन जनजातियों की स्थिति फिर से 'गोरे अंग्रेजों' के समय की बनी । कहना गलत नहीं होगा कि गोरे अंग्रेजों के बाद 'काले अंग्रेजों' का निर्माण हुआ । वही कानून, वही पुलिस प्रशासन । पुलिस स्टेशन द्वारा हिदायत दी जाती थी कि कानूनन सभी पुरुष जाति को सुबह-शाम हाज़िरी देने सख्ती की गयी । यदि कोई हाज़िरी नहीं देता तो उसे पुलिस घर से उठा ले जाती और बेइन्तहाँ पीटायी करती । इस पीटाई ने जनजातियों के कई लोगों की जाने ली । सैंकड़ों लोगों की जेल में सड़-सड़ के मार दिया । कई स्त्रियाँ बेवाएँ होती रही । इसे निर्धारित करते हुए भीमराव गस्ती अपनी आत्मकथा 'बेरड़' में लिखते हैं-"मेरे बाबा के चार भाई थे । उनमें से सबमें बड़े भाई को पुलिसवालों ने हिरासत में इतनी बेरहमी से पीटा था कि इस मार-पीट के कारण बाद में वह गंभीर रूप से बीमार रहने लगा । और फिर उसी बीमारी की हालत में उसने एक दिन अपना दम तोड़ दिया ।"[128]

वैसे गाँव की कुलीन जाति तथा अन्य निम्न जातियाँ (माँग, महार, डकलवार, चमार) पुलिसिया जुल्म-सितम के आतंक से दूर दिखाई देती हैं । विमुक्त एवं घुमंतू जनसमुदायों का दोहरा शोषण सालों से चले आ रहा है । भारतीय शासन व्यवस्था ने विशेष सहयोग नहीं किया इसलिए उनकी स्थिति में दिन-प्रति-दिन इजाफा हुआ । इनके लिए समाज में ऐसी व्यवस्था बनायी गयी कि वे समुदाय लंबे अरसे से पशुओं की तरह जीवन जीने के लिए मजबूर हुए हैं । समाज द्वारा उपेक्षित यह जनजातियाँ चोरी करने को मजबूर हुई । 'उचक्का' में लक्ष्मण गायकवाड़ कहते हैं-"धीरे-धीरे माणिकदादा के साथ भागवान अण्णा और संबा भी चोरी का सामान सँभालने के लिए निकालने लगे । संबाभाऊ और भगवान नौकरी करने योग्य थे । परंतु उठाईगीर कहकर उन्हें कोई नौकरी नहीं देता । खेतों में मजदूरी भी नहीं मिलती थी ।"[129]

ये जनजातियाँ जब किसी गाँव में अपना डेरा बसाने जाती है तब सर्वप्रथम गाँव के पाटिल या मुखिया को मिलकर हाज़िरी देनी पड़ती है । उन्हें बताना पड़ता है कि उनके साथ कितने जानवर, कितने पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे आदि सब का हिसाब देना पड़ता । जब गाँव में रहते हैं तो गाँव के ज़मींदार, पाटिल, गुंडे इन समुदायों का शोषण करते हैं । इनके कबीलों पर आकार कभी शराब तो कभी मुर्गी की माँग करते हैं । इनकी स्त्रियों को अपने हवस का शिकार

---

[128] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु-गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 16

[129] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ. सं- 15

बनाते हैं। वे घुमंतू स्त्रियों को मुफ्त की संपत्ति समझकर उनके साथ दैहिक शोषण की माँग करते हैं। 'छोरा कोल्हाटी का' आत्मकथा में लेखक कहते हैं सांगली के गुंडप्पा ज़मींदार ने लेखक की माँ शांताबाई को उसके साथ रात बिताने की माँग की थी। जब शांता के परिवार से नकार आता है तो ज़मींदार गुंडप्पा धमकी देते हुए कहता है-"शांता को एक रात मेरे पास छोड़ दो, वरना मैं उसे उठाकर ले जाउँगा और उसकी हड्डी तक आपको कहीं नजर नहीं आएगी।...सबके चेहरों पर की हवाइयाँ उड़ रही थीं।"[130] दैहिक शोषण करना ज़मींदार, पाटिल, साहूकार, मुखिया अपना अधिकार समझता था। यह भी समझते हैं कि हमारे कारण ही ये जनजातियाँ जीवन-यापन करती हैं। उन्हें यह भी भ्रम होता है कि हम इन्हें गाँव में ही घूसने नहीं देंगे तो भूखों मर जायेंगे।

विमुक्त घुमंतू समुदायों की त्रासदी यह है कि उनका कोई निश्चित व्यवसाय नहीं है। कुछ का हो भी तो उनके सामान को कौड़ी की कीमत नहीं मिलती है। क्योंकि 1952 में 'विमुक्त' होने पर समाज ने स्वीकार नहीं किया इसलिए वे निरंतर रोजी-रोटी की तलाश में अनिश्चित भटकती है। उनकी मज़बूरी यह है कि उन्हें भूख मिटने के लिए भीख माँगकर ख़ाना पड़ता है। छोटे-छोटे धंधे जैसे चोरी करना, अवैध शराब बेचना, पत्थर टांकना, टोकरियाँ बनाकर बेचना आदि। यह सब समाज पर निर्भर होते हैं। यदि किसी गाँव के पाटिल, मुखिया को मुफ्त में वस्तु देने से माना करते हैं तो वह भड़ांस किसी-न-किसी रूप में व्यक्त करते हैं। 'पराया' आत्मकथा में कैकाड़ी समुदाय के लोग अपना फूलदान, डालियाँ बनाकर बेचने का धंधा करते हैं। उसी पर उनकी रोजी-रोटी निर्भर होती हैं। धंधे में गिरावट आती है तो वे भीख माँगकर पेट भरते हैं। जब गाँव में भीख देना बंद होता है तो दूसरे गाँव की तलाश में निकल पडते हैं। एक गाँव से दूसरे गाँव जाते समय वे रस्ते भर यही बातें करते हुए चलते हैं कि किसके कितने पैसे देने बाकी हैं। किसकी कितनी उधारी बकाया है...और अचानक गधे रुक जाते हैं। सामने से दगडू (जो पाटिल का बेटा) आता है। दगडू लेखक के बाप को गाली बक रहा था। लेखक के पिता दगडू के पैर पकड़ कर गिडगिड़ा रहे थे। माय-बाप हम गरीबों ने कुछ नही किया है बेवजह सामान मत देखो/फेंको। दगडू नहीं मान रहा था। तब लेखक के पिताजी ने जेब से पैसे निकले फिर भी पाटिल का बेटा सामान की छान-बिन करते हुए कहता है-"तुम लोगों का क्या भरोसा ! भिखारी...सालों ! किसी का कुछ ले जा रहे होगे तो ?' बाप ने उसके यह कहने पर हाथ जोड़

---

[130] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु-अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प.सं-1995, पृ.सं-21

लिए। एक मुर्गी गधों से खोली और दगडू के हाथों में रख दी। जयसिंह ने पैसे दिए, तब कहीं जाकर दगडू एक ओर हो लिया।"[131]

कंजर यानि काननचर अर्थात जंगल में घूमनेवाला अपने लोक विश्वासों व लोकाचारों को धुरी पर अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष करती एक 'विमुक्त जनजाति'। भगवानदास मोरवाल द्वारा लिखित उपन्यास जो राजस्थान के कंजर समुदाय पर लिखा है। उपन्यास में कंजर समुदाय की स्त्रियों के स्याह संसार श्रमपूर्वक, शोधपरख उजागर किया गया है। जो कंजर समुदाय की स्त्रियों पर केंद्रित है। इस उपन्यास में कंजर समुदाय की रुक्मिणी नामक स्त्री एक शहरी संगठन से जुड़ जाती है। वह संगठन 'नारी मुक्ति एवं उत्थान' के लिए बना होता है। उसके कर्ताधर्ता मुरली जो 'भाई साब' के नाम से जाने जाते हैं और उनकी बहन सावित्री उनका बढ़-चढ़कर साथ देती हैं। रुक्मिणी जब सावित्री से मिलती है तो प्रभावित होकर अपने समुदाय के स्त्रियों को नरक से बाहर निकालकर सम्मान के साथ जीने के सपने देखती है। परंतु उसे स्त्री मुक्ति केंद्र में जाति, समुदाय या उनके पेशे से उठकर नहीं देखा जाता। इस बात का उसे बहुत देरी से पता चलता। उसे रिझाने के लिए बड़े-बड़े रेस्तरां बुक करते हैं। उसे अपने दैहिक आग बुझाने के लिए लालच दिया जाता है। रुक्मिणी जब मना करती है तो भाई के लिए बहन सावित्री कहती है-"तू क्या समझ रही है तुझे इस नरक से निकालने के लिए भाई साब अपना पैसा और टाईम ऐसे ही बर्बाद कर रहे हैं तेरे पीछे ? कोई नारी मुक्ति केंद्र खोल रखा है, या फिर तुम जैसियों को औरत बनाने का ठेका ले रखा है ? क्या भाई साब ने रेस्ट हॉऊस में तुझे तेरी आरती उतरने के लिए बुलवाया था ?"[132]

भारत स्वतंत्रता के बाद भी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्थितियों में जितना बदलाव होने की अपेक्षा थी उतना नहीं हुआ। वे वर्तमान समय भी किसी न किसी वजह से समाज और प्रशासन की नजरों और मानसिकता में अपराधी के रूप में ही देखी जा सकती है। आज उनकी सबसे महत्वपूर्ण समस्या उन्हें जाति से उठकर देखना है। शिक्षा और रोज़ गार के लिए प्रोत्साहित करना है।

---

[131] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ, सं- 16

[132] रेत, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि. दिल्ली, पहला सं- 2013, पृ, सं- 198

3.3.3 अंधविश्वास

समाज में अंधविश्वास निर्माण होने के पीछे सामाजिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार होती हैं। भारतीय समाज में चातुर्य वर्ण व्यवस्था ने देश के सबसे बड़े तबके को अज्ञानीता में डुबों दिया। धर्म के नाम पर अंधविश्वास का पोषण हुआ है। इसी कारण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ सदियों से अज्ञानीता में पड़ी हुई है। यह किसी भी समाज के लिए महारोग से कम नहीं है। ईश्वर-भगवान की काल्पनिक कहानियाँ रचकर जप-तप आदि गलत मार्ग बतलाकर दलितों के दिमाग को बहलाने का काम किया है। उनके सभी ग्रंथ जूठे हैं। इस पर डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं-“ब्राम्हणों ने बड़ी चालाकी से एक मंत्र फूँक दिया, लोगों में एक ढकोसला फैला दिया कि वेद इंसान की रचना नहीं है। यहि हिंदू आध्यात्मवाद जड़ हो गया है और हिंदू सभ्यता तथा संस्कृति एक सड़े हुए बदबूदार पोखरे की तरह हो गयी है। अब यह ढकोसला जड़ मूल से खत्म करना होगा यदि भारत को प्रगति करनी है। वेद बेकार की रचनाएँ हैं, उन्हें पवित्र या संदेह से परे बताने में कोई तूक नहीं है।”[133] हजारों सालों से यह समस्या लोगों के मन में घर कर बैठी है। इसी अंधविश्वास का चित्रण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में पाया जाता है।

‘उचक्का’ आत्मकथा में उठाईगीर समाज चोरी करने के लिए जाने से पहले पुलिस तथा मालिकों के डर से अपनी परंपरा को पूरा करते हैं। मुर्गा तथा ब्लेड खरीदते हैं और उसे ब्लेड से काटते है तथा उस मुर्गे का खून ब्लेड तथा प्रमाणपत्र पर छिड़कते हैं और एक-एक करके झुककर उस प्रमाणपत्र और ब्लेड को प्रणाम करते हैं। “भगवान, हमें यश दे, पुलिस से बचा ले।’ इस प्रकार की कई कामनाएँ करते मंदिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख झुककर जैसे प्रणाम किया जाता है, ठीक उसी तरह हम सभी बारी-बारी से ब्लेड तथा प्रमाणपत्र को प्रणाम करते हैं।”[134] उठाईगीर समाज अशिक्षा के कारण हर एक व्यक्ति में अंधविश्वास भरा हुआ है, परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही हैं। अंधविश्वास के कारण इन लोगों में सच कहने का लोप होता है। किसी की तबीयत खराब होने पर अस्पताल जरूरी है परंतु यहाँ आर्थिक स्थिति कठिन होने के कारण

---

[133] बाबासाहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड- 8, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, आ. सं- 2013, पृ. सं- 16

[134] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ.सं- 10

अंधविश्वास उनके लिए मुख्य रहा है और ऐसे समय किसी भगत, बाबा या दोरकरीन के पास जाकर हालत बता देते हैं। इसी प्रकार का उदाहरण देख सकते हैं।

'डेराडंगर' आत्मकथा में घुमंतू जोशी समुदाय के लोग अपनी गृहस्थी को सिर पर लेकर चलते हैं तब साथ में एक मरियल घोडा, कुत्ते, मुर्गियाँ और बाल-बच्चे होते हैं। एकाध घोड़े पर बूढा तो एकाध पर छोटे-छोटे बच्चे बैठे होते हैं। अनिश्चित यात्रा होने के कारण सफ़र में कई परिवार मिलते हैं और एकत्रित भटकते हैं। एक दफा घोड़े पर साठ-पैंसठ साल का पांडुरंग वायफलकर अपनी पत्नी और जवान बेटी के साथ यात्रा में थे। पांडुरंग वायफलकर बहुत दिनों से बीमार चल रहे थे। चिल-चिलाती धूप में लेखक का डेरा तथा अन्य गृहस्थियाँ कुछ अंतर से आगे-पीछे चल रहे थी। पांडुरंग वायफलकर की बेटी सुन्द्रा अचानक चिल्लाती है-"अजीsss लोगों...दौड़ो...दौड़ो...मेरा बाप मरने लगा।'...'चीखते-चिल्लाते एक दूसरे को इशारा करने लगे। खुली हवा आने दो वरना मर जायेगा।' हममें से कुछ जानकार लोग कानाफूसी करने लगे-"ऐsss मारुती मामा...अजी...गंगू मौसी के अभुआने अंबा देवी आई है।" जोशी समाज में यह धारना बनी है कि 'दोरकारीन व्यक्ति भाभुआने से हर तरह की बीमारी ठीक होती है ऐसी हमारी जाति की धारणा थी।' तब गंगू मौसी के सामने गिरकर भाई, बेटी और पत्नी विनती करते हैं। तब दोरकारीन गंगू चीखते हुए बोली-'मुझे छुड़वाना हो तो...एक मुर्गी...पाँच चपाती...एक नारियल...चावल और नींबू...आज शाम को पहुँचने पर तुम...मेरे नाम पर...इस रास्ते की ओर मुँह करके निछावर करना...तभी मैं जानेवाला हूँ...वरना इसे मेरे साथ ले जानेवाला हूँ...।"[135] ऐसे समय उस परिवार के सामने कोई पर्याय नहीं होता है। इसलिए वे अपने मरीज को बचाने के लिए उधार लेकर भूतबाधा दूर करते हैं। ऐसे में इन्सान की मृत्यू होती है तो अपने सगे-संबंधियों को जुटा नहीं पाते। जहाँ मरते हैं वहीं दफना देते हैं। और आगे बढ़ते हैं...। शायद यही उनकी नियति में है।

इसी प्रकार का उदाहरण 'उचक्का' के आत्मकथाकार अपनी माँ के बीमार होने पर पिता की मजबूरी को अपनी आत्मकथा में व्यक्त करते हैं-"इतना होने पर भी दवाखाने का नाम नहीं।

[135] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पहला सं-2001, पृ.सं-22-23

केवल देवी की राख लगाकर बाबा हमसे कहते, “तेरी माँ को भूत-प्रेत लग गया है ।”[136] इस स्थिति के लिए जितना अंधविश्वास जवाबदार है, उतना ही आर्थिक परिस्थिति भी ।

घुमंतू समुदायों में अन्धविश्वास के नाम पर तरह-तरह की कुरीतियाँ अपने पाँव पसारे हुई है । यही कारण है कि इन समुदायों की स्थिति हमेशा बदत्तर रहती है । जब कोई बीमार पड़े या चोट लगे तो अस्पताल की बजाय भगवान को मन्नतें करना और वह पूरी करने के लिए कर्ज लेना । यही क्रम विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में चलता रहता है । ऐसे में अस्पताल जाने और वहाँ का खर्च उठाने के लिए पैसा नहीं होता है तो ये लोग अपने ग्राम देवी-देवताओं के नाम पर मंत्राने, भभुआने या टोना-टोटका करने लगते हैं । इसी का गहरा परिणाम संपूर्ण समुदाय पर पड़ता है । इसका उदाहरण पराया में देख सकते हैं । लेखक की बहन जब रात में अचानक चीखने लगती और डर के मारे उसे झटका लगता है । वह बेहोश हो जाती है और दांत बैठ जाते हैं । माँ बेटी की हाल देखकर घबरा जाती है । पिताजी उठकर भगवान की भभूति लगाते हैं । परंतु कोई उपयोग नहीं होता । तब भगवान के सामने जप करते बैठते हैं । कुछ देर में पिताजी के शरीर में देवी प्रवेश करती है । पिताजी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगते हैं-“छोड़..पकड़..पकड़ ! बोल तू कौन है ? क्यों आया है ? भगवान है या भूत है ? बोल !”[137] ऐसा ही कहते हुए मुट्ठियाँ कसते हैं, होंठ चबाते हुए घूमते हैं । लेखक की माँ और साथी जयसिंग, भगवान के सामने नतमस्तक होकर बच्ची को बचने के लिए कामना करते हैं ।

भारत की संस्कृति का एक अंग अंधविश्वास है । पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अंधविश्वास अधिक दिखाई देता है । भारतीय सभ्यता-संस्कृति की हजारों सालों से चली आ रही मान्यताओं में आस्था, भक्ति, श्रद्धा व विश्वास रहा है । विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में भी इसी के चलते भक्ति, श्रद्धा, आस्था, अज्ञानी की कमी नहीं है । बेरड़ समुदाय में शादी के पहले ग्राम देवता को विधिवत ईर (देवता का जुलूस) निकालने का तथा पूजा का प्रचलन है । और इसलिए दो बकरें की बलि दी जाती है । ख़ाना भी तैयार होता है और सभी लोग खाकर सुस्ता जाते हैं । अभी कुछ समय गुजरा था कि सब छोटे-बड़े लोगों को जबरदस्त ‘कै’ और ‘दस्त’ होना शुरू होता है । भयभीत लोगों में चर्चा चलती है । ‘ये ज़रूर किसी देवी आपत्ती का फल है ।’ इसी बीच किसी ने अज्ञानीता का परिचय देता है तब तो बवाल मच जाता है । कहता है-‘ईर देवता बहुत गुस्सैल हैं । उसकी पूजा-भोग में ज़रूर कुछ न कुछ गडबडी की है । इस लिए ईर देवता ने हम सब पर

[136] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.अ- 2011, पृ.सं- 27

[137] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं-19

अपनी कुपित छाया बिखरा दी है ।' तब लोग रो-रोकर विलाप करना शुरू करते है-'हे भगवान हम नासमझों से क्या भूल हुई ? ऐसा कौनसा पाप किया ? आदि-आदि । इस बीच जैसे ही गाँव के मास्टर तक इस घटना की खबर पहुँचती है तो उन्होंने तुरंत कहलवा भेजा कि, "इस तरह की भोजन के बाद कै होनी शुरू होती हैं तो फ़ौरन आराम के लिए सोड़ा वाटर की बोतले और नींबू पी लें । गुणकारी साबित होगा !" सोड़ा वाटर और नींबू पानी लेते है तब लोग कहते हैं-"ये ऐसी बोतलों में भरा पानी...आज तक खड़ी जिंदगी में पिया नयी !' कहकर साफ़ इंकार कर देते हैं । और कै और दस्त से छुटकारा पाने के लिए वे सब-"ईर देव की बस् जरा-सी भभूत ही लगाकर दे दो ।' लिहाजा सर्व-सम्मति से तय किया गया कि इस आफत से सही-सलामत उबारने के बदले में सभी देवी-देवताओं के नाम फिर से एक-एक बकरा हलाल कर दिया जाए !"[138]

लेखक बचपन में एक-एक माह तक नहाता नहीं था । परिणाम स्वरूप सिर में फोड़े तथा पिव बन गया । इसलिए माँ यल्लामा देवी को मन्नत करती है-"हे देवी माँ ! मेरे बेटे का यह संकट दूर कर दे जब तक मैं तुझे बकरे की बलि नहीं दूँगी, तब तक शुक्रवार और मंगलवार उपवास करती रहूँगी ।"[139] जब सिर के फोड़े ठीक हो जाते हैं तब यल्लमा देवी के लिए बकरा खरीदा जाता है । एक दिन डपली बजाते हुए मंदिर तक बारात निकली जाती है । प्रथम लेखक को तथा बाद में बकरे देवी के सामने झुकाया जाता है । बाद में प्रत्येक सदस्य बारी-बारी झुक जाते हैं, अंत में माँ ने पानी छिड़क कर बकरे के पैर छूती है । सब पर हल्दी सिंदुर छिड़क कर करीम चाचा को बकरे की बलि देने का आदेश दिया जाता है ।

इसी प्रकार के उदाहरण केवल विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में ही नहीं बल्कि अन्य आत्मकथाओं में भी अंधविश्वास का बोलबाला दिखाई देता हैं ।

लक्ष्मण माने अपनी आत्मकथा 'पराया' में अंधविश्वास का उदाहरण देते हैं । लेखक का परिवार मलवडी गाँव के खंडोबा (भगवान) के मेले से वापस आता है, उस दिन माँ ने घुमंतू देवता को नैवेद्य अर्पण करने के लिए मीठा भोज (पुरण पोली) बनाती है । इस समय लेखक को तीव्र भूख लगने के कारण वह भोज खाता है तब अंधविश्वास से ग्रसित माँ उसे डांटते हुए कहती है-'मुर्दे ! भगवान को भोज अर्पण करना है और तूने झूठा किया ?' यहाँ पर देखने की बात है कि

[138] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 30

[139] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.अ- 2011, पृ.सं- 24

मनुष्य किस स्थिति में भगवान को इतना महत्व देता है कि खुद के बच्चे को भूखा रखकर पत्थर की मूर्ति को महत्व दिया जाता है । तब भूख से बेहाल होकर बच्चे गाँव की गलियों, कूड़ा घरों पर जाकर बेमौसम में उगे हुए फलों, आम की गुटलियों तथा शमशान भूमि में स्वर्ण महिलाएँ अपने लाड़लों को उतारकर फेंक दिए नारियल उठाकर अपनी पेट की आग को शांत करते हैं । इसे लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में लिखते हैं- "भूख से जब मैं बहुत बेहाल हो जाता तो अमावस्या या पूर्णिमा के दिन शमशान भूमि के रास्ते निकल जाता क्योंकि आषाढ़-श्रावण में गाँव के लोग खाने की चीज़ें और नारियल भूत-प्रेत बाधा के से डर से अपने लाड़लों पर से उतारकर वहाँ फेकां करते थे । भूत-प्रेत की बाधा के डर इन चीजों को कोई उठाता भी नहीं था । मैं लात मारकर नारियल दूर फेंक देता और खाने की चीज़ें उठा लेता ।...परंतु ऐसा करते समय नारियल के एक टुकड़े को और खाने की एक चीजों में से कुछ निकालकर मैं उसी स्थान पर रख देता ।"[140] लेखक ने सुना था कि भूत-प्रेत की चीजों से पाँवों के चलते भूत घर में आता है । इसी वजह से उतार दी गयी वस्तुओं में से थोड़ा हिस्सा वह निकाल कर फेक देता था । यहाँ पर पता चलता है कि बच्चें बचपन से ही भूत-प्रेत को जानते हैं और आगे जिंदगी भर इसी का अनुकरण करते हुए दिखाई देते हैं ।

शिक्षा के दौरान इस तरह के अनेक कटु अनुभवों का लेखक को सामना करना पड़ता है । एक बार की बात है लेखक के पिता लेखक को स्कूल में भेजते हैं तो कुछ ही दिनों के बाद बिरादरी के बच्चों को टट्टी और उल्टियाँ शुरु होती हैं । जिसका कारण अंधविश्वास में बदल जाता है । बिरादरी के लोग लेखक के पिताजी को बुलाकर इशारा देते है कि एक तो लक्ष्या का स्कूल जाना बंद कर दे नहीं तो मारतंड गाँव छोड़े । इसी को स्पष्ट करते हुए आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा में लिखते हैं- "तूने अपने लड़के लक्ष्या को स्कूल में भर्ती कर दिया है, इसी कारण हमारे बच्चे को उल्टियाँ और टट्टी हो रही हैं । इसके पहले आज तक कभी इस बस्ती में हैजे की बीमारी नहीं आई थी । आज तक कभी कोई बीमारी नहीं हुई थी । बस ! तेरा यह लड़का लक्ष्या जैसे ही स्कूल में जाने लगा, इधर बीमारी शुरु ।"[141] उठाईगीर समाज में ऐसी धारणा बन गयी है कि केवल बामन-लाल के लड़के ही पढ़ाई कर सकते हैं । अगर हमारे बच्चे स्कूल में जाने लगे तो हमारा वंश डूब जाएगा और यल्लामा देवी का प्रकोप हो जाएगा । स्त्रियों का कहना था लक्ष्या

---

[140] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.अ- 2011, पृ.सं- 34

[141] वही, पृ.सं- 19

अभागा है । इसके कारण ही हमारी बिरादरी में बीमारी फैली है । यहाँ पर समझने की बात है अंधविश्वास के कारण उठाईगीर समाज में दूर-दूर तक शिक्षा का कोई पता नहीं है ।

परिस्थिति इतनी बेकार है कि दो वक्त का ख़ाना मुश्किल हो जाता है । ऐसे वक्त लेखक अपने नाना के साथ शिकार करने के लिए निकल जाता है । शिकार के लिए घर से निकलते समय नाना लक्ष्मण से कहते हैं भगवान का दर्शन ले । फिर निकल पड़ते हैं जंगल में । जंगल में प्रथम शिकार मिलता है तो नाना उसे सुरक्षित जाली के बाहर निकाल कर उसके सामने दंडवत होता है । वापस घर आते समय जंगल के बाहर आकार प्रणाम करता है । घर के अंदर जाने से पहले नाना कहते हैं बाहर जाकर थूककर आओ और पाँव धोकर गृह देवता को प्रणाम कर क्योंकि जंगल से आए हुए भूत-प्रेत न सताए और घर के अंदर किसी को न सताए ऐसी धारणा है।

इस प्रकार से उठाईगीर तथा अन्य दलित आत्मकथाओं में अंधविश्वास रहा है । ऐसे समय घर परिवार में बैठे लोग ऐसे विचार करते हैं, तो बच्चों पर असर तुरंत पड़ता है । इसलिए इनकी जो विचार करने की क्षमता है वह बच्चों को सही लगेगी क्योंकि उन्हें और कोई दूसरा रास्ता नहीं होता है । अशिक्षित समाज का अंधविश्वास पर विश्वास रखना स्वाभाविक है । यह समस्या केवल उठाईगीर समाज नहीं बल्कि पूरे देश की समस्या है । इसके लिए भूखे को अन्न, रोगी को दवा, अनाथ-वृद्ध-विकलांगों को निवास ऐसे उपक्रमों की आवश्यकता तो है ही, यह भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय समाज में फैले हुए अंधविश्वास ने देश को विकलांग बनाया है । इससे देश में हर दिन अंधविश्वास की नयी-नयी घटनाएँ घटित होती हैं । अंधविश्वास के कारण आज देश विकलांग हुआ है । इसके लिए पक्के मकान देकर इनका प्रश्न छुटने वाला नहीं । इन्हें शिक्षित कर जगाना सबसे मूलभूत कार्य है । तभी अंधविश्वास नष्ट होगा ।

3.3.4. जात पंचायत

घुमंतू जनजातियों में जात पंचायत का बहुत अधिक बोल-बाला रहा है । जात पंचायत के पाँच पंच यानी साक्षात परमेश्वर होते हैं । जात-पंचायतों के सदस्यों में स्त्रियों की भागीदारी न के बराबर होती है, लेकिन सबसे अधिक शोषण उन्हीं का होता है । जात पंचायत में सुनाया गया निर्णय नकार देने वालों को जाति से बहिष्कृत किया जाता है, और उस परिवार का हुक्का पानी भी बंद कर दिया जाता है । संगत-पंगत, रोटी-बेटी व्यवहार बंद करते हैं, पत्नी को मायके जाने नहीं देते, बिरादरी में उसे अकेला कर देते हैं । उसके साथ सगाई करने नहीं देते, किसी की

शादी का निमंत्रण नहीं देते आदि मार्गों से उस परिवार को समुदाय से दूर रखा जाता है । और कोई आदमी समाज के रीति-रिवाज का उल्लंघन करता है अथवा मद्द करता है तो उसे जात पंचायत द्वारा समझाया जाता है, अगर वह नहीं मानता है तो उसे भी बहिष्कृत किया जाता है ।

जोशी समुदाय में जात पंचायत के सदस्यों को 'परमेश्वर' माना जाता है । उनका निर्णय याने काले पत्थर की सफ़ेद लकीर समझी जाति है । जिन्हें 'पाटिल', 'नाईक' आदि नामों से जानते हैं । न्याय देने का कार्य उन्हीं सदस्यों के हाथ में होता है । जो उदरनिर्वाह के लिए भविष्य बताने से लेकर भीख माँगने तक का काम करते हैं किंतु समुदाय के सभी कार्य विधि में 'पाटिल' मौजूद होते हैं । जोशी समुदाय की जात पंचायत के बारे में रामनाथ चव्हाण लिखते हैं- "मढ़ी का निर्णय अंतिम होता है । मढ़ी ही घुमंतू समुदायों का सुप्रीम कोर्ट माना जाता है । यहाँ के निर्णय को कानिफनाथ द्वारा दिया निर्णय समझा जाता है । मढ़ी के निर्णय को अंतिम मानकर उस अपवाद को ख़त्म किया जाता है ।"[142]

लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा 'उचक्का' में दादा की मृत्यु जात पंचायत द्वारा किस प्रकार होती है इसका उल्लेख करते हैं-"पुलिसवालों की पीटाई से डरकर दादा उनका मुखबीर बन चुका था और तब से हमारे बिरादरी के कई लोगों को पुलिस पकड़ ले गयी थी । परिणामतः बिरादरी के अधिकांश लोग हमसे खार खाते थे । एक बार हम लोगों की बिरादरी की पंचायत बैठी, उसमें यह तय किया गया कि लिंगप्पा गायकवाड़ (मेरे दादा) मुखबीर बन चुका है, इस कारण अब धंधा करना मुश्किल हो गया है । चोरी छोड़कर मेहनत-मजदूरी की इच्छा सबकी है, पर उठाईगीर कहकर कोई काम नहीं देता । बाल-बच्चे भूख से परेशान हो रहे हैं इसलिए जात पंचायत ने यह तय किया कि लिंगप्पा को खत्म करना जरूरी है ।"[143] अंतः एक दिन रात को पंचों द्वारा दादा को मार दिया जाता है । साथ ही जात पंचायत के लोगों द्वारा ही दादा का अंतिम संस्कार कर दिया जाता है जिसके कारण उन पर कोई शक न कर सके । जात पंचायत के लोगों द्वारा दादा की मृत्यु पर कोई चर्चा और कोई शिकायत नहीं की गयी । वह अपने कार्य को

---

[142] भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत, रामनाथ चव्हाण, देशमुख आणि कंपनी (पब्लिशर्स) प्रा.लि., पुणे, दु.आ- 2016, खंड-1, पृ.सं- 100

* मढ़ीचा निर्णय हा अंतिम निर्णय समझला जातो. मढ़ी हेच या समाजाचे अंतिम निर्णयाचे ठिकान समजले जाते. 'मढ़ीला' सुप्रीम कोर्ट असेही म्हटले जाते. या कोर्टात निर्णय लागने म्हणजे खुद्द कानिफनाथनेच निकाल देणे असे समजले जाते. मढ़ीनंतर प्रकरणाला अपील होत नाही. अपील करण्याचे ठिकाण ही अर्थात अस्तित्वात असत नाही.

[143] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.अ- 2011, पृ.सं- 11

इतना स्वाभाविक ढंग से अंजाम देते हैं कि, दादा की मृत्यु स्वाभाविक लगती है। दादा की मृत्यु के बाद परिवार की सारी जिम्मेदारी दादी के कंधों पर आ पड़ती हैं।

घुमंतू जनजाति में जात पंचायत का बहुत बड़ा आतंक देखने को मिलता है। एक बार की घटना है जिसका वर्णन लेखक ने अपनी आत्मकथा में किया है। लेखक की भाभी के छोटे भाई की शादी का बुलावा आता है। उन दिनों जाति रिश्तेदारों के लोग अलग-अलग गाँवों से शादी में शामिल होने के लिए आते थे। विवाह के पहले ही कुछ रिश्तेदारों ने शराब पीकर झगड़ा कर दिया। उनमें से कुछ लोग कह रहे थे कि, यह शादी नहीं हो सकती क्योंकि लड़की की माँ अशुद्ध हो गयी थी। उसे अभी तक जात पंचायत ने शुद्ध नहीं किया था। वहाँ पर आए अलग-अलग गांवों के पंचों ने अलग-अलग राय दी थी। होली गाँव का मारोती तो कह रहा था, अगर यह शादी हुई तो हमारी बिरादरी में नाक कट जाएगी। इस संदर्भ में लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में लिखते हैं- "यह शादी हुई तो समझो कि अपनी जाति की नाक कट गयी- ऐसा वह ज़ोर-शोर से कहने लगा। इस लड़की की माँ की माँ (मतलब नानी) एक मराठा की रखैल थी। उस मराठा से इसकी माँ का जन्म हुआ और इस कारण इस लड़की का रक्त शुद्ध नहीं है। हमारे जाति के लड़के से इसकी लड़की का विवाह हो ही कैसे सकता है, ऐसा सवाल पूछने लगे।"[144]

इस लड़ाई झगड़े में विवाह का मुहूर्त निकल गया। परंतु कोई भी फैसला पंचों द्वारा नहीं किया जा सका। कुछ पंच तो कह रहे थे कि, इन दोनों परिवारों को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाए। जाति से बहिष्कृत होने से दोनों परिवार के लोगों में से कोई भी नहीं बोल रहा था। सब चुप थे। अंततः पंचों की चर्चा शुरू होती है उसमें से कोई पंच कहता है कि, लड़की की माँ को गू खाने के लिए कहा जाए, कोई कहता है इन पर दो हज़ार रूपए का दंड किया जाए, कोई कहता उसकी नाक कटवा दी जाए, लेकिन सभी तरहों की बातों के बाद यह निर्णय लिया गया की, लड़की की माँ का मुंडन कर दिया जाए। और इसी पर सभी पंचों की सहमती भी हुई परिणाम स्वरूप लड़की की माँ को बुलाया गया। लड़की की माँ सोचती है यदि मेरी बेटी का विवाह इस समय रूक गया तो बिरादरी में बेइज्जती होगी और उसका विवाह कभी नहीं हो सकेगा। यह सोचकर लड़की की माँ को जात पंचायत के निर्णय को मान लेना पड़ता है और आकार पंचायत सामने बैठ जाती है। उस स्त्री का पति खामोश होकर यह सब कुछ देख रहा था क्योंकि उसे भी जात पंचायत द्वारा समाज से बहिष्कृत होने का डर था। अगर वह जात पंचायत का निर्णय नहीं मानते तो उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता। जिसके कारण उन्हें कोई स्पर्श भी नहीं

[144] वही, पृ.सं- 87

कर सकता और उन्हें कोई पानी भी नहीं दे सकता, शादी-विवाह के निमंत्रण भी बंद किये जाते । अगर किसी रिश्तेदार के यहाँ चले भी जाते है तो उसे टोकरी में ख़ाना दिया जाता और पानी ढक्कन में दिया जाने का रिवाज पाया जाता है ।

घुमंतू समाज में शादी के पहले अनैतिक संबंध रखने वाली स्त्री शादी के बाद पति के अलावा किसी पर पुरूष से संबंध नहीं रख सकती है । इसके विपरीत पति कितनी भी शादियाँ कर सकता है या रखैल रख सकता है । अगर स्त्री को अपने पति के साथ न रहना है तो वह दूसरा विवाह कर सकती है, लेकिन इसके लिए उसे तलाक लेना पड़ेगा और साथ ही विवाह में जितना खर्चा हुआ है उतना पति के परिवार वालों को वापिस देना पड़ता है । फिर उसके बाद वह शादी के बंधंन से मुक्त हो सकती है ।

एक बार कौठा नामक गाँव में जात पंचायत बैठती है । जात पंचायत बैठने का कारण था, सालूबाई नामक स्त्री का पति कई शादियाँ कर चुका था । जिसके कारण सालूबाई की माँ ने जात पंचायत के नीति-नियमों के अनुसार सालूबाई के पति को रूपए देकर सालूबाई को मुक्त करा लेती है । जिसके बाद सालूबाई अपने माँ-बाप के पास कौठा गाँव में ही रहने लगती है । वह अभी जवान थी, इस कारण कौठा के ही रावण नामक बिरादरी के एक युवक के संपर्क में आ जाती है । रावण उसे विवाह के जूठे आश्वासन देकर यौन संबंध स्थापित कर लेता है । जिसके कारण सालूबाई को एक लड़की होती है । उसकी खबर पूरी बिरादरी में आग के समान फैल जाती है । पर किसी ने कुछ नहीं कहा और रावण के माँ-बाप ने दूसरी लड़की देखकर रावण के विवाह का निर्णय लिया । उसकी बात सालूबाई को भी पता चली और सालूबाई ने जात पंचायत बुलाई ।

जात पंचायत में दूर-दूर से लोग आते हैं । जात पंचायत के पंच कहते हैं कि सालूबाई को रावण से लड़की हुई है । जिसके कारण उसकी शादी सालूबाई से ही होगी दूसरी लडकी के साथ नहीं होनी चाहिए यह निर्णय किया गया । जिसके कारण खूब हो-हल्ला मचता है । जात पंचायत कई दिनों से चल रही थी कि, अंतिम दिन सालुबाई के पिता से पंच राय माँगने के लिए उठाते हैं तब पिता अपनी बेटी के बारे में टिप्पणी देते हुए कहता है-"देखीए, सालूबाई एक गाय है । मैंने उसे एक को बेच दिया, उसके साथ वह कुछ दिन रही । उसके बाद, यह गाय दूसरे स्थान पर आई । अब कवठा में बिना मालिक की है।"[145] जात पंचायत का निर्णय होता है कि

---

[145] वही, पृ.सं- 154

सालूबाई के पेशाब में रावण अपनी नाक डूबाए और साथ ही जुर्माने के नाम पर दो सौ इक्कावन रूपए दे । इस पर सभी पंचों की सहमति हुई । जिसके बाद सालूबाई एक टोकरी में अपना पेशाब ले आयी, और जात पंचायत के सामने रख देती है । उस पेशाब में रावण नाक डूबाता है और दूसरी शादी के लिए मुक्त हो जाता है । परंतु सालूबाई के पिता ने जो निर्णय लिया उससे वह हार जाती है और उसका जीवन नरक हो जाता है । सालूबाई की लड़की छः सात बरस की हो गयी परंतु आज तक उसके बाप का नाम न होने के कारण उसे किसी भी स्कूल में नहीं लिया गया । बिना बाप की यह लड़की अशिक्षित ही रहती है । जिसके कारण वह आगे चलकर चोरी करती है । उसका संबंध उठाईगीर समाज से जुड़ जाता है, जो उठाईगीर समाज का मुख्य पेशा है ।

जात पंचायत हर छोटी-बड़ी जाति में पाई जाती है और सभी जात पंचायत के अपने-अपने नियम, कानून, न्याय देने की पद्धतियाँ होती हैं । और यह जाति-जनजातियों में ज्यादा खतरनाक रूप देखने को मिलता है । इस संदर्भ में महाराष्ट्र के घुमंतू कैकाडी समुदाय की जात पंचायत को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं, जिसके संबंध में लक्ष्मण माने लिखते हैं- 'घुमंतू कैकाडी समाज में पुरूषों अथवा स्त्रियों के विवाह बाह्य अनैतिक संबंध रहते हैं तो, यह संबंध जात पंचायत के होने पर उन्हें ओठों से चप्पल उठाकर उन्हें गुनहगार घोषित करना, गरम किये गए तवे को हाथ से उठवाना, बिरादरी के बाहर किया जाना, स्त्रियों ने गुनाह किया तो उसके सिर के बाल काट कर गंजा करना, शरीर पर अन्य व्यक्तियों द्वारा थूका जाना, गधे का पेशाब मुँह तक ले जाना, सुअर के गु को खाने के लिए देना आदि प्रकार की सज़ा कैकाड़ी समाज की जात पंचायत में दी जाती है ।'[146]

घुमंतू पारधी समाज की जात पंचायत के निर्णय लेने में भी भिन्नता दिखाई देती है । लक्ष्मण गायकवाड़ ने अपने 'वकील पारधी' शीर्षक उपन्यास में इसका वर्णन किया है । "इस समाज विशेष की जात पंचायत का मानना है कि यदि किसी स्त्री का पति शिकार करते समय मारा जाए या किस दगा बाजी के कारण मारा जाए तो ऐसी स्थिति में उसकी विधवा पत्नी का विवाह उसके बड़े भाई के साथ बिना दहेज के किया जा सकता है । यदि पति की जगह पत्नी मर जाती है तो पति के साथ पत्नी की छोटी बहन के या किसी रिश्तेदार के बेटी के साथ बिना दहेज

[146] लक्ष्मण माने यांचे साहित्यः एक समाजशआस्त्रीय अभ्यास, ज्ञानेश्वर वाल्हेकर, पृ. सं- 148

के उस आदमी से शादी कर दी जाती है ।”[147] अतः इससे स्पष्ट होता है कि समाज विशेष के लोग अपनी जाति या समाज से बाहर रहकर स्वतंत्र रूप से कोई कार्य नहीं कर सकते । चाहे वक्त कितना ही दृष्ट क्यों न हो उसे सामाजिक बंधंनों के सामने झुकना पड़ता है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में जात पंचायत का वर्चस्व इतना मजबूत है की वे स्वतंत्रता के 75 साल बाद भी अस्तित्व में है । इसके कुछ उदाहरण निम्न-

जात पंचायत जैसी दर्दनाक घटनाएँ समाज विशेष को खोखला कर देती है । ऐसी घटनाएँ केवल विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में ही नहीं मिलती, बल्कि पूरे भारत के विभिन्न समाजों में भी यह जात पंचायत देखने को मिलती है । वह अलग-अलग रूपों में व्यक्त होती है । उत्तर भारत में इसी तरह खाप पंचायत कार्य करती है । जो कठोर से कठोर निर्णय लेती है । जाति के नाम पर उच्च वर्ग स्त्रियों और निम्न वर्ग को पीसता है । ऐसी ही एक घटना 16 सितंबर 2015 को एन. डी. टि .व्ही. द्वारा दिखाई गयी । ‘यह घटना उत्तर प्रदेश के बागवत जिले की है। खबर के अनुसार एक दलित परिवार का लड़का और एक उच्च वर्ग की लड़की के साथ दिल्ली में महेरौली इलाके में पाया गया । दोनों के बीच प्रेम संबंध था । बागपत में एक खाप पंचायत ने इस घटना से नाराज होकर फर्मान सुनाया कि, लड़की के परिवार के लोग बदला लेने के लिए दलित लड़के की दोनों बहनों के साथ बलात्कार करेंगे ।’

कुछ ही साल पहले (29 अप्रैल 2016) नागराज मंजुले के दिगदर्शन में बनी फिल्म ‘सैराट’ में भी प्रेम कहानी के माध्यम से समाज की विडंबनाओं को चित्रित किया गया है । फिल्म के कुछ समीक्षक इसे प्रेम कहानी कहते हैं परंतु यह एक प्रेम कहानी ही नहीं, बल्कि समाज में जाति व्यवस्था पितृसत्ता की जकड़ में समाज की भयानक दास्ता और विडंबनाओं का चित्रण करती है । फिल्म का नायक परश्या निम्न जाति का है और आर्ची उच्च वर्ग की लड़की (प्रेमिका) है। दोनों प्रेम में पड़कर घर से भाग जाते हैं । जिसके कारण दोनों परिवार वालों के सामने विभिन्न समस्याएँ निर्माण होती है । परश्या के बहन की शादी तो इसलिए नहीं होती क्योंकि उसका भाई एक उच्च वर्ग की लड़की को लेकर भाग गया है । उसकी सज़ा उसकी बहन को मिल रही है क्योंकि पटेलों के डर से कोई भी मछुआरे की बिरादरी के लोग उसकी बहन के साथ शादी करने से इनकार कर देते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि हर जाति समुदाय में बिरादरी का बंधंन होता है जिससे बाहर निकालने की सज़ा पूरे समाज को मिलती है ।

---

[147] वकील पारधी, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु-प्रभा शेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प.सं- 2011, पृ. सं- 87

वर्तमान समय कंजरभाट समुदाय में कौमार्य परिक्षण की प्रथा जारी है। यह प्रथा सदियों चली आ रही है। जिसके अंतर्गत केवल महिलाओं का परिक्षण किया जाता है। जो स्त्री इस कौमार्य परीक्षा में कामियाब होती है उसे पतिव्रता माना जाता है और जो स्त्री नाकाम होती है उसके साथ कोई शादी नहीं करता। सदियों से चली आ रही इस प्रथा की खबरे आये दिन देखने को मिलती है। उदाहरण स्वरूप 26 दिसंबर 2017 के पंजाब केसरी अनुसार-"महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में इस समुदाय की जात पंचायत पुलिस में भर्ती होने का सपना देख रही एक 20 वर्षीय युवती की शादी केवल इसलिए रद्द कर दी क्योंकि वह कौमार्य परिक्षण में पास नहीं हो पाई थी।"[148] इस प्रकार की घटना विरोध करने के लिए समुदाय के कुछ युवकों ने मुहीम चलाई है जिसमें युवतियाँ भी शामिल है। इस मुहीम का मकसद है कि शादी के बाद स्त्रियों का कौमार्य परिक्षण होता है उस कुप्रथा को ख़त्म करने के लिए। 'मुम्बई मिरर' समाचार पत्र के अनुसार-'महाराष्ट्र के पिंपरी-चिंचवड (पुणे) के युवाओं ने व्हाट्सअप के माध्यम से 'stop the 'v' ritual' नाम से ग्रुप बनाया। तब कुछ समुदाय विशेष के लोगों के द्वारा इन युवाओं को पीटने की वारदात सामने आई।' तब से महारष्ट्र में कुछ युवकों ने इस प्रथा के खिलाफ़ सक्रीय कार्य करने का निश्चय किया।

महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ में प्रबोधन एवं सामाजिक संघटनाओं द्वारा जात पंचायत जैसी अनिष्ट परंपरा को मिटने का बीड़ा उठा लिया है। अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के सदस्य कृष्णा चान्द्गुडे का कहना है कि-'उनका संगठन 2013 जे जात-पंचायतों के खिलाफ अभियान चला रहा है। अब तक उनका संगठन 11 जात-पंचायतों को भाग करवा चुका है। वे आगे बताते हैं, 'इन पंचायतों के नाम पर लोगों का भारी शोषण किया जाता है। क्रूर सज़ाएं दी जाती हैं। यहाँ भी ज्यादातर मामलों में महिलाएँ इनका शिकार बनती हैं और उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। यहाँ ऐसी सैकड़ों घटनाएँ हुई हैं लेकिन कभी इनकी शिकायत पुलिस में दर्ज नहीं हो पाई।' महाराष्ट्र में आज भी यदि जात पंचायत का वर्चस्व देखने को मिलता है तो इसकी एक बड़ी वजह ये है कि यहाँ इसके लिए विशेष कानून नहीं है। महाराष्ट्र में जात पंचायत की बर्बरता को कमज़ोर करने का योगदान अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति (डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर, कृष्णा चान्द्गुड़े) को जाता है।

---

[148]https://www.punjabkesari.in/blogs/news/young-people-of-conservative-community-gathered-against-virginity-test-727971 (22.12.1017, 05.20 pm)

3.3.5. नारी स्थिति

विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के स्त्री जीवन की स्थिति-गति विषयक जानकारी के बारे में सोचता हूँ तो, समझ में आता है कि, इनकी स्थिति अत्यंत चिंतनीय और दयनीय दिखाई देती है । मराठी में एक लोकोक्ति है-"घोड्याचे नसीब फुटले की, तो टाग्याला जुंपला जातो ।" अर्थात घोड़े की किस्मत फूटने पर, वह तांगे को जोता जाता है । ऐसा नसीब (स्थिति) घुमंतू जाति के स्त्रियों का होता है । घोड़ा जिंदगी भर तांगा खींचता रहता है, तो घुमंतू परिवारों के पालन-पोषण करने का उत्तरदायित्व इन स्त्रियों पर ही होता है । पुरुष घर का उत्तरदायित्व अपनी पत्नी पर छोड़कर खुद मुक्त रहता है । तब भी स्त्री परिवार को जिम्मेदारी के साथ संभालती है । परंतु घुमंतू स्त्री कभी प्रतिरोध की भावना दिखाई नहीं देती । इसका कारण हम देखते हैं तो स्त्रियों को बचपन से ही जिम्मेदारियाँ, पाबंदियाँ लगायी जाती है । घुमंतू जनजातियों बच्चों को जन्म के चार-पाँच वर्ष की उम्र में ही चूल्हा जलाने के लिए लकड़ियाँ, उपले इकठ्ठा करने की जिम्मेदारी दी जाती हैं । जिस उम्र में बच्चे को स्कूल जाने की आवश्यकता होती है, उस उम्र में बच्चों को घर के कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप दी जाती है । साथ ही बच्चों में पढ़ाई को लेकर हीन भावना होती है । उलट 'आमच्या सात पीडी मध्ये कोणी शिकलेले नाही, आम्ही कुठ शिकून कलेक्टर, आधिकारी होणार आहोत.(उलटा, हमारी सात पीढियों में कोई पढ़ाई नहीं कि, हम अभी पढ़ाई करके कहाँ कलेक्टर, अधिकारी बनने वाले हैं ।)' इसी मानसिकता के कारण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के समुदाय, परिवार के लोग देवी-देवताओं में ही बहते हुए दिखाई देते हैं।

3.3.5.1. पारिवारिक स्त्री

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ अत्यंत श्रद्धालु होती हैं । घर में कितनी भी दारिद्रता होने के बावजूद यह स्त्रियाँ हजारों रुपयों का कर्ज लेकर मन्नतें, मेलें, पूजा-अर्चना आदि पूरा करती हैं । जिसका फ़ायदा ढोंगीबाबा और पुजारी लोग उठाते हैं । बाद में यह लाचार होकर अपने नसीब को कोसती हैं । घुमंतू जनजातियों के लोगों की ऐसी धारणा है कि देवी-देवता मुर्गे-बकरे से ही प्रसन्न होते हैं, एखाध नारियल से नहीं । जिसके कारण ये कर्ज उठाते हैं । अंत: कर्ज का बोझ कभी कम होने में नहीं होता । दूसरी ओर घुमंतू स्त्री बच्चों को संभालते हुए, घर के काम, मेहनत-मजदूरी के काम पुरुष के बराबर करती दिखाई देती है ।

घुमंतू जनजाति की स्त्री पुरुष के बराबर मेहनत करती पाई जाती है । वह हमेशा किसी न किसी काम में लगी दिखाई देती है । वह अपने पारंपरिक व्यवसाय से लेकर भीख माँगने तक के काम बे-हिचक करती है । पराया आत्मकथा में लेखक की माँ पिताजी के बराबर काम करते दिखती है । पिता जब बैंड बजने के लिए कई दिन घर के बाहर रहते हैं तो माँ जिम्मेदारी के साथ घर संभालती है । ज्योतिष बताते हुए भिक्षाटन करते है तो माँ घर में बैठकर टोकरियाँ बनने का काम करती है । वह हमेशा पिता के बराबर मेहनत करते दिखाई देती है । "वे खूब मेहनत करते । रात भर उसे (पिता) और माँ को थके हुए नहीं देखा । दिन उगने पर दोनों डलियाँ बाँधकर बाहर निकल चुके होते । बाप आते समय कच्चे पेड़ की डाली का गट्ठर लेकर आता । माँ सामान लेकर आती ।"[149]

वैसे घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ परिवार पर बोझ नहीं बनती । वह हमेशा अपनी जिम्मेदारी निभाती देखी जा सकती है । 'बेरड़' आत्मकथा के लेखक भीमराव गस्ती की शादी पद्रह साल की उम्र में होती है । वे हमेशा पढ़ाई के कारण कभी देश में तो कभी विदेश में जाते हैं। जब बस्ती में होते है तो किसी आंदोलन या मोर्चों जैसे सामाजिक कार्य के लिए शहर या तहसील में व्यस्त रहते । तब घर की जिम्मेदारियाँ पत्नी 'कमला' पर आ जाती हैं । वह मेहनत-मजदूरी करके अपनी गृहस्थी चलती है । उसी का उदाहरण देते हुए लेखक अपनी पत्नी तथा बेरड़ो की स्त्रियों के बारे में कहते हैं-"उसने कभी मजदूरी करके तो कभी तूरुकमाटी में उगी घास काट-बेचकर...,मेरी अनुपस्थिति में गृहस्थी का बोझ उठाया है । यों बेरड़ों में मर्दों की अपेक्षा औरतें ही ज्यादा मेहनती होती हैं । काट-कटौती करके घर चलाने के मामले में माहिर हैं। अन्य स्त्रियों की भांति अपने पति की आमदनी पर निर्भर रहनेवाली असहाय औरतों की तरह 'अबला' मात्र नहीं होती।"[150] इस से भली-भांति पता चलता है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ स्वावलंबी होती है । वह अपने पति या परिवार पर निर्भर नहीं होती ।

वहीं घुमंतू जनजाति के कोल्हाटी समुदाय में स्त्री परिवार का उत्पादन होती है । वास्तव में स्त्रियों को गुलाम बनाने का सबसे बड़ा कारण धार्मिक, सामाजिक प्रथा-परंपरा हैं जो स्त्री को बंदी बनाकर रखती है । इसी समाज में ऐसा भी समुदाय पाया जाता है जहाँ बेटी के जन्म पर खुशियाँ मनाता है । इसके पीछे का बड़ा कारण यह है कि, लड़की 5-6 वर्ष की उम्र में होती है, तब से उसे स्कूल के बदले नाच-गाना सिखाने को भेजते हैं । उनके पाँव में घुँघरू बांधते है । पाँव में घुँघरू बांधकर जब नाचने के लिए जाती हैं तब लोहे की बेड़ियों से अधिक मजबूत और

---

[149] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 45

[150] बेराड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं-2006, पृ.सं- xvi

खतरनाक महसूस करती हैं । जिस प्रकार घोडा जिंदगी भर तांगे को खींचता है उसी प्रकार कोल्हाटी समुदाय की स्त्री अपने परिवार के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व निभाती है ।

जब विमुक्त घुमंतू जनजातियों के संघटन में काम करते समय लेखक मराठवाड़ा क्षेत्र के उमरगा गाँव में सभा कर रहा था तो उस समय लेखक के सामने कुछ महिलाएँ अपनी पीड़ाएं व्यक्त करती हैं । उनकी पीड़ाओं को लक्ष्मण माने जस-का-तस लिखते हैं-'हमें घर दो आप भाषण क्यों दिए हो ? हम तुम्हें छोड़ेंगे नहीं । तुम नेता क्यों बने ? हमें काम, घर देने की घोषणा करते हैं और सब लोग हमें फसाँते हैं, हम क्या करे ? घर नहीं, हाथ के लिए मजदूरी नहीं पुलिस वालों का हर दिन जुल्म चालू है, हमारे पुरूषों को अकारण उठा ले जाते हैं । हम कैसे जीए, दो वक्त की रोटी नहीं मिलती । हम औरतें क्या करें ।'[151] घुमंतू जनजातियों के स्त्रियों की पीड़ाएं अन्य समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती है । उन्हें अपने परिवार वालों, पति तथा बाहर तथाकथित समाज के पुरूषों और पुलिस व्यवस्था के द्वारा शोषित किया जाता है । घुमंतू समाज के संगठन कार्य से अनेक कार्यकर्ता के सहयोग से स्त्रियों पर होने वाले अन्याय- अत्याचार कम होते दिखाई देते हैं । इस कार्य में लक्ष्मण गायकवाड़ की पत्नी छबूबाई भी संगठन कार्य में स्त्रियों को न्याय तथा संगठित करने का कार्य करती हुई दिखाई देती है । लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-"मेरी पत्नी छबू पढ़ी-लिखी नहीं है परंतु आंदोलनों में मुझे वह पूर्ण सहयोग देती है । मोर्चे में सहभागी होकर स्त्रियों को सुधारने और संगठित होने के लिए प्रवृत्त करती है ।"[152] घुमंतू जनजातियों के जीवन की कठिनाइयाँ बिना संगठन कार्य से नहीं हो सकती। इसके लिए केवल शिक्षा ही उनकी कठिनाईयों और पीड़ाओं को दूर कर सकती है । इसलिए घुमंतू जाति, जनजातियों के नेताओं को अपने-अपने समाज के लोगों को शिक्षा की ओर ध्यान केंद्रित और प्रेरित करना होगा । इस बारें में बाबासाहब भीमराव अंबेडकर ने ऐसे ही नहीं कहा था कि 'शिक्षा शेरनी का दूध है, जो पिएगा वह दहाड़ेगा ।' इसलिए स्त्रियों के अलावा अन्य हज़ार प्रश्नों का उत्तर एक ही है वह है शिक्षा ।

पितृसत्ता के प्रश्न पर भी असमंजस्य की स्थिति बनी हुई है । इसे बड़े तल्ख़ के स्वर में उर्मिला पवार अपने एक लेख में कहती है-"दलित पुरुष मनुष्यता की लड़ाई लड़ते हैं । लेकिन,

---

[151] लक्ष्मण माने यांचे साहित्यः एक समाजशआस्त्रीय अभ्यास, ज्ञानेश्वर वाल्हेकर, पृ- सं- 126

[152] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, दू. आ-2011, पृ.सं- 160

मनुष्यता है क्या, यह नहीं जानते । अपनी औरतों के प्रति उनका व्यवहार अमानवीय तो होता नहीं ।"[153] वंचित जाति-जनजातियों की पढ़े-लिखे पुरुषों की ओर से इस व्यवहार के लिए गंभीर रूप से आत्ममंथन की माँग करती है । परंतु ऐसे नहीं होता । नारियों की स्थिति दयनीय होती है। स्त्रियों के हिस्से दोहरा दलितत्व है । उनके पति घर में जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं उसी प्रकार का व्यवहार इन लोगों के साथ बाहर का समाज करता है । इसे स्वीकारते हुए लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-"कपास के सूक्ष्म कण साँस के साथ भीतर जाते और मज़दूर बीमार हो जाते, इच्छा होती की यह नौकरी छोड़ दूँ । मजेदार बात देखिए की अपने पुरूषार्थ का प्रदर्शन करने के लिए मैं घर पर पत्नी को गालियाँ देता और पीटाई करता तो मिल में अधिकारी लोग मेरे साथ वही सलूक करते । सुपरवाइजर तो मजदूरों को अपनी पत्नी समझकर ही पीटाई करते थे, गंदी गालियाँ दिया करते थे ।"[154]

इसी वंचित जाति-जनजातियों में पितृसत्ता की जनतांत्रिकता को जाँचने की ज़रूरत है । दया पवार के साक्ष्य से कहें तो इस पितृसत्ता की पैठ 'हिंदू पितृसत्ता' जैसी ही है । दया पवार लिखते हैं "निश्चित ही भारतीय समाज की नीति का बोझ मेरे कंधों पर भी है । पुरूषों के बारे में, उनके लफडों के बारे में किसी को कुछ नहीं लगता । परंतु अपनी औरत के बारे में मात्र शंका भी हो जाए तो कितनी बड़ी रामायण घटित होती है, यह सबको मालूम है ।''[155] इससे पता चलता है कि पुरूष द्वारा की गयी रंडीबाजी अर्थात छाती पर एकाध मेडल लटकाने जैसा वातावरण चारों ओर होता है । परंतु पुरूष स्त्री से सत्यवान सावित्री या पतिव्रता ही रहने की अपेक्षा करता है । वह नहीं चाहता की अपनी स्त्री का कहीं बाह्य संबंध हो । इसी की गहरी पीड़ा के साथ दया पवार अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि पितृमूलक मनोरचना के कारण उन्होंने अपनी पत्नी सई को संदेह के बिना पर छोटी सी बच्ची के साथ घर से निकाल देते हैं । और पढ़ी-लिखी युवती के साथ दूसरी शादी करते हैं । सई की दुर्दशा की नैतिक जिम्मेदारी को स्वीकारते हुए लेखक लिखते हैं-"एक दो बार मैंने उसे सरसरी निगाह से संगमनेर के बाज़ार में देखा । बदन

---

[153] दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.सं- 2015, पृ.सं- 157-158

[154] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, दू. आ-2011, पृ.सं- 4-5

[155] दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.सं- 2015, पृ.सं-158

पर मैली साड़ी । सिर पर घास का गठ्ठा । पेट पर नन्हा सा बच्चा, धोती में बंधा हुआ । उनके सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई । लगा, उसकी इस जिंदगी के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ।"[156]

3.3.5.2. शोषित स्त्री

घुमंतू जनजाति में स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है । पुरुषों के साथ वह भी पीसती है । मूलतः पेट की आग बुझाने के लिए उठाईगीर समुदाय के कुछ लोग छोटी-मोटी चोरी करते हैं इसलिए यह जाति उठाईगीर नाम से जानी है । चोरी कहीं पर भी हो पुलिस का शक उठाईगीर टोलियों पर होता है । रात-बेरात समय घर आकार पूरी बिरादरी के साथ अमानवीय व्यवहार करती है । जो चोरी नहीं जानता है न करता है उसे भी पुलिस पीटती हैं, उनके साथ छेड़छाड़ करती हैं । स्त्रियों की गलती न होते हुए भी उन्हें मारती हैं । इसे 'उचक्का' में पुलिस द्वारा स्त्रियों के साथ किया गया व्यवहार के रूप में देख सकते हैं-"घर के सभी सदस्यों को एक पंगती में खड़ा कर पुलिस हंटर से मारने लगी । सामने जो भी दिखा-छोटा हो या बड़ा या औरत सबको-पीटने लगे। मेरी माँ भोली-भाली, उसे चोरी क्या होती है, इसका पता भी नहीं था । फिर भी उसे खींच कर पुलिस पीटने लगी । उसके स्तनों को पकड़कर पुलिस पूछती है, "बोल साली, बोल, तेरे इन लौंडों ने चोरी का माल कहाँ रखा है ?" माँ रोने लगी । घर में कुछ भी नहीं था, वह क्या बताती? "[157]

इस समाज के लोग बार-बार कोशिश करते हैं कि कोई काम मिल जाए, परंतु समाज की नजर में अपराधी जाति होने के कारण कोई काम नहीं देता । ये गाँव को छोड़कर बिना इजाजत के नहीं जा सकते है । इस कारण बेहद गरीबी, भुखमरी, पुलिस के अत्याचार के कारण ये छोटी-मोटी चोरियाँ करने लगते हैं जो इनके जीवनचर्या का हिस्सा बन जाता है । कभी-कभी स्त्रियाँ भी मजबूरन चोरी करने लगती है । चोरी करते स्त्रियाँ अगर पकड़ी जाती है तो अन्य समाज विशेष के लोग और पुलिस इनके साथ अमानवीय व्यवहार करती है । पुलिस का अत्याचार बयां करते हुए लेखक की दादी बताती है-"जब पुलिस पकड़ लेती है तब उलटा टांग देती है, हंटर से मारती है, जलती सिगरेट दागती है । अगर चोरी कबूल न कि, तो मुँह में गू ठुसने की कोशिश करती है ।"[158] भारतीय पुलिस व्यवस्था में महिला पुलिस वर्ग होने के बावजूद भी इनकी

---

[156] वही, पृ.सं-158

[157] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, दू. आ-2011, पृ.सं-18

[158] वही, पृ.सं- 13

गिरफ्तारी के लिए स्त्री पुलिसकर्मियों का सहयोग नहीं लिया जाता है । बल्कि पुरुष पुलिसकर्मीयों द्वारा ही स्त्रियों की गिरफ्तारी की जाती है, जो उनके साथ शोषण और अभद्र व्यवहार करते हैं ।

लातूर के निकट पारधियों का एक तंबू था । इसमें हीराबाई नामक पारधी स्त्री की प्रसूति होती है । प्रसूति के बाद घर पर खाने के लिए कुछ नहीं होता है । चोरी के आरोप में पति जेल जाने के कारण हीराबाई काफ़ी परेशान होती है । दो-तीन दिन उसने पानी पर निकाले हैं । अंततः मजबूर होकर उसने परिवार नियोजन का ऑपरेशन करवा लेती है । ऑपरेशन से दो सौ रूपए मिलने पर उसने आधा थैला ज्वार तथा अन्य सामान खरीद लेती है । उन दिनों पड़ोस के किसान की ज्वार चोरी होती है । इस कारण पुलिस वालों के पास वह शिकायत दर्ज करता है । पुलिस वालों को चोर का पता नहीं लग पाता है । जब पुलिस को का पता नहीं चलता, तो वे सीधे घुमंतू जाति के टोलियों के पास जाती हैं । वहाँ 'टाकमुद्या' (विनाकारण) किसी को भी पकड़ लेते हैं । अपनी आदत के अनुसार वे पारधियों की टोली की तलाशी लेना शुरू करते हैं । तब उसे औरत की पाल में ज्वार का आधा थैला मिलता है । पुलिस पूछने लगती हैं कि तेरे घर में ज्वार का थैला कहाँ से आया है । हीराबाई की दयनीय अवस्था का चित्रण अपनी लेखक आत्मकथा 'उचक्का' में करते हैं-"साहब, जब प्रसूति हुई तब खाने के लिए कुछ नहीं था, आपकी कृपा से पति जेल में है । इस कारण मजबूरी में मैंने बच्चा न होने वाला ऑपरेशन करा लिया । वहाँ से दो सौ रूपए मिले उसी से मैंने ज्वारा का आधा थैला खरीद लिया । साहब मेरी छाती में दूध नहीं आ रहा था, इसलिए मैंने यह ज्वार खरीद ली ।"[159] हीराबाई ने ऑपरेशन का प्रमाणपत्र पुलिस वालों को दिखाया परंतु पुलिस उसकी बात को मानने के लिए तैयार नहीं थी। अंततः हीराबाई को नए जन्मजात शिशु और आधा थैला ज्वार के साथ पुलिस थाने में ले गए । यहाँ आश्चर्य इस बात का है कि भारतीय पुलिस स्त्री पुलिस प्रतिनिधि का सहयोग नहीं लेते हैं । घुमंतू जनजाति की स्त्रियों पर अपना अधिकार ही समझती हैं । इसलिए उसके साथ छेडछाड़ और शोषण करती हैं । इस स्त्री के दैन्य जीवन से संबंधित मराठी में एक लोकोक्ति देख सकते है- "जावे त्यांच्या वंशा तेव्हा कळे." अर्थात जब तक उसके वंश में नहीं जाते तब तक हम उसके जीवन की कठिनाईयों और संघर्ष को समझ नहीं सकते ।

---

[159] वही, पृ.सं- 138

ये घुमक्कड़ी करते इन समुदायों को किसी गाँव में बसने के लिए पाटिल या मुखिया की अनुमति लिए बिना बस नहीं सकते । कई बार उनके रहने का स्थान गाँव के बाहर होता है तो कभी जमींदारों के बंजर जमीन पर या पडीक बाड़े में । इनके पुरुष अपना पारंपरिक व्यवसाय या मजदूरी करने जाते हैं । तो स्त्रियाँ पटेलों, जमींदारों के घर कपड़े धोने या बर्तन माँजने जाती है, ओर कुछ महिलाएँ उनके खेतों में खुरपने जैसे छोटे-मोटे काम करती हैं । तब गाँव के पटेल, ज़मींदार घुमंतू समुदायों की स्त्रियों का शोषण करते हैं । यह शोषण कई बार स्त्रियों के विरुद्ध होता है तो कई बार उन्हें मजबूर होना पड़ता है । 'बिराड' आत्मकथा में बेलदार समुदाय एक गाँव के बाहर बसे होते हैं । एक दिन रात में आँधीयों के साथ तूफानी बारिश होने लगती है, उनके तंबू उखड़कर दूर-दूर तक बिखर जाते हैं । वे चीख-चिल्लाहट के साथ ही गाँव की ओर निकलते हैं । बसने के लिए कहीं सहारा मिलता है तो वे स्कूल में घूस जाते हैं । सुबह होते है स्कूल मास्टर वहाँ से भगा देता है, तब रहने की समस्या खड़ी होती है । ऐसे में गाँव के पाटिल ने उन्हें अपने पडीक बड़े में रहने की इजाजत देते है और साथ काम (मजदूरी) भी । कुछ ही दिनों में पाटिल और बलदारों की दोस्ती होती हैं । यह दोस्ती शराब, मटन खाने-पीने में बदल जाती है । बेलदारों की स्त्रियाँ पटेल के घर काम करने जाती है । बेलदारों के अच्छे दिन गुजर रहे थे । हर दिन पाटिल और बेलदारों के मजे चलते हैं । 'एक दिन आधी रात को पाटिल धीरे से आकार यंकातात्या की पत्नी सरी मामी के कंबल में घूस जाता है । यंकातात्या यह सब देखकर चुपचाप माथा पीट लेता है ।'[160] परंतु ऐसी स्थिति में घुमंती समुदाय के स्त्री-पुरुष शोषित होने के अलावा कुछ नहीं कर पाते ।

घुमंतू जनजाति में स्त्री का सुंदर दिखाई देना श्राप ही होता है । क्योंकि उच्च वर्ग के कुछ गुंडों की नजर इन स्त्रियों पर हमेशा वासना भरी होती है । इस वासना की शिकार घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ हमेशा होती रही हैं । लक्ष्मण माने अपनी आत्मकथा 'पराया' में लिखते हैं । हमेशा पारूबाई की सुंदरता का डर लेखक की माँ को होता है । पारूबाई केवल हर दिन नहा-धोकर, बाल व्यवस्थित सँवारने के कारण सुंदर दिखाई देती है । इस कारण गाँव के लोगों की नजर इस पर होती है और एक दिन उच्च वर्ग के लोगों द्वारा बलात्कार किया जाता है । पारूबाई पर प्रसंग होने पर लेखक की माँ कहती है-"भिखारीन पवित्रता-सी रहनी चाहिए !

---

[160] बिराड, अशोक पवार, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, सातवी आवृत्ती- नोव्हेंबर 2014, पृ.सं- 55

* आर्धी एक रात झाली असंल. तवा पाटिल हळूच उथला. आन् सरीमामीच्या हातुरनात गेला. सरीमामीनं पाटिल एकाच हतुरनात झोपले. हे यंकातात्यानं बगतलं. आन् यंकातात्या गपचीप कपालावर हानून घेऊ लागला.

नौटंकी की नचनिया-सी नाज-नखरे नहीं करना चाहिए नहीं तो पारू जैसा हाल होता है !"[161] यह कहते हुए लेखक की माँ समुदाय की सभी स्त्रियों का ध्यान आकर्षित करती होगी । सुंदर रहकर जीवन जीना यहाँ नहीं, ऐसा संकोच व्यक्त होता है । सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग अपने वर्ग में नहीं, क्योंकि हमारी क्षमता नहीं इसमें यह स्पष्ट होता है ।

कोल्हाटी समुदाय में स्त्री का सुंदर होना शुभ माना जाता है । इसके पीछे उनके परिवार का स्वार्थ छिपा होता है । इस समुदाय में जो स्त्री सुंदर होती है उसकी उसकी कीमत उतनी ही अधिक होती है, उनकी शादी नहीं होती । शादी की बजाय उनका सिर्फ 'चीरा' उतारा जाता है । चीरा उतरने का मतलब-उनकी सार्वजनिक नीलामी करके स्त्री को 'अस्थायी बेचना' । "चीरा उतरने की रस्म शादी-ब्याह जैसी होती है । नाचनेवाली के जीवन में जो पहला आदमी आता है उसे नाचनेवाली के परिवार द्वारा माँगी गयी रकम अदा करनी पड़ती है । अदायगी सोना, जमीन-जायदाद या रुपयों के माध्यम से भी हो सकती है ।"[162] नाचनेवाली के जीवन में जो पहला आदमी आता है उसके जीवन में पति का स्थान पाता है । उसे नाचनेवाली का मालिक कहा जाता है । फिर वह 'चीरा' उतरने वाले की मर्जी से हो या किसी और की मर्जी से । उस स्त्री का शोषण दोहरा होता है । एक परिवार बेचता है और दूसरा खरीद कर मन मर्जी से व्यवहार करता है । 'फुल में जब तब खुशबू है, उसे सब सूँघते रहते हैं, जब वह सूखने लगता है उसे फेंक दिया जाता है ।' इसी प्रकार नाचनेवाली स्त्री का हाल होता है । उसका मन भर नहीं भरता तब तक उसे सूँघते हैं और मन भरता है तो उसे छोड़ कर भाग निकलते हैं । फिर से वहीं क्रम शुरू होता है, परिवार के लिए नाच-गाना, शरीर बेचना आदि ।

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को सरे मानवीय अधिकारों से वंचित कर उन्हें जानवरों की तरह बनाये रखने की कोशिश की है । उनसे शिक्षा का अधिकार छिना, संपत्ति का अधिकार छिना, उन्हें अपनी बात रखने का मौका नहीं दिया गया, इच्छा के अनुसार जीवन जीने का अधिकार छिना । यही स्थिति कोल्हाटी समुदाय के स्त्रियों की है । वह नाच-गाना बिल्कुल पसंद नहीं करती है । फिर भी नाच-गाने के लिए मजबूर होना पड़ता क्योंकि समाज इन्हें हीनता की दृष्टि से देखता है । नाच-गाना छोड़कर मेहनत-मजदूरी करने को तैयार होती है परंतु वेश्या समझकर उन्हें मजदूरी नहीं दी जाती । नाचनेवाली के रूप में ही बनाये रखने की साजिश को लेखक व्यक्त करता है-"स्त्रियों को नाच-गाना बिल्कुल पसंद नहीं है फिर भी उन्हें मज़बूरी से

[161] पराया, लक्ष्मण, माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं-56

[162] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली,प.सं-1997, पृ.सं- 18

नाचने के लिए मजबूर किया जाता है । इस समाज के लोग स्त्रियों ने कमाए हुए पैसों से ही मौज-मस्ती करते हैं, शराब पीते हैं । इस कारण इन्हें कोई मजदूरी नहीं देता । समाज ने नाचनेवाली स्त्री को केवल वेश्या या दासी के रूप में ही देखा है, उनका आदर या सम्मान कोई नहीं किया । वे चाहते तो अपनी जीविका चोरी कर या अन्य मार्ग से कर सकती थी परंतु वह उचित नहीं समझी ।"[163]

3.3.5.3. परित्यक्ता स्त्री

लक्ष्मण गायकवाड़ ने अपनी आत्मकथा में उठाईगीर समाज की ईटी नामक युवती का चित्रण किया है । जिसने दो-तीन शादियाँ की थी । एक पति उठाईगीर की बिरादरी का था । बाद में वह एक मुसलमान के साथ रहती है, दोनों ही चोरियाँ करते हैं । उठाईगीर बिरादरी में ही रहते हैं । एक बार की बात है कि वे दोनों चोरियाँ करने जाते हैं । चोरी में कुछ नहीं मिलता। आते वक्त ट्रेन में वे आलंदी पुणे तक किसी प्रकार बिना टिकट की यात्रा करते हैं । परंतु आगे की यात्रा बिना टिकट के संभव नहीं थी । खाने के लिए भी कुछ नहीं था । काफ़ी परेशान हो जाते हैं तो इस स्थिति का वर्णन लेखक कहता हैं-"अंततः ईटी ने अपनी डेढ़ साल की सुंदर लड़की को, जिसे उसने नौ महीने अपने गर्भ में संभाला था, दो सौ रुपये में पुणे में बेच दिया । तीन-चार वर्ष के लड़के को अपने पास रखा ।"[164] यहाँ पर सोचने की बात है कि ईटी एक माँ होकर भी अपनी बच्ची को बेच देती है, दूसरी तरफ़ लड़के को रख लेती है क्योंकि वह आगे चलकर चोरी करने के काम आएगा और अपने घर को संभालेगा । परंतु बच्ची को लड़की होने के कारण बेच दिया जाता है । क्योंकि हमारे पितृसत्तात्मक समाज में सदियों से सुनते आ रहे है कि 'लड़की पराये घर का धन है' इस वजह से उसे बेच दिया गया । और लड़का 'खानदान का चिराग होता है' इसलिए उसे साथ रख लिया जाता है । भारतीय माता-पिता की सामाजिक, मानसिक स्थिति का उदाहरण है । जो स्त्रियों को आज भी हीन भावना से देखा जाता है इसलिए आज लड़कियों की भ्रूण हत्या की जाती हैं ।

ऐसे ही एक प्रसंग का वर्णन दया पवार अपनी आत्मकथा 'अछूत' में करते हैं । जमना लेखक की मां की दूध बहन तथा उसकी मौसी है । उसके पति ने उसे वैश्यालय में लाकर बेच

---

[163] वही, पृ. सं-

[164] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ.सं- 129

दिया। लेखक उसे मिलने जाते हैं। जमना मौसी उस पर अपना असीम प्यार न्यौछावर कर देती है। नये कपड़े खरीदवाती है, पैसे देती है, दोबारा आने का आग्रह करती है। लेखक को बाद में ज्ञात होता है कि जमना मौसी ने धंधा (वेश्यावृत्ति) छोड़ दिया, अब भीख माँगती है। सहयोगवश लेखक की उससे मुलाकात हो जाती है। लेखक आत्मकथा में लिखते हैं-"मैं दादर के पुल के नीचे से जा रहा था। मेरे साथ कई बड़े लेखक भी थे। पुल के नीचे भिखारियों का बहुत बड़ा झुंड। कुछ लोगों ने अस्थायी बोरे के तंबू खड़े किये थे। उन भिखारियों के झुंड में दयनीय चेहरे और फटे कपड़ों में लिपटी जमना को मैं पहचान लेता हूँ। वह जमना ही थी। वह मुझे पहचान लेती है। वह मुझे एकटक देखती है। मैं मुड-मुडकर देखता हूँ, आज भी उसकी नजरे मेरा पीछा कर रही है। उसके साथ साधारण संवाद भी मैं न कर पाया। लगा, इन टेरीलीन के कपड़ों में मैं कितना सफ़ेद पोश हो गया। साथ के मित्रों को क्या बताऊँगा, शायद यह भी द्विधा रही है। और मान लिजिए, जमना से बात भी की होती और उसे घर भी ले गया होता तो क्या मेरी पढ़ी-लिखी पत्नी उसे घर में रहने देती ?''[165]

यल्लवा, सोपान जीजा की चौथी पत्नी होती है। यह दोनों एक सात चोरियाँ करने निकलते हैं। ये दोनों बगैर शराब पिए चोरियाँ कर ही नहीं सकते हैं। कभी-कभार चोरी के लिए काफ़ी दूर निकल जाते हैं। और बाद में चोरी की वस्तुओं को बाँटने के प्रश्न को लेकर कभी-कभी दोनों में खूब झगड़े होते हैं। दोनों शराब पीते हैं और फिर झगड़ते हैं। यल्लावा अपने पति सोपान से कहती है-"मैं सोने के इतने अलंकार ले आई, पर मुझे तुमने कितने पैसे दिए ?" सोपान कहता, "येल्ले, मैं तुझे अपनी रखैल बनाकर लाया हूँ। तुझे सगी पत्नी की तरह लिए घुमाता हूँ। तू जब ज्यादा कमाई ला देती है, तब मैं खुशी से तेरा हिसा देता हूँ। फिर भी तू शिकायत करती है ?"[166] सोपान यल्लावा अपनी पत्नी को अपने अधीन रखने का प्रयास करता है। पितृसत्ता में पला हुआ मर्द कभी-न-कभी अपना गुस्सा स्त्री पर जमाकर अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयत्न करता है।

3.3.5.4. देवदासी स्त्री

'देवदासी' को सर्वेंट ऑफ़ गॉड, देवारदियार, देव की दासी, जोगतीन, मुरली आदि नामों से जाना है। देवदासी बनने का मतलब होता था भगवान या देवता की शरण में चला जाना।

---

165 अछूत, दया पवार, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ- 126

166 उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ.सं- 90

उन्हें भगवान की पत्नी समझा जाता था। इसके बाद वह स्त्रियाँ किसी जीवित आदमी से शादी नहीं कर सकती थीं। पहले देवदासियाँ मंदिर में पूजा-पाठ और उसकी देख-रेख के लिए होती थीं। वे नाचने गाने जैसी तमाम तरह की कलाओं का प्रदर्शन करके राजा-महाराजाओं को खुश करने का काम करती थीं। बदले में जो मिलता था और मंदिर में भगवान को चढ़ाएँ गए नैवद्य व फलों पर अपनी जीविका चलाती थी।

कालांतर में इस प्रथा में बदलाव दिखाई नजर आता है। जिसमें पुत्र प्राप्ति के नाम पर लडकियों को देवी के नाम पर छोड़ा जाने लगा। वह देवी के नाम पर भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलती है। ऐसे समय उन्हें समाज के दबंग पुरुषों की हवस का शिकार बनते दिखाई देती है। इसी प्रकार महाराष्ट्र में देवी के नाम पर 'लड़का' छोड़ा जाने की प्रथा मौजूद है। जिसे पोतराज, जोगता या वाघ्या नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्र पोतराज छोड़ने की प्रथा केवल वंचित जाति-जनजातियों में दिखाई देती है। इसका कारण संकटों से परिवार बचने, बीमारी का इलाज होने, धंधे में बरकत आने हेतु मन्नतें माँगा करतें, और बदले में इस बार होने वाले बच्चे को देवी के नाम पर छोड़ने की कसम खाते। पोतराज भिन्न-भिन्न प्रकार के बने कपड़े का घागरा (फ्रोक) पहन कर अर्धनग्न, बड़े-बड़े बाल, हाथ में चाबूक लिये, शरीर पर वार करते हुए देवी के नाम पर भिक्षाटन करता है।

देवदासी प्रथा हजारों साल पुरानी है। इस अमानवीय प्रथा पर रोक लगाने के लिए कई बार क़ानूनी व्यवस्था बनायी गयी, बावजूद इसके प्रथा बरक़रार रही। हमें यह जानना जरुरी हो जाता है कि इस प्रकार की प्रथा किस क्षेत्र और समुदायों में जीवित (कायम) है। यूँ तो "देवदासी प्रथा बंद करने का सर्व प्रथम प्रयास 1910 में मैसूर संस्थान द्वारा किया गया था। इसके बाद उस समय के मुंबई और मद्रास प्रांतों में इसे क्रमशः 1934 व 1947 में लागू किया।"[167] बावजूद इसके देवदासी प्रथा निरंतर बरक़रार है, इसके उदाहरण 1980 के आसपास लिखी गयी दलित व विमुक्त-घुमंतू जनजातियों की आत्मकथायों में मिलते हैं। बेरड़ आत्मकथा में लेखक अपने मामा के बेटी को देवदासी प्रथा में छोड़ देने का वर्णन करते हैं-"निंगोमामा के बड़ी लड़की, सौदत्ती की यल्लमाँ देवी के माँ छोड़ (अर्पित) दी थी। इसलिए वह "लड़की" से एक जवान "बेटी" में ढल चुकने की बावजूद अनब्याही-कुंआरी थी। और प्रथा के अनुसार उसका

---

[167] http://vikaspedia.in/social-welfare/93839e92e93e91c93f915-93890291593294d92a92893e-935-93890291c94d91e93e/92694793592693e938940 (22.12.2017, 10.00 pm)

* देवदासी प्रथा बंद करण्याचा प्रथम प्रयत्न मैसूर संस्थानाने 1910 साली एक कायदा करुण केला. नंतर त्या वेलेच्या मुंबई प्रांताने 1934 साली व मद्रास प्रांताने 1947 अशाच प्रकारचे कायदे केले.

ब्याह भी नहीं होना था। यानी धरैतीन-औरत की जिंदगी उसके लिए नहीं थी । यों दिखने में एकदम गोरी-चिट्ठी-नोक-पलक और गदराए बदन की साक्षात्-लक्ष्मी ! नाम था, उसका-सत्यव्वा।"[168]

देवदासी परंपरा में कथित रूप से लड़कियों को दुल्हन की तरह सज़ाया जाता है और उत्सवधर्मिता, शादी-ब्याह जैसे समारोह में नाचने के लिए बुलाया जाता है । इनका नाचना भी लाजमी है । न नाचते तो घर चलने का प्रश्न उठता है । यदि उस लड़की ने भावना में बहकर अनैतिक कृत्य किया तो या समाज दोष किसे देगा ? उस लड़की को ? या जिसने किया उसको ? समाज हमेशा दुर्बलता पर शक करता है । परंतु अधिकत्तर समाज के दबंगों का शिकार होती है तो कई बार स्वेच्छा से जाना पड़ता है । डेराडंगर में दादासाहब मोरे लिखते हैं-"नैवद्य, बाजा बजाते, देविदासियों को नाचते हुए लाये जाते थे । देवदासियों को इस स्थिति में देखकर मुझे बात खटकती थी । देवदासी यानी वह लड़की या स्त्री जो बचपन से देवी के नाम से छोड़ दी है।...उसका ब्याह देवी के साथ किया जाता है । लेकिन अंधश्रद्धा के दुश्चक्र में लिप्त हुआ समाज उस लड़की के भविष्य का विचार ही नहीं करता ।"[169]

यह प्रथा विशेषतः कर्नाटक, तेलंगाना, आध्रप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोवा में प्रचलित है । इस अनिष्ट प्रथा को बंद करने के लिए कई बार आंदोलन किये गए, गैर कानूनी घोषित किया गया । जिसमें एक रिपोट के अनुसार-"कई आंदोलनों के बाद कर्नाटक सरकार ने 1982 में और आंध्रप्रदेश सरकार ने 1988 में गैर कानूनी घोषित कर दिया था ।"[170] सरकार की इस बातों से पता चलता है, वे इस प्रथा के खिलाफ ठोस निर्णय नहीं ले रही है । इसके लिए ठोस निर्णय लेना होगा और सर्वेक्षण करना होगा कि, उनकी संख्या, व्यवसाय, घर, बच्चों के लिए स्कूल, उनकी परवरिश और किस समुदायों से आती हैं ।

अतः कहा जा सकता है की देवदासी प्रथा के लिए गैर कानूनी घोषित कर देने से मिटने वाली नहीं है इसके लिए जमीनी स्तर पर कार्य करना जरुरी है । कर्नाटक राज्य के बेलगाँव क्षेत्र में तीन दशकों से कार्य करनेवाली 'पद्मश्री सीतव्वा जोडट्टी' (पद्मश्री-2018) कहती है-'इस प्रथा की जड़ें बहुत मजबूत हैं, इस क्षेत्र में अभी हमें बहुत काम करना बाकी है ।' स्पष्ट है कि

---

[168] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु-गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं-43

[169] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प.सं-2001, पृ.सं-128-129

[170] https://www.bhaskar.com/news/ut-del-hmu-new-devdasi-tradition-inindia-5207747-pho.html (25.12.2017, 12.00 pm)

देवदासियों को सम्मान की जिंदगी जीने के लिए देवदासिता से बाहर निकाल कर उन्हें रोज़ गार, घर, बच्चों के लिए शिक्षा आदि उपलब्ध करना जरुरी है ।

हमारे देश में सबसे ज्यादा बदलाव की अपेक्षा समाज में मौजूद परंपराओं, रुढियों और भेदभाव से भारी मानसिकता की जकड़न को लेकर हैं । बेटे और बेटी में किये जाने वाले भेदभाव की मानसिकता के चलते आज भी समाज के हर तबके में स्त्रियों की शिक्षा और स्वस्थ्य को महत्व नहीं दिया जाता । आज भी हमारे देश में आये दिन स्त्रियों पर बलत्कार, हिंसा, छेड़खानी आम बात बनी रहती है । होने वाली हिंसा पर व्यवस्थागत समर्थन मिलता है । हर तरह की मुश्किलों को झेलकर कुछ महिलाएँ आगे बढती हैं तो उनके साथ अभद्र व्यवहार किया जाता है । ऐसे में अपने साथ होने वाले बर्बर व्यवहार के प्रति स्त्रियों की यह मुकर भावना बुनियादी बदलाव लाने की आस बंधाती है ।

फिर भी स्त्रियों के बलत्कार, अपहरण, छेड़छाड़, शोषण, अत्याचार, अपमान, दहेज़, प्रताड़ना आदि से संबंधित सरकार, समाजिक संस्थाएँ और संगठन सभी चिंतित दिखाई देते हैं । स्त्रियों द्वारा उठाई गई विरोध की आवाज़ की संस्कारों और परंपराओं की दुहाई देकर दबा दिया जाता है । इसलिए स्त्रियाँ चाहे अशिक्षित हो, चाहे वे शहरी या ग्रामीण क्षेत्र से हो उनकी स्थिति भयावह है । इसलिए, समाज जैसे आगे बढ़ रहा है वैसे इतिहास में गढ़ी गयी कहानियों को बदलना होगा । जो कहानियाँ हमें सीखाई गयी उस परंपरा को तोड़कर नयी-नयी कहानियों की रचना कर समाज के सामने रखना होगा ।

विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथाओं में एक अलग समाज दिखाई देता है । जिसमें कभी समाज, तो कभी प्रशासन द्वारा किनारे किया गया । समाज की दृष्टि में अपराधी जनजातियाँ कभी रोज़ गार तो कभी दो समय की रोटी से दूर रही । विडंबना यह की भारतीय समाज में रहते हुए उन्हें 'मनुष्य' का दर्जा लगभग नहीं मिला । अस्थिरता और रोज़ गार इन जनजातियों को हमेशा अस्थिर बनाये रखती है । जिसका परिणाम समुदाय की अलग नीति-रीति निर्माण हुयी । जात पंचायत जैसी नियमावली से स्त्रियों का शोषण किया गया । अंधविश्वास इतना है कि अस्पताल जाने का कोई सोच भी नहीं सकता । झाड़-फूक, टोना-टोटका से काम चल जाता है । ऐसी तमाम पद्धतियों और समाज नीतियों से विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ पशुवत एवं नरकीय स्थिति में जीवन जीने के लिए विवश है ।

3.4. सांस्कृतिक विशेषताएँ

3.4.1 विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की जीवन प्रणाली

सामान्यतः सभी आदिवासीयों में सामूहिक नृत्य तथा लोकगीतों के बिना कोई भी धार्मिक अथवा सामाजिक उत्सव अधूरा ही माना जाता है । इनकी गतिविधियों, वेशभूषा, खान-पान, सामाजिक उत्सव, सांस्कृतिक मनोरंजन, जन्म-मृत्यु संबंधित लोकाचार आदि मूल्यों के आधार पर इनकी जातियों का वर्गीकरण किया जाने लगा । इन्हीं में एक जनजाति आती है 'घुमंतू आदिवासी'। घुमंतू का शाब्दिक अर्थ है 'यात्रा करना', 'ख़ानाबदोशी', 'घुमक्कड़ी' या 'यायावरी' में अपना जीवन-यापन करना है । पूर्वकाल में आदिम जनजातियाँ घुमंतू जीवन व्यतीत करती थी। आज भी करती हैं । यह उनकी प्रवृत्ति है । किंतु वर्तमान में बाहरी दबाव के कारण आर्थिक तंगी, बेरोज़ गारी, अशिक्षा तथा निम्नवर्गीय सामाजिक परिवेश के वशीभूत वे घुमंतू जीवन जीने के लिए विवश है । और कुछ अपनी प्रवृत्ति को नहीं छोडती है । इसका कारण उनके साथ सदियों से चले आ रहे विश्वासों, परंपराओं और मूल्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं। समाज मे स्थित नैतिकता, अनुशासन, नियम-कानून, धर्म-नीति, संस्कार आदि का पालन किया जाता रहा है । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में इस तरह के रीति-रिवाज अन्य जातियों से कुछ विभिन्न दिखाई पड़ते हैं । उसे हम निम्नलिखित में देखने का प्रयास करते हैं ।

3.4.2. विमुक्त-घुमंतू जनजातियों की आवास व्यवस्था

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की बस्ती को 'तांडा', 'पेढ़ा', 'पेढ़ी' कहा जाता है । इन जनजातियों के बस्ती की व्यवस्था अस्थायी होती है । घुमक्कड़ी करते समय जंगलों में और गाँव के आस-पास तंबू, तिरपाल, डेरे नुमा प्लास्टिक कापड, घास-फूस से बिछाई हुई झोपड़ी में रहते है । कुछ जनजातियों को 'वतन का गाँव' के नाम पर रहने के लिए स्थायी जमीन मिली है, परंतु वे हमेशा रोजी-रोटी के लिए ताला मारकर अस्थायी यात्रा पर होती है । साल में एक-दो बार किसी त्योहार पर एकत्रित होती हैं, परंतु अमूमन सुख-दुःख जैसे कार्य फिरास्ती (घुमक्कड़ी) में ही संपन्न होते हैं ।

इन जनजातियों की बस्तियाँ सभ्य समाज की संस्कृति से भिन्न होती है । इनके टाडों मुखिया, नायक या कारभारी नमक व्यक्तियों को बस्तीवाले सम्मान के साथ देखते हैं । इसी प्रकार उनके तंबूओं की रचना होती है । तंबू बनाते समय वे दो झोपड़ियो के बीच अंतर रखते है, ताकि किसी एक झोपडी में आग लगी तो दूसरी झोपड़ियाँ सुरक्षित रहे इसका विशेष ध्यान रखते हैं । झोपड़ी को कोई दीवार या द्वार नहीं रहता है । बंजारा घुमंतू जनजातियों पर अध्ययन करने वाले विचारक डॉ. गणपत राठोड़ घुमंतू आवास की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-"बंजारा बस्ती में घरों की रचना नियोजित ढंग से होती है । तांडे में नायक का घर सामने और शेष घर पीछे की ओर होते हैं । तांडे में विशेष महत्व नायक और कारभारी को दिया जाता है, जो टांडे की व्यवस्था पर नियंत्रण करते हैं और समस्या का समाधान करते हैं । इसलिए आवास के नियोजन में विशेष स्थान नायक और कारभारी को दिया जाता है । तांडों में घरों के द्वार अनिवार्य रूप से पूर्व दिशा की ओर होते हैं । दो घरों के बीच थोडा अंतर अवश्य रखा जाता है ।"[171] घुमंतू जनजातियों में घुमक्कड़ी के बाद झोपडी या तंबू बसाते समय उन्हें निम्लिखित बातों का ध्यान रखते है । जैसे- जहाँ व्यवसाय के लिए प्राथमिक चीज़ें, रोज़ गार या भिक्षा मिलने की संभावना, डेरा बसाने के लिए खुली जमीन, पानी की सुविधा, जानवरों को घास की सुविधा तब ही वे अपना डेरा बसते हैं नहीं तो दूसरे गाँव की ओर निकल पड़ते हैं ।

वर्षा के दिन बहुत ही मुश्किलों से गुजरना पड़ता है । यात्रा करते समय यदि जंगल में होते हैं तो सबकी हालत ख़राब हो जाती है । खासकर बूढों और बच्चों की । बच्चें बादलों के गरजने से डर जाते हैं, तो बूढ़े लोग ठण्ड से सिकुड़ जाते हैं । ठण्ड से उन्हें अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ता है । कीचड़ में टट्टी करने की समस्या तो हमेशा की बन जाती है । यदि गर्भवती महिला हो तो मराठी की कहावत चरितार्थ टहरती 'राजाने मारले अन् पावसाने झोडपले कोणाला सांगणार.' अर्थात राजा ने मारा और बारिश ने ठोंका किसे बताएँ । जैसी स्थिति निर्माण होती है । 'बिराड' आत्मकथा में लेखक लिखते हैं आधी रात का समय था, तब सब लोग गहरी नींद में सो रहे थे, उसी समय आंधी के साथ तूफानी बारिश शुरू हुई । तंबू टूटकर गिर गए, तूफानी हवा से सामान फ़ैल गया । किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था । बच्चें डर के मारे चिल्लाकर रो रहे थे । पारी मामी की कुछ दिन ही पहले प्रसूति हुई थी । उसका बच्चा भीगकर थरथराने लगता है । अंधेरे में चीखने-चिल्लाने ने आवाजे, कहाँ जाना है पता नहीं, आसपास कोई घर नहीं, इस स्थिति में एक ने कहा की पास के मंदिर की ओर चलते हैं । कारवाँ गिरते-संभालते मंदिर पास आ जाता है । इनके कोलाहल से मंदिर के पुजारी की नींद खुल जाती

[171] बंजारा लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड़, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2002, पृ.सं- 37

है। वह बाहर आकार देखता है तो मंदिर के बाहर कई सारे लोग ठिठुरते हुए मंदिर में आने की कोशिश कर रहे हैं। पुजारी को देखकर विनती करते हैं, हमें टहरने के लिए कहीं जगह नहीं महाराज, हम चुपचाप एक कोने में बैठे रहेंगे, बाल-बच्चें हैं, जच्चा है, हम पर रहम करो माई-बाप, हम बेलदार हैं। बारिश में कहाँ जाएँ। जच्ची का नाम सुनते ही पुजारी गुस्से से लाल हुआ। बोला-"कौन रे तुम लोग? बेलदार, अरे ये ही जच्ची है क्या? उसे भी मंदिर में लाए हो। अरे सब अपवित्र कर दिया तुम लोगों ने। कुछ भी खाने वाले तुम लोग, तुम्हें धरम नहीं पता ? अरे तुमने सारा धरम भ्रष्ट कर दिया...चलो मंदिर के बाहर।"[172]

वर्तमान समय में कुछ जनजातियों में बदलाव दिखाई देता है। जनजाति के लोग कुछ स्थायी हुए है। कुछ लोगों के घर होते हुए निरंतर भटकते है तो कुछ साल में तीन-चार (निश्चित रूप से) बार यात्रा के लिए जाते हैं। और अधिकांश समुदाय के लोग अस्थायी बिना घर, बिना व्यवसाय के भटकते हैं। अब इनमें से कुछ लोग शहर में दिहाड़ी-मजदूरी करने के लिए जाते हैं। उन्हें वहाँ पर न भाड़े से कमरा मिलता और न डेरा बसने के लिए जमीन। ऐसी स्थिति में शहर से दूर बंजर जमीन, सड़क, रेल के फुतपतों पर रहने के लिए मजबूर होते हैं। अधिकांश जनजातियों के लिए जमीन बहुत बड़ा मुद्दा है। कई बार गाँव के दबंग लोगों द्वारा जनजातियों की जमीन छिनी जाती है, नहीं मिले तो घर फूंके जाते हैं, बेदखल किया जाता है। तो कई बार पैसा होते हुए भी जनजातियों के लोगों को जमीन नहीं मिलती है। हमारे देश में सभी जनजातियों की यही स्थिति दिखाई देती है। क्योंकि शोषण का आधार जमीन है। इसलिए आवास की समस्या सबसे बड़ी है।

3.4.3. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का खान-पान

3.2.3.1. शाकाहारी भोजन

पूर्वकाल में घुमंतू जनजातियाँ मूलतः जंगल में निवास किया करती थी। इनमें से कुछ लोग पूर्णरूपेण जंगल में निवास करते थे। कुछ लोगों का गाँव से संपर्क आने लगा। वे लोग जंगल एवं गाँव के संपर्क में रहकर उन्हें अलग-अलग प्रकार की सेवाएँ प्रदान करने लगे। इस कारण वे गाँव-जंगल में घुमक्कड़ी करने लगे। परंतु उनकी अधिकांश आजीविका जंगल से ही

---

[172] बिराड, अशोक पवार, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, सातवी आवृत्ती-2017, पृ. सं-51

* कोन रे तुम्ही ? बेलदार का, अरे गुडेकर्यानु, हीच वली बालातीन हाय का ? तिलाबी देवलात घेऊन आले. अरे सर्व ईटाल केला करे हैवानानी. काईबी खाऊन यितात. देव धरम कळत न्हाई का. सगळा धर्म बाटविला...चला देवलाभाईर निगा.

होती थी । जब अंग्रेज भारत में आयें तो उन्होंने पहले जंगलों पर कब्ज़ा किया । फिर 'जंगल कानून' लागू करके जनजातियों को जंगल के बाहर खदेड़ दिया । इस दौरान जनजातियों के साथ कई विद्रोह हुए । इनमें से कुछ समुदायों ने जंगल-गाँव की यात्रा में ही अपना जीवन बिताने लगे।

घुमंतू जनजातियाँ गाँव के संपर्क में आने के कारण हिन्दू संस्कृति से जुड़ने लगी । उनके जीवन पद्धति का प्रभाव इन जनजातियों पर दिखाई देने लगा । कुछ जनजातियाँ अपनी संस्कृति के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति के भी सन-उत्सव, विवाह विधि, भगवान की मन्नतें आदि मनाने लगीं । इसी प्रभाव के कारण शुभ अवसरों पर जनजातियाँ हिन्दू सभ्यता के अनुसार सामूहिक खान-पान करने लगी हैं । कुछ विशिष्ट पर्व दीपावली, पडावा, होली, पंचमी या दशहरा के दिन ये जनजातियाँ सामान्य लोगों की तरह 'पूरण-पोली' ख़ाना पसंद करती हैं । वे चाहे खुद से बनायी हुई हो या भीख में मिली हो । "प्रत्येक तिरपाल के एक-दो पुरुष भीख माँगकर जो भी मिला, बगल में लटकाकर धूप में आ रहे थे । औरतें बड़ी आशा से उनकी झोली देखा करती थीं । रोटी के एकाध टुकड़े पर कोई सब्जी मिल जाती तो बड़ी ख़ुशी से वे उसे खाया करती थीं ।"[173] इस स्थिति या प्रवृत्ति को वर्तमान समाज के विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में देख सकते हैं

3.4.3.2. मांसाहारी भोजन

घुमंतू जनजातियाँ जंगल से जुडी रहने के कारण वह पूर्वकाल से माँसाहारी भोजन करते आ रही है । खान-पान में घुमंतू जनजातियाँ अधिकत्तर मांसाहार को पसंद करती हैं । शिकार में मिलें मोर, तीतर, खरगोश, मछली तो पालने वाले पशुओं में मुर्गी, बकरे आदि का मांस खाते हैं, और कुछ समुदायों के लोग सुअर, बिल्ली, केकड़े, मछली, गोह का मांस खातें हैं । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के त्योहारों, शादी और देवी-देवताओं की पूजा आदि के अवसर पर मांसाहारी भोज के साथ शराब बांटे जाने का भी रिवाज है । विशेषतः इनके देवी-देवता माँसाहारी होते हैं ।

[173] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु-अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प.सं- 2001, पृ. सं- 18

इन जनजातियों में बड़ी तादात में ईश्वर के नाम पर मन्नतें माँगी जाती हैं । ये मन्नतें, घुमक्कड़ी के वक्त संकटों से बचने के लिए, घर में सुख-शांति बनी रहने के लिए, बीमार इंसान का स्वस्थ्य अच्छा होने के लिए, बच्चा (पुत्र) प्राप्ति के लिए, जानवर बचाने के लिए आदि । उपर्युक्त कारणों के लिए वे बाबा-ओझाओं के पास जातें हैं । बाबा-ओझा जो कहता है वह स्वीकार करते हैं । पुरुषों-औरतों द्वारा आँचल फैलाकर बचाने की माँग की जाती है । तब ओझा झूमते हुए कहता है-"बताऊँ सो करो । सामने के मेले में झूला डाल...हूँ...हूँ...हूँ...हूँ...दो बकरे, चार मुर्गियाँ और मेरा दे देना । मुक्त हो जाएगा ।"[174] भला होगा, मुक्त होंगे इस आशा से लोग देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु मांसाहार का भोजन देते हैं । यहाँ पर लेखक के पिता ने कही बात याद आती है-'रस्सी का बल निकल जायेगा पर कैकाडियों भूत नहीं भागता ।' इस प्रकार जनजातियाँ ब्याज पर पैसे लेकर अपनी मन्नतें पूरी करते हैं । और उसे चुकाने के लिए साल भर भीख माँगने से लेकर चोरी करने तक के तरीके इस्तमाल करते हैं । यही सालों से चलता आ रहा है ।

इस प्रकार के उदाहरण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं के हर दूसरे-तीसरे पन्ने पर पाए जाते हैं ।

वर्तमान समय कुछ जनजातियों में कुछ बदलाव दिखाई देते हैं । इसे समाज का प्रभाव कहेंगे या समाज द्वारा तुच्छता से देखने के कारण भी हो सकता है । अधिकांश जनजातियों में पहले जैसी ही स्थिति मौजूद है । इसे हम 2017 में प्रकाशित हुई 'पारध्याचं पोर' (मारोतराव जाधव) और झोळी-2021 (डॉ.कालिदास शिंदे) की आत्मकथाओं में देख सकते हैं ।

3.4.3.3 मद्यपान

घुमंतू जनजातियों के पूर्वकाल और वर्तमान समय के मद्यपान करने के तरीकों में पुर्णतः बदलाव दिखाई है । पूर्वकाल में जनजातियाँ शराब जंगल से लाये गए फूलों-फलों से बनाया करती थी । शराब का शवन त्योहार-पर्व या शादी ब्याह में होता था । इसलिए जनजाति के सभी लोग (बच्चों से लेकर बूढ़े लोगों तक) पीते थे । जब से जंगलों पर पाबन्दी आ गयी, तब से जनजातियाँ अपना सबकुछ (अस्तित्व) खोते नजर आयी । न उनके जंगल रहे, न उनकी जमीन रही और न पेड़ सब कुछ खोकर समतल जमीन या गाँव के आस-पास रहने के लिए मजबूर होने लगी ।

---

[174] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 34

वैसे "मदिरापान बंजारा समाज का मुख्य अंग है। कोई उत्सव त्योहार के अलावा पूजादि के समय भी शराब पी जाती है। मेहमान को शराब पिलाना उसका सम्मान समझा जाता है।"[175] डोंबारी समुदाय में बच्चों को तीन-चार साल की उम्र में ही कसरतें सिखाते हैं, तब जो बच्चा आसानी से तैयार नहीं होता है उसे शराब पिलाकर कसरतें सिखतें हैं। डोंबारी समुदाय के बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष दिनभर की थकान कम करने के लिए शाम के वक्त शराब के नशे में होते हैं। शाम को बच्चे शरारत न करें इसलिए शराब पिलाई जाती है।

कैकाड़ी समुदाय में मरीआई देवी के पर्व पर तीर्थ के रूप में शराब और प्रसाद के रूप में नारियल का टुकड़ा दिया जाता है, उसे मना नहीं कर सकते हैं। पराया में लेखक लिखते हैं-"मैं पी नहीं रहा था। मैं पीने से मना करने लगा तो सारे चिल्लाए, 'ना नहीं कहते। आँखें बंद कर और एक घूँट में सारा गटक जा। कुछ नहीं होता।"[176] शराब पीने-पिलाने का चलन यहीं नहीं है बल्कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के मृत्यु संस्कार में भी है। 'उचक्का' आत्मकथा में लेखक के पिताजी का निधन होने पर बिरादरीवाले और सगे-संबंधी शोक कम करने के लिए शराब पिलाते हैं। इसी प्रकार वर्तमान समय में मेरे तहसील मुखेड, जिला नांदेड (महाराष्ट्र) में मसनजोगी समुदाय द्वारा शोक सभा में शराब पी जाती है। समाज उन्हें विचित्र नजर से देखता है, परंतु उनपर कोई असर दिखाई नहीं देता।

समाज ने स्वीकार नहीं किया। रोज़ गार देने से माना किया। इसलिए ये जनजातियाँ चोरी करने, शराब बेचने जैसे अवैध व्यवसाय करने लगी। वर्तमान समय में शराब पीने के साथ नियम भी बदल गए हैं। परंतु पहले और आज की शराब में बहुत बड़ा अंतर है। आज की शराब केमिकल द्वारा बनायी जाती है जो जहरीली और उत्तेजक होती है, जो इन्सान के स्वस्थ्य के लिए बेहद हानिकारक साबित हो रही है। जहाँ पहले स्वयं बनाकर पीते थे, अब खरीद कर पी रहे हैं। ये लोग नशीली शराब के साथ गांजा, बीड़ी, तंबाखू आदि का भी शवन करते हैं। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में शराब का प्रचालन कम दिखाई नहीं देता है। इसी कारण उनकी सामाजिक, आर्थिक और स्वस्थ्य की स्थिति ख़राब है।

3.4.4 वेशभूषा एवं आभूषण

---

[175] घुमंतू जातियों का लोकसाहित्य और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं-2016, पृ.सं-121

[176] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 24

घुमंतू जनजातियों में हर समुदाय का अपना-अपना व्यवसाय होता है। इस कारण इनकी वेशभूषा, आभूषण आदि भी अन्य समुदायों से कुछ अलग-से पाई जाती हैं। पुरुष धोती और कमीज पहनते हैं। धोती को अधिकत्तर जनजातियों में सामान्य धोती की तरह पहनी जाती है। और कुछ जनजातियों में धोती को अलग-अलग ढंग से पहनते दिखाई देते हैं। पारधी जनजाति में लंगोटीनुमा बनाकर पहनते हैं और कर्णाटक तेलंगाना के सीमा पर रहनेवाले लोग लुंगी नुमा (टाइप) धोती पहनते हैं।

पुरुष सिर पर गुलाबी या सफ़ेद फेटा (पगड़ी) बांधते हैं। ऐसे बंधना समाज में प्रतिष्ठित माना जाता है। बहुरूपी जनजाति के पुरुष रंग-बिरंगे (अलग-अलग कपड़े से बने हुए) कपड़े पहनकर जोगवा अर्थात् देवी के नाम पर भिक्षा माँगते हैं। मसनजोगी समुदाय के पुरुष कौड़ियों की माला पहनकर भिक्षाटन करते हैं। पोतराज रंग-बेरंगी कपडों का घाघरा (फ्रोक) पहन कर भिक्षाटन करता है।

संसार की जनजातियों में ख़ासकर स्त्रियाँ अलंकार को चाहती है। भले ही वे अलंकार उनके लिए कलंक हो, पसंद करती हैं। इनमें घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ भी शामिल है। घुमंतू जनजातियों में "पारधी स्त्रियों को गहने बहुत पसंद होते हैं। वे पीतल या रांगा के गहने पहनती हैं।"[177] इसी प्रकार बंजारा समुदायों की स्त्रियाँ भी कांच से बनाया हुआ घागरा, चोली, ओढ़नी, घुंघटा आदि पहनती हैं। कानों में बड़े-बड़े झुमके हाथों में प्लास्टिक की चूड़ियाँ पहनती हैं। इन्हें हाथों पर गोदने का शौक होता है। जिसमें अपने भाई का नाम अवश्य गुदवाती है। कोल्हाटी, जोशी, बेरड़, उठाईगीर, कैकड़ी समुदायों की स्त्रियाँ साड़ी (लुगड़े), चोली पहनती हैं। अमूमन इन जनजातियों की स्त्रियाँ माँगकर लायी हुई अथवा पुरानी सस्ती खरीदी हुई साड़ियाँ पहनती हैं। इनके साथ बच्चे नंग-धडंग ही घूमते हैं।

घुमंतू जनजाति की सौभाग्यवती स्त्रियाँ माथे पर गोल आकार का कुमकुम लगाती हैं। घिसाड़ी और बंजारा जनजाति की स्त्रियाँ माथे पर लंबी सिंग या लाठी खींचती हैं। विधवाएँ कुछ नहीं लगाती।

समय के अनुसार इन जनजातियों में भी बदलाव दिखाई देता हैं। घुमंतू जनजातियों के लगभग सभी पुरुष (पुरानी पीढ़ी के लोग) धोती-कुर्ता ही पहनते हैं और युवा लड़के, पुरुष पैंट-

---

[177] घुमंतू जातियों का लोकसाहित्य और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस, दिल्ली, प्र.सं-2016, पृ. सं- 92

शर्ट पहनने लगें हैं । उसी प्रकार घुमंतू जनजातियों की कुछ स्त्रियों में भी बदलाव आया है । पुरानी पीढ़ी की स्त्रियाँ आज भी पहले जैसे साड़ी-चोली पहनती है, परंतु युवा लडकियाँ और स्त्रियों में उतना बदलाव दिखाई नहीं देता है ।

3.4.5. विमुक्त-घुमंतू जनजातिओं के संस्कार

3.2.5.1. जन्म एवं नामकरण संस्कार

विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में जन्म संस्कार को आनंदमयी माना जाता है । शिशु के जन्म पर परिवार में ख़ुशी का माहौल आ जाता है । विशेषतः वह स्त्री खुश होती है जो पहले बाँझ कही गयी । इन समुदायों में बच्चे को जन्म देना 'बांजता' से मुक्ति पाना होता है । पुरुष हर प्रकार के कलंक से आज़ाद होता है । पितृसत्ता का प्रभाव होने के कारण कुछ समुदायों में लड़की के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती है और कुछ समुदायों में अशुभ माना जाता है । इसके पीछे दोनों तरहों के समुदायों का स्वार्थ छिपा होता है ।

विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में अधिकत्तर लोगों के जन्म जंगलों में या घुमक्कड़ी करते समय होते हैं । उनके नामकरण प्रक्रिया में उस समय जिस क्षेत्र में होते है वहाँ के चर्चित स्थान, वस्तु, नदी अथवा उनके दादा-परदादा का नाम या किसी प्रेरित व्यक्ति का नाम रखने का भी प्रचलन है । लक्ष्मण माने अपनी आत्मकथा में लखते हैं-"मुझे भाई हुआ था । समंदर के किनारे बेटा हुआ । बाप कह रहा था...समंदार्या नाम रखेंगे ।"[178] कैकाड़ी समुदाय में शिशु जन्म के बाद 'छटी का कार्यक्रम' किया जाता है । इस बिरादरी में 'माँ सटवाई' के नाम पर लोगों को मांसाहारी भोजन दिया जाता है और 'देवी को पाँच नारियल, पान, सुपारी, नींबू, हरी चुदियाँ, सिंदूर की डिबिया, हरा कपड़ा, हल्दी, सिंदूर और मीठा तेल आदि ।' इस समुदाय की मान्यता है कि जो पशु (बकरा) काटा जायेगा वह सिर्फ काला ही होगा ।

हमारे समाज में नाम तो बहुत अच्छे, प्रेरणादायक रखे जाते हैं परंतु समाज में उन्हें गलत और हीनता की दृष्टि से उपयोग में लाया जाता है । इस प्रकार के अनुभव केवल पिछड़ी जाति-जनजातियों के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं । जैसे- लक्ष्मण का लक्ष्या, ये कैकाडी का बीटा, ये अक्करमाशी, ये नाचनेवाला का आदि । फिर भी इन समुदायों में अच्छे नाम रखने का प्रचलन

[178] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 48

कम नहीं, जैसे-"जब लेखक अपनी माँ को भाई का नाम पूछता है तो अंदर से एक अजीब-सा ऐहसास महसूस करता है, 'मेरा नाम रखा था दादासाहब, दूसरे का आबसाहब, और इस तीसरे बालक का नाम तात्यासाहब । हम सब जन साहब ही थे ।"[179] सेक्सपियर ने कहा था नाम में क्या रखा है, इस परंपरा को तोड़ने का काम वंचित समुदायों के 'नामकरण' विधि में दिखाई देता है ।

3.2.6. विवाह संस्कार

3.2.6.1. बाल विवाह

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की 'विवाह संस्कार' विधि अन्य समाजों से अलग है । यहाँ जात पंचायत सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है । उसके नियम-कानून और निर्णय इन समुदायों को अनिवार्य होते हैं । इनके समग्र जीवन में ही जात पंचायत को महत्वपूर्ण स्थान होता है । शादी-ब्याह में तो बिना पंचों के कोई विधि पूरी नहीं होती । यदि होती है तो उसे समुदाय अनुचित समझकर बाधा डालते हैं । शादी के बाद की समस्याओं का हल निकालने की जिम्मेदारी जात पंचायत की होती है । उसके नियम-कानून भी अलग होते हैं । उसका विरोध नहीं कर सकते यदि कोई करता है तो उसे समुदाय से बहिष्कृत किया जाता है । बहिष्कृत परिवार को न्याय देने के लिए समुदाय के लोग एकत्रित होते हैं । इसके लिए लोग मेलों का सहारा लेते हैं । महाराष्ट्र में जात पंचायत द्वारा न्याय देने के लिए अहमदनगर जिले में 'मढ़ी' का मेला, मिराज, सोलापुर, तूलजापुर, जेजुरी (पुणे), मालेगाँव (नांदेड), आदि स्थानों पर जात पंचायत की बैठकें होती हैं । इन्हें विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों का 'हाई कोर्ट' माना जाता है । इनमें भी अलग-अलग कानून होते हैं । जैसे- मांडी कलम । इस कलम में पुरुष को मूछें निकालने की सज़ा होती है और स्त्री को खौलते हुए तेल से सिक्का निकालने, टट्टी उठाने या सुंगने आदि की । डेराडंगर में इन्हीं क़ानून द्वारा राशि ली जाती है । "दांडी' और 'मांडी' ये दो हमारी जाति की धाराएँ थीं । 'दांडी' धारा लागू करने पर सौ रुपये तक का तावान होता है और 'मांडी' धारा लागू करने पर एक सौ पचास रुपये तावान देना होता है ।"[180] इस प्रकार विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लोग पुलिस स्टेशन अथवा न्यायलय में नहीं जातें हैं । वे अपनी जात पंचायत में सब निर्णय लेते हैं ।

---

179 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प.सं- 2001, पृ.सं- 94-95

180 वही, पृ.सं- 164

इन जनजातियों में 'विवाह संस्कार' हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है । विवाह की पद्धतियाँ आज भी प्राचीन परंपरा के अनुसार होती है ।

घुमंतू जनजातियों में अंतरजातीय विवाह अनैतिक माना है । इसलिए घुमंतू समुदायों में विवाह कम उम्र (बालविवाह) में करने का प्रचलन अधिक दिखाई देता है । कुछ समुदायों में गर्भवती स्त्री के पेट को हल्दी-कमकुम लगाकर लड़का या लड़की की सगाई निश्चित की जाती है। इसलिए भी कुछ समुदायों में बाल विवाह की प्रथा है । प्रेम विवाह करने वाले जोड़े के साथ उनके परिवार को भी सज़ा दी जाती है । इस कारण वे अपने कुल और खून को रिश्ते में बरक़रार रखना चाहते हैं । यदि ऐसा होता है तो उन बच्चों के नाम में 'अक्करमाशी' लगाकर बोला जाता है । यह एक गाली बन गयी है (ये अक्करमाशी) । उनके साथ बेटी व्यवहार नहीं किया जाता । इस प्रकार के उदाहरण शरण कुमार लिंबाले की आत्मकथा 'अक्करमाशी' और 'छोरा कोल्हाटी' में मिलते हैं । यह सब अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए और पितृसत्ता को बरक़रार रखने के लिए हमेशा रूकावट पैदा करते हैं ।

लक्ष्मण माने कॉलेज के दिनों में ही अंतरजातीय विवाह करके जाति व्यवस्था की जकड़न से मुक्त होने की ठान लेते हैं और उसी निर्णय पर खरे उतरते हुए वे उच्चजाति की लड़की से शादी करते हैं । समुदाय में जब पता चलता है तो माँ-बाप सिर पर आसमान उठा लेते हैं । रोने-धोने, इज्ज़त गंवाने, डूबने जैसी बाते करते हुए माँ-बाप और सगे-संबंधी इन्हें कोसते हैं । लड़की की जाति पूछने पर लेखक 'मराठा जाति' कहता है तब कहते हैं-"वह मराठा है इसका क्या सबूत है? महार नहीं होगी, इसका क्या भरोसा? किसने देखा है?'...'अरे, यही नीच जाति की होगी । इसलिए तुम्हारे साथ आई । नहीं तो ऊपर की जाति की औरतें ऐसा करती हैं क्या?' जब लेखक मैं जाति नहीं मानता ऐसा कहने पर तात्या बोला, 'तू मत मान ! हम क्या करें ?...सारे कुल को बट्टा लगा दिया ।"[181] यही कारण है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में जात पंचायत के साथ, उच्च-नीचता मानी जाती और उसका वर्चस्व कायम रखने के लिए बच्चों की शादी कम उम्र में करतें हैं ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के अधिकांश समुदायों में दहेज़ देने की प्रथा नहीं है । परंतु इनमें लड़के द्वारा लड़की के पताजी को दहेज़ देने की प्रथा अधिक दिखाई देती है और लड़की द्वारा लड़के को दहेज़ देने की प्रथा का अनुपात अत्यंत अल्प मात्रा में पाया जाता है । घिसाड़ी

---

[181] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति- 2016, पृ.सं- 132

घुमंतू समुदाय में लड़की द्वारा दहेज़ स्वीकारने को सख्त मना है। यह इस समुदाय का वैशिष्ट्य है। इस समुदाय में सगे-संबंधियों के बीच ही शादी ब्याहने का प्रचलन अधिक है। सगाई बचपन में ही तय करते हैं। यदि बच्चे बड़े भी हो जाते हैं तो माता-पिता द्वारा देखी गयी लड़की से ही शादी करनी पड़ती है। शादी का दिन निश्चित करने के लिए लड़के के घर वाले जात पंचायत के सदस्यों को लेकर लड़की के घर जाते हैं। बातचीत के दौरान मिठाई, पान-सुपारी दी जाती है। लड़की को साडी पहनकर लोगों के सामने बैठाया जाता है और उसे सौभाग्यवती स्त्रियाँ कुमकुम लगाती है। वर की ओर से लाये गए गहने पहनाये जाते हैं। अतः शादी की तारीख निश्चित की जाती है। उत्तम कांबले के अनुसार-"शादी के समय वर (लड़के) की ओर से वधु (लड़की) के पिता को 'दहेज़' के रूप में दो सौ रुपये दिए जाते हैं। बिना दहेज़ के शादी नहीं होती। वधु की ओर से वर को कपड़े दिए जाते हैं।"[182] हैसियत के अनुसार वर की ओर से वधु को गहने पहनाये जाते हैं। अतः शादी लड़की के घर में ही होती है।

कोल्हाटी समुदाय में स्त्रियों की शादी नहीं होती है। उनका केवल 'चीरा उतरा' जाता है। उन्हें उन्हीं समुदाय द्वारा स्वार्थ पूर्ति के लिए अस्थायी बेचा जाता है। वह बेचना चीरा उतरने के नाम से प्रचलित है। चीरा उतारने की रस्म शादी-ब्याह जैसी होती है। उस स्त्री के जीवन में जो प्रथम व्यक्ति आता है वह उसके पति का स्थान पता है। उसे यह सब करने के लिए नाचनेवाली के परिवार द्वारा माँगी गयी कीमत अदा करनी पड़ती है। वहीं-"गोपाल समुदाय में पत्नी को मरने या गाली-गलौच करने का अधिकार नहीं है। यदि ऐसा होता है तो पति को जात पंचायत द्वारा नियम के अनुसार जुर्माना भरना पड़ता है।"[183] विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान है। सामान कौटुंबिक दर्जा है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ आर्थिक जरूरतें पूरी करती हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ परिवार में अधिक कष्ट उठती है। कुल मिलाकर घुमंतू समुदायों में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जितना महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, उतना ही स्थान उसके चरित्र के प्रति भी होता है। उदाहरण स्वरूप- कंजरभाट घुमंतू समुदाय में शादी के बाद सुहागरात की रात को स्त्री की पवित्रता पड़ताल हेतु विधि रखी जाती है। मराठी के वरिष्ठ साहित्यकार उत्तम कांबले लिखते हैं-"सुहागरात के दिन नव पति-पत्नी को एक कमरे में बंद

---

182 भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं-32

* लग्नाच्या वेळेला मुलानेच म्हणजे वराने वधूला दोनशे रुपये 'दहेज़' द्यायचे असते. दहेज़ दिल्याशिवाय लग्न होत नाही. वधूकडून वराला कपडे केले जातात.

183 वही, पृ.सं-128

* गोपाळ समाजात तर, पत्नीला मारहाण केल्यास, शिवी दिल्यास पंच नवर्याला दंड करतात.

किया जाता है । कमरे के बाहर जात पंचायत के लोग और सगे-संबंधि होते हैं । वधू के लिए एक सफ़ेद कपड़ा दिया जाता है । कपड़े को खून के धब्बे दिखाई देने से वधु पवित्र मानी जाती है । पति कमरे से बाहर आने के बाद उसे पूछा जाता है कि 'माल अच्छा मिला, या ख़राब?' पति सफ़ेद कपड़ा पंचायत में दिखाता है ।"[184] सफ़ेद कपड़े पर खून का धब्बा न होने पर लड़की को भ्रष्ट माना जाता है । इसलिए कई बार लड़की अपने नाख़ून में ब्लेड रखती है और अपनी पवित्रता को उजागर करने का प्रयास करती है । जो लड़की पवित्रता साबित नहीं करती, उसे और उसके परिवार को समुदाय द्वारा हीन दृष्टि से देखा जाता है । परिवार में उसे तुच्छ माना जाता है । ऐसे में कई लड़कियाँ पागल हो जाती है, ख़ुदकुशी करती हैं या वेश्या होने के लिए मजबूर होती हैं ।

अब अधिकांश जगह यह प्रथा कमज़ोर होते हुए दिखाई देती है । यदि पंचायत को लगता है कि, उसके माँ-पिता पैसे देने लायक हैं तो उस लड़की को जात पंचायत द्वारा जुर्नामा लेकर अपवित्रता से मुक्त करते हैं । पवित्रता की पड़ताल करने की प्रथा पुर्णतः बंद नहीं हुई । पिछले साल (2018) महाराष्ट्र के पिंपरी-चिंचवड (पुणे) से खबर आई है कि, स्त्री पवित्रता की परीक्षा का निषेध करनेवाले युवकों को समुदाय विशेष के लोगों ने बुरी तरह से पीटा है । यही समाचार पूरे देश में आग की तरह फैल गया, तब से इस अनिष्ठ प्रथा के खिलाफ कुछ सामाजिक संगठन आवाज उठा रहे हैं ।

3.2.6.2. अनमेल विवाह और विधवा विवाह

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में अनमेल विवाह और विधवा विवाह करने की प्रथा है । इसके लिए जात पंचायत से मान्यता लेकर सुनिश्चित करना पड़ता है कि अगर स्त्री को अपने पति के साथ नहीं रहना है या पति को अपने पत्नी के साथ नहीं रहना है तो वे दूसरा विवाह कर सकते हैं । इसके लिए दोनों में से एक को तलाक देना पड़ेगा, साथ ही विवाह में जितना खर्चा हुआ था उतना तलाक देने वाले को वापिस करना पड़ता है । इसके बाद वह शादी के बंधन से मुक्त होता है या होती है । 'उचक्का' आत्मकथा लेखक जात पंचायत बैठने का कारण बताते हुए, सालुबाई नामक स्त्री का पति कई शादियाँ कर बाहर ही मजे उड़ाता है । जिसके कारण

---

[184] वही, पृ.सं- 41

* नववधूवराला एका खोलीत बंद केले जाते. खोलीबाहेर जातपंचायतीमधील लोक आणि नातेवाईक असतात. वधूच्या योनीतुन रक्तस्राव झाला, तरच ती पवित्र आहे असे मानले जाते. नवरा खोलीबाहेर आला की त्याला पंच मंडली विचारतात, 'काय रे, तुला माल (पत्नी) खरा मिळाला की खोटा?' नवरा पांढरे कापड पंचायतीला दाखवतो.

सालुबाई की माँ उसे छुड़ाने हेतु जात पंचायत बैठाती है-“सालुबाई की शादी सोलापुर में हुई थी। उसका पति अच्छा जेबकतरा था, इसलिए उसने अन्य स्थानों पर शादियाँ कीं । इस कारण सालुबाई की माँ ने रीति-रिवाजों के अनुसार सालुबाई के पति को 125 रुपये लौटाकर अपनी लड़की को मुक्त कर दिया ।”[185]

यदि ऐसी स्त्री या पुरुष दुबारा शादी करना चाहते हैं तो उन्हें जात पंचायत के रीति-रिवाज (विधि) के अनुसार पुनः विवाह कर सकते हैं । इस विधि के बारे में उत्तम कांबले लिखते हैं-“इस पुनर्विवाह विधि को ‘उडकी’ कहा जाता है । तलाक शुदा स्त्री विवाह के दिन प्रत्यक्ष रूप में लोगों के सामने नहीं आती । लाल रंग की वेशभूषा पहनी हुई वह स्त्री परदे के पीछे रहती है । विवाह स्थल पर वर की शादी ‘तकिया’ से होती है । ‘तकिया’ इस जनजाति का ‘शस्त्र’ माना जाता है । तकिया को ही साड़ी पहनाई जाती है । उसी हल्दी-कुमकुम लगाया जाता है ।”[186] इस प्रकार पुनर्विवाह की विधि समाप्त होती है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में विधवा विवाह किया जाता है । जिसके पति या पत्नी का अनिश्चित दुर्घटना या शिकार करते, किसी स्त्री का प्रसव करते समय निधन हो जाता है, तो उसे जात पंचायत के नियम अनुसार पुनर्विवाह करने की इजाजत होती है । पुनर्विवाह का प्रचलन जनजातियों के लड़ाकू समुदायों में दिखाई देता है । जैसे- पारधी, मसनजोगी आदि । ‘वकील पारधी’ में लक्ष्मण गायकवाड़ लिखते हैं कि, जात पंचायत चल रही थी तब विचार चल रहा था, बाघआवल्या की मृत्यु को अब एक साल बीत चुका है । उसकी पत्नी मंगली और पाच साल का बेटा काडतूस्या का क्या किया जाए ? वे अगली जिंदगी किस प्रकार से बिताएँ, इस विषय पर चर्चा हो रही थी । तब वृद्ध मुखिया तिरमान्या कहते हैं-“हमारे यहाँ रिवाज है कि जब किसी स्त्री का पति जंगल में शिकार करते समय मारा जाए या किसी दगाबाजी के कारणवश उसकी मृत्यु हो जाए, ऐसे समय उसकी विधवा अपने मृत पति के बड़े भाई से बिना दहेज़ के शादी कर सकती है । वैसे ही औरत यदि मर जाए तब मरी हुई औरत की छोटी बहन

---

185 उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दू.आ- 2011, पृ.सं- 154

186 भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति- 2010, पृ.सं- 31

*पुनर्विवाहाला ‘उडकी’ असे म्हणतात. घटस्फोटित महिलेच्या लग्नात ती महिला प्रत्यक्ष मंडपात येत नाही. लाल रंगाचा पेहराव नेसलेली ही महिला पडद्यामागे असते. मंडपात वराचे लग्न ‘उसी’ शी लगते. ‘उसी’ हे जमातीचे पवित्र हत्यार आहे. उसीलाच साड़ी नेसवाली जाते. कुंकू लावला जाते.

या उसकी रिश्तेदार से बिना दहेज आदमी शादी करे। इस हिसाब से रिश्ते में बिरडीस मंगली का जेठ लगता है, वह उससे शादी कर ले।"[187]

इस प्रकार विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में विवाह की प्रथा (विधि) अन्य समाज से अलग-सी दिखाई देती है। वर्तमान समय जनजागृति और आधुनिकीकरण के कारण परिवर्तन की बाते होती है। कुछ स्तर तक सही भी है। आजादी के बाद जाति-व्यवस्था जैसी अनिष्ठ प्रथा को रोक लगाने हेतु कई तरह के प्रयास किये गए। परंतु जाति-व्यवस्था बरक़रार रहने के लिए यहाँ की विवाह संस्था का बहुत बड़ा सहयोग रहा है। बदलते क्रम में, भारत की विवाह पद्धतियों में भी अधिकांश प्रतिशत में बदलाव होने लगा है। पूर्वकाल में पाँच दिन चलने वाली विवाह पद्धति आज एक-दो दिन में पूरी होती है। कई जगह कुछ घंटों में देखने को मिल रही है। इस बदलाव की प्रक्रिया में भी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की विवाह पद्धति अधिकांश जस-की-तस है, इसका आश्चर्य होने लगता है। ऐसी अधिकांश विधियाँ इन जनजातियों में चलती है, इसे बरक़रार रखने के लिए समुदायों में अपने-अपने नियम कानून है। वेशभूषा और कुछ प्रतिशत भाषा के अलावा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के समुदाय अपनी रूढ़िवादी परंपरा में उलझे हुए हैं।

3.2.7. विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के त्यौहार

घुमंतू समुदायों में होली त्योहार को महत्वपूर्ण स्थान दिखाई देता है। बेरड़ समुदाय में होली को कुछ अलग तरीके से मनाई जाती है। बेरड़ों में 'कामण्णा' के बारे में बहुत चर्चा होती है। 'कामण्णा' का मतलब होली में जलाया जाने वाला 'पलाश का पेड़' है। इस पेड़ को काटने के लिए जिस गाँव के होली का हकदार सर्वप्रथम काट मरता है, उसी गाँव के लोग उसे होली के पहले दिन जुलूस के साथ पेड़ के पास जाते हैं। पेड़ को विधिवत काटा जाता है और गाजे-बाजे के साथ कामण्णा को उठाकर गाँव लाते हैं। उन लकड़ियों की अंबार लगायी जाती है। उसे गाँव की सुहागन स्त्रियाँ जल भरी गगरी लाकर कामण्णा के चरणों में जलार्पण के करती हैं। उसके बाद सब लोग बारी-बारी से 'कामण्णा' का दर्शन करते हैं। कुछ लोग चढ़ावे के रूप में नारियल फोड़कर अगरबत्तियाँ जलाते भावपूर्ण हाथ जोड़ते हैं। इसके बाद "इधर बेरड़ टोले के तमाम लोगबाग मिल-जुलकर होली कामण्णा पर आधारित कोई पारंपरिक गीत गाने लग जाते। और गीत ख़त्म हो जाने पर समवेत स्वर में कूउउ हु, कूउउ कर चीख पड़ते। हर कोई अपनी ख़ास

[187] वकील पारधी, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- प्रभा शेटे, पृ.सं- 87

शैली गीत गया करता था। मगर गीत ख़त्म होने के बाद दाएं हाथ को कलाई उल्टा कर ज़ोर की बोंब लगाया करता, आधी रात बीत जाने तक यही धमाचौकड़ी चलती थी। दूसरे दिन शाम ढलने से पहले ही विधिवत् होली कामण्णा की प्रतिष्ठापना की जाती थी।"[188]

कामण्णा की पूजा के बाद दूसरे दिन बहुप्रतिष्ठित रंग उत्सव का दौर बड़े ही उमंग-उत्साह के साथ चलता है। पलाश के फूलों से बनाया गया जर्द पिला रंग एक-दूसरों पर डाला जाता है। यह दौर कोई दोपहर तक चलता है, जिससे चरों ओर खुशनुमा माहौल प्रतीत होता है। मगर जैसे-जैसे धूलि का समय निकट आता है, वैसे रंग खेलना बंद होता है। एक-एक कर सब लोग कामण्णा के सामने एकत्रित होते हैं। थोड़ी देर में माँग हलगी बजाते हुए लोगों के साथ जूलूस गाँव के मुख्य रास्ते पर ले आते हैं। कोई बोंम लगते चलता है, कोई कीचड़ उछालता है। "तीसरे दिन के कामण्णा के भोग (करी) के अवसर पर हमारे बेरड़ टोले के लोग गाँव के बाहर किसी गहरे गड्ढे में बैल की बलि देते है। बलि देते समय वे कुत्सित हंसी हँसते हुए कहा करते, "अरे, भई हम ठहरे बेरड़ ! खरगोश का माँस हम लोगन् के हलक से कैसे उतरेगा ? हमारी आत्मा तो इसके माँस से ही खुश होगी ! यही हम लोगन् की सच्ची शिकार (करी) है...!" और इसके साथ ही वे ज़ोर की हँसी हँस लेते देते।"[189] सब के घर मांस पहुँचाया जाता है। शराब पीकर पुरुष ज़ोर-ज़ोर से बातें करते हुए घूमते हैं। अतः भोग का भोजन करके सो जाते हैं।

3.2.8 विमुक्त-घुमंतू जनजातियों का पारंपरिक व्यवसाय

1. टोकरी, डलिया बनने का व्यवसाय (कैकाड़ी)

कालांतर में कैकड़ी जनजाति में उपजातियाँ उत्पन्न हुई। वे द्रोपदी पंदिलवाड़ के अनुसार-" कुंची कोरवी, बंदरिया, गुडले, धोंतले पमलोर और कोरवी आदि।"[190] इनका पारंपरिक व्यवसाय जात निहाय निर्माण हुआ है। यह समुदाय भारत के कई राज्यों में और महाराष्ट्र के सभी जिलों में पाया जाता है। कोरवी, कुंची कोरवी समुदाय मुंबई के गिरणगाँव, धारावी, थाणे, कुलाबा में बसा हुआ है। क्योंकि 1871 के 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' द्वारा मुंबई सेटलमेंट में बंदी बनाया गया था। सन् 1952 में इन्हें 'विमुक्त' किया तब उन्हें जहाँ जगह मिली वहीं बस गए और समुदाय के कुछ लोग अपनी घुमंतू प्रवृत्ति में निकल गए। इसी

---

[188] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ,सं- 21-22

[189] वही, पृ,सं- 24

[190] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, डॉ.द्रोपदी पंदिलवाड़, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014, पृ.सं-41

*कुंची कोरवी, बंदरिया, गुडले, धोंतले पमलोर आणि कोरवी इत्यादि.

तरह सोलापुर सेटलमेंट से निकले 'विमुक्त' लोग उसी क्षेत्र में भटकने लगे । उनका मुख्य व्यवसाय बेंत,बांस (बांबू) की लकड़ियों से बने टोकरियाँ, डालियाँ, फूलदान, ब्रश, झाड़ू, लकड़ी के खिलौने आदि बनाकर बेचना है । आधुनिकता का भारी प्रभाव इनके व्यवसाय पर दिखाई देता है । बाज़ार में प्लास्टिक की हर चीज मौजूद है, इसलिए इनके धंधे में अधिक मात्रा में गिरावट दिखाई देती है ।

2.चोरी करना (पाथरवट, उठाईगीर)

यह जनजातियाँ संपूर्ण भारत में पाई जाती है । इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे- भामटा, गिरणी वड्डार, उचले, कामाटी, पथरुट, टकारी आदि। इनका पारंपरिक व्यवसाय पत्थर तोड़ना और दीवार रचना। यह जतजातियाँ पूर्वकाल में गढ़, किले, रजवाड़े आदि के लिए पत्थर तोड़ने तथा बांधने का काम करती थी। बाद में 1857 के 'स्वतंत्रता संग्राम' में भारतीय राजाओं और ग्रामीण-शहरी स्वतंत्र सेनानियों के साथ तमाम घुमंतू जनजातियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है । यही कारण है की इन जनजातियों पर पाबन्दी लाने हेतु अंग्रेजों ने 1871 में 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' लागू करके उन्हें बंदी बनाया । इसमें पाथरवट समुदाय भी शामिल था । जो बंदी बनाये गए जेल में रहे और जो बाहर बचे भटकने लगे । समाज ने उन्हें चोर समझकर नकार दिया । इसलिए इनके पास चोरी के अलावा कोई पर्याय नहीं था । भारत स्वतंत्रता के बाद भी वे चोर कहलाये गए ।

धीरे-धीरे समाज में कुछ परिवर्तन हुआ । परंतु पाथरवट समुदाय के प्रति पुलिस और समाज का रवैया पहले के जैसा है । वर्तमान समय में चोरी करने का प्रमाण बहुत हद तक कम हुआ और समुदाय के लोग पत्थर तोडने, मिट्टी खोदने, घर बनाने, मजदूरी करने जैसे काम कर रहे हैं । उत्तर भारत में इस प्रकार की जनजातियाँ पाई जाती हैं । जिसमें-"खुमरा (khumras) उत्तरी भारत की मुस्लिम जाति है । इनका प्रमुख व्यवसाय खान से पत्थर निकलकर चक्की, सिलपट्टा आदि बनाना एवं उसे बेचना है ।"[191] परंतु आधुनिकता का प्रभाव इनके व्यवसाय पर पड़ा है । इसलिए इनके द्वारा बनायी गयी पत्थर की चीज़ें लोग पसंद नहीं कर रहे हैं । आज वे सड़क बनने के लिए पत्थर तोड़ने का काम कर रहे हैं ।

[191] भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं- 2007, पृ.सं- 84

3.रक्षा करना (बेरड़)

बेरड़ समुदाय मुख्यतः दक्षिण भारत में पाया जाता है । जिसे बेरड़, बेड़र, रामोशी आदि नाम से जाना जाता है । पूर्वकाल से इस समुदाय का कोई व्यवसाय निश्चित नहीं था । समाज में इन्हें अस्पृश्य समझकर काम या मजदूरी नहीं देते थे । मजबूरन यह समुदाय आजीविका करने के लिए छोटी-मोटी चोरी करने लगा । वही अस्थायी व्यवसाय बना । इन लोगों की चतूराई, शरीरयष्टि और एकनिष्ठता को देखकर राजा शिवाजी ने अपने साम्राज्य (कार्यकाल) में इन्हें सैनिक का काम दिया । विशेषकर शिवाजी ने इस समुदाय को गढ़, किले और गाँव की रक्षा करने का काम सौंप दिया । आगे चलकर इनकी बहादूरी के कारण राजा शिवाजी ने इस समुदाय को 'नाईक' की उपाधि प्रदान की । राजा शिवाजी के बाद बेरड़ समुदाय ने मुग़ल साम्राज्य से बचने के लिए राजा संभाजी का साथ दिया । उन्होंने ठान लिया कि मुगलों ओर से महिलाओं पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार और में गाँवों होनेवाली लुट को बचाना है । अतः रक्षा करना ही बेरड़ो का व्यवसाय बना । इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यिक भीमराव गस्ती कहते हैं-"मुगलों ने उत्तर भारत की स्थिति जैसे बनायी है, वैसे दक्षिण भारत की नहीं बनी है । जिसमें खासकर किले, मंदिरों की स्थिति को देखा जाये तो, मंदिर बचे हुए मिलते हैं । इसका कारण उस समय रामोशी, दायी और बेड़र कहे जानेवाले समुदाय ने अपनी बहादुरी से रक्षा करके बचाया हुआ है ।"[192] आज वही बेरड़ समुदाय समाज की नजरों में चोर समझा जाता है । दर-दर की ठोकरें खाते हुए जो मिले वह काम करने के लिए मजबूर है । उनका पारंपरिक व्यवसाय ख़त्म हुआ है ।

4. भविष्य देखना (जोशी)

जोशी समुदाय संपूर्ण भारत में पाया जाता है । महाराष्ट्र में इन्हें ज्योतिष या जुयशी नाम से जाना जाता है । इस समुदाय में अनेक उपजातियाँ पाई जाती है । जैसे- बुडबुडकी, डंबरू वाले, कुडमुड़े, मेंडगी, सरोदे जोशी, पिंगला जोशी आदि । इनके भविष्य देखने के तरीकें भी अलग हैं । जिसमें- पंचाग देखकर, हस्तमुद्रा, मुखमुद्रा, व्यक्ति के नाम से, तोते की सहायता से भविष्य बताते हैं । जोशी समुदाय के लोग "डुग्गी बजाकर बबेरे-सबेरे भीख माँगने वाली जाति का का व्यक्ति या उसकी जाति । पिंगला जोशी पिंगला नमक पंछी के समान ही किलबिल-किलबिल जैसी न समझ में आनेवाली बातें करके भीख माँगनेवाला जोशी जाति का व्यक्ति । यह

[192] https://www.youtube.com/watch?v=XliKK1trhvI (05.01.2018, 2.10 pm)

व्यक्ति भी बड़ी भोर से सूर्योदय के काल में ही माँगता है ।"[193] पूर्वकाल में ये लोग राजाओं के शासन में सुख-दुःख, संकट और दूत (जासूस) के बारे में भविष्य बताते थे । वर्तमान समय में इनके व्यवसाय डूबने के कगार पर खड़े हैं।

5. नाच-गाना (कोल्हाटी)

कोल्हाटी समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय नाच-गाना करना अर्थात तमाशा दिख़ाना है। कोल्हाटी समाज मुख्यतः स्त्रियों पर आधारित होता है। पूर्व काल में राजाओं के दरबार में नृत्य का काम करती थी और इनके पुरुष राजा की सेना में कार्य करते थे। समय बदलता गया और राजाओं का पतन होता गया। तब यह समुदाय भी उदरनिर्वाह की खोज में लोगों का मनोरंजन करते हुए गाँव-गाँव घुमक्कड़ी करने लगा। संभवतः इसी समय उदरनिर्वाह के लिए डोंबारी समुदाय का उद्भव हुआ। कोल्हाटी परिवार के जीवन-यापन हेतु स्त्रियों को परंपरा के अनुसार हमेशा नाच-गाना पड़ता है, इनमें जितना परिवर्तन होना चाहिए उतना दिखाई नही देता है। इनके पुरुष स्त्रियों की कमाई पर मौज-मजा करते हैं। आज भी इन स्त्रियों को अपमान जनक व्यवहार सहते हुए परिस्थिति से झगड़ना होता है। यही उनके हिस्से में होता रहा है। डोंबारी समुदाय के लोग कसरतें करके समाज का मनोरंजन करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में सुबह के समय कसरतें करते हैं और शहर में बाज़ार या भीड़-भाड की बस्ती में कसरतें दिखातें हैं। ये दोनों समुदाय स्त्रियों पर आधारित हैं। वर्तमान समय में डोंबारी समुदाय की स्थिति कुछ वैसे ही है जैसे पहले थी। कोल्हाटी समुदाय में कुछ हद तक बदलाव दिखाई देता है। पहले इन्हें लोगों के घेरे में नाच-गाना करना पड़ता था, आज स्टेज पर करती हैं। पहले केवल कोल्हाटी समुदाय की ही स्त्रियाँ नाच-गाने का काम करती थी, परंतु आज अन्य वंचित समुदायों की स्त्रियाँ भी शामिल हुई है। किंतु उन्हें नाचते वक्त कंकड़ मरना या छेड़ना आज भी सरेआम होता है।

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अलग संस्कृति पाई जाती है। जिसमें अपनी वेशभूषा, आभूषण, खानपान, जन्मसंस्कार, नामकरण, विवाह पद्धतियाँ, त्यौहार और व्यवसाय एवं धार्मिक रीति-रिवाज विभिन्न है। इसी नियम-कानून सिमटी हुयी जनजातियाँ हमेशा किसी न किसी रिवाज से बंधी रही। अशिक्षा और अज्ञानीता के कारण इन सभी में रूढ़ि-परंपरा, अंधविश्वास मुख्यरूप से विद्यमान है। जो इन्हें

---

[193] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प.सं- 2001, पृ.सं- 28

आर्थिक स्थिति से हमेशा कमज़ोर रखता है। परिणामतः न बलशाली बन पाए और न ऊपर उठने का प्रयास किया। वह अपने में ही मशगुल हैं।

चौथा अध्याय

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ

4.1.आर्थिक स्थिति

4.1.1. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आर्थिक स्थिति

आजादी के पहले 1871 में ब्रिटिश शासन द्वारा भारत की कुछ जनजातियों को 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' बनाकर बंदी बना दिया। पूर्वकाल में यह जनजातियाँ जंगल में जीवन-यापन करती थी। कुछ समय बाद उनका संबंध गाँव से आ गया। तब से जनजातियाँ जंगल और गाँव के बीच में अस्थिर जीवन-यापन कर रही है। यही कारण है कि इन जनजातियों को गाँव में जगह मिली और नही जंगल में। इनकी अनिश्चित घुमक्कड़ी के कारण ही इनका स्थान (इतिहास में) निश्चित नहीं हो पाया। उपनिवेश काल में जिन जातियों को बंदी बनाया गया। उन्हें अपने काबू में रखने के लिए दिन में तीन बार हजेरी की शर्त रखी गयी। और उनसे अलग-अलग तरह के काम करवाए गए हैं। कालांतर में जो अच्छा कार्य करते थे उन्हें बंदी से मुक्त भी किया गया। बाद में उनके बच्चों के लिए शिक्षा की नीति बनायी गयी और आर्थिक रूप से उभरने के लिए रोज़ गार की व्यवस्था की गयी। इस व्यवस्था में शारीरिक और आर्थिक शोषण ही अधिक होता था। और जो घुमंतू जनजातियाँ 'अपराधी कानून' से दूर थी वह जंगल से जडी-बुटी, लकडियाँ, सहेद, पशु-पक्षी मोलभाव में बेचकर तथा कुछ जनजातियाँ कलाबाजी, देवी देवताओं के नाम पर भिक्षा टन करके जीवन-यापन करना शुरू किया। इन जनजातियों के सवाल को स्पष्ट करते हुए गणेश देवी लिखते हैं-"आज़ाद इनमें से कुछ अनुसूचित जाति कुछ अनुसूचित जनजाति तथा कुछ अन्य पिछड़ी जनजातियों की श्रेणी में आते हैं परंतु कई ऐसी भी जनजातियाँ हैं जिन्हें इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है लेकिन एक समानता जो

इन सभी जनजातियों को आपस में जोड़ती है वह है उन पर लगा जन्मजात अपराधी का ठप्पा ।"[194] वह आज भी कायम है ।

आजादी के पाँच साल बाद 31 अगस्त 1952 को उन्हें 'विमुक्त' किया । परंतु उनके भलाई के लिए सरकार ने किसी भी प्रकार की आर्थिक अथवा सामाजिक मद्द नहीं की । इस कारण ये जनजातियाँ पहले की स्थिति में ही जीवन जीने लगी । इसका कारण विमुक्त घुमंतू जनजातियों को समाज ने तो स्वीकार नहीं किया । प्रशासन का भी रवैया इन जनजातियों के प्रति 'अपराधी' के रूप में ही रहा । मज़बूरी वश जनजातियों को जीवन-यापन के लिए भीख माँगने से लेकर चोरी करने तक के काम करने पड़े । बेरोज़ गारी की वजह उनकी हालत हमेशा बद्दतर बनी रही । जिसे विमुक्त एवं जनजातियों के आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से अनुभव व्यक्त किया । यह वह समय था जो आजादी से लेकर आज तक, आज भी उनकी आर्थिक स्थिति में बदलाव अन्य समुदाय की अपेक्षा हालत बेहद ही दयनीय दिखाई देते हैं । इसे आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं ।

ब्रिटिश सरकारने सन् 1871 में कुछ जाति-जनजातियों को 'क्रिमिनल एक्ट' बनाकर 'गुनहगार' घोषित किया था । इसका प्रभाव आजादी बाद के जनजातियों पर और पुलिस कानून में देखाई देता है । जिसके अंतर्गत हमेशा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ पिसती हुई दिखाई देती है । जिसमें ऐसे जनजातियाँ जो तन पर कपड़ा और पेट की आग बुझाने के लिए चोरी करना स्वीकार करती है । जिसे स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा 'उचक्का' में लिखते हैं-"संबाभाऊ और भगवान नौकरी करने योग्य थे । परंतु उठाईगीर कहकर उन्हें कोई नौकरी नहीं देता । खेतों में मजदूरी भी नहीं मिलती थी ।"[195] मजबूरीवश पूरे समुदाय का व्यवसाय चोरी बन गया । इस समुदाय की ऐसी स्थिति बनी रहने के पीछे समाज का उच्च वर्ग, व्यापारी वर्ग और पुलिस प्रशासन अधिकांश जिम्मेदार है । इन्हीं वर्गों ने समाज का हिस्सा होने से नकार दिया और चोरी के लिए प्रवृत्त किया । वही व्यापारी वर्ग उन उठाईगीरों द्वारा का चोरी किया हुआ माल मोलभाव में खरीद लेते हैं । चोरी करते हुए पकड़े जाने पर उन्हीं व्यापारियों से कर्ज लेकर पुलिसवालों को देते हैं । यही क्रम आज तक चलता आया । आज भी समाज में कुछ तबका दिखाई देता है, परंतु इसका स्वरूप बदला हुआ नजर आता है ।

---

[194] घुमंतू है, चोर नहीं : आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, अनु- मधु सिंह, ओरियंटल ब्लैकस्वांग प्राइवेट ली., हैदराबाद, प्र.सं- 2017, पृ.सं- 23

[195] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे,राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि., नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति- 2011, पृ.सं- 15

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के समुदाय में अपना-अपना व्यवसाय होता है । जिसमें कैकड़ी समुदाय कटोरी, फूलदानी, झाड़ू आदि चीज़ें बनाकर बेचना है । इसके लिए उन्हें कच्चा उत्पादन जंगल से पाते हैं । इसे पाने के लिए जमींदारों की गालियाँ सुननी पड़ती है, मार ख़ाना पड़ता है तो कभी महिलाओं को उनके हवस का शिकार बनना पड़ता है । दिनभर की भागदौड़ के बाद लाए गए बेंत को आकार देना पड़ता है तभी अगले दिन भोजन की सुविधा हो पाती है । फाल्गुन (फरवरी) आते-आते इस धंधे में गिरावट आती है । कुछ समय के बाद इस समुदाय की स्थिति अन्न के लिए मोहताज होती है । ऐसे में समुदाय के लोग अपने लोगों को एकत्रित करके शादी-ब्याह जैसे कार्यकमों में बैंड बजने का काम करते हैं । इस कला को अपने बच्चों को अवगत कराने के लिए हर दिन रिहर्सल करते हैं । इसके पीछे इस समुदाय का उद्देश्य शादी-ब्याह जैसे कार्यों में जूठन उठाना और मालिक की दया पर दिए गए भोजन से पेट की बुजना । पराया आत्मकथा में यह व्यवसाय कैकाड़ी समुदाय के लोग सहायक व्यवसाय (साइड बिजनेस) के तौर पर करते हैं । महाराष्ट्र में चैत्र वैशाख और जेस्ट में शादियों का सीजन होता है । तब इनके भी व्यवसाय में गिरावट आ जाती है । ऐसी स्थिति में यह घुमंतू समुदाय हाल खाने को लाले पड़ जाताहै । लेखक लिखते हैं-“चैत्र का मेला खत्म हो हुआ । घर में अनाज समाप्त हो चुका होता । बाप पटेल की करता घूमता । बैंड के लोगों को आपस में जोड़ता रहता । हमारे घर का ही बाजा था । बाप ढोलकी बजाता । आपा शहनाई, तात्या मंजीरा और मैं घुंघरू बजाता । चार लोग बाहर के होते और बाप उसके लिए घूम रहा था ।”[196]

घुमंतू जनजातियों में हर एक समुदाय का अपना-अपना व्यवसाय होता है । जो पारंपरिक कलाओं के माध्यम से समाज के सामने व्यक्त होता है । जैसे भविष्य देखना, गोंधल (देवी देवताओं की पूजा-अर्चना करते हुए रात भर कीर्तन करना), नाच-गाना, कसरतें करना, नंदीबैल को साथ में लेकर भीख माँगना आदि । यह सब कलाएँ व्यक्त करने के बदले समाज से कुछ अनाज, पुराना कपड़ा, मुर्गी तो कभी पैसे भी मिलते हैं । डेराडंगर आत्मकथा में लेखक के पिताजी भविष्य बताकर अपना परिवार चलाते हैं । जब जब लोग भिक देना बंद करते हैं और घर की आर्थिक स्थिति अधिक मुश्किल होती है तो समुदाय के लोग समाज को झूठ-मूठ का भविष्य बताकर महँगे चीजों की माँग करते हैं । अज्ञानी तथा अंधविश्वासों से ग्रस्त समाज ज्योतिष लोगों की बातें सुनकर कुर्बानी के लिए मुर्गा, पुराने कपड़े आदि देते हैं । इस बात को स्पष्ट करते हुए दादासाहब मोरे लिखते हैं-“एकाध व्यक्ति को बताना कि तेरे घर में सुख-शांति निर्माण करता हूँ, तेरी संपत्ति में वृद्धि लाता हूँ, तेरे बच्चे तेरी बात मानें ऐसा करता हूँ, घर का

---

[196] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ.सं- 38

झगड़ा मिटाता हूँ, लेकिन उसके लिए कुर्बानी के रूप में एक मुर्गी चाहिए ।"[197] सो बिना सोचे समझे लोग उनकी बातों को सच मानकर कुछ-न-कुछ दे देते हैं। उन्हें समझ में नहीं आता है कि हमें संपत्ति के शिखर पर पहुँचाने वाला यह समुदाय दो वक्त रोटी के लिए मोहताज क्यों है ? उसके पांव में चप्पल तक नसीब नहीं है ? भीख माँगने की बजाय खुद के लिए संपत्ति का निर्माण क्यों नहीं कर सकता ! इसी सुख प्राप्ति की जूठी आशा ने समाज के अधिकांश तबके को मानसिक रूप से घेर लिया है और विचार करने की क्षमता को कमज़ोर कर दिया है। और दूसरी ओर समाज के एक तबके को भीख माँगने के लिए मजबूर किया है।

हमारे समाज में एक समुदाय ऐसा भी है जो अपनी बहू-बेटियों को नाचने के लिए प्रवृत्त करता है। आज उस कला का रूपांतरण व्यवसाय में दिखाई देता है। एक समय था कोल्हाटी समुदाय की स्त्रियाँ राजा-महाराजाओं को खुश करने के लिए नाच-गाने की कला प्रस्तुत करती थी। इस कला के बदले में राजा खुश होकर जमीन का टुकड़ा या हीरे जवाहरात देता था। कालांतर में राजाओं का पतन होगया और काल बदलता गया। बाद में कोल्हाटी समुदाय की स्त्रियाँ अंग्रेजों और जमींदारों के हवस की शिकार बनने लगी। इसके लिए उनके परिवार वाले भी जिम्मेदार होते हैं। इस समुदाय में पुरुषों को मेहनत-मजदूरी करना अपने पुरुषत्व को चोट पहुँचने की बात है। इसलिए वे अपनी स्त्रियों को खुद से ज़मींदार, सेठ-साहूकार या नौकरी पेशा कर कमाने वाला पुरुष देखकर उन्हें बेचते हैं और दूसरी तरफ़ नाच-गाने के लिए प्रवृत्त करते हैं। इसे किशोर काले स्पष्ट करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-"मेहनत से कमाकर पेट पालनाउन्हें शर्मनाक लगता है। यह घटनाएँ सिर्फ कोंडीबा की नहीं थीं, पूरा कोल्हाटी समाज इसी तरह सोचता है।...औरतें न कमाएँ तो उनके घरों का चूल्हा नहीं जल सकता ।"[198]

बेरड़ समुदाय एक ऐसा समुदाय है जो पहाड़ी इलाकों में बसा हुआ है । जहाँ कोई उपजाऊ जमीन नहीं है और न पानी की सुविधा । ऐसी पथरीली, उबड़-खाबड़ जमीन । जहाँ बहुत अच्छी फसल नहीं होती है। जो फसल होती है वह अधिक जमीन (100-150 एकड़) वाले जमींदारों के यहाँ होती है। यहाँ बेरड़ समुदाय के लोगों को बहुत मुश्किल से रोज़ गार मिलता है। क्योंकि यह समुदाय अंग्रेजों द्वारा बनाये हुए 'क्रिमिनल एक्ट' के तहत अपराधी माना गया है। यही कारण है कि समाज की दृष्टि में यह लोग चोर-लुटेरे दिखाई देते हैं। इसलिए समुदाय के लोग जीवन यापन करने के लिए लडकियाँ बेचना, कच्ची शराब बेचना, चोरी करने जैसे कार्य

---

[197] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि. नई दिल्ली, प्र.सं- 2001, पृ.सं-19
[198] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं- 1997, पृ.सं- 20

करने के लिए मजबूर होते हैं। वैसे शराब का धंधा भी गिने-चुने लोग ही करते हैं। अतः इलाके के बेरड़ समुदाय के बहुसंख्य लोगों के सामने पेट भरने-पालने की समस्या अधिक जटिल और ज्वलंत होती है । ऐसे समय ज्यादातर लोग अक्सर बेबस होकर चोरी-चकारी का रास्ता अपनाते हैं। इस पर लेखक लिखते हैं-"हालांकि चोरी करने वालों में भी कुछ गिने-चुने लोग ही हुआ करते थे, जो अन्य गांवों में जाकर गाय, बैल, भैंस जैसी उपयोगी जानवर चुरा ले आते। और उन्हें किसी दूर-दराज के हाट-बाज़ार में बेच आते। या फिर जिस किसी के यहाँ से जानवरों को चुरा लाते, उनसे बाद में कुछ रकम ले, जानवर वापस लौटा देते और, प्राप्त रकम का आपस में बंटवारा कर देते। बाकी, जो जानवर बाज़ार में बेचने लायक न होते थे या फिर उस जानवर का कोई मालिक उन्हें वापस ले जाने नहीं आता, तो ऐसे में वे लोग उस जानवर को काटकर अपने पेट की आग बुझाया करते थे।"[199]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए जमीन एक बहुत बड़ा मुद्दा है। इन जनजातियों के पास खुद की अपनी जमीन नहीं होती है। इसलिए यह जनजातियाँ हमेशा घुमक्कड़ी करती है। जहाँ पानी और जानवरों को चराने की सुविधा होती है वहीं पर यह लोग अपनी बस्ती बसाते हैं। जब उस गाँव के लोग कला के बदले पैसे देना या भीख देना बंद कर देते हैं, इनके द्वारा बनायी गयी चीज़ें नहीं खरीदते हैं एवं मजदूरी नहीं देते हैं तथा गाँव की जमीन खाली करने को कहते है तब यह घुमक्कड़ जातियाँ मजबूर वशपलायन होने की स्थिति में आती है। ऐसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण माने अपनी आत्मकथा पराया में लिखते हैं, पिताजी को गाँव के एक सज्जन पूछते हैं-"बापू क्यों जा रहे हो ?" बाप पेट पर हाथ फेरकर संकेतों में कहता। हाथ जोड़ता,"अगले वर्ष फिर आएंगे। भगवान की कृपा दृष्टि रहने दो।"[200] यहाँ प्रश्न उठता है जमीन का ! जमीन सबसे अहम् मुद्दा है जो विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को स्थिर होने नहीं देती। ये लोग जब तक गाँव में रहते हैं मेहनत-मजदूरी या विनिमय पद्धति से जीवन-यापन करते हैं। जब गाँव के लोग अपने जमीन पर भी रहने से ठुकरा देते हैं तो ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'ठाकुर का कुआँ' उचित लगती है-

"चूल्हा मिट्टी का

मिट्टी तालाब की

तालाब ठाकुर का।

[199] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 319
[200] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ.सं- 38

...कुआँ ठाकुर का

पानी ठाकुर का

खेत-खलिहान ठाकुर के

गली-मुहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या ?

गाँव?

शहर?

देश?”[201]

4.1.2. जात पंचायत द्वारा आर्थिक शोषण

भारत के हर समाज में एक अपनी-अपनी जात पंचायत या खाप पंचायत होती है । इन जात पंचायतों का उद्देश्य अपने खून और कौम को बरकरार रखना, अपनी संस्कृति को बनाये रखना, अन्य समाज या जाति का व्यक्ति से रोटी-बेटी व्यवहार नहीं करना आदि । यह स्थिति कुछ समय पहले सभी समाज में स्थित थी, और आज भी है । उसका निर्णय समाज के द्वारा चयनित किये गए पंचों द्वारा दिया जाता है, न की न्यायलय । इसके वास्तविक स्वरूप आज भी हमारे समाज के छोटे-बड़े तबके में दिखाई देता है । आज भी हमारे समाज में उसका अस्तित्व कायम है, परंतु उसका स्वरूप बदला हुआ दिखाई देता है । किंतु वर्तमान समय में भी जात पंचायत बरकरार है। उसमें आर्थिक शोषण किस प्रकार किया जाता है, जिसे हम विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की जात पंचायत समुदाय में घटित छोटी-बड़ी घटनाओं को लेकर बुलाई/बैठाई जाती है । जिसमें पति-पत्नी संबंध, तलाक के संबंधित, अनैतिक संबंधित, अंतरजातीय संबंधीत, झूठ बोलने, खून करने, चोरी करने, शादी को समुदाय से अनुचित ठहराने पर, स्कूल जाने पर, समुदाय की मान- मर्यादा लाँघने पर जात पंचायत में फैसले सुनाए जाते हैं।

---

201 http://kavitakosh.org (12.11.2020, 01.00 pm)

घुमंतू जनजातियों में दोषियों को कम-अधिक जुर्माना लेकर न्याय दिया जाता है । यहाँ किसको कम और किसको अधिक जुर्माना लगाने का निर्णय पंचों के हाथ में होता है । इसलिए किसी सरकारी कोर्ट कचहरी की ज़रूरत नहीं होती, समुदाय द्वारा चयनित किये गए अनुभवी लोग पंचायत के दोषियों को न्याय देते है । पंचायत के पाँच लोग समुदाय के साक्षात् परमेश्वर होते हैं । उनके द्वारा दिया गया निर्णय ठुकराया गया तो समुदाय से बाहर निकाल दिया जाता है, उनका हुक्का पानी बंद कर दिया जाता है, रोटी बेटी व्यवहार बंद किया जाता है, ऐसे समय अधिकतर स्त्रियों, गोर-गरीब परिवारों पर ही पंचों की नजर होती है । उसका शोषण करना भी आसान होता है । पराया आत्मकथा में कलवली नामक गाँव के मेले में कैकाडी समुदाय की जात पंचायत बुलाई गयी । उसमें कैकाड़ी के उफाड़े की बेटी ने वडारी (एक घुमंतू समुदाय) को रखा था। वह पति के घर नहीं रहती थी और अब वह गर्भवती थी । उसका पति अपने जाति के पंच लोगों को बुलाकर वह बोल रहा था कि यह व्यभिचारिणी है, इसके पेट में जो बच्चा है वह मेरा नहीं है । इसे मैं छोड़ना चाहता हूँ पंचायत माय-बाप मुझे न्याय दें ।

सभी गवाह-सबूत बताने के लिए समुदाय के लोग एकत्रित हुए थे ।दोनों की ओर से पंचों ने न्याय के लिए प्रथम पैसा वसूल किया ।उसकी शराब मंगवाई और शराब सब में बाँट कर न्याय देने के लिए बातचीत शुरू की । न्याय किसे दें औरत याआदमी को ।इसी समय भरी पंचायत में एक आदमी खड़ा होकर बोलता है-“बच्चू तुझमें पानी नहीं है तो भैंस ! यदि दूसरे के पनघट पर पानी पीने गयी तो क्या हो गया रे ? दूसरे तेरे रहेगी कैसे ?” ऐसे कहने पर उसे जैसे नाग ने डस लिया,उछल कर उसे कहा“अरे तू अपनी पत्नी यहाँ पंचायत मेला मैं उस यहीं गर्भवती करता हूँ कि नहीं देख ले ।”[202] दोनों पक्ष-अपक्ष में आपसी वाद-विवाद हुआ और अंत में झगड़े परपहुँच गया । सारे लोग तितर-बितर गये ।मार-पीटाई की स्थिति देखकर औरतें भी भाग गयी ।पंचों ने मामले की समेंटते हुए निर्णय दिया कि-“उस औरत को जाति से निकाल दिया। उसके पति को तलाक दिया ।हर्जाना लिया जाए और दूसरी शादीकी अनुमति दे दी ।”[203] यहाँ पुरुषप्रधान मानसिकता का रूप देखा जा सकता है । स्त्री होने के नाते उसे हासिए पर धकेल दिया और पुरुष को दूसरी शादी करने की अनुमति दे दी । इस तरह घटनाएँ घुमंतू समुदाय में आम बात होती है । क्योंकि पंचों को समाज की अपेक्षा अपनी कमाई अधिक ध्यान होता है ।

---

[202] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ.सं- 95

[203] वही, पृ.सं- 95-96

'बेरड़' आत्मकथा के यमुनापुर गाँव में बेरड़ समुदाय की लड़की शादीशुदा को गाँव के एक मुस्लिम लड़के से प्यार होता है और वे दोनों भाग निकलते हैं । लड़की का पिता न्याय माँगने के लिए गाँव पंचायत बुलाता है । इसके लिए वह बेरड़ों के ग्यारह गांवों के पंचों को एकत्रित करता है । इसके अलावा जात पंचायत का फैसला सुनने के सैकड़ों लोगों की तादाद इकट्ठी होती है ।जात पंचायत को देख कर कार्यवाही में मुखातिब होने केलिए कोई हिम्मत नहीं जुटा पाता है । क्योंकि माहौल इतना डरावना बनाते हैं कि पंचों के सामने कोई सच बोले या झूठ उनको पंचों द्वारा झूठ साबित कर देते हैं । इसलिए बोलने की हिम्मत किसी ने नही किया । किसी भी स्थिति में बख्शा नहीं जाता । यानी उस पर कमर तोड़ जुर्माना लगा दिया जाता है । इसलिए कार्रवाई के शुरू में ही पंचों की हड़प भरी कड़क भरी आवाज सुन कर कादर का पिता थरथर काँपने लगता है । पंचायत द्वारा सवाल-जवाब करते समय मुस्लिम परिवार अपने बेटे की गुस्ताखी पर बहुत पछताता है । पंचायत के सम्मुख कादर का पिता माफी माँगता है और उसका भाई पारिवार के वास्ते मरा हुआ समझता है । उसे किसी भी सूरत पर घर में स्वीकार नहीं करने और प्रॉपर्टी में हिस्सा न देने की बात करता है ।

बाप-बेटे के बयान पर जात पंचायत गहरी सोच में पड़ जाती है । उनकी भोली-भाली बातों का परिणाम अधिक उलझने की बजाय, पंच किस पर कितना जुर्माना लगा दें, बस इसी एक मुद्देपर आपस में बातचीत करने लगते हैं । अंततः निर्णय लिया गया कि कादर के बाप पर डेड हज़ार रुपये जुर्मा के रूप में सरपंच के हवाले एक माह के अंदर दें । यदि नहीं दिया गया तो दुगना जुर्माना भरने का फरमान जाहिर किया । जात पंचायत के खिलाफ कुछ बोल देने पर जुर्माना घटने की बजाय बढ़ ही जाने की अधिक संभावना थी । जो कुछ होना था पंचों की मनमर्जी के मुताबिक ही होना था । अन्यथा, दंडित लोगों का गाँव में जीना मुहाल हो जाता है । जात पंचायत के भयानक वातावरण को भाँपकर कादर का पिता जात पंचायत की हर शर्त को फौरन हाँ कह देता है । पंचायत द्वारा खान-पान और पंचों का खर्चा देने की बात होती है-"इस पर कादर के बाप ने फौरन पाँच सौ रुपये और बाकी लोगों में से हर एक ने दो-दो सौ रुपये लाकर पंचों के पंचों के सामने पेश कर दिए । कुल जमा ग्यारह सौ रुपये हुए, जो ग्यारह गाँव के पंचों ने अपनी-अपनी औकात के मुताबिक आपस में बाँट लिए । हमारे गाँव के पंचों के हिस्से की रकम उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर स्वीकारने की बजाय, वह ग्राम देवताओं के मंदिरों में दीया-बाती के वास्ते अर्पित कर दी । उसी समय जमा रकम में से सौ रूपये लेकर एक जात-पंच पुलिस

थाने चल पड़ा, सौ रुपये थानेदार नजर करने ।”[204] अतः स्पष्ट होता है कि बेरड़ घुमंतू समुदाय के स्त्री-पुरुष का संबंध अन्य समाज के लोगों से होना खतरे से खाली नहीं होता । ऐसे समय यहाँ पुलिस प्रशासन संवैधानिक रुख अपनाने की बजाय समाज में जात पंचायत को बढ़ावा देने, बरक़रार रखने तथा अपराध बढ़ने की राह देखने का रुख अपनाता है । इस लिए वर्तमान समय में भी ऐसी घटनाओं को देखा जा सकता है ।

‘उचक्का’ आत्मकथा में लेखक पत्नी के तलाक शुदा बहन का प्रसंग बताते हैं । कवठा नामक गाँव में अपने अपने माँ-बाप के साथ रहते हुए सालूबाई को दो-तीन साल बीत जाते हैं, इस दौरान सालूबाई का संपर्क अपनी बिरादरी के रावण के साथ आता है । रावण हमेशा विवाह के आश्वासन देकर सालूबाई से संपर्क बनाता है । इस दौरान सालूबाई रावण से गर्भवती रहती है और उसे लड़की पैदा होती है । सारी बिरादरी को इस बात का पता होते हुए भी किसी ने कुछ नहीं कहा । रावण के माँ-बाप ने दूसरी लड़की देखकर, शादी करने का निर्णय ले लेते हैं । इस निर्णय का पता चलते ही सालूबाई जात पंचायत बुलाती है । इसके लिए दूरदराज के पंच आते हैं । जात पंचायत में सालूबाई को रावण से लड़की की हुई इसकी गवाही सारे लोग देते हैं । सालूबाई को रावण से लड़की हुई, इस कारण अब उसकी शादी सालूबाई से होनी चाहिए, दूसरी से नहीं करें ऐसा निर्णय हुआ । निर्णय के बाद विपक्ष की ओर से हो-हल्ला मच गया । सालूबाई के पिता की सहमति से निर्णय लिया जाता है कि,“सालूबाई की पेशाब में रावण अपनी नाक डुबोए और सालूबाई को 251 रुपये हर्जाना दे, इसपर सहमति हुई । सालूबाई एक टोकरी में अपना पेशाब ले आई । जात पंचायत के सामने उसके टोकरी रख दी । उस पेशाब में रावण ने नाक डुबोई और दूसरी शादी के लिए मुक्त हो गया ।”[205] हमारे समाज में आज भी स्त्रियों के प्रति ऐसी वृत्ति देखी जा सकती है । सालूबाई के पिता की सहमति के कारण सालूबाई की जिंदगी जैसे नरक बना दी । सालूबाई हर रोज़ मेहनत-मजदूरी कर अपने माँ-बाप को पाल-पोस रही थी । इसी लालच के कारण सालूबाई का पिता अपनी बेटी का समर्थक न होकर ‘बिना मालिक की कह कर’ अपने ही बेटी की जिंदगी बर्बाद करता है ।

महाराष्ट्र में नाथपंथी, डवरी, गोसावी घुमंतू जनजाति में अनेक उपजातियाँ पाई जाती है । हर एक जाति का अपना-अपना पारंपरिक व्यवसाय होता है । उनकी जाति व्यवस्था, देवी-देवता, शादी-ब्याह, मृत्यु विधि और भाषा अलग-अलग पाई जाती है । इनमें रोटी-बेटी

---

[204] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 227-228

[205] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि., नई दिल्ली, दू. आ- 2011, पृ.सं-154

व्यवहार वर्जित है । प्रत्येक जाति के कुलदेवी-देवता एक ही होते हैं और पारंपरिक मर्यादाएँ अलग होती है । जीविका निर्वाह के आर्थिक साधन एक ही होते है, परंतु कार्य करने के ढंग अलग-अलग होते हैं । हर एक समुदाय का अपनी जात पंचायत होती है । उसका स्वरूप, बैठक का स्थान, पद्धति में अंतर होता है । पंचों द्वारा समुदाय में स्त्री-पुरुषों को अलग अलग महत्व होता है । उसके शोषण के स्त्रोत भी अलग होते है । इसे प्रकट करते हुए रामनाथ चव्हाण लिखते हैं-"जाति से स्त्री भाग गयी तो 60+80 रुपये जुर्माना होता है । भागी हुई स्त्री समान गोत्र की होती है तो भाग कर ले जाने वाले को 350 रुपये जुर्माना और बकरा काटकर समुदाय को भंडारा देना पड़ता है ।"[206] गोत्र से भागकर जानेवाले पुरुष को अधिक जुर्माना रखने का कारण इस समुदाय में पुरुष को दोषी समझा जाता है । उसकी पत्नी भाग जाती है, अथवा भगाई जाती है ऐसे पुरुष को जात पंचायत तीन बार अवसर देती है । तीन बार में पुरुष अपनी पत्नी को ढूंढने में नाकामयाब होता है तो जात पंचायत उसे पुरुष को जुर्माना लगाते हुए, उसे पत्नी मिलने तक बहिष्कृत कर देती है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति में किसी भी समुदाय में जात पंचायत के नियम का उल्लंघन करने के लिए पाबंदी है । यदि किसी व्यक्ति ने जात पंचायत का उल्लंघन किया, तो जात पंचायत का परामर्श मानने लिया अथवा जात पंचायतों द्वारा अन्याय कारक निर्णय को बर्दाश्त न कर तथाकथित अदालत में जाता है और वहाँ पर भी दुर्भाग्यवश हताशा आती है, और वापस पंचायत के सम्मुख माफी माँगता है तब उसे स्वीकारने के लिए समाज द्वारा जात पंचायत तथाकथित न्यायालय में जाने की सज़ा के रूप में समुदाय नियम के अनुसार-"सरकारी कचहरी में जाने के कारण तीन बार डेड हज़ार अर्थात साडे चार हज़ार रुपये दंड और समुदाय को भोज देने की शिक्षा सुनाई जाती है ।"[207]

सन् 2014 में चंदेरी दुनिया, मेट्रो सिटी और देश की आर्थिक राजधानी कही जाने वाली मुंबई में स्थित वैदू समुदाय में जात पंचायत की वारदात सामने आती है । जात पंचायत का मामला समुदाय के बाहर आने का कारण एक शिक्षित युवती है । जिसका नाम दुर्गा गुडेलु है । दुर्गा के बड़े बहन की शादी उसके मामा के बेटे से अपनी माँ के गर्भ में (जन्म से पहले) रहते तय

---

[206] भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत भाग-1, रामनाथ चव्हाण, पृ.सं- 7-8

* जातीतील स्त्री पलवून नेली तर 60+80 रुपये दंड. पलवून नेलेली बाई भावकीतील असेल गोत्र पलवून नेनार्यास 350 रुपये दंड केला जातो. त्याशिवाय एक बकरा आणि वस्तीला जेवण द्यावे लागते.

[207] वही, पृ.सं-109

* सरकारी पायरी चढला म्हणून(न्यायालयात गेला म्हणून)तीन दीड हजार (तीन दीड हजार म्हणजे साडे चार हजार) दंड आणि गावाला पंगत (जेवण) देण्याची शिक्षा सुनावली जाते.

होती है। वर्तमान समय में दुर्गा की बहन समुदाय की पहली स्नातकोत्तर लड़की है। और मामा का बेटा सातवीं में फेल है। अब दुर्गा की उच्चशिक्षित बहन का कहना है कि 'मामा के अनपढ़ बेटे से शादी नहीं करेगी।' लिहाजा, जात पंचायत मामा के बेटे से शादी न करने की सज़ा सुनाती है। निर्णय में जात पंचायत लड़की के परिवार को पच्चीस हज़ार रुपये का जुर्माना भरने का आदेश दिया जाता है। पैसा न जुटा पाने के कारण जात पंचायत तीन बार बर्खास्त होती है। 'अतः दोनों बहनें मिलकर जात पंचायत का विरोध दर्शाती हैं। माँ-बाप को समुदाय से बिछड़ने का डर होता है। ऐसे में चौथी बार जात पंचायत बुलाई/बैठाई जाती है,इसमें पच्चीस हज़ार रूपये भरे जाते है। जात पंचायत पच्चीस हज़ार लेकर दूसरा फरमान जारी करती है कि महाराष्ट्र के अन्य जगहों से पंचों को बुलावा देने के लिए पचास हज़ार भरें रुपये।"[208] इस समय दुर्गा और उसके पत्रकार मित्र ने जात पंचायत की तमाम धमकियों और मारपीट के बाद भी जात पंचायत जैसी अनिष्ट प्रथा का विरोध दर्शाते हैं। बाद में आंदोलन करने की ठान लेते हैं। तब महाराष्ट्र के अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति का समर्थन मिलता है और जात पंचायत के खिलाफ बड़ा आंदोलन किया जाता है। इस कारण हजारों साल पुरानी शोषणकारी जात पंचायत बर्खास्त हो जाती है।

4.1.3. आर्थिक संघर्ष और शोषण का चित्रण

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का जीवन ही एक संघर्ष पूर्ण कहानी है। उनकी अस्थिर जीवन शैली, शोषण के अनेकानेक चित्र नजर आते हैं। आर्थिक शोषण में समाज में स्थित प्रथा-परंपरा, रीति-रिवाज, शादी-ब्याह आदि के लिए समुदाय के लोग कर्ज उठाते हैं और उसे चुकाते रहते है। दूसरी ओर जिंदगी में सन्-उत्सव, त्यौहार, मेला, मृत्युभोज, जन्म भोज का चक्र इन के आर्थिक शोषण का कारण बनता है। अलावा इसके समय-समय पर ज़मींदार, ठेकेदार, पुलिस, सरकारी कर्मचारियों के शोषण के बलि बन जाते हैं।

कैकाडी समुदाय के लोग साल में एक बार एकत्रित होते हैं और साल भर पेट-की आग बुझाने के लिए अलग-अलग देशों में (प्रादेशिक क्षेत्रों में) भटकते रहते हैं। यही क्रम इनकी जिन्दगी में चलता रहता है। चैत्र की अमावस्या के अवसर 'कुरमाली' नामक गाँव के मेले के शुभ अवसर पर एकत्रित होते है। जीवन-यापन के लिए वर्ष भर भटकते रहनेवाले परिवार दशहरे तक कुरमाली में पहुँच जाते हैं। जिस दिन लेखक का परिवार आता है, उसके चार दिन बाद ज्ञानू और बजरंग चाचा उनका परिवार पहुँच जाता है। वह दूर तानपूर, मालशिरस, इंदापुर होकर आए थे। हम मानदेश जाकर आए थे। यही क्रम कैकाडी समुदाय की पीढ़ियाँ

---

[208] https://www.youtube.com/watch?v=v4vpj3iwkg (20 nov 2019, 7.50pm)

करते आ रही है । मेले का दिन नज़दीक आ रहा था । हर साल एकत्रित मेला मनाने वाले एक ही परिवार के भाई इस बार अलग मनाने के लिए मजबूर होते हैं । साल भर में किस ने कितना कमाया इस प्रश्न पर सभी भाई एक-दूसरे का मुह देखते हैं । और अंततः कुछ ना कुछ कह कर खाली हाथ खड़े कर देते हैं । इसलिए लेखक के पिता भगवान का हुक्म है, कहकर 'इस साल अपना-अपना मेला आप देख लो' कहते हुए मेले का बंदोबस्त करने निकल जाते हैं । बाल-बच्चों के लिए कपड़ा-लत्ता, देवी के लिए दो मुर्गियाँ, एक बकरा भारी खर्चा था । पिता अपनी बात पर अडिग रहे ।पैसे तीनों भाइयों के पास नहीं थे । लेखक के पिता ने फसल के समय बोरा भर ज्वारी गाँव के किशन पाटिल के पास रखी थी । उसके लिए ग्राहक ढूंढकर उन्हें चालीस रुपये में बेच दिया । बजरंग और ज्ञानू चाचा ने अपना-अपना तंबू झटका, परंतु पाँच-पचास से अधिक रुपये इकट्ठे नजुटा पाए । लेखक के पिताजी गाँव के दिनकर पाटिल से पैसे की अपेक्षा करते हुए लेखक के पिता विनती करते है-"भगवान का काम, धरम का काम इसे तो करना ही होगा । इसके बिना कैसे चलेगा । माँतूसरी का आशीर्वाद है । इसलिए रुखा-सुखा मिल जाता है । उसकी सेवा तो करनी चाहिए ।" दिनकर पाटील ने दो सौ रुपये ब्याज पर दिए । बाप घर आया । भाई से ब्याज पर पैसे लेने की बात बताई । दोनों को अच्छा लगा । देवी माँ ने संकट से उबार लिया, यह सोचकर नि:श्वास छोड़ा ।"[209] जीवन में इतने संघर्ष होते बावजूद भी घुमंतू समुदाय के लोग देवी-देवताओं की शरण में जाते हैं । उन्हें आज भी लगता है कि संकट से उबारने के लिए ब्याज से पैसे उठाना जरुरी है । परंतु उन्हें यही पता नहीं कि दुनिया में भगवान होता तो मेहनत-मजदूरी करने की ज़रूरत ही क्या ? हमारे समाज में भगवान विकास का सबसे बड़ा रोड़ा है यह समझने में और कितनी पीढियाँ खप जाएगी पता नही ।

उठाईगीर समुदाय एक ऐसा समुदाय है जो आज भी अंग्रेजों द्वारा दिया गया 'अपराधी' का ठप्पा अपने माथे पर लेकर घूमता है । हमारी व्यवस्था में उठाईगीर समुदाय का शोषण हर समय होता है । सन् 1952 में 'विमुक्त' करने के बाद समाज ने नही स्वीकारा, उसी प्रकार पुलिस प्रशासन ने भी हमेशा दबाव में रखा । समाज में जहाँ भी चोरी-चकारी होती है, उठाईगिरों के घर पुलिस छान-बीन करने आ जाती है । 'उचक्का' आत्मकथा के हर दूसरे पन्ने पर जमींदारों, व्यापारियों, पुलिस वालों द्वारा किये गए अन्याय और शोषण की घटनाएँ दर्शायी गयी है । पुलिस प्रशासन की इतनी बे-हयाई शायद ही किसी समुदाय को झेलनी पड़ी हो । पुलिस जब भी लेखक के समुदाय में पूछ-ताछ करने आ जाती है, तो बिना किसी कारण समुदाय की सभी महिलाओं और छोटे बच्चों को बेतहाशा पीटती है । वहाँ पर जो नया कपड़ा या वस्तु

[209] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ.सं- 30

दिखाई देती है उसे चोरी का समझकर उसकी रसीद माँगती है। कई बार रसीद न मिल पाने के कारण उनके परिवार वालों और समुदाय को पीटती है। चोरी का माल समझ कर पुरुषों थाने ले जाती है। ऐसे समय परिवारवाली स्त्रियाँ पुलिस वालों के पैर पकड़ती है। चोरी न करने के सबूत देती है, फिर भी पुलिस वाले उन स्त्रियों के साथ मारपीट, अश्लील हरकते करती हैं। इसे स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते हैं-"कल लातूर से एक पाँच सौ रुपये का बटुआ गया है। हमें पता चला है कि वह जेबकतरा इसी गाँव का है, तेरा लड़का है। बता, रुपये कहाँ रखा है? पाँच सौ रुपये लाकर दे। अगर रुपये नहीं मिले, तो सब को पकड़कर अंदर करूँगा।"[210] धमकी देकर पुलिस शराब पीने के लिए निकल जाती है। ऐसी स्थिति में लेखक के परिवार पर संकट निर्माण होता है। माँ-पिता डर के मारे गाँव में भाग जाते हैं। पिता अपने मालिक के पास रोते हुए समस्या बताते हैं और अगले साल भर की पूरी तनख्वाह ले आते हैं। माँ गाँव के साहूकार के पास जाकर आठ दिन के लिए ब्याज पर पैसे ले आती है। कुछ देर में पुलिस वाले शराब के नशे में धुत होकर वापस आते हैं और हो-हल्ला मचाते हैं। पैसे लेते हुए सबको लाइन में खड़ा करके पीटाई करते हैं। इससे समुदाय पुलिस वालों से डरें दूसरी ओर गाँव में पूरे चर्चा होती है। इस कारण समुदाय के लोगों को मजदूरी नहीं मिलती। इस तरह चोरी करने के हालत पुलिस ही तैयार करती हैं। साहूकार से कर्ज लो, पुलिस वालों को दो और कर्ज वापस करने के लिए फिर चोरी करते रहो यहीं चक्र चलता है।

हमेशा समाज सम्मान के साथ जीवन जीने की कोशिश करता है परंतु किसी ना किसी कारणवश दोषी बनाकर बंदी बनाया जाता है। कर्ज चुकाने के लिए चोरी करते, चोरी किया हुआ माल व्यापारी मोलभाव में खरीद लेता है, पुलिस पाटिल गाँव में रहने का कमीशन लेता है और पुलिस चोरी करते हुए पकड़ती हैं। कुछ कमीशन लेकर छोड़ देती है। लेखक अपने समुदाय को बकरा बना कर अमीर बनने वालों का पर्दाफाश करते हैं। एक समय 'कवठा' नामक गाँव में सवर्ण जातियों के लोगों की हालत बहुत बुरी थी। परंतु उठाईगिरों की वजह से इस गाँव के लोगों संपत्ति अधिक बन बैठी हैं। उठाईगीर बिरादरी का पंद्रह साल का बच्चा उठाईगीरी करने निकल जाता है तो एक बार में 5 सौ कमाता है वैसे एक माह में दस-बारा हज़ार की कमाई करता है। परंतु "धंधे से लौटने के बाद सभी सदस्य सहकर के यहाँ पहुँचते हैं। जाने पहले जो कर्जा ये लेते हैं, उसका ब्याज 400-500 (प्रत्येक का) हो जाता है। पूँजी और ब्याज लौटाने के बाद इनके पास कुछ बचता ही नहीं। इसलिए ये फिर उसी से कर्जा लेते हैं। इतनी बड़ी कमाई के बाद 10-15 दिन भी सुख और आराम से नहीं गुजार पाते। निरंतर कर्ज और भूख से बेहाल-

---

[210] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि., नई दिल्ली, दू. आ- 2011, पृ.सं- 47

यह स्थिति स्थायी होती है। परंतु इनके पैसों पर और लोग मौज करते हैं। संपन्न हो जाते हैं। इन्हीं से पैसा लेकर इन्हीं को ब्याज पर देते हैं। इनकी मेहनत और कुशलता का शोषण कर संपन्न हुए अनेक लोग मैंने अपनी आँखों से कवठा, सलगरा, जावली, भाड़गाँव आदि गाँवों में देखे हैं।"[211]

सन् 1965 के आसपास महाराष्ट्र-कर्नाटक के सीमा पर स्थित बेलगाँव के यमुनापुर में बेरड़ समुदाय मेहनत-मजदूरी करके जीवन-यापन करता है। गाँव के बेरड़ समुदाय के कुछ लोगों के पास एकाध जमीन का टुकड़ा होगा परंतु अधिकत्तर लोग शराब बेचने, छोटे-मोटी चोरी करने तथा अधिकत्तर खेत मजूरी करके गुजारा करते हैं। एक दिन ऐसा हुआ कि गाँव के गरीबों, जमींदारों और स्थायी लोगों को कारखाने के संचालक-सदस्यों ने अनेक आश्वासन देकर उनकी जोत-जमीन सरकारी रेट परखरीद ली थीं। उन्हें जमीन खरीदते समय ऐसी बातों झाँसा दिया कि सरकार ही उनकी जमीनें खरीद रही हों। जो कोई जमीन नहीं देगा, उसकी जमीन सरकार के कब्जे में अपने-आप हो जाएगी; उसे मिलनेवाली रकम भी बाद में नहीं मिलेगी। सो स्वभावतः अधिकतर अज्ञानी और गरीबों की जमीन थी, अशिक्षित होने के कारण शिकायत भी किससे करते ? लिहाजा, उन्हें मजबूरन जितने पैसे मिल रहे थे, उतने पैसे लपक कर ले लेते हैं। और कागजों पर अंगूठे लगा देते हैं। जो पुश्तैनी जमीन उनके हवाले कर दी ! परंतु-"उन दिनों जमीन का सरकारी रेट मात्र पाँच सौ रुपये प्रति एकड़ था। जबकि खानगी रेट प्रति एकड़ बारह से पंद्रह हज़ार रुपयों तक आँका जा सकता था।"[212] आश्वासनों में कारख़ाना बनने पर किसानों, उनकी संतानों को नौकरी, औरतों को रोज़ गार, शिक्षा की मुफ्त सुविधा, दवा-पानी के लिए बंदोबस्तवाले अस्पताल जैसे तमाम लुभावने आश्वासन दिए गए। परंतु इसमें छोटे किसान और काश्तकारों का शोषण हुआ था। उनकी जमीनें हड़पी गयी थी। अन्याय, जबरदस्ती से जमीन हड़पने की कार्यवाही गोर-गरीब काश्तकार कैसे और किससे करता ? मगर जो कुछ समझदार लोग ऐसे भी थे, जिनको धोखाधड़ी की भनक होते हुए भी कारखाने के संचालकों से बाकायदा सांठ-गांठ ली। बाद में नेता किस्म के लोगों ने और जमींदारों ने सरकारी अधिकारियों से अपना उल्लू सीधा कर लिया। बाकी बचे बेरड़ और काश्तकार जो इस परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया से कंगाल बन बैठे।

[211] वही, पृ.सं- 126-127

[212] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 176

जरायम पेशा से जुड़े समुदाय के सवालों पर हमारे देश की पुलिस और जाति व्यवस्था से ग्रस्त मनुवादी समाज में आज भी इनके चरित्र पर सवाल उठाए जाते हैं। जेष्ठ साहित्यिक और अनुवादक गुलाबराव हाडे का कहना है कि-"इधर महाराष्ट्र में अंबरनाथ, सोलापुर तथा मुंडावा (पुणे) जैसे नितांत नगर तहजीव वाले स्थानों पर गुजरे दौर सेटलमेंट आज भी मौजूद हैं। और वहाँ बसनेवालों को समाज का बृहत हिस्सा आज भी अपराधी मानता हैं। उन्हें शक की निगाह से देखता है। यहाँ तक की इलाके में कहीं कोई गड़बड़ी या अपराध जन्य वारदात हो जाती है, तो पुलिस छापा मारने या पकड़-धकड़ करने के इरादे से पहले-पहल सेटलमेंट में ही धमकती हैं।"[213] जाँच-पड़ताल में असली मुजरिम ना मिलने के कारण पुलिस ऐसी जनजातियों के बस्तियों में धमकती है। कुछ को जबरन पकड़कर हिरासत में लेती हैं। बाद में पुलिसिया-आतंक और यातानादायी सिलसिला शुरू हो जाता है। उच्च अधिकारियों के दबाव जो इनके मनोबल तोड़ने के लिए बाध्य करते हैं। यही नहीं कई बार तो ऐसे-अपराधों के इल्जाम थोपे जाते हैं, जिनका घटित रूप अक्सर ही संदिग्ध होता है। इनकी निरुद्देश कार्रवाई (हिरासत) पर लक्ष्मण गायकवाड़ ने 'हासिए का साहित्य और समाज संगोष्ठी 2018, इफ्लू, हैदराबाद' में कहते हैं- 'आज भी विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के लोगों को बिना वजह घर से उठाया जाता है और जेल में बंद किया जाता है। जेलों का सर्वेक्षण करेंगे तो उनमें बेवजह उठाए गए लोगों की संख्या सबसे अधिक मिल जाएगी।'

4.1.4. गरीब और भूख के सवाल

इंसान को यदि भूख ही न होती तो 80% गरीब के सवाल ही खड़े न होते। सगे-संबंधियों के लिए सो जाने भर का सवाल होता, वह तो कहीं-न-कहीं तंबू खड़ा करके भी गुजर जाता। जो आज भी गुजर रहा है। परंतु भूख। भूख ने तो इंसान को भीख माँगने, चोरी करने से लेकर शरीर बेचने तक के काम करवा रही है। इससे निपटने के लिए सरकार द्वारा दर्जनों कानून और सैकड़ों योजनाओं का निर्माण किया। परंतु हमारे देश जातिवादी, वर्णवादी व्यवस्था ने इसे सामान्य मनुष्य तक पहुँचने से रोका। मनुष्य और मनुष्य में फर्क किया। इसलिए समाज के बहुसंख्यक लोगों को भुखमरी झेलनी पड़ती है। इसके उदाहरण विमुक्त तथा घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में देख सकते हैं।

[213] वही, पृ.सं- 105

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के उठाईगीर समुदाय की स्थिति के बारे में सोचें तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। गरीबी इतनी होती कि भोजन के लिए चोरी करनी पड़ती है। चोरी करते समय पकड़े जाने पर मार ख़ाना पड़ता है। पुलिस से छुटकारा पाने के लिए घूस देनी पड़ती है। इसलिए समुदाय के लोग चोरी करके, ब्याज से उधार लेकर पुलिस वालों की जेब गर्म करते हैं। ऐसे में घर का कोई सदस्य बीमार हो तो बहुत बड़े संकट में गिरने जैसी अवस्था होती है। पैसे के अभाव में सरकारी अस्पताल ले जानेपर वहाँ पर भी भेदभाव की दृष्टि से देखा जाता है। बहाने-बाजी करके मरीजों को मृत प्रायः कर देते हैं। गरीबी के कारण प्राइवेट अस्पताल का खर्च झेल न पाने कारण पिताजी लेखक की माँ को भभूत लगाकर अस्पताल से दूर रखते हैं। इसी प्रकार अपने परिजनों को खो बैठने के अपने दुःख को व्यक्त करते हैं-"मुझ गरीब की माँ को सुख नहीं मिला था। वह भी गरिबी में ही चली गयी। भाई हरचंदा गायब हो गया। बाप का सहारा था, अब वह भी टूट गया। वह कई साल और जी सकता था। मरने की उसकी उम्र नहीं थी। केवल गरीबी के कारण, दवा के अभाव के कारण अच्छे दवाखाने में दिखाने की स्थिति में न होने के कारण और दो समय की ठीक से भोजन न मिल पाने के कारण बाबा मर गया, इसका मुझे अधिक दुःख होता रहा था।"[214]

छोरा कोल्हाटी का आत्मकथा में लेखक किशोर शांताबाई काले अपनी कहानी के साथ कोल्हाटी समुदाय के स्त्रियों की दारुण कथा का वर्णन करते हैं। इस समुदाय की स्त्रियों के साथ इतने धोखे होते हैं कि अंतः उन्हें नाचने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं बचता। उन स्त्रियों का स है। अपनी बहू-बेटियों की शादी नकर उन्हें नाच-गाने के लिए प्रवृत्त करता है। ऐसे में किसी बड़े ज़मींदार, अफ़सर से स्त्रियों की माँग होती है तो परिवार वाले ही उसे रीति-रिवाज के अनुसार (पैसा, जमीन-जायजाद) उन्हें सौंप देते हैं। रस्म पूरी होने के बाद क़ज़ा (स्त्री को ख़रीदा हुआ मालिक) को स्त्रियों के घर आना पड़ता है। उन्हें क़ज़ा अपने घर नहीं ले जा सकता। इस कारण पुरुष शरीर संबंध बनाने तक ही अच्छे संबंध रखता है। जब तक स्त्री उन्हें अच्छी लगती है तक तब वे आते हैं। कुछ दिनों तक मौज-मजा करते हैं, वापस चले जाते हैं। ऐसे ही लेखक की बेबी नामक मौसी पवार साहब नाम के व्यक्तिका इंतजार कर रही थी। पवार साहब उसका नाच-गाना बंद करवाकर दो साल से उसे रखेल बनाकर रखा था। उसने एक बेटा भी हुआ था। लेकिन उसके बाद वह उसके पास आना बंद कर दिया। मौसी के साथ दूसरी बार ऐसा धोखा हुआ था। वह हर दिन रो-रोकर बुरा हाल कर लेती थी, पागलों की तरह इधर-उधर घूम रही

---

[214] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दू. आ- 2011, पृ.सं- 121-122

थी । पागलों की तरह इंतजार कर रही थी । 'लाचार बेबी मौसी को फिरसे नाचना शुरू करना पड़ा । सुशिला, रंभा और बेबी एक साथ नाचने लगी ।'[215] नाचनेवाली उनकी किस्मत में रोने के अलावा कुछ नहीं होता है । उन्हें बगैर सोचे-समझे परिवार के लिए नाच-गाना करना पड़ता है । और नाजायज बच्चे पैदा होने पर उनका जिंदगी भर का पालन-पोषण करना पड़ता है।

इन्हीं तमाम परेशानियों से सामंजस्य करके लेखक एम.बी.बी.एस के लिए प्रवेश पाता है । लेखक का आदर्श सामने रखकर सभी कोल्हाटी समुदाय की स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए नाच-गाना (मेहनत-मजदूरी) करती हैं । परंतु उनके मेहनत का फ़ायदा परिवार का कर्ता व्यक्ति ही उठाता है । जबतक फूल में खुशबू रहती है, उसकी इज्ज़त होती है । जब वह कुमल्हा जाता है, उसे उठाकर फेंक दिया जाता है । इन स्त्रियों को दो तरफ़ा अन्याय का मुकाबला करना पड़ता है । ऐसी स्थिति में परिवार और बच्चों के स्कूल और छात्रावास के फ़ीस का इंतजाम करना बडा मुश्किल हो जाता है । ऐसी स्थिति में समुदाय की स्त्रियों को शरीर बेचने पर मजबूर होना पड़ता है । इसे स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते हैं-"एकदिन दोपहर में स्टेज पर सोया था तो देखा कि एक औरत किसी आदमी से बात कर रही थी । मैंने सुना तो वह उससे कह रहे थी कि मुझे दो सौ रुपये दे दो गाँव से चिट्ठी आई है बाद में लौटा दूँगी तो उस आदमी ने कहा कि ठीक है तो फिर आज हो जाए उसने हाँ की और वह दोनों पर्दे के पीछे चले गए ।"[216] इनके साथ स्थिति ऐसी आ जाती है कि अपने परिवार के और अपने बाल बच्चों के पेट की आग बुझाने के लिए अपने-आप को सौ-दो सौ रुपये के लालच में शरीर बेचना पड़ता है ।

सच तो यह है कि अत्यधिक गरीबी सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ापन और समस्त समाज का इनकी तरफ़ देखने का निहायत ही रुखा तथा घृणित दृष्टिकोण है । यही दृष्टिकोण समाज के परिवेश में निम्न निम्न जाति के घुमंतू समूहों के अंतर बाह्य जीवन को समग्रता से प्रभावित करता है । शिक्षा, रोज़ गार और व्यक्ति के वैयक्तिक कार्य को तहस-नहस कर देता है । कोल्हाटी, बेलदार, कैकाडी, नंदीबैलवाले, मदारी, जोशी आदि घुमक्कड़ जनजातियाँ गाँव-गाँव उदनिर्वाह के लिए घूमती है । इन समुदायों का ढांचा तहस-नहस के कलेवर का होता है । घोड़ो, गधों, भैंसों की पीठ पर अपना डेरा डालकर भटकते हैं । यह शौक से नहीं घूमते हैं इनका व्यवसाय और जीवन ही घूमने से चलता है । 'डेराडंगर' आत्मकथा में जोशी समुदाय एक गाँव में कितने दिनों तक भविष्य देखता सकता है ? मुश्किल से एक या दो दिन तक रहता है । भविष्य देखना बंद हो जाता है तो आमदनी अपने आप बंद हो जाति है । तब परिवार के बच्चे-बूढ़े हाथ में

[215] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 1997, पृ.सं- 126
[216] वही, पृ.सं-127

थालियाँ लेकर भीख माँगने के लिए निकल जाते हैं। इससे मुश्किल से और चार-पाँच दिन गुजर जाते है। फिर भीख की बजाय गालियाँ ही मिलती है। समुदाय के लोगों को गालियों की आदत हो जाती है। तब उन्हें बुरा नहीं लगता, क्योंकि वे उसके अधीन बन जाते हैं। जानवरों का चारा-पानी मिलना भी मुश्किल हो जाता है। तब दूसरे गाँव निकालने के लिए मजबूर होना पड़ता है। क्योंकि इसके अलावा कोई चारा नहीं होता है। जाने के लिए जब अगला गाँव निश्चित हो जाता है तो परिवार के पुरुष लोग डेराडंगर से पहले ही घर छोड़ते हैं। इसका हवाला देते हुए लेखक लिखते हैं-"कहें तो पिताजी की भी क्या गलती थी। वे भीख माँगने के लिए आगे न जाते तो शाम को हम पेट की आग कैसे बुझाते ?"[217]

जब किसी गाँव में रहते हुए सन-उत्सव या शादी-ब्याह के अवसर पर घुमक्कड़ जनजातियाँ अच्छा भोज मिलने की आशा से भीख माँगने की होड़ मचाते हैं। भूख से बिलखिलाते समुदाय का विश्लेषण लेखक करते हैं। मोहल्ले में तानाजी पाटील के घर की शादी की चर्चा होती है तो सब खुशी से फूल जाते हैं। समुदाय की स्त्रियों को कुछ दिन शादी के पहले बर्तन माँजने या झाड़ू-पोछा करने का काम मिल जाता है। परंतु शादी के दिन पूरे समुदाय के लोगों की हालत कई दिनों तक भूखे आदमी जैसे होती है। पूरा कैकाडी मोहल्ला एलुमिनियम की थालियाँ हाथ में पकड़कर शादी के मंडप के पास खड़ा हो जाता है। पास से गुजरने वाले हर वाड्पी के सामने थाली फैलाकर भोजन देने की माँग करते हैं। भूख से तड़पकर कोई भोजन परोसने के लिए कहता है तो उन्हें गालियाँ परोसी जाती है। "सारा ध्यान पंगत उठने पर होता है। पंगत अचानक उठती। पत्तलों का ढेर लग जाता। हम कूद पड़ते। हम पत्तलों पर टूट पड़ते। जो भी मिलता झोली में डाल लेते। कुत्तों द्वारा पत्तलें चाटने से पहले हम अपना काम निपटा डालते। जमा किया जूठन झोली में बांधकर आपस में गाली-गलौच कर वापस लौटते।"[218] वापस आने पर उस जूठन को दो-तीन दिन धूप में सुखाकते हैं। शादियों के दिनों में इस समुदाय के लोग हर दिन ख़ाना नहीं बनाते। जिस गाँव में शादी का पता चलता है उस गाव डेरा उठाकर निकल पड़ते हैं। खासकर गरमी के दिनों में महाराष्ट्र में शादियों का सीजन चलता है। छोटे- मोटे धंधे में गिरावट आ जाती है और मजदूरी भी बंद होती है। ऐसी स्थिति में घुमक्कड़ जनजातियाँ जूठन इकट्ठा कर अपना उरनिर्वाह करती है।

---

[217] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं-2001, पृ,सं- 35

[218] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ.सं- 63

4.2. राजनीतिक स्थिति

4.2.1. प्रगतिशील विचार और आंदोलन

हमें भूलना नहीं चाहिए कि अंग्रेजी प्रशासन द्वारा किये गए सामाजिक और शैक्षणिक कार्य । अंग्रेजी कंपनी द्वारा अपनाए गए हस्तक्षेप तथा तटस्थता की नीति के उनके अपने स्वार्थ थे । जिनमें ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा व्यापारिक क्षेत्र मजबूत करना और भारत में अपने व्यवसायिक हितों में वृद्धि करना, अधिकाधिक मुनाफे में प्रगति करना था । आर्थिक क्षेत्र में अंग्रेजी शासन का रुझान अधिक था ही, परंतु सामाजिक मसलों में रुझान एक स्वाभाविक बता थी । अंग्रेज समाज से जुड़ने पर भारतीय समाज व्यवस्था को समझ लिए थे । सामाजिक हालातों के प्रति उनकी आकांक्षा ने उनकी सोच को बदल दिया । भारतीय समाज जाति व्यवस्था पर आधारित सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से मूलतः धर्म पर आधारित है । इस बात को उन्होंने बखूबी समझा था । और भारतीय समाज के पारंपरिक स्वरूप को बदलने का बीड़ा उठाया । इसकी शुरुआत अंग्रेजों ने अपना प्रशासनिक तंत्र मजबूत और विस्तृत करने के लिए अस्पृशों एवं पिछड़ी जातियों को सेना और शिक्षा में अवसर प्राप्त किया । इस बात को स्पष्ट करते हुए शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं-"इस देश में अंग्रेजी शिक्षा के साथ नयी मूल्यावस्था भी आने लगी । अंग्रेजों ने सेना तथा अन्य सीमित क्षेत्रों में मनुष्य की गुणवत्ता के अनुसार प्रवेश देना शुरू किया। शिक्षा के क्षेत्र में सबको प्रवेश देने की नीति अपनायी । परिणाम स्वरूप जो सैकड़ों वर्षों से इन क्षेत्रों से नकारे गए संवेदनशील लोग थे, वे इन नए मूल्यों के आलोक में जीवन को देखने लगे।"[219]

अग्रेजों ने शिक्षा और सामाजिक ढांचे को तोड़ने का अवश्य काम समझा । जिसका मुख्यः आधार ईसाई मशीनरी को बनाया था । जिसके द्वारा भारतीयों में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार किया । जिसके अंतर्गत नारी की दयनीयता, सती प्रथा, बाल हत्या, बाल विवाह, बहुविवाह, असमान स्थिति और जातिवाद जैसी कुरीतियों की ओर उच्चवर्णीय लोगों का ध्यान आकृष्ट किया । और सामाजिक विषमता को समाप्त करने का अंग्रेजों की मशीनरिज् का बहुत बड़ा योगदान रहा है । उसकी उचित आलोचना करते हुए डॉ बाबासाहब अंबेडकर लिखते हैं कि-"अंग्रेज भारत में अपने विगत कार्यों को देख सकते हैं । यदि गैर संयत संतूष्टि से नहीं तो कम से कम संवैधानिक गौरव से अवश्य । उन्होंने भारत के लोगों को मानवता का महान वरदान "शांति" दी है, उन्होंने प्राचीन सभ्यता वाले राष्ट्र को आधुनिक संस्थानों तथा जीवन चर्या के साथ लाकर पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा आरंभ की । उन्होंने ऐसी प्रशासन व्यवस्था बनायी जिसमें समय के साथ-साथ सुधार और प्रगति की अपेक्षा है, जो प्रभावी एवं मजबूत है । उन्होंने अच्छे नियम व कानून बनाये तथा न्यायालयों की स्थापना की जिनकी पवित्रता आज भी धरती के किसी भी कोने में

[219] दलित साहित्य वेदना और विद्रोह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्र, दिल्ली, प्र.सं-2010, पृ,सं- 11

पूर्ण है । ये ऐसे परिणाम हैं जिनकी भारत में ब्रिटिश कार्यों का कोई भी ईमानदार आलोचक प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता ।"[220]

भारत के प्रथम व्यक्ति कहे जानेवाले राजा राममोहन राय जिन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़कर अपने आपको सामाजिक कार्य में झोंक दिया । उन्होंने पश्चिम बंगाल के कोलकाता शहर में 1815 में 'आत्मीय सभा' की स्थापना करके हिंदू धर्म की बुराइयों पर प्रहार किया । राजा राममोहन राय कहते थे-"मैं जिस बात पर ज़ोर देना चाहता था वह यह कि मेरा विरोध ब्राह्मणवाद के प्रति नहीं था, बल्कि उसकी विकृतियों के प्रति था । "[221] बाद में 1928 में 'ब्राह्म समाज' संगठन बनाकर समाज में व्याप्त सती-प्रथा, बहू पत्नी प्रथा, वेश्या गमन, पर्दा प्रथा आदि बुराइयों को दूर करने के लिए समर्थन एवं आंदोलन किया ।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा पुनर्विवाह के लिए सन् 1856 में कानून पारित किया । अपने इकलौते पुत्र की शादी एक विधवा से ही किया । उन्होंने बल विवाह का भी विरोध किया । कालांतर में बांगला के ही केशवचंद्र सेन के आकर्षण एवं व्यक्तित्व ने 'ब्राह्म समाज' आंदोलन को आगे बढ़ाते हुए भारत के शैक्षणिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पुनर्निर्माण में चीर स्थायी योगदान दिया । केशवचंद्र सेन की प्रेरणा से भारत के पश्चिम क्षेत्र मुंबई में 1867 में आत्माराम पांडुरंग और महादेव गोविंद रानाडे ने 'प्रार्थना समाज' की स्थापना की । और नारी जागरण योजना की शुरुआत की । महादेव गोविंद रानाडे ने-"इस दौरान बालविवाह एवं पर्दाप्रथा का विरोध, विधवा विवाह समर्थन और स्त्री की स्वतंत्रता के लिए बड़े पैमाने पर कार्य किया ।"[222]

उसी समयावधि में ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र के पुणे से दलित-पीड़ित, शुद्र-अतिशुद्र जातियों के लोग ब्राह्मण वर्ग के अधीन होकर नाना प्रकार के कष्ट सहन कर रहे थे । उन सभी शूद्रों-अतिशूद्रों के कष्टों से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने आंदोलन के अलावा शिक्षा के लिए स्कूल, नारी के लिए समान अधिकार की जनजागृति की और साथ में लिए साहित्य का भी माध्यम अपनाया । ज्योतिबा फुले ने कहा कि-"नारी और पुरुषों में किसी भी प्रकार का भेदभाव किये बिना सबको समान शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । वह साफ शब्दों में कहते हैं कि शब्दों कि जो वेदों की प्रशंसा करते हैं, उनको बुद्धिहीन पशुओं में भेज देना चाहिए ।"[223]

[220] बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांङ्मय, खंड-11, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, छठा सं- 2013, पृ. सं- 47

[221] सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, संपा- शंभुनाथ सिंह, भाग- 1, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं- 2004, पृ.सं- 49

[222] वही, पृ.सं- 793

[223] ज्योतिबा फुले रचनावली, भाग- 1, संपा- विमलकीर्ति, राधाकृष्ण प्र., नई दिल्ली, चौथा सं- 2015, आमुख से

देश में ब्राह्मणों का शासन लगभग तीन हज़ार साल से चला आ रहा है। बदलाव के स्वर निश्चित रूप से उभरे हैं। उन्हें यहाँ के धार्मिक ठेकेदारों ने हमेशा किसी-न-किसी डर या प्रलोभन से भटकाया गया। यहाँ के राजा- महाराजा हमेशा आक्रमणकारियों से सामंजस्य बनाकर अपना अस्तित्व बचाते रहे। सन् 1800 के आसपास अंग्रेजों का प्रभुत्व स्वीकार कर उनको पेंशन ग्रहण करने के लिए विवश होना पड़ा। यही वह समय था ब्राह्मणवाद और सामंतीवादी विचारों में हस्तक्षेप करने का। ब्राह्मणी अहंकार को ठुकराकर अंग्रेजों ने भारत में बच्चों के लिए स्कूल की मुहिम (अभियान) चलाया है। ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। इसी समयावधि में ज्योतिबा फुले ने भारतीय समाज में प्रचलित जाति पर आधारित भेदभाव के विरुद्ध आंदोलन चलाया। बाद में 'सत्यशोधक समाज' नामक संगठन की स्थापना की। जिससे उन्होंने शूद्रों-अतिशूद्रों को पुजारी, पुरोहितों, सूदखोरों की सामाजिक-सांस्कृतिक दासता से मुक्ति दिलाने और धार्मिक,सांस्कृतिक कार्यों में पुरोहितों की अनिवार्यता को खत्म करना तथा शुद्र-अतिशूद्रों और स्त्रियों के लिए शिक्षा के दरवाजे खोले। साथ ही विधवाओं और महिलाओं के सामाजिक, शैक्षणिक कल्याण के लिए काम किया। उनके लिए स्कूल और विद्यालय खोले, किसानों की हालत सुधारने के लिए काफ़ी प्रयास किया, अस्पृश्य, शूद्रों, उपेक्षित तथा गोर-गरीब जनता के लिए उच्चवर्नियों के खिलाफ आवाज उठाई।

छत्रपति शाहू महाराज ज्योतिबा फुले की 'गुलामगिरी' में व्यक्त किये विचारों से सहमत थे कि-

'विद्या विना मती गयी

मति बिना नीति गयी

नीति विना गती गयी

गती विना वित्त गया

वित्त बिना शूद्र टूटे

इतने अनर्थ

एक अविद्या के किये'

शाहू महाराज ने दलित-पिछड़ी जातियों के बीच शिक्षा के प्रचार-प्रसार बड़ा बीड़ा उठाया। भारत के इतिहास में वे प्रथम राजा थे जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और निशुल्क बना दिया। फुले दंपत्ति के सपने को पूरा करने के लिए स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। गाँव-गाँव में निशुल्क स्कूल और छात्रावास खुलवाए। नौकरी, रोज़ गार, शिक्षा में वर्चस्वशाली ताकतों का

नियंत्रण तोड़ने के लिए 1902 में कोल्हापुर रियासत में अस्पृश्यों एवं पिछड़ों को 50% आरक्षण के साथ छात्रवृत्ति का प्रावधान कियागया था। साथ ही “1906 में विट्ठल रामजी शिंदे ने दलित वर्गों के मिशन (Depressed Classes Mission) की स्थापना की तथा उनके लिए शिक्षण संस्थान एवं छात्रावास बनवाए। भाऊराव पाटिल ने सतारा में एक बोर्डिंग स्कूल की स्थापना की जो ‘शाहू बोर्डिंग फॉर द महार्स ऑफ़ सातारा’ कहलाता है।”[224]

शाहू महाराज ने 1912 में ‘सत्य शोधक समाज’ की कार्यवाही को आगे बढ़ाया तथा ब्राह्मणों के वर्चस्व को ख़त्म करने तथा जाति व्यवस्था खत्म करने और समानता लाने के लिए प्राण फूंके थे। तथा निरंतर कार्य किया। साथ ही उन्होंने युवा भीमराव अंबेडकर में एक जज्बा देखा। उनकी की कर्मठता और साहस को देखकर शाहू महाराज मनमाड में भरी सभा (1920) में घोषणा करते हुए कहा था-‘मुझे लगता है कि अंबेडकर के रूप में तुम्हें तुम्हारा मुक्तिदाता मिल गया है। मुझे उम्मीद है वो तूम्हारी गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ डालेंगे।’ हुआ वही, फुले शाहू के विचारों को आगे बढ़ाते हुए डॉ. अंबेडकर ने तथागत गौतम बुद्ध, कबीर, रविदास, तुकाराम आदि प्राचीन एवं मध्यकालीन संतों एवं कवियों का आदर्श अपने सामने रखा।

डॉ. भीमराव अंबेडकर स्वयं एक शोषित वंश में पैदा हुए थे। वे बचपन से ही समाज में स्थित अलग-अलग प्रकार के भेदभाव देखें थे और झीलें भी। ब्रिटिश कॉलोनी में पले-बढ़े अंबेडकर ने बदलाव का स्वरूप देखा था। ब्राह्मणवादी विचारधारा के प्रभुत्व के खिलाफ कथित निचली जातियों के संघर्ष और जाति का दंश देखा था। यही समाज परिवर्तन की नींव कहा जा सकता है। भीमराव अंबेडकर का आंदोलन भारत के दलित, पिछड़े, गरीब, शोषित लोगों के सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक; तथा विशेषता समान अधिकार देने के लिए था। यह भारत की सबसे बड़ी सामाजिक क्रांतिकारी पहल थी। डॉ. अंबेडकर संविधान निर्माण कार्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसमें उन्होंने समता, समानता, बंधुता एवं मानवता पर आधारित संविधान तैयार करने का अहम कार्य किया। इसलिए उन्हें संविधान निर्माता कहा जाता है। उन्होंने संविधान के माध्यम से देश के शोषित, पीड़ित लोगों और उनके अधिकारों के संघर्ष की सफलता पाई। साथ ही अंबेडकर ने आज अस्पृश्यों के मानवाअधिकार के लिए महाड का सत्याग्रह, नासिक में कालाराम मंदिर का आंदोलन आदि किया। इन आंदोलनों का भारतीय सवर्ण समाज पर कोई असर नहीं दिखा, तब उन्होंने घोषणा करते हुए कहा कि-‘मैं हिंदू धर्म में जन्म लिया हूँ, परंतु हिंदू रहकर नहीं मरूंगा।’

इसी समय भारत के अनेक क्षेत्रों में सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक कार्यक्षेत्रों में परिवर्तन हो रहे थे। “सामाजिक स्थिति को देखकर इस काल में जाति-विरोधी एवं गैर-ब्राह्मण आंदोलनों का उद्द्भव हुआ। ये आंदोलन दो वर्गों में रखे गए गैर-ब्राह्मण आंदोलन तथा दलित

[224] दलित पैंथर, अजय कुमार, गौतम बुक सेंटर, शहादरा, दिल्ली, सं- 2015, पृ.सं- 14

आंदोलन जहाँ जाति विरोधी गैर-ब्राह्मण आंदोलन महाराष्ट्र तथा तमिलनाडू में फैले वहीं दलित आंदोलन संपूर्ण देश में फैले । जैसे कि पंजाब में आदि-धर्म आंदोलन, उत्तर प्रदेश में आदि हिन्दू आंदोलन, केरल में नारायण गुरु का आंदोलन, तमिलनाडू में आदि- द्रविड आंदोलन जो कुछ बड़े दलित आंदोलन थे । कुछ बड़े जाति- विरोधी आंदोलन ज्योतिबा फुले, बाबासाहब डॉ.अंबेडकर तथा ई. वी. रामास्वामी पेरियार द्वारा संचलित किये गए । इन्होंने सभी स्तरों पर शोषण व्यवस्था पर आक्रमण किये ।"[225] हमें इन्हें भी भूलना नहीं चाहिए जिन्होंने भारतीय समाज को सर्वाधिक आकर्षित किया, जिनमें गांधी जी का जातीय एकता और धार्मिक समानता के लिए अस्पृश्यता विरोध में कार्यक्रम, हिंदी पट्टी का प्रगतिशील लेखक आंदोलन, मार्क्सवादी आंदोलन आदि । इन आंदोलनों में एक विचारधारात्मक विविधता थी । इनकी जमीन भी एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न रही । इस पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए घनश्याम शाह लिखते हैं-"सार रूप में यह आंदोलन अस्पृश्यों को आर्य हिन्दू न बनाकर उन्हें "हल्की" भूमिकाएँ और कार्य देने के खिलाफ एक विरोध प्रकट करने के रूप में देखा गया । यह जाति व्यवस्था पर पूरी ताकत से, किया गया एक प्रत्यक्ष प्रहार नहीं था ।"[226] भारतीय समाज में इसी प्रकार की यही सहमति और असहमति ने प्रगतिशील विचारों और आंदोलन की जमीन तैयार की । इसी जमीन से उपजा हुआ दलित आंदोलन एक है, अपनी अस्मिता की पहचान को लेकर उभरा है । जिसे हम दलित पैंथर के माध्यम से देख सकते हैं ।

4.2.2. दलित पैंथर और आंदोलन

दलित साहित्य आंदोलन की प्रेरणा ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू महाराज की रही है और प्रतिनिधित्व डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का जीवन संघर्ष और उनकी विचारधारा रही है । डॉ.अंबेडकर के चिंतन के केंद्र में 'दलित मुक्ति का प्रश्न' रहा है । उन्होंने समाज में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, न्याय आदि मानवीय मूल्यों की गरिमा और प्रज्ञा, शील, करुणा इन नितिमूल्यों की महत्ता को उजागर किया है । दलित उत्थान के लिए दलितों को शिक्षा, संगठन और संघर्ष की प्रेरणा दी है । परिणाम स्वरूप दलितों की प्रथम पीढ़ी ने प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करके शिक्षा प्राप्त की और दलितोत्थान की दिशा में बौद्धिक विचार-विमर्श के धरातल पर साहित्य सृजन की शुरूआत की और दलित आंदोलन शुरू किया ।

डॉ.भीमराव अंबेडकर के निर्धनोपरांत के समय में दलित आंदोलन को आगे बढ़ाने का कार्य दलित युवकों और साहित्यकारों ने किया । दलित युवा "डॉ.म. ना वानखेडे अमेरिका में जाकर वापस आये थे ।उन्होंने अमेरिका में कृष्णवर्णीय लोगों के आंदोलन एवं उनके विद्रोहयुक्त

[225] वही, पृ.सं- 13
[226] भारत में सामाजिक आन्दोलन, घनश्याम शाह, सेग भाषा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2009, पृ.सं- 109

साहित्य के बारे में विचार-विमर्श प्रारंभ किया था। ब्लैक लिटरेचर, ब्लैक पैंथर जैसे विषयों पर तथा दलित साहित्य और दलित आंदोलन से संदर्भ में विचार-विमर्श किया जाने लगा था।"[227] इसका कारण भारत में स्वतंत्रता के बाद भी उच्चवर्णीयों द्वारा दलितों के मानवाधिकारों का हनन निरंतर होने लगा था। परिणाम स्वरूप दलित समाज का शिक्षित वर्ग अपने समाज पर होनेवाले अन्याय-अत्याचारों पर एकत्रित होने लगा। इस बीच महाराष्ट्र में दो घटनाएँ घटी एक, अनुसूचित जाति की महिला ने सामान्य कुएं से पानी भर लेने को कारण हिंदुओं ने दलितों का बहिष्कार कर दिया। दूसरी घटना, पुना जिले के जिला परिषद चुनाव में कांग्रेस में हिंदू जाति के प्रतिनिधि के विरोध में उन्होंने अपना प्रतिनिधि नामांकित कर दिया था। इस कारण हिंदू जाति का प्रतिनिधि चुनाव नहीं जीत सका, इसलिए गाँव के सभी हिंदुओं ने मिलकर सभी दलितों का बहिष्कार कर दिया। अतिरिक्त इसके हिंदुओं ने भागवान को खुश करने के लिए गाँव के एक दलित आदमी को बलि चढ़ा दी थी। इन तमाम मुद्दों पर जब सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की तो दलितों द्वारा उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठनी शुरू हो गयी।

दलित समाज पर होने वाले दिल दहलानेवाली घटनाओं पर सरकार तथा प्रशासन का जातिवादी रवैया और राजनीतिक पार्टियों की निष्क्रियता के खिलाफ प्रतिरोध की आवाज दलित नवयुवक, पैंथर्स नामदेव ढसाल,राजा ढाले, अर्जुन डांगले, ज. वि. पवार, अरुण कांबले, लतीफ खटीक, अविनाश महातेकर, बाबूराव बागुल, भाई संगारे आदि मंडली अंबेडकर में असीम श्रद्धा, दलित समाज के प्रति अपरंपार स्नेह, सामाजिक विषमता के विरुद्ध जाज्वल्यमान युवाओं ने मात्र संपत्ति के लिए एकजुट नहीं हुए बल्कि संवैधानिक प्राधिकरण का परिवर्तन करने के लिए, समाज में समानता स्थापित करने के लिए, स्वतंत्रता का मूल्य बचाने के लिए, समाज में भाई-चारा स्थापित करने के लिए, इंसान को इंसानियत बहाल करने के लिए, श्रम को मान मर्यादा प्राप्ति के लिए और आत्मसम्मान के साथ जीवन जीने के लिए समाज के हर उस वंचित तबके में स्वाभिमान का जीवन स्थापित करने के लिए 'दलित पैंथर' नामक संगठन का निर्माण किया था।

उन दिनों 'दलित पैंथर' के साथ रिपब्लिकन पार्टी, राष्ट्रीय सेवा दल, समाजवादी पार्टी आदि संयुक्त रूप से सत्तारूढ़ पार्टी के विरोध में दलितों का समर्थन जतलाया। परंतु बाद में अपनी सुविधाओं के अनुसार सांप्रदायिक पार्टियों के साथ चुनावों में समर्थन भी वहीं देते हैं। उन्हें न सामाजिक अस्मिता, विकास की चिंता है, न राजनीतिक अस्मिता की। उन्हें जहाँ चारा

[227] दलित पैंथर : भूमिका एवं आन्दोलन, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2017, पृ.सं- 14

मिला वही शामिल हो गए । दलित समस्याओं के प्रति बर्बरता और वोट लेने के लिए अवसरवादी नीति अपनाये । सत्तारूढ़ राजनीतिक पार्टियाँ हमेशा वही चाहती है, समाज में फूटडालो, विकास से दूर रखकर बहुसंख्यक समाज को निर्धन, अज्ञानी बनाये रखो । इसलिए डॉ. अंबेडकर ने कहा थे कि-"किसी भी राजनीतिक क्रांति के पूर्वधार्मिक और सामाजिक क्रांति आवश्य होती है, इस बात का इतिहास गवाह है । किंतु भारत में केवल राजनीतिक सत्ता-परिवर्तन मात्र हो गया । जिस सर्वग्राही सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है, वह तो अभी तक नहीं हुई । इसी कारण इस देशकी बहुसंख्यक जनता भयानक दरिद्रता में डूब चुकी है । अंधविश्वास, देववाद, कर्मकांड, शोषण, जादू-टोना आदि अजस्त्र शक्तियों के शिकंजे में वह बंध चुकी है ।"[228] राजनीतिक पार्टियों के लोकतांत्रिक चरित्र पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए मैनेजर पांडेय लिखते हैं-"भारत में संसदीय लोकतंत्र है, जो राजनीतिक दलों पर आधारित है । भारत के अधिकांश राजनीतिक दलों के गठन, चरित्र और व्यवहार पर ध्यान दीजिए तो मालूम होगा कि उनमें कहीं भी लोकतंत्र नहीं है । जिस राजनीतिक दल में आंतरिक लोकतंत्र न होगा वह देश और समाज में लोकतंत्र का पोषक कैसे होगा ।"[229] दलित पैंथर्स का यही कहना था कि दलित-शोषित जनता का हृदय परिवर्तन या उदारमतवादी युक्ति के कारण हमारे समाज का शोषण नहीं थमेगा । इसलिए दलित पैंथर ने प्रबोधन तथा एकता के गीतों के माध्यम से समाज में जागृति, सहुलते-सुविधाओं की मांगों के लिए आवेदन, प्रार्थनाएं, सत्याग्रह, चुनाव आदि संसाधनों, उपक्रमों के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था में बदलाव करने का प्रयास किया ।

दलित पैंथर द्वारा किये गए 'नामांतरण आंदोलन' ने संपूर्ण महाराष्ट्र के दलित, आदिवासी, घुमंतू आदिवासियों ने एक नया मोड़ लिया था । 'विद्यापीठ नामांतरण आंदोलन' के कारण दलित, आदिवासी समुदायों में बहुत बड़ी मानसिक एकता उत्पन्न हो गयी थी । डॉ. भीमराव अंबेडकर ने मराठवाड़ा क्षेत्र को कर्मभूमि माना । मराठवाड़ा जैसे पिछड़े क्षेत्र में उच्च शिक्षा की आवश्यकता को भांपकर उन्होंने औरंगाबाद में 'पीपल्स एजुकेशन सोसाइटी' के अंतर्गत 'मिलिंद महाविद्यालय' की स्थापना (1950) की । तब मराठवाड़ा क्षेत्र हैदराबाद रियासत का हिस्सा हुआ करता था । इसलिए मराठवाड़ा क्षेत्र में स्थित महाविद्यालय हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के अंतर्गत आते थे । भारत स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे भाषा और संस्कृति अनुसार राज्यों का गठन होने लगा । इस जुड़ाव-घटाव के कारण मराठवाड़ा क्षेत्र में विश्वविद्यालय की ज़रूरत महसूस होने लगी । इसलिए सन् 1958 को औरंगाबाद में मराठवाड़ा विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया । इस विश्वविद्यालय को डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का नाम देने के विचार भी रखे गए । परंतु कमेटी ने 'मराठवाड़ा विश्वविद्यालय' नाम घोषित किया ।

[228] वही, पृ.सं- 133
[229] भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं- 2013, पृ. सं- 204

इससे पहले डॉ. भीमराव अंबेडकर मराठवाड़ा के शैक्षिक आंदोलन के प्रवर्तक बन गए थे । मराठवाड़ा क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन को शैक्षणिक कार्य से उभारने के लिए भीमराव अंबेडकर औरंगाबाद को उस क्षेत्र का केंद्र बिंदु बनाया । इस शिक्षा जैसे पवित्र केंद्र बिंदु को यहाँ के जातिवादी लोगों ने उपहास बनाया । और समाज में प्रचार किया कि-"मिलिंद महाविद्यालय अंग्रेजी के एम. एम शब्द से शुरू होता है इसका लोकप्रिय नाम है महार-माँग कॉलेज, सरस्वती भवन को छात्र सेठजी-भट्टजी (व्यापारी तथा ब्राह्मण) कॉलेज कहते हैं । मौलाना आज़ाद कॉलेज मौहम्मडन कॉलेज के नाम से जाना जाता है तथा वसंतराव नाईक कॉलेज को वंजारी (नाईक जाति) कॉलेज कहा जाता है । छात्रों ने इनके नाम जाति अवमानाओं के आधार पर रखे हैं । डॉ. अंबेडकर के अनुयायी शंकरराव खरात (एक प्रतिष्ठित दलित लेखक) जब मराठवाड़ा यूनिवर्सिटी के कुलपति बने तो छात्रों ने खीज कर इसे 'मारवाड़ा' यूनिवर्सिटी कहना शुरू कर दिया ।"[230]

मराठवाड़ा की भूमि में शैक्षणिक कार्य का बीजा-रोपण करने में डॉ. भीमराव अंबेडकर के कार्य को उचित स्मारक हो इसलिए मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को 'डॉ. बाबासाहब अंबेडकर' का नाम दिया जाए ऐसी माँग की गयी । इस माँग को आगे बढ़ाने का योगदान औरंगाबाद के दलित पैंथर्स को जाता है । मराठवाड़ा के साथ संपूर्ण महाराष्ट्र की दलित-पिछड़ी (जाति-जनजाति) जनता ने स्वागत किया और महाराष्ट्र से जुड़े अन्य दलित पैंथर्स ने भी स्वागत किया था । राज्य के विविध क्षेत्रों के लोग चीटियों की तरह औरंगाबाद में बसने लगे । पैथर्स ने महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित मान्यवरों की हस्ताक्षर लेने की मुहिम शुरू की थी । दिनों-दिन नामांतरण की माँग बढ़ती गयी और आंदोलन व्यापक हो गया । दलित पैंथर ने अपनी माँग "1927 में डॉ.बाबासाहब अंबेडकर ने ऐतिहासिक सत्याग्रह छेड़ा था उसी की 50 वीं वर्षगांठ 1977 में अनुसूचित जाति के नेताओं तथा पैन्थारों ने वर्षगाँठ मनाते हुए माँग की कि डॉ.अंबेडकर की मृत्यु उपरांत यूनिवर्सिटी का नाम बदला जाए । यह माँग तत्कालीन मुख्यमंत्री वसंतदादा पाटील द्वारा स्वीकार कर ली गयी । 25 जुलाई 1977 मराठवाड़ा यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी परिषद द्वारा नाम बदलने का प्रस्ताव पारित हो गया।"[231]

नामांतरण आंदोलन की फलश्रुति के रूप में जुलाई 1978 को महाराष्ट्र राज्य विधान मंडल के अधिवेशन के अंतिम दिन दोनों सभागृह में बहुमत से 'नामांतर' प्रस्ताव को सहमति मिली और मराठवाड़ा क्षेत्र में दलित विरोधी दंगे शुरू हुए । यह हिंसा शहरी क्षेत्र के साथ ग्रामीण क्षेत्र में भी फैल गयी । दलितों पर आक्रमक हल्ले किये गए । दर्जनों लोगों की हत्या की । औरतों की इज्ज़त लूटी गयी । उनके घर जला दिए गए । बस्तियाँ लूटी गयी । गाँव से खदेड़ा

---

[230] दलित पैंथर आन्दोलन, अजय कुमार, गौतम बुक सेंटर, शहादरा, दिल्ली, सं- 2015, पृ.सं- 98

[231] वही, पृ.सं- 98

गया। कुँओं में जहर घोला गया । मवेशी मार डाले गए । कुँओं से पानी लेने से रोका गया । परंतु डॉ.अंबेडकर ने जो ज्ञान का बीज बोया था वह जला नहीं पाए और न रोक पाए । इस घटना का उल्लेख करते हुए एकनाथ आव्हाड अपनी आत्मकथा 'जगबदल घालुनि घाव' में एक प्रसंग व्यक्त करते हैं-"बीड जिले के रुद्रापुर तथा पिंपरी गाँव में दलित परिवार ध्वस्त किये गए । भूम तहसील के पथरुट (घुमंतू जाति) गाँव में जनजातियों के घरों को आग लगायी गयी । गाँव में एक और खुशी तो दूसरी ओर घबराए हुए लोग, उन्हें जहाँ जगह मिलती उधर दौड़ने लगे । आगे लिखते हैं मैंने ऐसे ही शांत स्वभाव में वहाँ की बूढ़ी महिला को पूछा-"माँ, बहुत नुकसान हुआ है न...माँ संचारित हुई और बोलने लगी,'अरे बेटा, जलाने दे, जलाने दे घर, जलाने दे पैसा और जलाने दे अनाज...परंतु मेरे दिल में जो 'बाबासाहब' ने स्वाभिमान निर्माण किया है वह कोई भड़ुआ जल आएगा क्या? है किसी में हिम्मत मेरे बाबासाहब को जलाने की... ।"[232]

इस आंदोलन का इतिहास भी प्रेरणा देने वाला है । स्वतंत्रता के पहले और बाद में भी जाति-जनजातियाँ बगैर खेती के जमींदारों के यहाँ मेहनत-मजदूरी करके उदरनिर्वाह किया करती थी । परंतु नामांतरण आंदोलन और उसके बाद गाँव की सभी प्रकार की जातियाँ शहर की ओर दौड़ने लगीं । देखते-देखते लाचार होकर, जी हुजूरी करके जीवन जीनेवाला दलित व्यक्ति शहर से जब गाँव आता है तो सीना तानकर सूट-बुत में, पत्नी को नई नवेली दुल्हन की तरह और बच्चों को स्कूल भेजने वाले शहरी बच्चों जैसा सफसुतारा । दलितों की इस तरक्की को देखकर उच्च वर्ग के स्वाभिमान को ठेस पहुँचने लगी । इस स्थानांतरण का ग्रामीण समाज की गतिविधियों पर बहुत बड़ा परिणाम हुआ ।'विश्वविद्यालय नामांतरण' आंदोलन के कारण दलित समाज की अन्य जातियाँ और पिछड़ी जातियाँ-जनजातियाँ भी अपना रुख शहर की ओर अपनायी थी । डॉ. भीमराव अंबेडकर के 'शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो' 'गाँव छोड़कर शहर में बसो' अभिव्यंजना को वास्तव में देखने का सपना 'दलित पैंथर' दलित समाज के साथ स्त्रियों, पिछड़ी जातियों, आदिवासी जनजातियों और उपेक्षित जनों को लेकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'नामांतरण आंदोलन' की माँग की गयी । "भारतीय दलित पैंथर ने मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का नाम दिया जाए इसलिए लंबी जंग लड़ी । सन् 1976 से 1994 के काल में भारतीय दलित पैंथर ने अपनी माँग लोगों के सामने रखी । नामांतरण संघर्ष से दलित आंदोलन को नया आयाम मिला । नामांतरण की जंग दलितों की अस्मिता का प्रतीक थी । संघर्ष में अन्य जातियाँ भी शामिल हुई थी । आदिवासी, ख़ानाबदोश जनजातियाँ रास्ते पर उतर आई । नामांतरण आंदोलन में दलितेत्तर समाजवादियों का भी सहभाग था ।"[233] समाजवादी संगठन नामांतरण के लिए वैचारिक आधार पर समर्थन दिया ।

---

[232] जग बदल घालुनि घाव, एकनाथ आव्हाड, समकालीन प्रकाशन, पुणे, पाचवी आवृत्ति- 2015, पृ. सं- 185

[233] दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं- 2010, पृ. सं- 46

इसमें तमाम पिछड़ी जाति-जनजातियाँ आंदोलन में शामिल थी । जिनको नामांतरण आंदोलन ने प्रभावित किया था । दलितों के साथ उन्हें भी हिंसक दंगों का हिस्सा बनाया गया था ।

सवर्णों के लिए अन्याय अत्याचार के सामने झुककर दलितों ने 19 साल अपनी माँग जारी रखी । दलित युवकों ने नामांतरण के लिए आत्मदहन किया । चर्चाएं, सभाएँ, लोंग मार्च, छात्रों द्वारा शोभा यात्राएं शुरू थी । विरोधी जातिवादी संगठनों ने सवर्ण अस्मिता की लड़ाई की और मराठवाड़ा क्षेत्र में ही अलग विश्वविद्यालय का प्रस्ताव किया । अतः महाराष्ट्र शासनने 14 जनवरी 1994 को 'मराठवाड़ा विश्वविद्यालय' का नाम 'डॉ.बाबासाहब अंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय' ऐसा नाम विस्तार किया । साथ ही 'स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय' (नांदेड शहर में) को दूसरे विश्वविद्यालय स्थापन करने की स्वीकृति दे दी । नामांतरण की समस्या को सारे अंबेडकर प्रेमियों तथा लोकतंत्र पर असीम निष्ठा रखनेवाले लोगों ने बड़ी ताकत से संभाला है । यह संघर्ष समता, बंधुता, भाईचारा, आजादी और न्याय की संघर्षमय लड़ाई है । इसी लड़ाई के कारण महाराष्ट्र की जनता को शिक्षा की श्रेष्ठता का महत्व प्राप्त हुआ ।

'शिक्षा शेरनी का वह दूध है, जो पिएगा वह शेर की तरह दहाड़ेगा ।' डॉ.अंबेडकर की उक्ति चरितार्थ होती है । दलित पैंथर आंदोलन का कारवाँ भारी परिवर्तन के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, नवबौद्ध, श्रमजीवी जनता, मज़दूर, भूमिहीन, खेतिहर मज़दूर, गरीब किसान, आदिवासी, ख़ानाबदोश आदिवासी आदि जाति-जनजातियों को संगठित कर, उनमें राजनीतिक, वर्गीयता और सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करना, शिक्षा की ओर अग्रसर करना तथा जाति, धर्म, वर्ण, शोषण-मुक्त, सुखी-समृद्ध, सुसंस्कृत और विज्ञान निष्ठ समाज के निर्माण के लिए 'दलित पैंथर' आंदोलन ने कार्य किया । डॉ.अंबेडकर ने अनेक बार स्पष्ट करते हुए कहा है कि, 'हमारा संघर्ष दलितों की मुक्ति का संघर्ष है और दलितों का मुक्ति संघर्ष, मानव मुक्ति के संघर्ष का हिस्सा है ।'

4.2.3. विमुक्त एवं घुमंतुओं के संगठन और कार्य

महाराष्ट्र आंदोलन की भूमि रही है । महाराष्ट्र में अनेक आंदोलन का जन्म हुआ । उसी में एक विमुक्त-घुमंतू आंदोलन की ओर देख सकते हैं । पिछले 75 सालों से विमुक्त एवं घुमंतुओं के आंदोलन शुरु है । इन सात दशकों की कालावधि में चढ़ाव-उतार की स्थितियाँ देखी जा सकती है इन स्थितियों में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की कुछ समस्याओं का हल निकला गया परंतु बहुत सारी बाकी हैं । इन सभी समस्याओं के लिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के संगठन कार्यरत हैं । परंतु ऐसा नजर में आता है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की संगठनात्मक गतिविधि स्वतंत्रता पूर्व से शुरू है । जल, जंगल, जमीन के लिए हमेशा इनका संघर्ष शुरू रहा है । सन् 1857 के स्वतंत्रता समर की लड़ाई में सबसे अधिक भूमिका रही । परंतु स्वतंत्रता के बाद

महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू आंदोलन उभर आने के पीछे का कारण वहाँ की सामाजिक गतिविधियाँ सबसे अधिक प्रभावित की। दलित, वंचित, अस्पृश्य तथा अन्य उपेक्षित सामाज के उत्थान के लिए ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू, डॉ.भीमराव अंबेडकर, गाडगे महाराज का महत्वपूर्ण योगदान है। परिणामतः इनके विचारों की ज्वाला आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में हुई। इसका परिणाम समाज के हर छोटे-बड़े स्तर पर दिखाई देता है। सदियों से किसी विशिष्ट वर्गतक मर्यादित रही शिक्षा अस्पृश्य और दबाये गए समाज तक पहुँची। इस शिक्षा के 'स्व' अस्तित्व की अनुभूति निर्माण होकर घुमंतू जनजातियों का आंदोलन खड़ा हो गया।

परंतु स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजी सरकार ने विमुक्त घुमंतू जातियों को स्थिर करने लिए कार्य किया। इसमें उनके व्यक्तिगत स्वार्थ थे। सन् 1871 से लेकर सन् 1913 तक का काल अपराधी जनजातियों के लिए बेहद कष्टदायक रहा। इन्सान बुरा नहीं होता, उसे बदला जा सकता है। अंग्रेजों की इस उदारवादी नीति के अंतर्गत सन् 1911 में 'अपराधिक कॉलोनी अधिनियम' को स्थापित करके कानून में बदलाव किया। इस महत्वपूर्ण बदलाव में "1) गुनहगार जनजातियों के सदस्यों को रोज़ गार एवं उनके बच्चों को शिक्षा दिलाने, 2) उनके बच्चों को उनसे अलग नहीं किया जायेगा 3) फार्मिंग सोसाइटी निर्माण करने की बजाय औद्योगिक सोसायटी का निर्माण किया जाएगा। साथ ही गुनहगार जनजातियों के बच्चों को मां-बाप से अलग करने से पहले बच्चों की उम्र कार्यकालीन जाँच की जाएगी आदि महत्वपूर्ण सिफारिशें 'ऑल इंडिया जेल' कमीशन ने की है।"[234] इस प्रकार ब्रिटिश शासन ने अपराधी जनजातियों के पुनर्वास के लिए 'कॉलोनी अधिनियम' बनाकर एक तरह से सुधार लाने का प्रयास किया। अपराधी जनजातियों के बच्चों को स्थानीय औद्योगिक, किसानी और सुधार कॉलोनी में पाठशाला का निर्माण किया। जिसके अंतर्गत 4 से 18 वर्ष आयु के 'अपराधी जनजातियों' के बच्चों को पढ़ने का प्रस्ताव किया गया था।

ब्रिटिशों की इसी सामाजिक, शैक्षणिक प्रक्रिया में प्रक्रिया में अपराधी जनजातियों के बच्चों का भविष्य निर्माण होने लगता है। शिक्षा के परिवर्तन से 'स्व' अस्तित्व की अनुभूति होने होने लगी और अपराधी जनजातियों की कॉलोनियों में अन्याय के प्रति आवाज उठने लगी। मजदूरों की आय बढ़ाने के लिए, मजदूरी का समय कम करने के लिए, महिलाओं को भारी कार्य से मुक्ति दिलाने के लिए, बच्चों को शिशु सदन बनवाने लिए आदि को लेकर समय-समय पर माँगे होने लगी। बिगड़ते हालत को देखकर "लेखक भीमराव जाधव ग्यारहवीं तक की शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं, शिक्षा छोड़कर 'स्वतंत्रता आंदोलन' में हिस्सा लेते हैं।...और सन् 1939 में 'सेटलमेंट सेवा संघ' नामक संगठन की स्थापना करते हैं।"[235] यहीं से प्रतिबंधित घुमंतू

---

[234] विमुक्तायन, लक्ष्मण माने, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई, प्रथम आ- 1997, पृ. सं- 129
[235] भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, डॉ. द्रोपदी पंदिलवाद, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र. आ- 2014, पृ. सं- 40

जनजातियों के आंदोलन की नींव दिखाई देती है। इसी प्रकार स्वतंत्रता पूर्वकाल में सेटलमेंट के समग्र विकास के लिए सन् 1942 के आसपास मुंबई, सोलापुर, बिजापुर, हुबली, अहमदाबाद आदि सेटलमेंटो में औद्योगिक कोलनियों में घुमंतुओं के मजदूरों को प्रशिक्षण तथा उनके बच्चों के लिए आश्रम शाला की व्यवस्था करने की माँग किया और समुदाय के लिए कार्य का बीड़ा उठाया। इसमें घुमंतू जनजातियों के युवा बोधक नगरकर, भीमराव जाधव, माफेरे गुरुजी आदि ने 1952 तक सेटलमेंटों संगठनात्मक कार्य किया।

31 अगस्त 1952 को भारत संपूर्ण रूप से आज़ाद हुआ ऐसा कह सकते हैं। परंतु विमुक्त एवं घुमंतू संगठनों का जो कार्य चल रहा था, वह बिखर जाता है। सन् 1952 में भारत सरकार अपराधी जनजातियों को 'अपराधी' होने के ठप्पे से करने के लिए 'आदतन अपराधी अधिनियम' (हैबीचुअल ऑफेंडर्स एक्ट) नामक कानून बनाकर अनाधिसूचित किया। परंतु यह नया कानून पुराने कानून से कुछ खास फायदेमंद नहीं रहा। कल की अपराधी जनजातियाँ आज 'विमुक्त' होकर भी पुराने सामाजिक लांछन के साथ ख़ानाबदोशी ही कर रही है। समाज और पुलिस प्रशासन में भी उन्हें स्वीकार नहीं किया। इसलिए वे जनजातियाँ अस्थायी रूप से भटक रही हैं।

सन् 1952 को भारत सरकार ने विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को कागजी तौर 'मुक्त' घोषित किया, परंतु उनके स्थायी बंदोबस्त की योजना अथवा प्रावधान नहीं किया। इसलिए इन जनजातियों का भविष्य अंधकार में ही रह गया। सन् 1969 में नगरकर, जाधव आदि मंडली नयी दिल्ली जाकर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को 'विमुक्त घुमंतू जनजातियों' की समस्याओं से मुखातिब किया और महाराष्ट्र के दौरे पर आने की बीनती की। सन् 1961 में 'स्वतंत्र महाराष्ट्र' की खुशी में तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने कार्यक्रम रखा। उसके लिए मुख्य अतिथि के रूप में पंडित नेहरू को आमंत्रित किया। प्रधानमंत्री मुख्य अतिथि के रूप में भाषण देते समय विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को कागजी 'मुक्ति' को प्रत्यक्षरूप में बदलने के लिए, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री को कहते हैं-'मैं महाराष्ट्र की विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों को शिक्षा में विशेष छात्रवृत्ति देने और उन्हें अनुसूचित जाति-जनजातियों के वर्ग में शामिल करने की घोषणा करता हूँ। आप प्रधानमंत्री कार्यालय में इनके नाम का प्रस्ताव भेजे दें।'[236] परंतु महाराष्ट्र राज्य की वर्त्तमान सरकार ने प्रधानमंत्री कार्यालय को प्रस्ताव भेजने की बजाए महाराष्ट्र में ही उन्हें 4% आरक्षण देकर उन्हें अनुसूचित जाति-जनजाति के मुद्दे से भटकाया। पड़ोसी राज्य आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में विमुक्त एवं घुमंतू जाति-जनजातियों को अनुसूचित जाति-जनजातियों में शामिल किया।

---

[236] आंधारवाटा, संपा- श्रीकांत मुद्दे, परिवर्तन पब्लिकेशन, लातूर, प्र. आ- 2014, पृ. सं- 119

तब तक महाराष्ट्र में विविध स्तरों पर आंदोलनों की बाढ़-सी निर्माण हुई । दलित आंदोलन का दलित पैंथर में रूपांतर हुआ, स्त्री आंदोलन, मार्क्सवादी आंदोलन, पुरोगामी (परिवर्तन) वादी आंदोलन, विमुक्त-घुमंतू जनजाति आंदोलन शुरु हुए । विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के शिक्षित वर्ग दलित पैथर, मज़दूर आंदोलन परिवर्तनवादी आंदोलन से प्रभावित होकर अपने क्षेत्रों में बुनियादी माँगों के लिए आंदोलन, मोर्चा करने लगे । महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र में लक्ष्मण गायकवाड़, मोतिराज राठोड, किशनराव राठोड, श्रावण रेपनवाड़ विदर्भ क्षेत्र में रामसिंह भाणावत, बाबू सिंह राठौड़, वामनराव सिंघम पश्चिम महाराष्ट्र तथा कर्णाटक (बेलगाँव) में लक्ष्मण माने, दादासाहब मोरे, भीमराव गस्ती, उत्तम कांबले मुंबई-पुणे के क्षेत्र दौलतराव भोसले, बालकृष्ण रेणके, भीमराव जाधव, रामनाथ चव्हाण आदियों ने घुमंतू जातियों के अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई । इन सभी कर्ता-कार्यकर्ताओं ने साथ मिलकर अपने-अपने क्षेत्र में कार्य किया । परंतु मजबूत बनकर एकत्रित नहीं हो सके । इसलिए शरणकुमार लिम्बाले लिखते हैं-“स्वातंत्र्योत्तर काल में ख़ानाबदोश जनजातीय समाज की संघटनाएँ स्थापित हुई । ये घटनाएँ संबंधित जनजाति के नेता-कार्यकर्ताओं ने स्थापित की थीं । इन संगठनाओं का कार्य अपनी जनजाति तक ही सीमित था ।”[237]

परंतु अपने समुदाय के लिए इन कार्यकर्ताओं ने समय-समय पर आवाज बुलंद की लक्ष्मण गायकवाड़ घर की माली हालत से परेशान होकर परिस्थितियों से सामना करते हैं । स्कूल छोड़कर कपास की मील में मज़दूर का काम करने लगते हैं । मील में काम करते है उस समय कई महीनों के वेतन पर रोक लगायी जाती है, ऊपर से सुपरवाइजर अपना रौब दिखाते हैं । नियमाअनुसार भोजन अवकाश आधा घंटा होता है तो सुपरवाइजर पंद्रह मिनट में ही सब को काम पर बुला लेता है । सुबह घर से आने में दो मिनट की देरी पर मजदूरों को घर वापस भेज दिया जाता है । इससे मजदूरों की हालत इतनी बुरी हुई थी कि वे किसीके खिलाफ बोलने में डरते थे । अनपढ़ मजदूरों पर रौब दिखाकर अधिक काम कराने के खिलाफ आवाज उठाने की ज़रूरत महसूस होती है । लक्ष्मण गायकवाड़ भी हमेशा मौका तलाश रहे थे । पंद्रह अगस्त के दिन मील में ‘झंडा वंदन’ का कार्यक्रम होता है । राष्ट्र गीत के बाद अधिकारियों के ज़ोर-शोर से भाषण होते हैं । मजदूरों में से किसी को भाषण बोलने की उत्सुकता हो तो स्टेज आने के लिए मिल संचालक अनुरोध करते हैं । तब लक्ष्मण गायकवाड़ मजदूरों की समस्याओं को लेकर स्टेज पर चढ़ जाते हैं । हजारों संख्या में मजदूरों पर होनेवाले शोषण पर कहते हैं-“हमारा देश स्वतंत्र हो गया है । इस देश की स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि लोगों ने अपना जीवन समर्पित किया था ।...परंतु इस देश में आज भी मजदूरों को वैसे ही पीटा जाता है, जैसे अंग्रेज पीटा करते थे । यह ठीक नहीं है ।”[238] आदि । कुछ ही दिनों में लातूर के ‘लाल निशान यूनियन’ में शामिल होते हैं । वहाँ रामलिंग जगताप, एडवोकेट भगवान देशपांडे,

---

[237] दलित साहित्य वेदना और विद्रोह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं- 2010, पृ. सं- 53

[238] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि., नई दिल्ली, दू. आ- 2011, पृ. सं- 107

शिवाजी पाटील से मुलाकात होती है और वैचारिक बहसों के साथ किताबों की दुनिया में प्रवेश होता है।

मज़दूर नेता के रूप में लक्ष्मण गायकवाड़ को उभरते देखकर मिल मालिक और व्यवस्थापक की भेद नीति बदल जाती है और लक्ष्मण गायकवाड़ को एक मामले में फंसाकर मील से निकल दिया जाता है । इस प्रसंग से लक्ष्मण गायकवाड़ को कष्ट बहुत होता है परंतु दूसरी ओर अपने जाति के बच्चों को शिक्षित करने के लिए 'विमुक्त घुमंतू जनजाति संगठन' बनाकर उच्च वर्गों तथा पुलिस प्रशासन द्वारा घुमंतुओं पर किये जाने वाले अन्याय को रोकने की इच्छा मन में डुबकी लेती है । उन दिनों पड़ोसी गाँव घुमंतू समुदाय के नवयुवक के खून की वारदात घटित होती है । लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-"गाँव के मराठों ने हमारी बिरादरी के हनुमंत वडार नामक एक युवक का खून किया था । कारण ? सार्वजनिक कुएं से पानी भरने की उसने हिम्मत जो की थी । इस खून के बाद हनुमंत वडार का क्रिया-कर्म गाँव में ही हो, ऐसा दबाव प्रतिष्ठित मराठा लोग डालने लगे । किसी भी परिस्थिति में यह मामला पुलिस स्टेशन में ना जाए, ऐसा उनका प्रयत्न था । किसी को खबर भी न पहुँचे, इसलिए उन्होंने वडार जाति के लोगों को गाँव से बाहर निकालने पर रोक लगा दी । पवार नामक एक युवक बड़ी हिम्मत के साथ छिपते हुए यहाँ से भाग निकला और मेरे पास आ पहुँचा । सारी बातें उसने मुझे कहीं ।"[239] इस हत्या के विरोध में आवाज उठाते हैं यह सब करते समय गाँव के पटेलों की धमकियाँ मिलती हैं । बावजूद इसके गायकवाड़ अपने समुदाय का सहारा बनते हैं और जिला स्तर के पुलिस स्टेशन (उस्मानाबाद) में हत्या के मामले में गुनहगारों पर केस दर्ज करके तुरंत सज़ा दिलवाने में कामयाब होते हैं।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बढ़ते अत्याचारों को खत्म करने के लिए समय-समय पर तहसील मुख्यालय, जिला मुख्यालय में निवेदन देते है । फिर भी प्रशासन सोता ही दिखाई देता है तब उन्हें जगाने के लिए आंदोलन का रूप धारण करना पड़ता है । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों, शोषित और श्रमिकों की एकता-प्रदर्शन जरूरी हो जाती है । विमुक्त-घुमंतू जनजातियों पर अन्याय करने वालों को सावधान करने के लिए लक्ष्मण गायकवाड़ मोर्चा का प्रबंधन करते हैं और 'हथोड़ा मोर्चा' की तैयारियाँ करते है । इस मोर्चे की तैयारी के लिए पूरे मराठवाड़ा क्षेत्र में घूम-घूमकर विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के लोगों को मोर्चे में आमंत्रित करते हैं। "इसमें संपूर्ण मराठवाड़ा से (सात जिले) विमुक्त जनजातियों के स्त्री-पुरुष समिल्लित हुए थे । इस कारण पूरे महाराष्ट्र में इसकी चर्चा शुरू हुई । इस मोर्चे में विमुक्त जनजातियों के स्त्री-पुरुष परंपरागत वेशभूषा में सम्मिलित थे ।...अनेक लोग गधा, कुत्ता, सूअर, मुर्गा और हथौड़ा लिए दस हज़ार की संख्या में पहली बार इकट्ठे हुए ।"[240] इस मोर्चे में लक्ष्मण माने, बालकृष्ण रेणके

---

[239] वही, पृ. सं- 136
[240] वही, पृ. सं- 147

जैसे प्रतिष्ठित घुमंतू जनजातियों के कार्यकर्ता शामिल थे । जंगलों में रहने वाले, गाँव-जंगल भटकनेवाले लोग अपने अधिकारों के लिए रास्तों पर उतर आए थे । 'यह लातूर के इतिहास में सबसे बड़ा मोर्चा था ।' अनेक पत्रकारों की उपस्थिति में निकाला यह आश्चर्य का विषय था ।

कर्नाटक सीमावर्ती बेलगाँव के इलाके में बेरड़ जनजाति समूह के लोगों को 'अपराधी' जीवन जीना पड़ता है । एक इंसान के नाते जीने का बेरड़ों को मानो कोई हक नहीं है । जब देखो तब उन पर पुलिसिया अत्याचार का कहर टूट पड़ता है । आसपास कहीं किसी गाँव डाका, चोरी, कत्ल होती है तो पुलिस की सारी फोर्स सबसे पहले बेरड़ों के समुदाय पर छापा मारने को धमकती है । बिना किसी ठोस सबूत के मारपीट कर, पूछताछ के लिए हाथों में बेड़ियाँ डालकर थाने ले जाती है । यह सब कुछ लेखक भीमराव गस्ती बचपन से ही देखते आ रहे थे । इस पर आलोचक गुलाबराव हाडे लिखते हैं-"महाराष्ट्र और कर्नाटक के पाँच दशकों से भी अधिक समय से अनिर्गित अवस्था में पड़े विवादास्पद सीमा-क्षेत्र में, बेलगाँव के सीमापस्थ गाँव यमुनापुर अस्पृश्येत्तर निम्नवर्गीय या आदिवासी जनजातीय, 'बेरड़' समूह के एक उच्चशिक्षित, विद्याविभूषित-वैज्ञानिक, किंतु समय समयोपरांत एक संघर्षशील समाज सुधारक या जुझारू कार्यकर्ता के रूप में कायाकल्प हो चुके...। किंतु आदिम या आदिवासी जनजातियों के देश भर में फैले हुए अलग-अलग जाति समूहों के प्रश्नों पर विचार करने के लिए हमें उकसाता भी हैं ।"[241]

भीमराव गस्ती उच्च शिक्षा के लिए जब हैदराबाद पहुँचते हैं । उस दौरान प्रतिष्ठित उस्मानिया विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में बेरड़ जनजाति के इतिहास संबंधित अनेक दुर्लभ ग्रंथ पढ़ने में आते हैं । पता चलता है कि अपनी जनजाति (पुरखें) ने कई लड़ाईयाँ लड़ी और वीरता के परचम लहराएँ हैं । लगभग चार-पाँच साल के हैदराबाद निवास के कारण, गाँव की गतिविधियों के बारे में बहुत कम जानकारी होती थी । सो चार-पाँच साल के लंबे अंतराल के बाद पहली बार लेखक अपने गाँव लौटते हैं, देखने पर पता चलता है कि गाँव का स्वरूप बदल गया । गाँव के नज़दीक ही बड़ा कारख़ाना शुरू किया गया था । उनके लिए अन्य प्रदेशों से मजदूर यहाँ आकार स्थायी निवास बनाकर जिंदगी गुजर बसर कर रहे थे । परंतु बेरड़ जनजाति पर होनेवाले पुलिसिया अत्याचार तथा समाज स्वीकृति को लेकर कोई कमी नहीं आयी थी । ऊपर से हर एक बेरड़ पर किसी-ना-किसी जुर्म का अपराध था । पर इन सब की बदौलत, यहाँ रहना भी उनके लिए मुश्किल हो गया था । क्योंकि यहाँ के वतनदार, स्थायी लोगों को कारखाने संचालकों ने अनेकों आश्वासन देते हैं कि-"खुद सरकार ही जमीन खरीद रही है !' का बहाना पुरज़ोर साबित हो जाने से अनपढ़-अज्ञानी लोग आखिर करते भी क्या ? बाकी इस पुरज़ोर बहाने के अलावा, किसानों को, उनकी संतानों को नौकरी, औरतों को रोज़ गार, शिक्षा

[241] मीलस्तंभ, गुलाबराव हाडे, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं- 2007, पृ. सं- 88

की मुफ्त सुविधा, दवा-पानी के बंदोबस्तवाले अस्पताल जैसे तमाम लुभावने आश्वासन दिए गए।"[242]

सन् 1965 के आसपास जमीन हस्तांतरण की प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद, इलाके के ज्यादातर अनपढ़ छोटे किसान अपनी जोत-जमीने हाथों से निकल जाने के बावजूद, भविष्य के प्रति आस लगाए, कारखाने की नींव खोदने, खुद-खुदनी, फावड़ा और टोकरे ले जाने लगे। उनके साथ हाथ बाँटने उनकी औरतें और बच्चे भी निकल पड़ते। मगर अपना भविष्य भावी जीवन और उज्जवल भविष्य की आस, सब कुछ इसी नींव के इन गड्ढों में ही दफन होगा, इस बात की बेचारों को हल्की-सी भी भनक तक नहीं थी। और फिर भविष्य की सही समझ किसे और कितनों को होती होगी ? वैसे इन नींव खोजनेवालों को बमुश्किल कोई पाँच-छह रोजी मिलने लगी थी, जिससे गुजारने की बात असंभव-सी थी। पक्की नौकरी का आश्वासन दिया गया था। मगर जमीन मुआवजे की पूरी रकम एक मुस्त अदा किये जाने पर अनपढ़ लोग इस उहापोह की स्थिति में थे कि इतनी बड़ी रकम बैंक में जमा कर दिए जाने और बैंक का दिवाला निकल जाए, या फिर बैंक वाले ही देने से इंकार कर दें तो ? ज्यादातर लोगों के सामने यही अहम् सवाल था। इसलिए, ऐसे मुआवजे की रकम एकत्रित मिलने पर आनन-फानन में ऐय्याश बने। वैसे जुएबाजी और नशेबाजी जैसी बुरी लतें तो बेरड़ों में पैदाइशी तौर पर थी। अब ऐसे में ऊपर से ओढ़ी हुई ऐय्याशी ! सो, एकत्रित मिले रुपये ख़त्म होने में आखिर कितना समय लगता है? ऐसी बड़ी समस्या तमाम ग्रामीणों को जोत-जमीनों के अलावा, बेरड़ों की पैतृक श्मशानभूमि तक का, कारखाने वालों ने अधिग्रहण किया था। ऐसे में, आखिरकार यह तमाम लोग भूमिहीन ही नहीं बल्कि बेघर बने। इस तरह की तमाम समस्याएँ महज कारखाने के निर्माण मात्र से पैदा हुई थी। इसलिए लेखक ग्रामीनों, भूमिहीनों, बेघरों स्थायी निवास, नौकरी, मजदूरी, शिक्षा, अस्पताल की सुविधाओं के लिए समय-समय पर आवेदन-पत्र देकर ध्यान आकर्षित करते थे। परंतु कारख़ाना संचालक गाँव के बड़े ज़मींदार व नेताओं से मिली भगत कर लेखक से कन्नी काटते हैं।

सच बात तो यह थी कि लेखक अपनी बिरादरी वालों की खातिर हर संभव तरीके से प्रयत्नशील थे। कलेक्टर से लेकर कर्णाटक प्रदेश के मुख्यमंत्री तक उनकी भलाई के वास्ते फरियाद ले जाते है। पर कहीं से भी न्यायोचित इंसाफ नहीं मिल पाता है। अतः लेखक का अभियान कुछ खास गतिविधियां पकड़ नहीं पा रहा था। मगर गंभीर स्थिति को भाँपकर संगठन का ऐलान करते हैं और इसी पार्श्वभूमि पर एक दिन समुदाय के भाई-बंधुओं की बैठक बुलाते हैं। लेखक के सकारात्मक गतिविधियों और साहस को देखकर समुदाय के लोग स्वयं कहने लगते हैं-"तू हमसे जो करवाएगा, जैसा चाहेगा हम करेंगे ! वक्त आने पर हम अपनी जान भी देने को तैयार हैं !' सबने जैसे एक मुख से अपना अंतिम निर्णय घोषित किया। पर इसी बैठक के अंत में मैंने उपस्थितों को सख्त हिदायत दी कि, 'कल का हमारा यह "रास्ता रोको

[242] बेरड, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं- 2006, पृ. सं- 176

अभियान" की बात इस समय सिर्फ हम लोगों तक ही सीमित है । सो किसी को भी, इस अभीयान का तनिक भी पता नहीं लगना चाहिए !' और सरल में इस 'रास्ता रोको' का निर्णय स्वयं मैंने आकस्मिक तौर पर लिया था ।"[243] इस 'रास्ता रोको आंदोलन' में समुदाय के सारे स्त्री-पुरुष, बच्चे शामिल होते हैं । इसका रौद्र मोर्चा देखकर कारख़ाना संचालक पुलिस फोर्स को बुलावा देते हैं; परंतु पुलिसवाले भी भौच रह जाते हैं । अतः आंदोलनकारियों के साथ चर्चा करके कारख़ाना व्यवस्थापक को उनके आश्वासनों को स्वीकार करना पड़ता है ।

हैदराबाद की नौकरी छोड़कर पूर्णकालीन समाज कार्य में अपने को बहा देते हैं । इस मार्गक्रम में इन्हें चौतरफा से विरोध का सामना करना पड़ता है । घरवालों, गाँव वालों, दोस्तों का भी तीव्र विरोध होता है । परंतु लेखक अपनी बातों पर कटिबद्ध रहते हैं । 'एकला चलो रे' तर्ज पर मार्ग क्रर्म करते हैं । ऐसा इस चौतरफा विरोध का मुकाबला करते हुए, समाज में व्याप्त गुंडागर्दी का और गरीबों का शोषण करनेवाले नेताओं के खिलाफ भी संघर्ष के लिए तैयार होते हैं । दूसरी तरफ़ अपने समुदाय पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार ढानेवाली ताकतों के खिलाफ भी लड़ना शुरू करते हैं । तमाम जद्दोजहद के बाद लेखक अपने समुदाय पर होने वाले अन्याय-अत्याचार रोक लगाने के लिए 'सुरक्षा संघ' की स्थापना करते हैं । इसमें समुदाय के तमाम युवकों का साथ होता है । धीरे-धीरे वे अपने क्षेत्र के विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के टोलों की मुलाकाते लेते हैं और उनके समस्याओं का समाधान करने के लिए आवाज उठाते हैं । देवदासियों के बारे में बचपन से ही जानकारी होती है । उनके स्थायी घर, रोज़ गार दिलाने के लिए मोर्चा, आंदोलन करते हैं । हमेशा साईकिल पर घूमते हुए अपने क्षेत्र में व्यापक सामाजिक कार्य करते हैं।

इन्हीं दिनों लेखक को एक समाचार मिलता है कि कोल्हापुर (महाराष्ट्र सीमावर्ती जिला) में कार्यक्रम के सिलसिले में मुंबई से दलित पैंथर के कुछ नेता पधार रहे हैं । उस वक्त चारों तरफ़ दलित पैंथर का बोलबाला था । दलित, समाज में एक नयी चेतना जगाने का असर साफ नजर आ रहा था । सो उनसे मिलने लेखक ने बेरड़ समुदाय की आम सभा लेने का अनुरोध करते हैं । सभा में डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जयंती के मौके पर एक कार्यक्रम आयोजित करने घोषणा करते हैं । बेरड़ जाति-बिरादरी के लोगों में डॉ. अंबेडकर जयंती का आयोजन एकदम नयी और चौंकानेवाली बात थी, जिससे कुछ बाहरी टोले के बेरड़ नेताओं ने विरोध जताना शुरू किया । "अंबेडकर जयंती मनाने, क्या हम 'महार' हैं ? ये हम बेरड़ों का सरासर अपमान है ! वह, गस्त्या ! हम बेरड़ों को महार बनाने पर तूला हुआ है ! हमें ले जाकर धेडों की पंगत में बैठा रहा है ! आखिर हमारी अपनी भी कोई मान-मर्यादा है कि नहीं ?"[244] ऐसे में लेखक के बारे में अपप्रचार किया जा रहा था, इसकी बगैर चिंता किये लेखक का कार्य शुरु था । क्योंकि लेखक

[243] वही, पृ. सं- 190
[244] वही, पृ. सं- 201

को बाहरी लोगों की अपेक्षा, यहाँ के लोगों की समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण लग रही थी। उन्हें उनके सभी प्रकार के समस्याओं की अनुभूति करना और उनमें चेतना जगाना एक बड़ी चुनौती थी। इसलिए लेखक को अपने समुदाय के तमाम युवाओं ने साथ दिया। जयंती की तैयारी ज़ोर-शोर से शुरू कर दी थी और धूमधाम से मनाई। तब से लेखक के गाँव में डॉ. अंबेडकर की जयंती लगातार मनाई जाती है। इस जन-जागृति अभियान कार्यक्रम को समाज, संगठन के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के व्याख्यान और प्रबोधन से जागरूक किया जाता है।

स्थायी रूप से समाज में परिवर्तन के लिए महाराष्ट्र-कर्नाटक में चल रहे दलित आंदोलनों की ओर लेखक की दृष्टि जाती है। उनके सशक्त संगठन-निर्माण, धड़ल्ले से रैलियाँ, मोर्चे किये जा रहे थे। लेखक को भी उनकी देखा-देखी से लगता है कि पिछड़े समाज की तरफ़ से सरकार की ओर माँग करना और उनका पिछड़ों की ओर ध्यान आकर्षित करना, बेरड़ लोगों को संगठित करने का कार्य पुनः तेजी से शुरू होता है।

लेखक भीमराव गस्ती 'बेलगाँव समाचार' दैनिक पत्र में बेरड़ समुदायों की समस्याओं पर, देवदासी, मजदूरों की छोटी बड़ी वारदातों पर आलेख लिखना शुरू किया था। इससे इन समुदायों की ओर उच्चवर्ग के देखने का नजरिया बदलता दिखाई देता है। परंतु कारखानों और पुलिसिया शोषण, अत्याचार में कोई कमी नहीं थी। उन दिनों बेरड़ समुदाय के 'याल्लया' नामक सोलह-सत्रह साल के लड़के का खून होता है। इस खून का संशय कारखाने के मैनेजर पर होता है परंतु गाँव-ग्रामों के लोग डर के मारे चुप्पी साध लेते हैं। खून की वारदात के संदर्भ में पुलिस में जानकारी देनी थी। इसलिए लेखक कारखाने के पास पड़ी लाश को देखकर समझ जाते हैं कि लाश को पडे दो-तीन दिन हुए थे। वहीं से कारखाने में जाकर कारख़ाना मुख्यालय को सूचित करते हैं और पुलिस थाने को भी खबर देते हैं। परंतु कारख़ाना अध्यक्ष चिड़चिडी आवाज में बात करके रख देता है तथा दूसरी ओर पुलिस थाने में फ़ोन रिसीव नहीं करते हैं। कारखाने और पुलिसवालों की नाटकबाजी को समझकर लेखक साइकल से थाने पहुँच जाते हैं। थाना पहुँचने पर पुजारी नामक पुलिस यह कह कर स्वागत करता है कि-"तुम क्यों आए हो, हम जानते हैं ! तुम्हारे गाँव किसी लड़के का कुल्हाड़ी से क़त्ल हुआ / कर दिया गया है, है न? 'कुल्हाड़ी से नहीं, बंदूक से कह कर ! मैंने पुलिस कॉन्स्टेबल की जानकारी में इजाफा कर दिया। और पूछा कि, "तुम्हारे पुलिस थाने को यह खबर मालूम होते हुए भी, तुम पुलिसवालों ने कुछ कार्यवाही क्यों नहीं की, अभी तक ?" इस पर वह पुलिस निहायत ही ठंडे लहजे में बोला, "हमें किसी ने वारदात की लिखित शिकायत नहीं दी, तो फिर हम कार्यवाही करने कैसे आ पाएँगे।"[245] प्रशासन की इस अनास्था ने सदियों से घुमंतू समुदाय को उभरने नहीं दिया।

उन्हीं दिनों 'धनट्टी' नामक बेरड़ों के टोले पर पुलिस द्वारा गोलीबारी होती है उसमें बेरड़ समुदाय के चार लोगों की मृत्यु होती है। इस घटना से सारे बेरड़ कार्यकर्ता और संगठन

---

[245] वही, पृ. सं- 376

एकत्रित होकर सरकार और पुलिस प्रशासन के विरोध में प्रदर्शन करते हैं । जगह-जगह पदयात्रा, मोर्चे, निवेदन देते हैं । लेखक बेलगाँव तहसील के बाईस बेरड़ टोलों के लोगों को एकत्रित कर पदयात्रा निश्चित करते हैं ।इस पद यात्रा को मुकम्मल बनाने और बरड़ों को न्याय दिलाने समुदाय के सभी लोग बेलगाँव में एकत्रित होते हैं । बेलगाँव में हलचल पैदा होती है । समाचार पत्रों में भी हलचल मच जाती हैं । 'बेरड़ संगठन' द्वारा किये गए आंदोलन को जिला अधिकारी उपस्थित रह कर न्याय देने और बेरड़ समुदाय पर होने वाले पुलिसिया अत्याचारों की जाँच पर आश्वासन देते हैं । इस प्रकार लेखक निरंतर अपने समुदाय के लिए सक्रिय तथा सुधारवादी कार्यकर्ता के रूप में लगातार जूझते हैं ।

इस समयावधि में लक्ष्मण माने नामक कार्यकर्ता अपने विद्यार्थी दशा से बाहर आते हैं और महाविद्यालयीन अवस्था में ही अनेक संगठनों, नाट्य मंडलियों से जुड़ जाते हैं । महाविद्यालयीन गतिविधियों में वक्तृत्व स्पर्धा, महापुरुषों की जयंती में भाषण में बढ़-चड़कर सहभाग लेते हैं । पहचान बनाना कैकाड़ी समुदाय के लोगों के खून में ही होता है, उसी प्रकार महाविद्यालय तथा शहर के अनेक सामाजिक संगठनों की पहचान बनाते है । सामाजिक आंदोलन की गतिविधियों में सहभाग लेते हैं वहाँ प्रोफेसर धामनगाँवकर, बाबूराव परितेकर, नानासाहेब माने आदि राष्ट्र सेवा, समाजवादी युवक दल के लोगों की पहचान होती है । इसी दल के कारण डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर की भेंट और सहायता मिलती हैं । सामाजवादी युवक दल में काम करते समय वैचारिक मोह भंग हो जाता है । कहते हैं-"आदमी समाजवादी है । कम से कम अपना सहयात्री है । कुछ करेगा यह विश्वास मन में लेकर उठा पर, अब आस्था नहीं बची थी । ऐसे, स्वयं को समाजवादी कहलाने वाले सैकड़ों हरि के लाल देखे थे ।"[246] वैचारिक मोहभंग के बाद लेखक वैचारिक समानता वाले दलित संगठनों से जुड़ जाते हैं । बाद में अंबेडकर स्कूल ऑफ थॉट के सदस्य बनते हैं और दलित पैंथर से जुड़ जाते हैं । उन दिनों बिना छत के अनिश्चित घूम रहे विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों को एकत्रित कर उन्हें स्वाभिमान से जीवन जीने की अनुभूति निर्माण का कार्य करते हैं ।

सन् 1980 के बाद विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के तमाम संगठन मिलकर संवैधानिक सुविधाओं के लिए पूरी ताकत के साथ महाराष्ट्र शासन को जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने हेतु संपूर्ण महाराष्ट्र में आंदोलन मोर्चे, अधिवेशन, परिषदों द्वारा जागृत करने का कार्य करते हैं । सन् 1982 में 'विमुक्त-घुमंतू एकता परिषद' पिंपरी चिंचवड़ (पुणे) में संपन्न होती है । उसी साल औरंगाबाद और लातूर में क्रमशः मोतिराज राठोड और लक्ष्मण गायकवाड़ के नेतृत्व में 'विराट मोर्चा' का निकाला जाता है । फरवरी सन् 1983 में औरंगाबाद में 'संदिग्ध गुनहगार जनजाति अत्याचार उन्मूलन परिषद' का आयोजन किया जाता है । इसके लिए संपूर्ण

---

[246] पराया, लक्षमण माने, दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्र. सं-2016, पृ. सं- 138

महाराष्ट्र के नेता-कार्यकर्ता शामिल हुए थे। जिनमें शरद पवार, बाबा आढाव, लक्ष्मण माने, लक्ष्मण गायकवाड़, मोतिराज राठोड, कॉ. चंद्रगुप्त चौधरी, श्रीमती कुमुदिनी राणनेकर, अंकुश भालेराव आदि मंडली उपस्थित थी। मार्च सन् 1984 में औरंगाबाद में 'बोंबा-बोंब' मोर्चा निकाला गया।

26 जनवरी 1985 में कमिश्नर कार्यालय औरंगाबाद में पुनः 'बिराड मोर्चा' का आयोजन किया। 'आदिवासी भटके-विमुक्त यूथ फ्रंट' की स्थापना की गयी, 25 नवंबर 1985 में संपूर्ण राज्य में 'संसार चालू रास्ता बंद' आंदोलन किया गया। 'तूरूंग आता हेच घर' (अब जेल ही हमारा घर) घोषणाओं के साथ सन् 1986 में नासिक में 'जेल भरो आंदोलन' किया गया। जून 1987 में राज्यस्तरीय 'पारधी परिषद' (परतूर, जिला-जालना) का आयोजन किया गया था। उसी साल चालीसगाँव में 'बिराड अधिवेशन' का आयोजिन हुआ। अतः समाज और पुलिस प्रशासन द्वारा 'अपराधी' नजरों से मुक्ति पाने और नागरिकता कायम करने के लिए 'मुंबई उच्च न्यायालय' (1988) मुंबई के 'हायकोर्ट बिराड अधिवेशन' का आयोजन एवं आंदोलन किया। 31 फरवरी सन् 1989 के दिन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की अध्यक्षता में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के दूसरे 'देशव्यापी अधिवेशन' का आयोजन किया। इस समय विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की माँगों का निवेदन किया गया। आगे कुछ ही दिनों में अध्यक्षीय भाषण में दिए गए आश्वासनों का मोहभंग हो जाता है।

आगे 1992 में 'बाबरी मस्जिद दंगों' के कारण संपूर्ण देश प्रभावित रहा। उन दिनों विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति के लक्ष्मण माने को तत्कालीन मुख्यमंत्री शरद पवार के नेतृत्ववाली सरकार में विधान परिषद के विधायक के रूप स्थान मिला। लिहाजा विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति के प्रश्नों, जनकल्याण योजनाओं और राज्य सरकार में स्थित वर्ण व्यवस्था व नौकरशाही की अनास्था के कारण हमेशा वंचित रहे। इस पर विचार-विमर्श और उनके भविष्य के निदान हेतु विचार-विमर्श प्रस्तुत करते हैं।

दूसरी ओर लक्ष्मण गायकवाड़ ने समय-समय पर देश के प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह, राजीव गांधी, अटलबिहारी वाजपेयी आदियों को निवेदन दिया। और विमुक्त घुमंतू जनजातियों के राष्ट्रीय चर्चा सत्र, संगोष्टियों और साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन करके साहित्य के विविध विश्वविद्यालय, उच्च संस्थानों के माध्यम से अपने समुदायों की आवाज देश के हर कोने में पहुँचाते रहे हैं। जिसके लिए उन्होंने महाश्वेता देवी, गणेश देवी, रोमिला थापर, राजेंद्र यादव, अजीत कौर, रमणिका गुप्ता, रंजीत नायक जैसे प्रतिष्ठित भारतीय साहित्यकारों उनका ने साथ दिया है। इसी कड़ी में "2002 में रमणिका फाउंडेशन ने लक्ष्मण गायकवाड़ जी से मिलकर तय किया कि अखिल भारतीय स्तर पर विमुक्त-घुमंतू आदिवासियों की स्वतंत्रता की गोल्डन जुबली

के अवसर पर 30-31 अगस्त को दो दिवसीय सम्मेलन बुलाया जाए, जिसमें देश के विमुक्त-घुमंतू आदिवासी प्रतिनिधि शामिल हों ।इसमें पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को उद्घाटन के लिए और महाश्वेता देवी जी को मुख्य अतिथि के रुप में बुलाया गया था ।”[247] इस दो दिवसीय सम्मेलन को संपूर्ण भारत से विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के विद्वान अपनी उपस्थिति दर्ज किये, और अपने-अपने क्षेत्र समुदायों की सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक स्थितियों के संबंध में तथा समस्याओं और समाधानों के बारे में अपने व्याख्यान दिए हैं ।

उस समय महाराष्ट्र में ‘अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति’ ने समाज के हर तबके को अन्धविश्वास से बाहर निकालने का बीड़ा उठाया था । इसका व्यापक कार्य महाराष्ट्र तथा महाराष्ट्र के बाहर जमीनी स्तर पर कार्य करने लगा । इनके सबसे महत्वपूर्ण कार्य में समाज में चल रही जातपंचायतों द्वारा अत्याचार और बाबा-बुआओं के कर्मकांडों में फंसकर सदियों से जनता ठगी जा रही थी । “अंधविश्वास उन्मूलन कानून अंधश्रद्धा पारित करने के बाद राज्य में पंचायत द्वारा किये गए अत्याचार समाज के सामने आने लगे; तब अनेक समुदायों से जात पंचायत बंद की घटनाएँ आने लगी । इसका मुख्यः कारण जात पंचायत द्वारा अत्याचार की घटना सामने आयी; और उनपर पुलिस कार्यवाही की जाने लगी । कोई भी रूढ़ि-परंपरा कानून बनाकर ख़त्म नही होती । इसलिए परिसंवाद, प्रबोधन, व शिक्षा की आवश्यकता होती है । यह कार्य अंधविश्वास समिति द्वारा तीन दशकों तक किया गया ।”[248] जिसके कारण महाराष्ट्र में जात पंचायत जैसी अनिष्ट परंपराओं पर कुछ हद तक लगाम लगा ।

भारत सरकार ने 2001 में विमुक्त और घुमंतू जनजातियों के विकासात्मक अध्ययन के लिए ‘राष्ट्रीय विमुक्त/घुमंतू/अर्ध घुमंतू जनजाति आयोग’ अर्थात ‘रेणके आयोग’ बनाया । इस आयोग ने 18 राज्यों की घुमंतू जनजातियों का अध्ययन करके सन् 2008 में केंद्र सरकार को सिफारिशें सौंपी दिया । अब 12 साल बीत रहे हैं फिर भी इस आयोग की सिफारिशें किसी भी सरकार ने स्वीकार नहीं की । इसके लिए समय-समय पर संपूर्ण भारत के विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के कार्यकर्ताओं ने प्रधानमंत्री तथा अपने राज्य के मुख्यमंत्रियों को आयोग की सिफारिशें स्वीकारने हेतु आवेदन किये हैं । विस्तार से इसकी चर्चा अगले अध्याय में देख सकते हैं ।

---

[247] विमुक्त-घुमंतू आदिवासियों का मुक्ति-संघर्ष, संपा- रमणिका गुप्ता, कल्याणी शिक्षा परिषद् प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं- 2015, पृ.सं- 14

[248] नोटिफाइड ट्राइब्स नोमडिक ट्राइब्स, प्रा. मोतीराज राठोड, निर्माण संस्थान प्रकाशन, पुणे, पहिली आवृत्ती- 2015, पृ.सं- 34

* निर्मूलन कायदा झाल्यानंतर संपूर्ण राज्यात जात पंचायतीने केलेल्या कित्येक अत्याचाराच्या घटना समोर आल्या; तर कित्येक जातींच्या पंचानी जात पंचायत प्रथा बंद केल्याच्या घोषणा केल्या. जात पंचायातीनेबहिष्कारकेला. त्यांच्यावर गुन्हे नोंदवणे, त्यांना शिक्षा देने त्या अगोदर जात आणि जात पंचायत नीट समजून घेणे आवश्यक आहे. कोणत्याही पारंपरिक रुढ़ि, प्रथा एकदम कायदा करुन नष्ट होत नाही. त्याकरिता परिसंवाद, प्रबोधन व शिक्षनाची आवश्यकता आहे. जे अंधश्रद्धा निर्मूलन समितीने तीन दशके प्रबोधनात्मक काम केले.

अतः वर्तमान समय महाराष्ट्र के संदर्भ में कहा जाये तो 'विमुक्त एवं घुमंतू संगठनों' की डोर युवाओं के हाथ में है । जिसमें मुंबई से पल्लवी रेणके, दुर्गा गुडेलु, पुणे से प्रा.विनायक लष्कर, दयानंद कनकदांडे, सुषमा अंधारे, नांदेड से डॉ. संजय बालाघाटे, डॉ. श्रावण रापनवाड़, औरंगाबाद से के.ओ. गिरे, जनाबाई गिरे, गणपत राठोड़, सुदाम राठोड, वीरा राठोड पश्चिम महाराष्ट्र से विमल मोरे, दादासाहब मोरे कालिदास शिंदे और विदर्भ से अशोक पवार आदि कार्यकर्ता अपने स्तर पर कार्य कर रहे हैं ।

4.2.4. विमुक्त एवं घुमंतुओं का राजनीति में स्थान

महाराष्ट्र में ज्योतिराव फुले की सामाजिक क्रांति से बहुसंख्यक समाज परिवर्तन की ओर आकर्षित होता है । और हमें अंग्रजों को भी भूलना नहीं चाहिए कि उनकी निस्वार्थ शिक्षा नीति के कारण अछूत कही जानेवाली जातियों को शिक्षा में अवसर प्राप्त हुआ था । इसका उदाहरण डॉ. अंबेडकर हैं । डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व से ही दलित, पिछड़ी जाति-जनजातियों का राजनीति में पदार्पण होता है । भले ही डॉ. अंबेडकर के अस्तित्ववादी राजनीति के कारण विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के राजनेता साथ नहीं हों । परंतु फुले, शाहू, अंबेडकर का सामाजिक प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में घुमंतू जनजातियों के राजनीतिक नेताओं पर दिखाई देता है ।

बंजारा घुमंतू समुदाय के प्रथम राजनीतिक नेता वसंतराव नाईक अंतरजातीय विवाह किया । विद्यार्थी दशा में इन्हें महात्मा जोतिबा फुले व डेल कार्नेगी के विचारों ने प्रभावित किया । महाविद्यालय में पढ़ते समय उनका स्नेह संबंध घाटे नामक ब्राह्मण परिवार से होता है । इस स्नेह की परिणति वसंतराव और वत्सल्याबाई के अंतरजातीय प्रेमविवाह में (सन् 1941) होती है । इस विवाह के कारण विदर्भ में उत्तेजना भड़की और दोनों की जातियों में इसका कड़ा विरोध दर्शाया गया । इस कारण इन्हें कुछ साल तक अपने-अपने परिवार से दूर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा । यहाँ स्पष्ट होता है कि, "नाईक साहब पर म. फुले, म. गांधी, डॉ. अंबेडकर और पंजाबराव देशमुख के विचारों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है । हालाँकि आप म. फुले और अंबेडकर के उत्तराधिकारी होने का गर्व कभी दिखाया नहीं ।"[249] तत्पश्चात वकिली में सफलता मिली । उसी समय हरिजन छात्रावास और राष्ट्रीय छात्रावास (दिग्रस, विदर्भ-मराठवाडा सीमावर्ती) के अध्यक्ष थे । बाद में उनका कृषि विभाग अध्यक्ष के रूप में चयन हुआ । सन् 1946

---

[249] वसंतराव नाईक कृषि- औद्योगिक क्रांतिचे प्रणेते, डॉ. उत्तम रुद्रावार, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडल प्रकशन, मुंबई, प्र. आवृत्ति- 2004, पृ.सं- 16

* नाईकसाहेबांवर म. ज्योतिराव फुले. म. गांधी, डॉ. अंबेडकर आणि भाऊसाहेब पंजाबराव देशमुख यांच्या विचारांचा मोठा प्रभाव होता. हे स्पष्टपणे जाणवते. तथापि आपण म. फुले आणि डॉ. अंबेडकर यांचे वारसदार आहोत, असा टेंभा त्यांनी कधीही मिरविला नाही.

में कॉग्रेस के सदस्य बनकर राजनीति में प्रवेश किया । इनका आदर्श लेकर बंजारा समुदाय के युवकों ने स्थानीय राजनीति में पदार्पण करना शुरू किया था ।

भारत स्वतंत्रता के बाद सन् 1952 में हुए प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस की ओर से वसंतराव नाईक को नामांकन मिला । चुनाव में भारी मतों से विधायक बने और तत्कालीन सरकार ने इन्हें राजस्व उपमंत्री पद सौंप दिया । सन् 1957 के विधानसभा चुनाव में चुने जाने पर कृषि मंत्री पद की शपथ लिए और अपने अकाल ग्रस्त जिला यवतमाल के अलावा संपूर्ण महाराष्ट्र में कृषि क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया । सन् 1956 में पड़े अकाल की स्थिति सुधारने के लिए लोगों को 'रोज़ गार गारंटी योजना' द्वारा रोज़ गार प्राप्त किया । इस समय संपूर्ण भारत में भूदान आंदोलन चर्चा में था । डॉ. उत्तम रुद्रावार लिखते हैं-"वसंतराव नाईक महाराष्ट्र में कृषि मंत्री रहते हुए इनके अथक प्रयत्नों कारण यवतमाल जिले से भूदान में एक लाख सदतिस हज़ार एकड़ जमीन प्राप्त हुई थी ।"[250] इस कार्य से महाराष्ट्र में वसंतराव नाईक का नाम कृषि क्षेत्र का प्रणेता के रूप में लिया जाता है ।

बाद में सन् 1963 से 1975 के लंबे समय तक वसंतराव नाईक महाराष्ट्र राज्य के मुख्यमंत्री रहे । एक सामान्य घुमंतू परिवार का आदमी राज्य का मुखिया बनने तक का सफ़र आसान नही था । इस कालावधि में राज्य को कृषि-औद्योगिक क्षेत्र को प्रगतिपथ पर लेने के अलावा संपूर्ण महाराष्ट्र में दलित, पिछड़ी जाति-जनजातियों के बच्चों की शिक्षा और उन्हें छात्रावास की सुविधा के लिए आश्रम शालाओं का निर्माण किया । उन्हीं आश्रम शालाओं में शिक्षा ग्रहण कर तमाम विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के युवा अपने आपको साबित करने लगे । जिसमें बंजारा घुमंतू समुदाय के युवा ही शीर्ष स्थान पर रहे ।

इसी समयावधि में महाराष्ट्र में 'दलित पैथर' अपने सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन माध्यम से दलित, पिछड़ी जातियों को प्रभावित किया था । दूसरी ओर देश में 'गरीबी हटाओ' का नारा देकर किसानों, मजदूरों के लिए कई योजनाएँ शुरू की थी । परंतु उसी समाज का एक बहुत बड़ा तबका जाति का कलंक लेकर पेट की आग बुझाने के लिए पाँवों घिर्री में बाँधनेवाला

---

[250] वही, पृ.सं- 13

* महाराष्ट्राचे कृषि मंत्री असताना त्यांच्या भागीरथ प्रयत्नांमुले यवतमाळ जिल्ह्यातुन एक लाख सदतीस हजार एकर जमीन भुदानत प्राप्त झाली होती.

घुमंतू समुदाय रोज़ अवहेलना झेल रहा था तब पराया आत्मकथा में लेखक कहता है-“सरकार, सुविधाएँ, ‘गरीबी हटाओ’ कोई कहता तो गिनकर जूते मारने की इच्छा होती ।”[251]

1975 में आपातकाल की स्थिति में दलित कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया जा रहा था । जो गरीबों की जमीन कारखानदारों द्वारा छुडवाने कार्य कर रहा हो उसपर झूठा इल्जाम लगाकर जेल भेजा गया । इसे स्पष्ट करते हुए भीमराव गस्ती अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-“आपात् स्थिति का फ़ायदा उठा, मेरे चंद विरोधियों ने, मुझे दलित-पैंथर से संबंधित बता, खामख्वाह पुलिसवालों को मेरी गिरफ्तारी के लिए उकसाना शुरू किया था । यानी जाहिर तौर पर एक तरह से, मुझे जान-बुझ कर पैरों-तले रौंद डालने की वाहियात प्रक्रिया शुरू हुई थी ।”[252] इस स्थिति में दलित पैंथर के कार्यकर्ताओं में भी मतभेद शुरू हुए थे । अतः दलित आंदोलन का प्रतिनिधित्व करनेवाली ‘रिपब्लिकन पार्टी’ दो गुटों में बंट गयी । सन् 1977 के चुनावों में एक गुट कांग्रेस के साथ और दूसरा कम्युनिस्ट पार्टी के साथ गठबंधन की थी ।

इसी कालावधि में लातूर (महाराष्ट्र) से लक्ष्मण गायकवाड़ मज़दूर नेता तथा विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के कार्य से जनसामान्य कार्यकर्ता के रूप में स्थान पाते हैं । वे अपने कार्य के दस-बारा सालों में मोर्चे, आंदोलन, अनशन आदि के रूप में ख्याति पाते हैं । इस नेतृत्व की भूमिका को देखकर सन् 1985 में ‘बहुजन समाज पार्टी’ लोकसभा चुनाव का उम्मीदवार घोषित करती है । चुनाव के लिए चन्दा इकट्ठा आर्थिक सहायता करने की बात होती है । प्रचार का कार्य ज़ोर-शोर शुरू होता है । गाँव-गाँव में घूमकर पार्टी के नेता प्रचार करते हैं, दीवारों पर उम्मीदवार का नाम लिखने का कार्य करते हैं । चुनाव का दिन नज़दीक होता है तब आश्वासन किये नेता आर्थिक सहायता से मुकर जाते हैं । लेखक के पास जितना पैसा होता हैं, वह ख़त्म हो जाता है । पार्टी के इस दोहरी नीति के कारण लेखक को चुनाव में बलि का बकरा बनने का अनुभव होता है । जिसे वे बलि न समझकर कटु राजनीतिक अनुभव समझते हैं । परंतु बहुजन समाज पार्टी में कुछ अच्छे नेता भी होते हैं, जो लेखक को अपने ऊँगली की अंगूठी निकलकर प्रोत्साहित करते हैं । इसपर लक्ष्मण गायकवाड़ कहते हैं-“कई कार्यकर्ता नौकरियों पर थे । पर मेरे प्रचार के लिए वे छुट्टी लेकर आए । इस कारण कार्यकर्ताओं के अनुशान और प्रमाणिकता से मैं प्रभावित होता था । उनके प्रति मेरी कभी कोई शिकायत नहीं थीं । परंतु ऊपर से मुझे सहयोग क्यों नहीं मिल पाया, इसका रहस्य मैं आज तक नहीं समझ पाया ।”[253] इस तरह

---

[251] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवा सं- 2016, पृ. सं- 236

[252] बेरड़, भीमराव गस्ती, गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं- 2006, पृ.सं- 214

[253] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति- 2011, पृ.सं- 157

विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के युवा अलग-अलग राजनीतिक पार्टियों, संगठनों में शामिल होकर अपने समाज को ऊपर उठाने का कार्य कर रहे थे।

घुमंतू जनजातियों में कुछ ही समुदाय के लोग राजनीति में सफल हो पाए। जिनमें बंजारा, वंजारी, धनगर आदि जनजातियों के युवा नेताओं ने राजनीति में कामयाब दिखाई देते हैं। राजनीति में बंजारा समुदाय वसंतराव नाईक के बाद उनके भतीजे सुधाकरराव नाईक ने महाराष्ट्र की जनता को प्रभावित किया और मुख्यमंत्री बने। साथ ही बंजारा समुदाय के राठोड बंधू किशनराव राठोड और गोविन्द राठोड, उत्तम राठोड, हरिभाऊ राठोड, मोहन राठोड ने मराठवाडा तथा विदर्भ के कुछ जिलों में विधायक के रूप में कार्य किया। दूसरी ओर वंजारी घुमंतू समुदाय के गोपीनाथ मुंडे ने कई सालों से भारतीय जनता पार्टी के विविध पदों पर कार्य किया। 1995 में मुंडे महाराष्ट्र के उपमुख्यमंत्री बने। वे मराठवाडा में बहुजन जातियों को एकत्रित किया और गरीब, पिछ्ड़ी जातियों के लिए कार्य किया। इनसे प्रभावित होकर वंजारी समुदाय के युवा शिक्षा और राजनीति में आए। स्वतंत्रता के बाद विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लोग मुख्यमंत्री, उपमुख्यमंत्री आदि मुख्य पदों पर रहे, परंतु अपनी जाति-जनजातियों के लिए कार्य क्या दिया ? इसपर विधान परिषद में टिप्पणी करते हुए विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के कार्यकर्ता और विधायक लक्ष्मण माने कहते हैं-“मुख्यमंत्री हमारे, विरोधी पक्षनेता हमारे होते हुए भी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की बरबादी की जा रही है। आप लाल बत्ती के गाड़ी में बैठते हैं और पूर्व मुख्यमंत्री सुधाकरराव नाईक भी बैठे, पर नुकसान केवल हमारा किया ? क्या भला किया घुमंतू समुदाय का आपने ?”[254] इससे स्पष्ट होता है की विमुक्त-घुमंतू जनजातियों के राजनेताओं ने केवल अपने समुदाय का ही भला किया, बाकी जनजातियों के बारे में कभी नहीं सोचा है। इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्थिति पहले जैसी दिखाई देती है।

इस जाति विशेष की भलाई के बारे में सोचेंगे तो सदियों से हमारे समाज चंद जातियों का वर्चस्व रहा है। कुछ ही जातियाँ हमेशा विकास के शीर्ष स्थान पर रही और हमेशा किसी-न-किसी धार्मिक ग्रंथ, देववाणी (भाषा), पुनर्जन्म का डर दिखाकर निम्न जातियों को मूलभूत अधिकारों से दूर रखा है। आगे चलकर इसका प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष्य रूप में समाज के अधिकत्तर लोगों पर पड़ा। और निम्न जातियाँ भी इसपर गर्व करने लगी तथा अपने तक ही

---

[254] भटक्यांच भारूड, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर मुंबई, दूसरी आवृत्ति- 2006, पृ.सं- 48-49

* मुख्यमंत्री आमचा, विरोधी पक्षनेते आमचे असं असून देखील सर्वजन भटक्या आणि विमुक्त जमातींचं वाटोल करत आहेत. तुम्ही लाल दिव्याच्या गाडीत मध्ये बस्ता, लाल दिव्याच्या गाडीमध्ये माजी मुख्यमंत्री सुधाकरराव नाईक हे देखील बसत होते आणि वाटोल मात्र आमचं करता ? आधीच ज्यांच वाटोल झालेल आहे त्यांचं आणखी काय वाटोल करता ? काय भलं केलं या लोकांच आपण ?

सीमित रही । इसका उदाहरण जातीय राजनीति के माध्यम से हमेशा दृष्टिगोचर होता है । इसपर आनंद तेलतूम्बडे का कहना हैं-"जाति व्यवस्था की सफलता के पीछे न केवल इसको मिली दैवीय स्वीकृति थी, बल्कि वह ढांचा था जिससे शोषित तबकों को एकजुट नहीं होने दिया । सामाजिक वर्गीकरण की इस व्यवस्था की अभूतपूर्व सफलता न केवल इसकी बनावट में निहित है जिसने शोषित जातियों को संगठित नहीं होने दिया और उनके ऊपर वैचारिक प्रभुत्व कायम किया बल्कि इसकी दैवीय स्वीकृति में भी निहित है ।"[255] इससे हमेशा निम्न जातियों का बहुसंख्यक तबका हर क्षेत्र में अपने-आपको विकसित किया । अब तक की विमुक्त-घुमंतू जनजातियों की सामाजिक-शैक्षिक राजनीति पर महाराष्ट्र के विधान परिषद में (सन् 1993) वक्तव्य देते हुए लक्ष्मण माने स्पष्ट करते हैं-"आश्रम स्कूल किन लोगों को बाँट दिए इसपर भी मुझे बोलना है । यह अलग विषय है । परंतु आजतक आपके हाथों में सत्ता दी, आप ने विमुक्त एवं घुमंतू जनों को क्या दिया? तुम इस समाज के लोगों को सत्ता भी देंगे, तब भी कुछ हासिल नहीं होगा ।"[256]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की बदहाली को जाँचकर खुशहाली लाने के अध्ययन हेतु सन् 2001 में बनाया गया 'विमुक्त-घुमंतू और अर्द्ध घुमंतू जाति-जनजाति आयोग' अर्थात 'रेणके आयोग' उसकी शिफ़ारिशें केंद्र सरकार को सन् 2008 में दी गयी । परंतु आज तक किसी भी सरकार ने आयोग द्वारा दी गयी शिफारिशों को लागू नहीं किया है । इस से बड़ी राजनीति और क्या हो सकती है ।

बंजारा समुदाय के मुख्यमंत्री सुधाकरराव नाईक, विधायक किशन राठोड, गोविन्द राठोड, तूषार राठोड, हरिभाऊ राठोड, उत्तम राठोड, वंजारी समुदाय के स्वर्गीय गोपीनाथ मुंडे, धनंजय मुंडे, पंकजा मुंडे, प्रीतम मुंडे, धनगर समुदाय के प्रकाश शेंडगे, दत्ता बंडगर, अशोक हटकर, महादेव जानकर, अनिल गोटे आदि लोग अलग-अलग घुमंतू समुदायों से आते हैं । ये लोग अलग-अलग राजनीतिक पार्टियों के माध्यम से मुख्यमंत्री, उपमुख्यमंत्री, केन्द्रीय मंत्री रह चुके हैं और आज भी हैं । ये लोग अपने-अपने स्तर पर अपने समुदाय के लिए कार्य किया परंतु यह करते समय सभी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की ओर ध्यान नहीं दिया है । ऐसा लगता है आजादी के बाद मुख्यधारा के राजनीति ने इन्हें ठगा और वर्तमान समय अपने ही जाति-

---

[255] जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतुम्बडे, संपा- रुबीना सैफ़ी, आधार प्रकाशन प्रा. लि, पंचकुला, प्र. सं- 2016, पृ.सं-24

[256] भाटक्यांच भारूड, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर मुंबई, दूसरी आवृत्ति- 2006, पृ.सं- 49

* आश्रम शाळा कोणाला दिल्या यावरही मला बोलायचे आहे. वेगला विषय आहे तो. आजवर आपल्याला सत्ता दिली, परंतु या लोकांना आपण काय दिल ? तुम्ही या समाजाच्या माणसाला सत्ता जरी दिली तरी या मानसांसाठी त्याला काही करता येत नाही.

जनजातियों के द्वारा वोटिंग बैंक बनाया जाता रहा है । इस प्रकार की राजनीति को स्पष्ट करते हुए पी. चितंबरम लिखते हैं-“राजनीतिक न्याय का तीसरा वादा सबसे ज्यादा आहत करने वाला है । भला हो आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों का उसकी वजह से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों को राज्य विधानसभाओं और संसद सहित सभी निर्वाचित निकायों में उचित प्रतिनिधित्व मिला है, लेकिन राजनीतिक दलों में निर्णय करने वाले निकायों या स्तरों पर अनुसूचित जाति और अनिसुचित जनजाति के लोगों की प्रतिनिधित्व सिर्फ दिखावे भर का होता है ।”[257] यह सही प्रतीत होता है की आजादी के बाद अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के तमाम राजनीतिक नेता बड़े-बड़े पदों पर विराजमान हुए परंतु वंचित समुदाय के नागरिकों के लिए न्याय नहीं कर पाए, और जो कुछ समुदाय को मिला है, वह टुकड़ों-टुकड़ों में हैं । कुछ मुक्कमल नहीं कर सके या करने नहीं दिया, इस पर प्रश्न है ।

आज भी विमुक्त एवं घुमंतुओं (वंचितों) की आवाज सुनने वाला कोई नहीं है । इसलिए प्रकाश अंबेडकर जैसे संवेदनशील नेता ने महाराष्ट्र में तमाम पिछड़ी जातियों को एकत्रित करके 2019 के लोकसभा और विधान सभा चुनाओं में ‘बहुजन वंचित आघाडी’ नामक मंच तैयार किया था, जिसमें विमुक्त-घुमंतू समुदाय के सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता भी शामिल थे । जिसका उद्देश्य वंचित, उपेक्षित समुदायों को सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक रूप से ऊपर उठाना और अपने मतदान की ताकत पहचानना । सदियों से वोट का शिकार बनाये रखने वाले राजनेता अपने वादों से मुकर जाते रहे हैं । मीडिया और मीडियाकर्मियों ने अपने उद्देश्य से मुँह मोड़ लिया है । उन्हें समस्याओं से अधिक लोगों का मनोरंजन करने में टी.आर.पी मिल रही है । ऐसे “ये वो सवाल हैं जो 2019 में लोकसभा चुनाव के दौरान फ़िल्मी सितारे और सेलिब्रिटी गीतकार द्वारा पूछे गए । उस देश में जहाँ गैर बराबरी और भेदभाव के बीच स्वाभिमान से जीने-मरने की हजारों चुनौतियाँ हैं, उनसे जुड़े अनेक जरुरी सवाल हैं । तो भी ‘आम कैसे खाते हैं’ जैसे सवालों वाले इंटरव्यू प्रसारित होते हैं, देखे जाते हैं ।”[258] इस प्रकार तमाम समस्याओं और मुद्दों को नजरअंदाज कर समाज का उपहास किया जाता रहा है ।

अतः कहा जा सकता है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ राजनीति में शुरू से किसी न किसी समुदाय का हिस्सा रही है । परंतु इन्हें अपने ही पार्टी के मुखिया ने अपने समुदायों के लिए काम करने नहीं दिया है या वे केवल अपने समुदाय को ऊपर उठाने में लगे रहे । इस बीच जो अन्य

[257] जनसत्ता, आधी आबादी का गणतंत्र, पी. चिदंबरम, 5 जनवरी 2020, पृ. सं- 6 (हिंदी समाचार पत्र)

[258] बोलना ही है (लोकतंत्र, संस्कृति और राष्ट्र के बारे में), रवीश कुमार, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र.सं- 2019, पृ.सं- 21

बची हुई जातियाँ उनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की तीन-चार जनजातियों का ही कुछ विकास हो पाया है, जो थोडा बहुत हुआ वह बिखरा हुआ है। बाकी विकास से दूर जनजातियाँ वोटिंग तक ही सीमित दिखाई देती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण समाज के हर छोटे बड़े तबके में बदलाव से अधिक राजनीति होती है। इसलिए हमेशा छोटा तबका राजनीति के चपेट में आकार विकास से दूर रह जाता है। जब हमारे देश की राजनीति सुधरेगी तो देश को बदलने में वक्त नहीं लगेगा।

पाँचवा अध्याय

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में शैक्षणिक एवं संवैधानिक परिस्थितियों का यथार्थ

5.1. शैक्षणिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्यपूर्व समय यहाँ का अधिकांश साहित्य विशिष्ट तबके के लिए ही पढ़ने-लिखने के अधिकार में था । भारत में अंग्रेजों के आगमन से यहाँ के अस्पृश्य कही जानेवाली जाति-जनजातियों के लिए भी ज्ञान के दरवाजे खुलने लगे । जिसके कारण निचली कही जानेवाली जाति-जनजातियों को भी पढ़ने-लिखने का अवसर प्राप्त हुआ । इससे कुछ लोगों को लाभ मिला। परंतु भारतीय समाज में आजादी से पहले निचली कही जानेवाली अस्पृश्य जातियों को पढ़ने-लिखने और सुनने तक का अधिकार नहीं था । आजादी के बाद इस परंपरा को कानूनन तोड़ने का हर संभव प्रयास शुरू हुआ । परंतु परिवर्तन की प्रक्रिया हमेशा धीमी रही है, पर रुकी नहीं है। बावजूद इसके यहाँ के घुमंक्कड़ जनजातियों को दोहरा भेदभाव सहना पड़ा है । यह जनजातियाँ हमेशा समाज की नजरों में अस्पृश्य एवं अपराधी रही हैं । पूर्वकाल से चली आई परंपरा से घुमक्कड़ प्रवृत्ति में रही 'घुमंतू' जातियाँ सन् 1952 में 'अपराधी जनजाति अधिनियम' से 'विमुक्त' हुई । 'विमुक्त' तो किया गया परंतु उनके आवास और स्थायी होने की सुविधा नहीं की गयी । विकास के लिए भी विशेष प्रावधान नहीं किया । जिसके कारण वे जनजातियाँ न गाँव की रही और न जंगल की । बीच में ही आजीविका की खोज में घुमती रही । कभी जंगल कभी गाँव । इसी प्रवृत्ति में जिस भी गाँव में ये लोग रूकते वहाँ अपने बच्चों को पढ़ने, शिक्षित बनाने की कोशिश करते हैं । इन्हीं कोशिशों के द्वारा वे शिक्षित बनते हैं, उन्हीं की आत्मकथाओं के माध्यम से उनके समुदायों में शिक्षा का यथार्थ देख सकते हैं ।

समाज और प्रशासन द्वारा क्रमशः नकारी गयी और चिन्हित की गयी जनजातियाँ हमेशा अस्थायी घुमक्कड़ी करती रही हैं । उन्हें पता ही नहीं था कि उनके लिए पढने-लिखने का अधिकार है या नहीं ? परंतु शिक्षा के प्रति उनकी ललक और समाज में बची हुई ईमानदारी ने उन्हें अवसर प्रदान किया । पर यह उनके लिए आसान नहीं था । तथाकथित समाज से अवहेलना झेलनी पड़ी । वही रवैया स्कूल में शिक्षक तथा विद्यार्थियों द्वारा रहा है । इस कारण

जनजातियों को कई तरह के भेदभाव को झेलना पड़ा है । जिससे घुमक्कड़ जनजातियाँ पढ़-लिख न सकी । परंतु कुछ समुदाय के लोगों ने भेदभाव को सहकर भी पढ़ाई जारी रखी, जिसका लाभ भी उन्हें मिला । इसे विस्तार रूप देते हुए मराठी दलित साहित्यकार शरणकुमार लिंबाले लिखते हैं-"शिक्षा और लोकतांत्रिक विचार अनेक सामाजिक वर्गों तक पहुँच गया था । विभिन्न प्रदेशों के लोग, ग्रामीण, ग्रामीण बाह्य दलित, घुमंतू, विमुक्त और आदिवासी शिक्षा के कारण जागृत होने लगे । दूसरी ओर किसान, स्त्रियाँ और मज़दूर वर्गों में भी शिक्षा का प्रसार हुआ । शिक्षा का लोकतांत्रिकरण शुरू हुआ ।"[259] यह तथ्य कुछ प्रमाण में सच हो सकता है । परंतु इस क्रम में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ किस मोड़ पर खड़ी है, इसे अस्सी के दशक में प्रकाशित उनकी आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं । वह निम्नलिखित-

5.1.1. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की शैक्षणिक शुरुआत

आजादी के बाद भी कुछ ऐसी जनजातियाँ थी उन्हें स्वतंत्रता नहीं मिली थी । वह सन् 1871 में अंग्रेजों द्वारा बनाये गए 'अपराधी जनजाति अधिनियम' के तहत बंदी बना दी गयी थीं । आजादी के पाच साल कई महीनों बाद उन्हें सन् 1952 में 'विमुक्त' किया गया । वे भी अन्य समाजों की तरह स्वतंत्र हुईं, परंतु सरकार द्वारा उनके लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं की भी सहायता नहीं की । इस कारण वे जनजातियाँ घुमक्कड़ प्रवृत्ति में उदरनिर्वाह की खोज में भटकने लगी । अपराधी कही जाने वाली जनजाति से होने के कारण समाज का नजरिया वैसे रहा है । पुलिस प्रशासन ने भी इनके प्रति कानून में बदलाव नहीं किया। जब इन्हें रहने और रोज़ गार की ज़रूरत होती थी तो तथाकथित समाज उन्हें न रहने देता है और न रोज़ गार देता है । तब जनजातियों के कुछ लोग बेरोजगारी से पुख्ता होकर चोरी करना शुरू किया । चोरी करना उनका व्यवसाय बन गया था । भूख से तड़पकर उठते तो किसी के घरों तथा खेतों में जाकर खाने जैसी चीजों की चोरी के लिए मजबूर हो जाते थे । भूख की समस्या से तंग आकार घुमंतू समुदाय के कुछ लोग चोरी करते और शिक्षा भी देने के उदाहरण आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं ।

बेरोज़ गारी से तंग आकार कुछ समुदाय विशेष के लोगों ने चोरी करने की शिक्षा के दल शुरू किये । लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में बेरोजगारी से तंग आकार चोरी का

---

[259] साठोत्तरी मराठी वांग्मयातील प्रवाह, डॉ. शरणकुमार लिंबाले, दिलिपराज प्रकाशन, प्रा.लि., पुणे, द्वि.आ- 2014, पृ.सं- 5

*शिक्षण आणि लोकशाहीचा विचार अनेक सामाजिक घटकांपर्यंत पोहचला होता. निरनिराल्या प्रदेशातील लोक, खेडी, खेड्याबाहेरील दलित, भटके, विमुक्त आणि आदिवासी शिक्षणामुले जागे होऊ लागले. शेतकरी, स्त्रिया आणि कामगार वर्गातही शिक्षणाचं लोण पसरलं. शिक्षणाचे लोकाशाहीकरण सुरु झाले.

प्रशिक्षण देने और चोरी करने के दर्जनों उदाहरण आते हैं। जब उनके भाइयों को समाज में रोज़गार नहीं मिलता है तब-“माणिकदादा को चोरी सिखलाने के लिए हमारे बहनोई नेवली के संतराम एक दिन धनेगाँव आए। माणिकदादा को उन्होंने भाडगाँव के सखाराम के दल में भरती करा दिया। संतराम और सखाराम दादा को चोरी सिखलाने लगे।...जब वह यह नहीं करता तब बेतहाशा पीटते हैं। लड़का हो या लड़की आठ-नौ वर्ष की आयु से ही हमारी जाति में उसे बेतहाशा पीटा जाता है, केवल इस उद्देश्य से कि आगे चलकर चोरी करते समय या बाद में अगर पुलिसवाले उसे पकड़ लें और पीटने लगें, तो उसकी जुबान से किसी और का नाम न निकले। इस कारण चोरियाँ करने की विधि सिखलाने के पूर्व मार खाने की शिक्षा हमारे यहाँ दी जाती है।”[260]

इंसान को यदि भूख ही न होती तो अस्सी प्रतिशत गरीब लोगों के सवाल ही न होते। सगे-संबंधियों के पास सोने भर की समस्या होती, वह तो कहीं भी तंबू खड़ा करके भी हल हो जाती। परंतु भूख ! भूख तो इंसान को भीख माँगने, चोरी करने से लेकर शरीर बेचने तक के काम करवाती है। ऐसे उदाहरण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में मिलते हैं। ‘उचक्का’ में उठाईगीर समुदाय हमेशा भोजन की खोज में होता है। आसपास के ग्रामों में कहीं पर भी भोजन का कार्यक्रम होता है तो वहाँ उठाईगीर समुदाय के लोग थालियाँ लेकर पहुँच जाते हैं। बच्चों को बार-बार हिदायत दी जाती है कि वे पानी न पिएँ, ताकि दो दिन का भोजन एक ही बार खा सकें।

एक बार की घटना को लेखक लिखते हैं कि मुसनी के पटेल के लड़के की शादी थी। कई सारे गाँवों को न्योता था। उठाईगीर समुदाय को न्योंता न होते हुए भी एक-दूसरे को लिवा ले रहे थे। समुदाय के लोगों के साथ लेखक भी चल पड़ता है। खाने में बूंदी के लड्डू थे। लेखक पहली पंगत में बैठकर खा लेता है। समुदाय के दूसरे बच्चों का देखकर फिर पहुँचता है। फिर बैठता है। यह सोचकर चोरी कर रहे थे कि, भई हमने तो खा लिया, पर घर के सदस्य भूखे हैं, उनके लिए दो-चार लड्डू लिए जाएँ। पर परोसनेवाले ने लेखक पर नजर रख पीटाई करना शुरू किया। यह देख बाकी साथी भाग निकले। उनके भाग खड़े होना का कारण पकड़ा हुआ लेखक सच न कह बैठे और इकट्ठे किये सारे लड्डू न छीने जाएँ। इस बात को लेकर समुदाय के तुकाराम ने लेखक को इस तरह डांट देता है कि-“लक्ष्या तू बड़ा बेवकूफ है। तेरी अक्ल कहाँ गयी थी ? उसी पंगत में फिर क्यों जा बैठा ? हर पंक्ति को परोसनेवाले निश्चित व्यक्ति होते हैं। हर

---

[260] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, दू.आ-2011, पृ.सं-12

बार पंक्ति बदलनी चाहिए थी, इसलिए तो तेरे बाप को हम कहते थे कि बेटे को स्कूल मत भेज। चोरी के इन कामों में तू बेवकूफ ही निकला। हाँ, मेरे तूक्या को देख वह स्कूल कभी नहीं गया। पर देख, कितनी फुर्ती है उसमें, कभी भी पकड़ा नहीं जाता। अरे बेवकूफ, स्कूलों में लाला-बामन के लोग जाया करते हैं? हमारे नसीब में तो चार गाँवों में घूमना, माँगना और ख़ाना ही लिखा है।"[261]

इसी तरह 'डेराडंगर' आत्मकथा में शिक्षा के प्रति इसी मानसिकता को देख सकते हैं। लेखक का परिवार साल में एक बार अपने मूल गाँव में आकार रुकता है। पिताजी और उनके बड़े भाई नागू चाचा के बातचीत के दौरान लेखक के पिताजी लेखक के स्कूल के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। तब नागू चाचा थोड़ी देर सोच कर कहते हैं-"ये देख मलारी...उसे कल से भीख माँगने को भेज...उसके नसीब में यदि स्कूल ना हो तो...लक तो भीख माँगकर ख़ाना भी संभव नहीं होगा।...स्कूल भी नहीं...अरे...अपुन तो ऐसे भटकनेवाले...अपुन का पेट...घोड़े पर...तब उसकु इस्कूल भेजेंगे कैसे...? कल आवारा बनके भटकेगा...अपन की जाति को कोई गोबर उठाने को भी नहीं रखता...।"[262] पिताजी को इसकी कल्पना थी लेकिन उनकी इच्छा थी कि अपना बेटा सीखे। परंतु हालत को देखते हुए उन्होंने अपना विचार बदल लिया। इस से स्पष्ट होता है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ हमेशा रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करती दिखाई देती हैं। तूलसीराम जैसे समुदाय के अनुभवी लोगों को अपने परंपरागत व्यवसाय को आगे बढ़ाने में गर्व महसूस होता है। इससे पता चलता है कि इस समुदायों को तथाकथित समाज ने किस तरह दूर रखने का षड़यंत्र रचा है की लोग शिक्षा को अपना अधिकार ही नहीं समझते हैं।

समुदाय के साथ-साथ बच्चों का भी जीवन संघर्षमय बन जाता है। जब से स्कूल की शुरुआत होती है, तब से एक साथ अनेक कार्यों को निपटाकर स्कूल जाना पड़ता है। 'पराया' आत्मकथा में लेखक लक्ष्मण माने स्कूल के साथ गधों को चराना, लकडियाँ बीनना, गोबर थोपना, छोटे भाई-बहनों को संभालना आदि जिम्मेदारियाँ संभालते हुए स्कूली पढ़ाई करते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए आत्मकथाकार लिखते हैं-"दूसरा दिन उगा। बाप फिर बड़े सवेरे निकल पड़ा। माँ ने चाय बनायी। मुझे उठाया, छोटे बच्चों को उठाया। माँ कह रही थी, 'लक्ष्या, स्कूल का समय होने तक गधों को जरा ले जा। जब बच्चे स्कूल की ओर जाने लगेंगे, तब समी को गधों

---

[261] वही, पृ.सं-37

[262] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प.सं-2001, पृ.सं-26

की ओर भेज दूँगी । फिर तुम स्कूल चले जाना ।"[263] बच्चों को बचपन से ही तमाम तरह की जिम्मेदारियों को संभालना पड़ता है । जिससे बच्चों को स्कूली माहौल नहीं मिलता है । और अधिकांश बच्चे प्राथमिक शिक्षा ख़त्म होते-होते स्कूल जाना बंद कर देते हैं ।

जिस तरह का सामाजिक माहौल घुमक्कड़ जनजातियों के बच्चों को मिलना चाहिए, नहीं मिलता है । इसी वातावरण में जब कुछ माँ-बाप की इच्छा होती है तो समाज और शिक्षक की हीनभावना से गुजरना पड़ता है । पूरे घुमंतू समुदाय को ही शिक्षक कटघरे में खड़ा करते हैं । जब शिक्षक ही अस्पृश्यता की दृष्टि से देखते हैं तो स्कूल में बच्चे भी निम्न जातियों के बच्चों को उसी तरह के भेदभावपूर्ण दृष्टि से व्यवहार करते हैं । 'पराया' में लेखक के पिताजी उन्हें स्कूल में बैठने के लिए भेज देते हैं, पर मास्टर स्कूल में बैठने से मना करते हैं । जब लेखक के पिताजी विनम्रतापूर्वक बात करते हैं तो मास्टर झल्लाते हैं-"अरे भिखारियों के लिए भी कहीं स्कूल होता है?...अरे, उसके पढ़ने के बाद टोकरियाँ कौन तैयार करेगा? यह सब नहीं चलेगा ! बड़े आए पढने वाले ।"[264] इसी प्रकार का उदाहरण 'डेराडंगर' आत्मकथा में देख सकते हैं । लेखक दादासाहब मोरे को पिताजी स्कूल जाने की हिदायत दे कर काम पर चले जाते हैं । लेखक अपने मटमैले हुलिए से ही स्कूल पहुँच जाता है । स्कूल में लेखक को देखते ही शिक्षक ज़ोर से चिल्लाते हैं-"ऐ छोरेsss किसका है तू...? वह आवाज सुनकर मैं डर गया । जैसे-तैसे डरते हुए उत्तर दिया-'मैं जोशी का हूँ...।' तब मास्टर फिर से गुस्से में बोले-'यहाँ क्यों आया है...?'...तू भिखारी का बेटा...तेरा नाम कैसे दाखिल करें स्कूल में...जा...तेरे बाप को बोल...तुझे स्कूल में प्रवेश नहीं दिया जा सकता । जा...भाग...।"[265] जब संसार में अधिकांश सामाजिक जमीन को उपजाऊ बनाने वाले शिक्षक इस तरह पेश आएँगे तो शिकायत और उम्मीद किस से की जाए । इस तरह खुद के समुदाय, तथाकथित समाज और शिक्षक द्वारा अवहेलना सहन करके विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों को आगे बढ़ना पड़ता है ।

स्कूल में घुमक्कड़ जनजाति का बच्चा समानता के साथ जाता है, पर हर दम उसे पराये पन का ऐहसास दिलाया जाता है कि, तुम अछूत हो । एक वर्णक्रम पूरे स्कूल में अघोषित रूप में चलाया जाता है । इस तरह का भेदभाव गैर-अस्पृश्य शिक्षक ही अपनी जातिवादी मानसिकता के कारण करता है । इस तरह के स्पृश्य-अस्पृश्य का सामना विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों को करना पड़ता है । 'बेरड़' आत्मकथा में जब लेखक स्कूल जाते हैं, वहाँ दो तरह के बैठने

---

263 पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं-2016, पृ.सं-11

264 वही, पृ.सं-21

265 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प.सं-2001, पृ.सं-17

की जगह बनी होती है । आत्मकथाकार भीमराव गस्ती लिखते हैं-“स्कूल गाँव की चौपाल में लगा करता था । इस चौपाल के भीतरवाले हिस्से में ही था, हनुमानजी का मंदिर, मगर इस चौपाल की खासियत थी; कि उसमें दो कट्टे बने हुए थे ।...ऊपरी कट्टे पर कुलीन टोलों के बच्चे बैठ जाया करते थे । और नीचेवाले कट्टे पर बैठा करते थे- बेरड़ों के हम सिर्फ पाँच-छः जनें ।”[266] इस तरह के भेदभावपूर्ण अनुभव दलित तथा विमुक्त-घुमंतू आत्मकथाओं में देखे जा सकते हैं ।

इस भेदभाव की शृंखला को आगे बढ़ाया जा रहा है । दलित, आदिवासी, विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों को स्कूल में भेदभाव का सामना करना पड़ता है । अधिकांश टीचर हाशिए के समाज से आनेवाले बच्चों को पढ़ाने और उनसे बातचीत करने में उत्सुकता नहीं दिखाते हैं । यही कारण हाशिए के बच्चों को स्कूल से दूर करता है । अप्रैल 2014 के ह्यूमन राइट्स वाच की रिपोर्ट के अनुसार-“भारत में स्कूल प्राधिकारी हाशिए पर रह रहे समुदायों के बच्चों के साथ लगातार भेदभाव करते हैं, उन्हें शिक्षा के उनके अधिकार से वंचित करते हैं । भारत में महत्वकांक्षी शिक्षा कानून के लागू होने के चार वर्ष बाद, जिसमें 6 से 14 वर्ष की आयु के लिए मुफ़्त स्कूली शिक्षा की गारंटी दी गयी है, लगभग हर बच्चे का दाखिला हुआ, तो भी उनमें से लगभग आधे बच्चों की अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही स्कूल छोड़ देने की संभवना बनी रहती है ।”[267]

बच्चा जब स्कूल की शुरुआत करता है तो हर माँ-बाप को अपने बच्चे के प्रति एक उत्सुकता होती है । वे हर समय तैयार होते हैं कि बच्चे की पढ़ाई में कोई बाधा न आए । इसीलिए अधिकत्तर माँ-बाप उसकी ख़ुशी के लिए मेहनत-मजदूरी करते हैं । वे पढ़े-लिखें और ऊंचाईयों को छुएँ । इसी प्रकार के उदाहरण ‘पराया’ आत्मकथा में मिलते हैं । जब लेखक के प्रथम वर्ष की परीक्षा का परिणाम पता चलता है तो पिताजी का लेखक के प्रति व्यवहार बदल जाता है और सीधा कंधे पर उठाकर भगवान के सामने जाकर रो (आनंदाश्रू) लेते है । हाथ जोड़कर, गुलाल लगाते हैं । फिर घर के बाहर आकार बिरादरी के लोगों को बताते हैं-“अरे मेरा बेटा पास हो गया है, पास !’ कहकर उसने मुझे फिर काँधे तक उठा लिया । गाल का चुंबन लिया । और सारा दिन जो मिलता, उससे कहता-फिरता, ‘मेरा बेटा पास हो गया ! अरे साल भर मेहनत की है !

---

266 बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं-5

267 https://www.hrw.org/hi/news/2014/253438 (05.02.2021 10.50 am)

माँ ने तो मुझे दिन भर अपनी आँखों के सामने रखा ।"[268] समुदाय या परिवार में जब शिक्षा की शुरुआत होती है तो माँ-बाप को कितनी ख़ुशी होती है इसका उदाहरण है ।

दुःख इस बात का है कि स्त्री शिक्षा को लेकर यहाँ के समाज की मानसिकता हीन रही है । अधिकत्तर पिता अपने बेटों के प्रति जितनी आस्था रखते हैं, लड़की के प्रति नहीं रखते । इसलिए आधी आबादी अर्थात स्त्री शिक्षा को लेकर हमारे समाज में अनास्था दिखाई देती है । चाहे वह तथाकथित समाज हो अथवा निम्न समाज में कमोबेश एक जैसी स्थिति दिखाई देती है । बेरड़ आत्मकथा में लेखक भीमराव गस्ती की दो बहनें उनकी तख्ती लिए उसे कौतूहल से निहारती हुई आँगन में बैठती हैं । लेखक घर में तलाशता है, नहीं मिलती । अतः बहनों के हाथ में तख्ती देखकर वह चिल्लाता है । बहनें भी आसानी से लेखक के हवाले नहीं करना चाहती थीं । सो दोनों में खासी खींचा-तानी होती है और तख्ती फट जाती है । इस पर लेखक गला फाड़कर रोने लगता है । इतने में माँ पनघट से लौटती है, और फटी हुई तख्ती देखकर पहले तो लेखक को ही दो जड़ देती है । जब बहनों के हाथ से फटने का पता चलता है तो उनपर फट पड़ती है- "नासपिटियों ! क्यों हाथ में ली, तुमने ओ तख्ती ? कड़कती आवाज में इसने जवाब तलब करना शुरू किया, "बोलो, तुमको कायको चैए, इस्कूल-उसकूल ? तुम ठैरी खा-पीकर दुल्ले के घर फुर्र से उड़ जानेवाली चीड़ माटिमिली ! नासपिटिए...बडबडाते-गालियाते हुए उसने दोनों की पीठ पर तडातड दो-दो, तीन-तीन घूसें जमा दिए, और दनदनाती हुई घर-भीतर चली गयी ।"[269]

जब से समाज की नींव ही भेदभाव के आधार पर टिकी हुई है, तब से तथाकथित समाज द्वारा किये गए व्यवहार के कारण ही अछूत कहे जानेवाला अधिकांश समाज ज्ञान से वंचित रहा है । इसी ज्ञान से वंचित होने के कारण अछूतों को गुलामी का जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ा । इस सोच और मानसिकता पर कुठाराघात करने का लेखन एवं समाजकार्य उन्नीसवीं सदी में महात्मा ज्योतिबा फुले ने किया है । "24 सितंबर 1873 ई. में ज्योतिबा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की । ज्योतिबा फुले द्वारा किये तमाम कार्य हिन्दू समाज में पारंपरिक, धार्मिक स्थापनाओं के एकदम विरुद्ध थे । स्त्री शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देना आदि, उनके लिए महत्वपूर्ण था ।"[270] उन्होंने शिक्षा के महत्व को बखूबी समझा अस्पृश्यों, शूद्रों के बारे में कहा-'विद्या बिन मति गयी, मति बिन नीति गयी । नीति बिन गति

---

[268] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं-2016, पृ.सं-61

[269] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 4

[270] अस्मितामूलक साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, सं- कर्मानंद आर्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित चेतना, सदानंद वर्मा, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, प्र.सं-2018, पृ.सं-91

गयी, गति बिन धन गया । धन बिन शूद्र पतित हुए, इतना घोर अनर्थ मात्र अविद्या के कारण हुआ ।' महात्मा फुले संघर्ष करने के पीछे समाज में व्याप्त पाखंड और जातिवाद जैसी मानसिकता को मिटाना चाहते थे । उनका विचार था कि शिक्षा से ही अस्पृश्य, शूद्र समाज में आत्मसम्मान का भाव निर्माण होगा । नयी चेतना के संचार से सामाजिक भेदभाव दूर होगा । इससे नए समाज की निर्मिती होगी ।

5.1.2. शैक्षणिक सहायता और संघर्ष

सिद्धांत के तौर पर इस बात को मानते हैं कि सबको अपने बच्चों को पढ़ाना-लिखाना चाहिए । जिसे भारतीय संविधान ग्रहण करने की अनुमति देता है । जिससे उनके जीवन में सुधार आएगा, उज्जवल भविष्य होगा और नरक की परिस्थितियों से मुक्ति मिलेगी । इसी सोच से बच्चों को स्कूल में दाखिला करवाते हैं । परंतु कुछ जाति-जनजातियों के लिए शिक्षा ग्रहण करना इतना आसन नहीं था की संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का लाभ उठा सकें । स्कूल की सीढ़ियाँ चढ़ते ही उनके सपनों को तोड़ देने जैसा वातावरण शुरू होता है । जिसका सामना करें उतनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति नहीं होती है । ऐसी स्थिति में घुमंतू जनजातियों के बच्चों के सामने दो विकल्प चुनने होते हैं, वे या तो बच्चे को पढ़ाई करवाकर भविष्य संवारे या घर के काम में हाथ बंटवाकर वर्तमान को बचाए । स्वाभाविक है कि इन परिस्थितियों में व्यक्ति वर्तमान को ही चुनते हैं । वरिष्ठ साहित्यकार दामोदर मोरे लिखते हैं-"आदिवासियों को जंगल में खदेड़ दिया गया । घुमंतुओं को न घर, न जमीन-उन्हें हवा के हवाले छोड़ दिया-घूमते रहो । अस्पृश्य, आदिवासी और घुमंतुओं को गाँव के बाहर बहिष्कृत किया, इसी कारण ब्रह्मा के शरीर से इनका जन्म नहीं दिखाया गया, क्योंकि उनकी दृष्टि से वे गाँव का हिस्सा नहीं थे ।"[271] ऐसी परिस्थितियों में कुछ बच्चे स्कूल में दाखिला ले तो लेते हैं, लेकिन उनमें से एक-चौथाई भी पढ़ नहीं पाते हैं । इसका कारण तथाकथित समाज द्वारा निर्मित ऊँच-नीचता और विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में फैली अज्ञानीता भी बच्चों को ज्ञान के रास्ते में रोड़ा बनी हुई है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की सबसे बड़ी समस्या है उनका अस्थायी होना । स्थायी न होने के कारण इन्हें अपने पारंपरिक व्यवसाय तथा भिक्षाटन करते हुए हमेशा एक गाँव से दूसरे गाँव भटकना पड़ता है । ऐसी स्थिति में इनको शिक्षा का नुकसान झेलना पड़ता है । यही कारण है कि विमुक्त एवं घुमंतू समुदायों में शिक्षा का प्रमाण अत्यंत अल्प है । डेराडंगर आत्मकथा में लेखक का परिवार साल भर की घुमक्कड़ी करके अपने मूल गाँव बावची में पहुँच

---

[271] वही, पृ.सं-110-111

जाता है । वैसे साल भर घुमक्कड़ प्रवृत्ति में भिक्षा माँगकर जीवन-यापन करते हैं । वे 'तिरपाल मेला' मनाने के लिए प्रतिवर्ष आषाढ़ के पाँचवे दिन सारी बिरादरी के साथ पहुँच जाते हैं । 'तिरपाल मेला' अर्थात 'मेले के बाद की एक विधि, जो डुग्गी-जोशियों में परंपरागत रूप से मनायी जाती है । बिरादरी में चंदा इकट्ठा कर तिरपाल बना लेना और उसके सामने बकरे की बली देकर गोश्त को पकाकर प्रसाद के रूप में सबको बाँटना तिरपाल मेले की विधि प्रक्रिया है।' तिरपाल मेले के लिए आए आठ-दस दिन बीत जाते हैं, कुछ-कुछ परिवार घुमक्कड़ी के लिए गाँव निकल जाते हैं । लेखक के पिताजी भी अचानक गाँव छोड़ने की बात करते हैं । इस बात से लेखक को बड़ा दुःख होता है, क्योंकि इस दौरान लेखक अपनी दादी की सलाह से स्कूल जाने लगता है । लेखक लिखते हैं-"दस-बारह दिन खुशी में बीत गए । हमारी जाति के लोग चार-पाँच परिवार के एक-एक गुट करके माँगकर खाने के लिए गाँव छोड़कर जाने लगे । पेट के लिए भटकना आरंभ हुआ । मुझे अब सौ तक के पहाड़े लिखना आता था । छोटे-छोटे पाठ पढ़ने आते थे । लेकिन सच यही था कि हम जैसों के लिए शिक्षा थी नहीं । मैं शाम पाँच बजे घर आया । पिताजी कहते थे-'कल अपुन कु जाना है...अन्य चार परिवार भी साथ में हैं...शिरनान्दगी में रहेंगे कल...।"[272] पिताजी के वाक्य सुनकर मैं दरवाजे में ही खड़ा रहा । कल से स्कूल मेरे लिए ख़त्म होनेवाला था । स्पष्ट था कि हाथ में थाली, पतीली लेकर भीख माँगते हुए दिन बिताने पड़ेंगे । दिल दहल रहा था । किंतु लाइलाज़ था ।

'उचक्का' में उठाईगीर समुदाय की सबसे बड़ी समस्या भूख है । इस समुदाय को समाज में रोज़ गार नहीं मिलता है, सरकारी सुविधाओं से दूर तथाकथित समाज द्वारा बार-बार नकार दिया जाता है । इस कारण वे जीवन-यापन के लिए छोटी-मोटी चोरी करने के लिए मजबूर होते हैं । लेखक के पिताजी अपवाद हैं, जिन्हें अपने अपंगत्व के कारण गाँव के पटेल के बगीचे में रखवाली का काम मिल जाता है । जहाँ के माहौल ने उनके मन में एक तो बेटे को पढ़ाने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । उसी जिज्ञासा को पूर्णत्व में देखने के लिए पिताजी अपने सबसे छोटे बेटे को जेब काटने की ब्लेड की बजाय स्लेट-पेंसिल देकर स्कूल भेज देते हैं । स्कूल के पहले दिन ही सियारों के झुंड में अकेली बकरी जैसा वातावरण अनुभूत होता है । उठाईगीर (शूद्र) जैसी जाति से होने के कारण सवर्ण बच्चों का अचंभित होकर चिल्लाना 'उठाईगीरों का लक्ष्या स्कूल में कैसे?' अपमान के बावजूद स्कूल जारी रखते हैं । लगन से पढ़ाई करने लगते हैं ।

---

272 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प.सं-2001, पृ.सं-62

इत्तिफ़ाक से लेखक की बिरादरी में कुछ बच्चों को उल्टियाँ-टट्टी होना दुर्भाग्यवश होता है। किंतु बिरादरी के स्त्री-पुरुष लेखक का स्कूल जाना कुलक्षिणी समझकर पिताजी को स्कूल न भेजने की सलाह देते हैं। या परिवार को समुदाय से बहिष्कृत करने की हिदायत देते हैं। कहते हैं-“अपनी जाति में आज तक कोई पढ़ लिख सका है क्या? अपने बच्चे स्कूल जाने लगे, तो हम सभी का वंश डूब जायेगा। यल्लामा देवी का प्रकोप आ जाएगा। देख मारतंड, हम फिर कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकाल ले। अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात पंचायत बिठाएँगे और तुझे बहिष्कृत करेंगे।”[273] परिवर्तन से जागृत पिताजी हार नहीं मानते, वे आशंकाओं को दूर करने हेतु स्कूल में जाकर शिक्षक से मिलते हैं। न्यायप्रिय शिक्षक इस बात का स्वागत करते हैं और दूसरे ही दिन बस्ती में जाकर लोगों को समझाते हैं। पढ़ने-लिखने से उल्टी-टट्टी का कोई संबंध नही है। अपितू पढ़ने-लिखने से ही अन्धविश्वास कैसे दूर होता है, भिन्न-भिन्न उदाहरणों से समझाते हैं। अतः सर्दी-बुखार के डॉक्टर को बुलवाकर सभी बच्चों को दवाई दिलाते हैं। कमोबेश ऐसे शिक्षकों की वजह से ही विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों ने अपनी शिक्षा को संघर्ष के साथ अंजाम दिया है।

‘छोरा कोल्हाटी का’ आत्मकथा के लेखक डॉ. किशोर शांताबाई काले को शिक्षा संबंधी अनेक चढ़ाव-उतार आए, परंतु लेखक ने हार नहीं मानी। समुदाय के बच्चे स्कूल जाने लगते हैं, परंतु लेखक के स्कूल के संबंधी घर में किसी ने बात नहीं की थी। लेखक अपने नाना (माँ के पिताजी) के डर के कारण शिक्षा की बात करने से डरते हैं। एक दिन लेखक की माँ के क्लासमेट रहे शिक्षक (गवली सर) मिलते हैं। सर लेखक को जानते हैं, माँ के बारे में बाते करते हुए भावुक हो जाते हैं। बातचीत के बाद लेखक गवली सर के पास अपनी शिक्षा के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करता है। तब गवली सर ने लेखक का ‘किशोर शांताबाई काले’ नाम से दाखिला करवाते हैं। लेखक के नाम के साथ माँ का नाम जोड़ना यहाँ पितृसत्तात्मक समाज में अजीब खयाल पैदा करता है। उसकी खोज शिक्षा की शुरूआत से लेकर अंत तक होती है। माँ का नाम लगाने के पीछे का कारण क्या है? जिसे लेखक लिखते हैं-“नाचनेवाली के बच्चे के आगे माँ का नाम इसलिए लगाया जाता है कि उसके बाप का कोई पता नहीं होता।”[274] इस बात से कल्पना कर सकते हैं कि नाजायज होना हमारे आदर्शवादी समाज में कितना दुर्भाग्यपूर्ण होता है। मास्टर का हर दिन पुकारकर नाम लेना ‘किशोर शांताबाई काले’ कितना अपमानित महसूस करता होगा। यही क्रम उच्च शिक्षा के दौरान भी अपमानित कर दिल को बार-बार चीर देता है।

---

[273] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि., नई दिल्ली, दू.आ-2011, पृ.सं-19

[274] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प.सं- 1997, पृ.सं-43

तमाम परिस्थितियों के बावजूद लेखक डॉक्टर बनना चाहते हैं। इसलिए अंबेजोगाई के योगेश्वरी महाविद्यालय के विज्ञान शाखा में प्रवेश पाता है। विज्ञान शाखा अंग्रेजी माध्यम में होने के कारण पहले तो कुछ समझ में नहीं आता है। कई दिनों तक विज्ञान शाखा में प्रवेश लेने का पछतावा होता है। फिर किसी दोस्त से पता चलता है कि अंग्रेजी डिक्शनरी देखकर ज्ञान को बढ़ाया जा सकता है। लेखक ने कभी हार नहीं मानी, वह हर समय प्रयास करते हैं। पढ़ने के लिए इतना समय देने लगते हैं कि दोस्तों को भी मिलना बंद हो जाता है। जिसके कारण दोस्त कहते-"किशोर इतना ज्यादा पढ़ता रहा तो एक दिन ज़रूर पागल हो जायेगा।"[275] पढ़ने और अच्छे मार्क्स पाने के कारण लेखक की नगीन मौसी (विधायक रामराव लोनीकर की पत्नी) ने सहायता करने का वादा करती है। उन्होंने लेखक के लिए फिजिक्स, बायोलॉजी और केमिस्ट्री में ट्यूशन लगवा दी और दो समय के खाने की सुविधा कर दी। जिससे लेखक को काफ़ी सहारा मिल जाता है। कभी-कभी मौसी अपने बच्चों को कहती-"देखो, किशोर गरीब घर से है लेकिन कितना पढ़ता है। तुम लोगों को तो भगवान ने सब कुछ दिया है तब भी तुम लोग पढ़ते नहीं हो।"[276] परिस्थितियों ने लेखक को इतना जिज्ञासु बनाया कि वे पढ़ाई के आलावा किसी को समय ही नहीं दे पाते हैं।

बारहवीं में अच्छे परिणाम के बाद लेखक अपने महाविद्यालय में से पिछड़ी जनजातियों के वर्ग से दूसरा क्रमांक पाकर उत्तीर्ण होते हैं। फिर सभी मेडिकल कॉलेजों में आवेदन करते हैं। घर पर माँ भी बेटे के मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिलने के लिए प्रार्थनाएँ करती है। कुछ दिनों बाद लेखक को मुंबई के मेडिकल कॉलेज का प्रवेश पत्र प्राप्त होता है। परिवार में सब को लेखक के प्रवेश पर गर्व होता है। इस बात की खबर योगेश्वरी महाविद्यालय में पहुँचती है तो प्रधानाचार्य ए.सी.चौधरी खुश होकर मुंबई मेडिकल कॉलेज को पत्र लिखते हैं कि 'समारोह पूर्वक अभिनंदन करना चाहते हैं और लेखक को अंबेजोगाई आमंत्रित किया जाता है। प्रधानाचार्य चौधरी अभिनंदन भाषण के दौरान कहते हैं-"हमारे कॉलेज का एक छात्र मेडिकल में प्रवेश ले रहा है। उसने कठिन परिस्थितियों का सामना कर यह सफलता प्राप्त की है। इससे हम प्रेरणा पा सकते हैं। हम सब आशा करते हैं कि वह अपने जीवन में इसी तरह उन्नति के मार्ग पर अग्रेसर होता रहे।[277] लेखक को प्रधानाचार्य के शब्दों से गर्व महसूस होता है और आँखों में

---

[275] वही, पृ.सं-121

[276] वही, पृ.सं-120

[277] वही, पृ.सं-124

आनंदाश्रू छलक जाते हैं । प्रधानाचार्य का अभिनंदन कार्यक्रम में हौसला बढ़ाना लेखक की बंजर जमीन में हरियाली का एहसास कराता है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का अस्थायी और गरीब होना दुनिया का सबसे बड़ा पाप है । 'पराया' आत्मकथा में लेखक लक्ष्मण माने को अस्थिरता और गरीबी के कारण दिक्कतों का सामना करना पड़ता है । बचपन से ही पिताजी तथा बिरादरी के लोगों के साथ बैंड पार्टी में बजाने जाता है । यही काम हर साल के कॉलेज की छुट्टियों के दौरान भी करते हैं । तमाम कठिनाईयों का सामना करके अपनी एक-एक कक्षाएँ पास करते हैं । मैट्रिक में अंग्रेजी और गणित विषयों ने चुनौती दी थी । बाद में अगली परीक्षाएँ आने तक अखबार बेचना, कर्ने के होटल में कप-प्लेट धोना, बटर बेचना और ख़ास बात यह की नारायण और रामदास के साथ मैट्रिक का साल ख़त्म ही जाता है । घर से शादी का दबाव । जाति-बिरादरी के अनुसार बचपन में बुआ की बेटी से सगाई हो चुकी थी । बुआ को अपनी बेटी की बढ़ती उम्र की चिंता सता रही थी । वह अपने भाई (लेखक के पिता) को आए दिन तंग कर रही थी । उसी दौरान मैट्रिक का परिणाम आ गया था । इस कारण परिवारवालों को भी ख़ुशी हुई । माता-पिता को मैट्रिक पास और बहु आने की दुगनी ख़ुशी हुई । लेखक 'हाँ' कहकर हमेशा शादी की बात को आगे बढ़ाता है । पर असलियत में लेखक शादी न करने का फैसला ले चुका होता है । शिक्षा के लिए पास का शहर फलटन का नाम बताकर कोल्हापुर के लिए रवाना होता है ।

कीर्ति कॉलेज में दाखिला लेते हैं । तब लेखक जीवन में पहली बार बड़े शहर में पहुँचते हैं। शहर में पहुँचने पर घर के हालत भूल गया, जैसे दोस्तों के साथ शहर की सैर करता है । दोस्तों की सहायता के कारण चार-पाँच महीने कब बीत जाते है पता नहीं चलता । परंतु दूसरों के आधार से कितने दिन, यह टीस भीतर उठती है । नौकरी की खोज में अख़बारों में इश्तेहार देखते हैं । कई बार साक्षात्कार दिया परंतु नौकरी का कोई ठिकाना नहीं मिला । कॉलेज के दिन भी अच्छे बीत रहे थे, पर मन में हमेशा मुफ़्त खाने के ख़याल दिमाग में सताते हैं । परंतु मित्रों का सहारा कभी नहीं छूटा, जो खून के रिश्ते से मजबूत था । जिसे लेखक के शब्दों में-"कॉलेज में घुल-मिल गया था । वर्ष भर कमरे के मित्रों का सहारा ही एक मात्र पूँजी थी । कपड़े भी अदल बदलकर उन्हीं के पहनता । कॉपी-पुस्तकें सब उन्हीं की होतीं । मुझे सिर्फ़ पढ़ाई करनी होती और पहली बार पी.डी के सारे विषयों में पचास के आसपास अंक मिले । कॉलेज पूरा करने का

विचार था। आगे क्या ? यह सवाल तो था ही। पर अब आदत हो गयी थी। अँधेरे में काफ़ी आगे चलने के बाद कदम अपने आप ठीक पड़ने लगते हैं, ऐसा ही हुआ।"[278]

लेखक कॉलेज में घुलमिल गए थे। आवाज अच्छी होने के कारण कॉलेज के वेरायटी शो में गाने गा लेते हैं। जिससे कॉलेज के लड़के-लडकियों से जान-पहचान होने लगती है। बीच-बीच में कॉलेज की वाद-विवाद स्पर्धाओं में सहभागिता लेता है। प्राध्यापक पाटनकर सर के साथ सेवा दल के कार्यक्रमों में जाता है। उससे लेखक वैचारिक रूप से समृद्ध होता है। आंदोलन, चर्चाएँ, शिविरों के कारण प्रगतिशील लोगों के साथ मिलना प्रभावित होना व्यवहार में भी आ जाता है। जिसका परिणाम वास्तविक रूप में बहुत महसूस होता है। जाति से शूद्र होने के कारण समय-समय पर ओछेपन की याद दिलायी जाती है। जिसके पीछे निम्न जातियों के लोगों के प्रति हीन भावना दर्शायी जाती है। वैसे भी कॉलेज में बार-बार दर्शाए जाने वाले व्यवहार 'विद्या' शूद्रों के लिए है ही नहीं, जैसी धारणा निर्माण की जाती है। इस तरह की अघोषित साजिशों द्वारा निम्न जातियों की प्रतिभा व क्षमता की संभावनाओं को दबाया जाता है और कभी-कभी उनका फ़ायदा उठाया जाता है।

'बेरड़' आत्मकथा में लेखक भीमराव गस्ती को स्कूल में उपेक्षा भरा वातावरण मिलता है। फिर भी लेखक ने स्कूल की राह नहीं छोड़ी। रोते-डरते तो कभी लड़ते-झगड़ते जैसे चढ़ाव-उतार की स्थितियों का मुकाबला करते हुए वार्षिक परीक्षाएँ पास करते हैं। इस चढ़ाव-उतार की परिस्थितियों में सबसे बड़ी समस्या लेखक का बेरड़ होना था। बेरड़ समुदाय के प्रति तथाकथित समाज में बनी हुई घृणित मानसिकता के कारण लेखक को बार-बार प्रताड़ित होना पड़ता है। उसी का एक उदाहरण यथा- एक बार कक्षा में गुरूजी ने सभी बच्चों को गृहपाठ के तौर पर एक निबंध लिख लाने के लिए कहा। विषय- 'मैं कौन बनूँगा?' इससे पहले ही गुरूजी ने एक-एक बच्चे को खड़े कर पूछते हैं कि 'तू क्या बनेगा?' हर कोई कहता- डॉक्टर बनूँगा, कोई कहता इंजिनियर, तो कोई अध्यापक-प्राध्यापक बनने का इरादा जाहिर करता है। इसी क्रम में जब लेखक की बारी आने पर उठ खड़ा होने से पहले-"मैं अभी कुछ कहने के लिए अपना मुँह खोल ही रहा कि कक्षा के जिन लड़कों का मुझ ओर रोष था, उन्होंने सामूहिक आवाज में ताना मारा 'गस्त्या चोर बनेगा ! चोर !! उनकी तानाकशी पर सारी कक्षा मेरी तरफ़ देख ठठाकर हंसने लगी ! काफ़ी देर तक पूरी कक्षा मुझ पर हंसती रही।"[279] लेखक जिस उम्मीद के साथ

---

[278] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं-2016, पृ.सं-107

[279] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं-39

कक्षा में खड़ा हुआ होगा, उसकी अपेक्षा एकदम न उम्मीद के साथ नीचे बैठा होगा । जिसे भारतीय समाज, शिक्षा व्यवस्था का सबसे घृणित अभ्यास कहना गलत नहीं होगा ।

भारतीय समाज में निम्न जातियों को शिक्षा के क्षेत्र में घृणास्पद रूप में देखा गया । शैक्षणिक गुणवत्ता को लेकर हमेशा किनारे रखा गया है । डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अस्पृश्यता अथवा 'भारत के बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी' इस खंड में लिखा है-"जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज में अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी । अगर इंसान के अनुरूप जीने की सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा ।" परंतु हमारे समाज में माता-पिता, स्कूल में बच्चों को अस्पृश्य बच्चों के प्रति मानसिकता को बदल सकते थे/हैं । किंतु आज भी समाज में अधिकांश जगह पाया जाता है कि उच्चता ही समाज का गहना है । जिसको आगे होने की होड़ ने बचाकर रखा है । जिसे नष्ट करने का एकमात्र रास्ता शिक्षा है ।

इसलिए डॉ. बाबासाहब अंबेडकर कहते हैं-'शिक्षा उस शेरनी का दूध है, उसे जो प्राशन करेगा वह दहाड़ेगा ।' इस उक्ति का चरितार्थ भीमराव गस्ती के द्वारा किये गए कार्यों से सिद्ध होते दिखाई देता है । लेखक हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा की पढ़ाई करते दौरान बेरड़ों और पिछड़ों का भारतीय इतिहास में योगदान समझते हैं । फुले, शाहू, अंबेडकर के कार्यों को पढ़कर खुद को तैयार करते हैं । इसी दौरान से कार्यव्याप्ति का दायरा कैसे बढ़ाया जाए, किसी आंदोलन को ठोस अंजाम कैसे दिया जाए, के बारे में मन-मस्तिष्क में हमेशा घमासान युद्ध चलता रहता है । गाँव की गतिविधियों के बारे में सोचते रहते हैं, अशिक्षा के कारण समुदाय की जमीन जूठे आश्वासन देकर 'सरकारी कारख़ाना' बनाने के लिए कब्ज़ा किया जाता है । लेखक को पता चलने से पहले ही उनके समुदाय लोगों की जोत-जमीनें सरकारी रेट पर खरीद कर ली जाती है । समुदाय के लोगों में भ्रम फैलाया गया था कि-"सरकार ही यह कारख़ाना लगवा रही है । सो जो कोई किसान अपनी नहीं देगा, उसकी जमीन सरकार के कब्जे में जमा हो, उसे मिलनेवाली रकम भी, बाद में नहीं मिलेगी !" ज्यादातर लोग स्वभावतः अज्ञानी और अशिक्षित थे । सो शिकायत-फरियाद करते भी किससे और कहाँ ? लिहाजा, जितने पैसे मिल रहे थे, उतने पैसे लपक लेकर, कागज पे अंगूठे के निशान लगवा के सबने पुश्तैनी जोत-जमीने उनके हवाले कर दी !"[280]...जमीन-हस्तांतरण की प्रक्रिया पूरी हो जाने पर इलाके के

[280] वही, पृ.सं-176

ज्यादातर अनपढ़ छोटे किसान अपनी जोत-जमीनें हाथों से निकल जाने के बावजूद, भविष्य के प्रति आस लगाए बैठे थे । "कुछ लोगों को कारख़ाना बन जाने पर स्थायी और पक्की नौकरी का आश्वासन भी दिया गया था । मगर जमीन के मुआवजे की पूरी रकम एक मुश्त अदा किये जाने से अनपढ़ लोग इस ऊहपोह की स्थिति में थे कि इतनी बड़ी और इकट्ठी रकम का क्या किया जाए ?...लिहाजा, ऐसे में कई सारे मुआवजे की एक मुश्त रकम मिल जाने पर आनन्-फ़ानन में ऐयाश बने ! वैसे जुएबाजी और नशेबाजी जैसी बुरी लतें तो बेरड़ों में पैदाईशी तौर पर थी ही। और अब इसमें ऊपर से ओढ़ी हुई ऐय्याशी ! सो, एकमुश्त मिले रुपये ख़त्म होने में आखिर कित्ती देर लगती ?"[281] सो वैसे ही हुआ, देर न लगी ।

जिस प्रकार कारखानादारों ने आश्वासन देकर अल्पभूधारकों की जमीने हड़प ली थी, उन्हें नौकरी देने की बजाए दूर-दराज के शिक्षित लोगों को मिलने लगी । जिनकी जमीने हड़प ली वे अशिक्षित होने के कारण दिवालिया हुए । काराखानादारों को नौकरी माँगने पर वे बार-बार खदेड़े जा रहे थे । उस समय लेखक अपने समुदायों के एक टोले पर पुलिसों द्वारा गोलीबारी में मृत लोगों के लिए न्याय की माँग कर रहे थे । जिससे सामाजिक न्याय आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी । ऐसी तमाम समस्याओं से घिरे समुदायों की आवाज बनाना आवश्यक हुआ था । इसलिए लेखक ऐसी अशिक्षित तमाम जाति-जनजातियों की समस्याओं का हल निकालने के लिए आंदोलन खड़ा कर रहे थे । उसकी शुरुआत छत्रपति शिवाजी, फुले, शाहू, अंबेडकर की जयंती-पुण्यतिथियों द्वारा एकत्रित होने का आधार बना था । जिसके लिए विख्यात सामाजिक कार्यकर्ता, आंदोलनकर्ताओं के व्याख्यानों से लोगों को लाने का उपक्रम यशस्वी हुआ । तब से लेखक भीमराव गस्ती पूर्णसमय बेरड़ों, देवदासियों जैसी पिछड़ी जाति-जनजातियों के कार्यकर्ता के रूप में उभर आये थे ।

5.1.3. तकनीकी का अभाव एवं प्रभाव

अगर हम इतिहास उठाकर देखें तो भारत में गरीब लोग हमेशा से बेहद यथास्थितिवादी या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो तकनीकीकरण के विरोधी रहे हैं । आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद भी मजदूरों, किसानों और जनजातियों का विरोध रहा है और तत्कालीन सरकारों को जनविरोधी सरकार तक कहा गया था । जनजातियों के कई विरोध इतिहास में देखें जा सकते हैं । मशीनी द्वंद्व को लेकर गांधीजी हमेशा कहा करते थे कि 'मैं यंत्र मात्र का विरोधी

[281] वही, पृ.सं-177

नहीं हूँ, लेकिन जो यंत्र हमारा स्वामी बन जाए, उसका मैं सख्त विरोधी हूँ ।' वे उस तरह की मशीनों का स्वागत करते थे, जिनके उपयोग से भारत की गरीबी और मृत जानवर, मैला ढोना दूर हो सके । परंतु भारत की गरीबी की बड़ी वजहों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जमींदारी और लादी गयी बेरोज़ गारी को अनदेखा किया जाता रहा है ।

आज़ादी के बाद भारत में जब महात्मा गांधी के शिष्यों की सरकार बनी तो आर्थिक विकास में उद्योगों और ग्राम स्वराज से जुड़े कुछ कार्यक्रम शुरू किये गए । ऐसे कार्यक्रम गांधीजी के विचारों के प्रति श्रद्धा तो जताते रहे लेकिन, वह कुछ ख़ास वर्ग और लोगों तक ही सीमित रहे। आज़ादी के चौहत्तर साल बाद भी देश गांधीजी के उन विचारों के ब्रांड को अपनाया, पर विचारों की आत्मा को नहीं । वर्तमान समयावधि में तकनीकी और मशीनीकरण का हस्तक्षेप बढ़ता ही जा रहा है । जिसका परिणाम सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन पर हुआ है ।

मशीनीकरण का हस्तक्षेप ग्रामीण जीवन को रफ़्तार से प्रभावित कर रहा है । उसकी वजह से ग्रामीणों में बेरोज़ गारी बढ़ती जा रही है । खेतों में बैल की जगह ट्रैक्टर चल रहा है, बैलगाड़ी की जगह मोटर कार, खाट की जगह सोफ़ा, मटकों की जगह स्टील के बर्तन, रेडिओ की जगह टेलीवीजन जैसी चीजों के कारण उत्पादनों में कुछ बढ़ोतरी जरूर दिखाई देती है परंतु जीवन में शान्ति और ख़ुशी छिन जाने का दुःख महसूस होता है ।

इस दुःख का सबसे अधिक प्रभाव जाति-जनजातियों पर हुआ है । जिनमें बढ़ाई, कुम्हार, लुहार, सुनार, महार, माँग, डोम, चमार आदि जातियों तथा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में बेलदार, शिकलगार, वडार, कोल्हाटी, जोशी, वैदू, कैकाड़ी, मसनजोगी, गोपाल, बंजारा, उठाईगीर आदि जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवनशैली पर गहरा प्रभाव पड़ा है । जातियों के जीवन में जो बदलाव आया वह कुछ हितकारक साबित हुआ । जिसमें शिक्षा और गाँव छोड़कर शहर में जाना शामिल है । परंतु जनजातियों के लिए विकास के नाम पर इनकी जमीनों पर रेल, कोयला खदानें और अन्य प्रौद्योगिक उद्योगों कारखानों को जबरदस्ती शुरू किया और जनजातियों को वन कानून बनाकर उनके जल, जंगल, जमीन पर कब्ज़ा किया ।

इस स्थिति में वह जनजातियाँ गाँव के संपर्क में आती गयी और अपनी कार्यकुशलता के आधार पर उदरनिर्वाह करने लगी । उदाहरण स्वरूप- धान्य के बदले में टोकरियाँ,फूलदान देना, दीवार चढ़ाकर देना, टीन से बर्तन बना देना, पत्थर वस्तुएँ बनाकर देना, भविष्य देखना,

मनोरंजन करना, खेती उपयुक्त औजार बनाना और धार देने जैसी तमाम वस्तुओं का खरीदना, बेचना और मनोरंजन करना विनियम पद्धति में शामिल है। हाल ही के दिनों में तकनीकीकरण की वजह से इनके द्वारा बनायी गयी चीजों को अधिक महत्व दिया नहीं जा रहा है। जाति-जनजातियों द्वारा बनायी गयी चीजों को दरकिनार किया जा रहा है। बाजारीकरण ने लोगों को मानसिक रूप से प्रभावित किया, जिसका कारण लोग टिकाऊ वस्तुओं की बजाए सुंदर और आकर्षण वस्तुओं के पीछे भाग रहे हैं। इस बाजारीकरण की होड़ में जनजातियाँ अपने उत्पादन का विज्ञापन नहीं कर पा रही है। जिसका कारण उनके पास पर्याप्त संसाधनों की कमी, स्थायी जमीन का न होना और उचित शिक्षा का न होना उन्हें हाशिए पर धकेलता है।

तकनीकी का प्रभाव अन्य समाज की अपेक्षा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर कम पड़ा दिखाई देता है। यह समाज का वह हिस्सा है जिसके पास गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बेरोज़ गारी, आर्थिक विषमता जैसे सवालों का उसके पास कोई हल नहीं है। यह समस्याएँ औद्योगीकरण के कारण ही पैदा हुई है। आर्थिक विषमता के कारण भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएँ अधिकांश जनजातियों के पास उपलब्ध नहीं हैं। आर्थिक स्तर पर वंचित वर्गों का कमज़ोर होना उनकी अपनी जमीन न होना अहम् वजह है। दूसरा कारण शिक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व है। राज्य द्वारा इनके लिए बनायी गयी योजनाएँ और कानून का उचित रूप से लागू न होने के साथ-साथ राजनीतिक इच्छाशक्ति का नही होना भी इनके बदहाली के कारणों की तालिका में शामिल है। कारण

इसी असमानता, भेदभाव और अन्याय की अवधारणाओं के चलते लोग हिंसा पर उतारू होते हैं। गांधीजी ने कहा था कि 'जब संदेह में घिरने लगे, अहम् हावी होने लगे तो जो सबसे गरीब व्यक्ति को देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और विचार करो..!' परंतु अब विचरण का काम तो हम मशीनों और गूगल की कृत्रिम बुद्धिमत्ता से कर रहे हैं। तब इसका प्रभाव भी हुआ है और कुछ चीजों का अभाव भी है। जिसका प्रभाव हुआ है उसे हम मंगलेश डबराल की कविता की कुछ पंक्तियों से समझ सकते हैं-

'मैंने शहर को देखा

और मैं मुस्कराया

वहाँ कोई कैसे रह सकता है

यह जानने मैं गया

और वापस नहीं आया ।'

5.1.4. आरक्षण और उसका लाभ

आज़ाद भारत में संविधान निर्माताओं का मानना था कि जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति और अनुसुचित जनजाति ऐतिहासिक रूप से पिछ्ड़ी रहीं हैं और भारतीय समाज में उन्हें सम्मान तथा समान अवसर से वंचित रखा गया । इसलिए राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक हिस्सेदारी कम रही । यूँ कहा जाए कि आम आबादी में उनकी संख्या के अनुपात के आधार पर उनके बहुत ही कम प्रतिनिधित्व को देखते हुए, शैक्षणिक परिसर और कार्यस्थलों में सामाजिक विविधता को बढ़ाने के लिए कुछ अज्ञात समुदायों के लिए प्रवेश मापदंड को नीचा किया गया । जिसके पहचान का सबसे पुराना मापदंड जाति थी । इसलिए संविधान निर्माताओं ने संविधान में इन शोषित समुदायों को सरकारी सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं की खाली सीटों तथा सरकारी / सार्वजानिक क्षेत्र की नौकरियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लिए क्रमशः पंद्रह और सात दशमलव पाँच प्रतिशत का आरक्षण दिया गया ।

परंतु भारतीय समाज में कुछ ऐसी भी जनजातियाँ थी, जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया । वह अपनी अस्थिर प्रवृत्ति में भटकती रहीं, वह घुमंतू जनजातियाँ कहलायी गयी । इसी प्रवृत्ति में घूम रही कुछ जनजातियों को सन् 1871 में अंग्रेजी प्रशासन द्वारा 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' बनाकर बंदी बनाया गया था । जिसे भारत स्वतंत्रता के बाद पाँच साल तेरह वे दिन (31 अगस्त 1952) तत्कालीन प्रधान मंत्री ने कंटीले तारों के बीच में रह रही भारत की 52 जेलों (सेटलमेंट) को 'विमुक्त' किया । तब से यह जनजातियाँ 'विमुक्त घुमंतू' कहलाती है । लक्ष्मण गायकवाड़ के अनुसार स्वतंत्र महाराष्ट्र होने के उपलक्ष्य में पं.नेहरू ने महाराष्ट्र का दौरा किया था । सोलापुर की जनसभा में पं. नेहरू ने महाराष्ट्र राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंत चव्हाण को आश्वासन देते हुए कहा था-"विमुक्त घुमंतू जनजातियो के बच्चों को शैक्षणिक प्रश्नों को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अस्थायी छात्रवृत्ति देंगे, इस संदर्भ में आप प्रधानमंत्री कार्यालय को प्रस्ताव भेज दें, ताकि इन्हें अनुसूचित जाति- जनजातियों की श्रेणी में शामिल किया जा सके । परंतु महाराष्ट्र की पुरोगामी (परिवर्तनवादी) सरकार ने विमुक्त घुमंतू जनजातियों को 'आदिवासी' जैसा प्यारा नाम देकर उन्हें महाराष्ट्र के अंतर्गत 'स्वतंत्र वर्ग'

बनाया; किंतु केंद्र सरकार की ओर इनके नाम का प्रस्ताव नहीं भेजा । पड़ोसी कर्णाटक और आंध्रप्रदेश की सरकारों ने इन जनजातियों के लिए अनुसूचित जाति-जनजाति के वर्ग में शामिल किया । महाराष्ट्र ने ऐसा नहीं किया ।"[282]

महाराष्ट्र में विमुक्त जनजातियों की संख्या 14, घुमंतू जनजातियों की संख्या 30, कुल 44 है । इनकी उपजातियाँ 120 के करीब पाई जाती हैं । 1961 की बी.डी. देशमुख समिति द्वारा जिनका स्वतंत्र वर्ग बनाकर सन् 1967 में चार प्रतिशत आरक्षण दिया गया । तब महाराष्ट्र अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने वाला प्रथम राज्य था । बाद में मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की चार श्रेणियाँ बनाकर आरक्षण को बांटा गया । बाद में बी.पी. मंडल के अनुसार केंद्र सरकार की सहूलियत के लिए इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग के 27 प्रतिशत अंतर्गत रखा गया । फिर भी शैक्षणिक आरक्षण कुछ तबकों तक ही सीमित रहा । उसकी शर्तें और कानून के बारे में लक्ष्मण गायकवाड़ के शब्दों में-"विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के पास पिछले साल कहाँ पर रहे थे इसका कोई लेखा-जोखा नहीं होता है । परंतु महाराष्ट्र शासन द्वारा आरक्षण का लाभ लेने के लिए साठ साल पुराना सबूत अथवा शैक्षिक प्रमाणपत्र की माँग की जाती है । वह नहीं दिया गया तो सहूलियत और जाति प्रमाणपत्र नहीं दिया जाता है ।"[283] यही कारण है कि महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदायों का अस्थायी और अशिक्षित होना, इनके शैक्षणिक लाभ को दूर करता है । बचे हुए कुछ दबंग समुदाय आरक्षण का लाभ उठा पाते हैं ।

अधिकांश छोटे-छोटे घुमंक्कड़ जनजातियों की अज्ञानीता और अस्थिरता इन्हें इनके मूलभूत अधिकारों से दूर रखती है । इन्हीं कारणों की वजह से तलाठी, तहसील, जिलाधिकारी कार्यालयों में घूस ली जाती है और काम भी ढंग का नहीं किया जाता है । इसी व्यवस्था के चलते उपनाम और गोत्र के साधर्म्य के गैर जनजातियों के लोग आरक्षण का फ़ायदा उठा रहे है ।

---

[282] गावकुसाबाहेरची मानसं, लक्ष्मण गायकवाड़, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प.आ- 2016, पृ.सं- 40-41

*या विमुक्त जमातींच्या मुला-मुलींना शिक्षणासाठी तात्पुरती भारताची शिष्यवृती लागू करतो, तुम्ही तसा प्रस्ताव आमच्याकडे पाठवा, यांना अनुसूचित जाती-जमातींच्या वर्गामध्ये टाकता येईल'; पण महाराष्ट्राच्या हुशार पुरोगामी राज्यकर्त्यांनी या समस्त जमातीला विमुक्त भटक्या जमाती म्हणजेच आदिवासी असे गोंडस नाव देऊन त्यांचा महाराष्ट्रात स्वतंत्र वर्ग बनवला; पण तो केंद्र सरकारशी कधीही जोडण्यात आला नाही. शेजारच्या कर्नाटकात आणि आंद्रप्रदेशामध्ये त्या-त्या राज्यकर्त्यांनी अनुसूचित जाती-जमातींचा वर्ग या विमुक्त भटक्यांसाठी खुला केला, मात्र महाराष्ट्राने तसे केले नाही.

[283] वही, पृ.सं- 41

*भटक्या विमुक्तांकड़े गेल्या वर्षी कुठे कुठे पालं टाकून मुक्काम केले होते त्यांची माहिती नसते. महाराष्ट्रात सवलती मिळविन्यासाठी साठ वर्षापूर्वीचा आई-वडिलांचा पुरावा किंवा शिक्षणाचा दाखला याची मागणी केली जाते. ते नाही दिले तर महाराष्ट्रात सवलती मिळत नाहीत आणि त्यांना जातीचे प्रमाणपत्रही देले जात नाही.

जैसे- घुमंतू समुदाय में स्थित कुडमुड़े जोशी, डुग्गी जोशी का फ़ायदा जोशी समाज; राजपूत भामटा का राजपूत; माँग गारुडी का माँग; महार बंजारा का महार आदि जैसी जातियाँ गोत्र में फेरबदल कर, घूस देकर घुमंतू जनजातियों के आरक्षण का गैर कानूनी फ़ायदा उठाते हैं । इस संदर्भ में श्री. डांगे साहेब कहते हैं-"कोई भी चार भेड़-बकरियाँ खरीदकर धनगर (गडरिया) जनजाति का प्रमाणपत्र प्राप्त करेगा और भेड़-बकरियाँ बेच देगा तो किसी को कुछ पता नहीं चलेगा । इसलिए राज्य शासन की नियमावली में जाति-प्रमाणपत्र देने वाले मापदंडों को निश्चित करने की आवश्यकता है । ताकि ज़रूरतमंद लोगों तक सरकारी सुविधाएँ पहुँचे ।"[284]

सुविधाओं का पता न होना और मार्गदर्शन न होना विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों की शिक्षा पर बहुत बड़ा आघात साबित होता है । उचक्का में लेखक की चौथी तक की पढ़ाई गाँव के स्कूल में पूरी होती है । बाद की पढ़ाई के लिए पिताजी के आलावा परिवार में किसी को पढ़ाने की मानसिकता नहीं होती है । गाँव के किसी दोस्त से पता चलता है कि उनकी पिछड़ी जाति के लिए बगल वाले गाँव में आश्रम स्कूल की सुविधा है, वह भी निशुल्क । पता चलते ही लेखक स्कूल की ओर निकल पड़ता है-"मैं हेडमास्टर के यहाँ गया । मैंने उनसे बोर्डिंग के सेक्रेटरी के नाम एक चिट्ठी ले ली । सेक्रेटरी ने कहा, 'सामान ले आओ ।' उनकी बोर्डिंग में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का एक भी लड़का नहीं था । इस कारण उन्होंने तुरंत हाँ भर दी।" जिससे हम समझ सकते हैं कि शिक्षा व्यवस्था में निम्न जनजातियों को लेकर अनास्था है । पूरी स्कूल में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का एक भी बच्चा न होना सरकारी सुविधाओं का उलंघन भरा व्यवहार करना है । जिनके लिए योजनाएँ बनती है, परंतु उन तक पहुँच नहीं पाना सरकार की उन जाति-जनजातियों के प्रति अनादर रखना कहा जा सकता है ।

घर की माली हालत और दिमाग में गरीबी जैसा बोझ इन जनजातियों के बच्चों को असहनीय हो जाता है । लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ के साथ होता यही है । आश्रम स्कूल में सातवीं तक की पढ़ाई के बाद फिर प्रश्न खड़े हो जाते हैं । परिवार की हालत देखकर मन में विचार आते हैं कि अपनी जाति के पुराने पेशे चोरी-चाकरी करें । पर पकड़े जाने पर मार खाने की भय से फिर स्कूल के रास्ते का पर्याय याद आता रहता है । पिताजी हमेशा शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करते रहते हैं । एक बार तो वे कहते हैं, 'बेटे स्कूल न छोड़, घर के टीन बेच दूंगा, तुझे

---

[284] भटक्यांच भारुड, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर-मुंबई, पुनर्मुद्रण- 2006, पृ.सं- 3

* कोणीही चार मेंढरं विकत घेईल आणि धनगर जाती-जमातीचं सर्टिफिकेट मिळवील व नंतर ती मेंढरं विकून टाकील. तेंव्हा, ज्या सवलती मिळतील त्या लुबाडन्याची भूमिका कोणी घेऊ नये यासाठी काही निकष निश्चित करावे लागतील. तरच गरजू लोकांना या सवलातींचा लाभ पदरात पडेल.

क़िताब-कापियाँ लाकर दूंगा, पर पढ़ाई जारी रख ।' इसी से प्रेरित होकर अपने आगे की पढ़ाई के लिए भरसक कोशिश करता है किंतु कई बार ऐसी परिस्थितियाँ सामने मुँह फैलाकर खड़ी हो जाती है कि, उनका सामना करना बिल्कुल ही असहनीय हो जाता है। सब्जी-पाव बेचने जैसे काम-धंधे करना पड़ता है। मील में मजदूरी का काम मिलता है तो फिर से पढ़ाई शुरू करता है। किंतु बड़े भाई-भाभियों के रुखाई भरे व्यवहार तथा पिताजी की बिगड़ती तबियत, इन हालत में स्कूल जारी रखना मुश्किल हो जाता है। जैसे-तैसे नौवीं तक की पढ़ाई पूरी कर पाते हैं। इस शिक्षा का फ़ायदा यह हुआ कि लेखक अपना जीवनवृतांत बड़ी गहन अनुभूतियों के साथ व्यक्त कर पाया।

'डेराडंगर' आत्मकथा में दादासाहब मोरे अस्थिर रहते हुए, कभी अपनी दादी के पास तो कभी बोर्डिंग स्कूल में रहकर दसवीं तक की पढ़ाई पूरी करते हैं। ग्यारहवीं की पढ़ाई के लिए दोस्तों के साथ जत तहसील के एक महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं। छात्रवृत्ति का पैसा बचाकर रखने के लिए डाक घर में खाता खोलते हैं। नए शहर में रहते हुए लेखक अपना खर्चा बचाकर चलते हैं। पैसे की ज़रूरत पड़ती है तो गणेशोत्सव जैसे कार्यक्रमों में नाटक-नृत्य में सहभाग लेते हैं, उसमें मिले पैसे से अपना बाकी का खर्च चलता है नए शहर में रहते हुए लेखक अपना खर्चा बचाकर चलाते हैं। ग्यारहवीं के अंतिम दिनों में किसी दोस्त से पता चलता है कि जिला स्तर पर पिछड़ी जातियों के लिए छात्रवृत्ति के साथ आवास की भी सुविधा मिल रही है। रात भर सोच-विचार करते हैं। परंतु जिला सांगली चले जाने पर भोजन की व्यवस्था कैसे करें? क़िताब-कापियाँ, कपड़े आदि विचारों का दिमाग में चक्रव्यूह चलता रहता है। अतः ग्यारहवीं की बची हुई स्कॉलरशिप की राशि के बलबूते पर जिला परिसर में शिक्षा लेने की ठान लेते हैं। और दोस्तों के साथ बारहवीं में प्रवेश मिलता है । उन्हीं दिनों छोटा भाई बहन की शादी का समाचार और घर में चल रही गतिविधियाँ बता देता है। घर की वास्तविकता से वाकिफ़ होकर लेखक-"स्कॉलरशिप के पैसों में से चार सौ रुपये निकालकर और दो सौ रुपये आगे की कॉलेज की पढ़ाई के लिए रखे।...मैंने अपने साथ लाए हुए चार सौ रुपये रात को पिताजी को दे दिए। पिताजी भी चिंता में ही थे। पैसे मिलने के बाद वे बोले-'भला हुआ...कम-से-कम आधे पइसे तो मिल गए...आउर किसी से तो लूँगा...शादी तो बोत नज़दीक आई...।"[285] जाति-जनजातियों के बच्चों के लिए शिक्षा में दिए जाने वाली आर्थिक सहायता केवल शैक्षणिक कार्य के लिए खर्च नहीं होती है बल्कि अपने परिवार के सुख-दुःख के लिए भी सहायक बनती है।

[285] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प.सं-2001, पृ.सं-178

भारतीय समाज में किसी का नाजायज पैदा होना अशुभ बनाया गया है । उसे समाज द्वारा समय-समय पर उपेक्षा भरा जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है । इसका उदाहरण 'छोरा कोल्हाटी का' आत्मकथा में लेखक किशोर शांताबाई काले के हिस्से आया हुआ है । लेखक जिस समुदाय में जन्म लिया उसके लिए सामान्य-सी बात है, किंतु अन्य समाज, सार्वजानिक स्थान और शैक्षणिक संस्थाओं में नाजायज पैदा होना या नाम में माँ का नाम जोड़ना खोज का विषय बन जाता है । ऐसी स्थिति में अंबेजोगाई के योगेश्वरी महाविद्यालय से पिछड़े वर्ग से द्वितीय श्रेणी पाकर बारहवीं तक की पढ़ाई पूरी करता है । बाद में एम.बी.बी.एस के लिए मुंबई के मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल जाता है । पर नाजायज होने का पीछा नहीं छुटता है । कभी पूरा नाम पूछकर तो कभी असमय कमरे का दरवाजा खटखटाकर अपमानित, प्रताड़ित किया जाता है । दूसरी तरफ़ गरीबी के कारण दिमाग में हमेशा पैसे जुटाने के विचार रहते हैं । उसके लिए मुंबई से सस्ते दाम में कपड़े खरीद कर गाँव में ले जाकर बेचने जैसे काम करते हैं । जब स्कॉलरशिप आती है तो माँ के पास रखते हैं, माँ को बहला-फुसलाकर उसका पति (सौतेले पिता) जुए में उड़ा देते हैं । वही पैसे वापस माँगने पर झगड़ा करने लगते हैं । लेखक के शब्दों में- "नाना हमें न जीने दे रहे थे न मरने दे रहे थे ।...मुझे लग रहा था कि अब मुझे मजबूरन पढ़ाई छोडनी पड़ेगी । मुंबई में अपमानित जिंदगी जी रहा था । मैं मानसिक रूप से मेडिकल छोड़ देने की तैयारी लगभग कर ही चुका था । परीक्षा में सिर्फ बीस दिन बाकी थे । और मैं इस तरह पास नहीं हो पाऊंगा, यह भी मैं जानता था । इतने में स्कॉलरशिप की लिस्ट आ गयी । उसमें मेरा नाम था । मैं जैसे गिरते-गिरते बच गया था ।"[286] विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों के लिए स्कूल में केवल प्रवेश ही देना काफ़ी नहीं है, उनके साथ स्कूल, कॉलेज और समाज में एक सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करने की अपेक्षा है । अस्थिरता, अज्ञानी और गरीबी के कारण उनके परिवार में शिक्षा का माहौल नहीं बन पाता है । न्यूनतम स्कॉलरशिप जैसी आर्थिक पूँजी को भी छिना जाना परिवार की मज़बूरी बन जाती है । ऐसी स्थिति में मजबूरन जनजातियों के बच्चे पढ़ाई छोड़कर अन्य कामों में अपने आपको झोंक देते हैं ।

अतः अस्थिर होने का परिणाम जनजातियों के जीवन-यापन पर हुआ । यहाँ ध्यान देने की बात है की जमीन का संबंध सीधा उत्पादन से संबंधित है । वही इन घुमंतू जनजातियों के पास नहीं होती है । इस विषमता के कारण शिक्षा जैसे सामाजिक अंग में निवेश करना अधिकांश जनजातियों को संभव नहीं होता है । इसी कारण विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का अधिकांश तबका (अभिभावक) अशिक्षित हैं । गरीबी व शिक्षा के अभाव में कौशल आधारित

[286] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प.सं- 1997, पृ.सं-146

रोज़ गार तथा वैयक्तिक इच्छाशक्ति के अभाव में बच्चों को अपने माता-पिता की सहायता नहीं मिल पाती है। जिसका गहरा परिणाम बच्चों की शिक्षा पर होता है। माता-पिता अज्ञानी होने के कारण बच्चे की स्थिति-गतिविधि पर विशेष ध्यान नहीं होता है। शिक्षा के संदर्भ में आरक्षण और विविध योजनाओं के लेन-देन की जानकारी का पता न होना विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के बच्चों में भटकाव और अवरोध बना हुआ है। इसलिए बेहतर है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति की नयी सिरे से परिभाषा हो और उनके लिए आरक्षण का प्रावधान हो। इनके अलग से स्कूल और प्रोत्साहित करने के लिए क़िताब, कापियों, भोजन की निशुल्क सुविधा हो।

5.2. संवैधानिक परिस्थितियाँ

'अधिकार' पहले इन्सान का धर्म देखा गया फिर उसकी जाति इसके बाद उस मज़दूर (इंसान) की जिंदगी एक सेठ, ज़मींदार और दबंगों ने अपने हाथों में ले ली। वो रोज़ तिल-तिलकर मरने लगा, लेकिन इसके मन में अभी भी एक सवाल था 'क्या जाति, धर्म, वर्ग और व्यवसाय से हटकर सिर्फ इन्सान होने के नाते उसे जीवन जीने का अधिकार नहीं है ?' इस छोटे से (प्रश्न) उदाहरण में बहुत बड़ी बात छुपी हुई है । वह है 'जीने का अधिकार'। जो व्यक्ति का सबसे बड़ा 'मानव अधिकार' भी है। मानव होने के नाते एक व्यक्ति को प्राकृतिक रूप से जो अधिकार मिलते हैं, उसे मानवाधिकार के नाम से जाना जाता है अर्थात किसी भी व्यक्ति की जिंदगी, आज़ादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार 'मौलिक अधिकार' है। जिसे भारतीय संविधान के अंतर्गत सभी को प्रदान किया गया। बाद में भी 'मानवाधिकार आयोग' बनाकर विशेष स्वरूप प्रदान किया गया। जिसे जातियों, जनजातियों और विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए कितने क्रियान्वित हुए हैं, उसे विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया है। वह निम्नलिखित-

5.2.1. वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार की शुरुआत

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु 'अधिकार' एक आवश्यक शर्त है। इस अधिकार का आधार बहुत विस्तृत होता है, जिसमें विधिक अधिकार, मूलभूत अधिकार, नागरिक अधिकार आदि शामिल है। वे भारतीय संविधान में देख सकते हैं। जिसे हम अगले उप-अध्याय के अंतर्गत देख सकते हैं। पहले वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार क्या है ? भारत में उसकी शुरुआत और विमुक्त एवं घुमंतुओं के लिए मानवाधिकार की प्रासंगिकता को देखने का प्रयास किया गया है। वह निम्नलिखित-

जिस फ़्रांस से मानवाधिकार की शुरूआती बैठकें हुई उसी देश के सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था-'मैं सब राष्ट्रों को मिलाकर एक कर दूंगा ।' बाद में वे युद्ध में हार गए और उन्हें निर्वासित किया गया । तब उन्हें अपने गर्वोक्ति पर विचार करने का अवसर मिला । और वही विचार उनके सहृदय में सही रूप में पैदा हुए । वे कहते हैं-"कभी-न-कभी परिस्थितियों के ज़ोर से राष्ट्रों का यह मेल होगा । गाड़ी चल पड़ी है और मुझे यह दिखाई देता है कि मेरे चलाए हुए हुकुमत के तरीके का खात्मा होने के बाद यूरोप में बराबरी कायम करने का अगर कोई तरीका है तो वह एक 'राष्ट्रसंघ' के द्वारा ही हो सकता है ।"[287]

नेपोलियन के बाद निरंतर सौ वर्षों तक विचार-विमर्श चलता रहा, लेकिन मानव अधिकारों को व्यवहारिक रूप से प्रथम विश्व युद्ध के साथ और बाद में अधिक गति मिली । जबकि रूस में प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) और समाजवादी क्रांति (1917) जैसी घटनाओं ने राजतंत्र का उन्मूलन किया । प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव इतना व्यापक रहा कि संपूर्ण मानवता को इसने प्रभावित किया । जिसका परिणाम-"1917 की रुसी क्रांति 20 वीं सदी के विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना रही । 1789 ई. में फ़्रांस की राज्य क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व की भावना का प्रचार कर यूरोप के जन-जीवन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया । रुसी क्रांति ने न सिर्फ रूस और यूरोप को प्रभावित किया वरन् विश्व के अनेक देशों पर भी गहरा प्रभाव डाला । रुसी क्रांति की व्यापकता अब तक की सभी राजनीतिक घटनाओं की तूलना में बहुत विस्तृत थी । इसने केवल निरंकुश, एकतंत्रीय, स्वेच्छाचारी, जारशाही शासन का ही अंत नहीं किया बल्कि कुलीन जमींदारों, सामंतों, पूँजीपतियों आदि की आर्थिक और सामाजिक सत्ता की समाप्ति करते हुए विश्व में प्रथम मज़दूर और किसानों की सत्ता स्थापित की ।"[288]

इस ऐतिहासिक घटना को दृष्टि में रखते हुए और पूर्वकालीन फ्रांसीसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए फ़्रांस के पोप ने युद्ध बंद करने की अपील की थी । पोप के इस प्रस्ताव का उत्तर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने दिया । छह महीने बाद उन्होंने अमेरिका की कांग्रेस के सामने संसार में शांति-स्थापना के लिए अपना कार्यक्रम पेश किया । यह कार्यक्रम विल्सन की चौदह शर्तों के नाम से प्रसिद्ध है । इस चौदह सिद्धांतों के आधार पर यदि शांति स्थपित हो सकती तो बहुत-सी समस्याएँ सदा के लिए हल हो जाती ।

---

[287] मानवाधिकार (मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी), विष्णु प्रभाकर, राजदेव त्रिपाठी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्र.सं-1960, पृ.सं-45

[288] विश्व इतिहास (दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम), दृष्टी द विज़न, मुखर्जी नगर, दिल्ली, पृ.सं-9

लेकिन ऐसा हुआ नही । कुछ दिन बाद प्रथम युद्ध के विजेताओं ने बड़ी आसानी से इन सिद्धांतों को भुला दिया । विल्सन को अपने सिद्धांतों में से एक ही चीज मिल सकी वह था 'राष्ट्रसंघ' ।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के दखल देने पर हुई थी । दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिका ने अधिक रूचि ली और मित्र-राष्ट्रों के साथ मिलकर लड़ा ही नहीं, बल्कि तत्कालीन राष्ट्रपति रूझवेल्ट ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि विश्व में स्थायी शांति स्थापित हो । अमेरिका और फ्रांस की घोषणाओं में व्यक्ति के अधिकारों पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया था ।

द्वितीय युद्ध समाप्ति के बाद स्थायी शान्ति स्थापित करने और विविध राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधने के उद्देश्य से 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' की स्थापना की गयी । अक्टूबर 1944 में अमेरिका के डम्बार्टन ओवस नामक नगर में संयुक्तराष्ट्र की प्रथम बैठक में ब्रिटेन, रूस, अमेरिका और चीन के प्रतिनिधि शामिल हुए । इस बैठक में संयुक्तराष्ट्र की रूपरेखा तैयार की जिसके उपरांत 45 मित्र-राष्ट्र संयुक्तराष्ट्र संघ में शामिल हुए । संयुक्तराष्ट्र संघ के संगठन तथा अन्य नियम-कानूनों पर अंतिम निर्णय करने के लिए सनफ्रांसिस्को (अमेरिका) में एक बैठक बुलाई गयी । जिसका उद्देश्य था, जिसमें सभी मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधि शामिल हो । अप्रैल 1945 में हुई इस संयुक्तराष्ट्र संघ की बैठक में संघ को अंतिम रूप से स्वीकार किया गया और इस प्रकार एक नये अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई ।

शुरुआत में ही लोगों ने इस बात का अनुभव किया था कि मानव-अधिकार और बुनियादी स्वतंत्रता की रक्षा किये बगैर शांति की स्थापना संभव नहीं है । इसलिए सनफ्फ्रांसिस्को में अनेक देशों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए, तब संयुक्तराष्ट्र संघ को संसार के कोने-कोने से उनके पास मानव-अधिकारों की रक्षा के प्रति ध्यान आकर्षित करने वाले पत्र प्राप्त हुए । ऐसा ही हुआ । 26 जून 1945 को सभी प्रतिनिधियों ने घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये । घोषणापत्र की 6 विभिन्न धाराओं में मानव अधिकारों की रक्षा की चर्चा की गयी । पुराने राष्ट्रसंघ की असफलता से लाभ उठाकर इस नयी संस्था को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया था । इस पुनर्गठित घोषणापत्र में यह घोषणा की गयी कि-"हम संयुक्तराष्ट्र संघ के लोग मानव के मूल अधिकारों में, मानव की गरिमा और महत्व में, और छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के नर-नारियों के सामान अधिकारों में, आस्था को फिर से दोहराते हैं ।"[289] घोषणापत्र की धारा

---

[289] मानवाधिकार (मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी), विष्णु प्रभाकर, राजदेव त्रिपाठी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्र.सं-1960, पृ.सं- 51

एक में घोषित इसके उद्देश्यों में से एक है, जिसे संयुक्तराष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की व्याख्या के रूप में देखा जा सकता हैं। 'जो किसी भी धर्म, जाति, लिंग, भाषा के भेदभाव के बिना प्राप्त हो' अर्थात कोई भी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के इन अधिकारों को प्राप्त करने की हक़दार है।

तमाम महासभाओं, बैठकों और घोषणा के बावजूद मानवाधिकारों की वैश्विक स्तर पर तारतम्यता बन नही पा रही थी। किंतु मानवाधिकारों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया का परिणाम सामने आ रहा था। अतः 1948 ई. के शुरुआत में महासभा की तीसरी समिति और 85 वीं बैठक में कहा गया कि-"संयुक्तराष्ट्र संघ के सदस्यों ने सब लोगों तथा सब राष्ट्रों के लिए सफलता के एक सामान मापदंड की घोषणा की, ताकि प्रत्येक मनुष्य और समाज का प्रत्येक अंग इस घोषणा को सदा अपने मन में रखते हुए इन अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की अभिवृद्धि के लिए काम कर सके और उनके अनुसार चलने के लिए भरसक प्रयत्न करें।"[290]

इस तरह 10 दिसंबर 1948 के दिन राष्ट्रसंघ की महासभा ने पेरिस में मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा स्वीकार की। इस घोषणा के समय अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा था-"विश्व के अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं, जो अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित हैं, जिन्हें विश्व व्यक्ति के परंपरागत अधिकारों के रूप में स्वीकार कर चुका है, और इनके बिना कोई भी सम्मान एवं स्वतंत्रता के साथ नही रह सकता।"[291] घोषणापत्र के अनुच्छेद-2 में कहा गया है कि-"सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आज़ादी को प्राप्त करने का हक़ है और इस मामले में जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार-प्रणाली, किसी देश या समाज-विशेष में जन्म, संपत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा।"[292] इस मानवाधिकार की घोषणा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के रूप में सम्मान प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास के साथ-साथ दूसरों के विकास में सहयोग प्रदान करें। आसान भाषा में कहा जाए तो मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के कारण ही प्राप्त हो जाते हैं। भले ही उसकी राष्ट्रीयता, धर्म, वर्ग, जाति, लिंग, आदि कुछ भी हो। वैसे प्रत्येक व्यक्ति को वैश्विक स्तर पर जीवन, आजादी और सुरक्षा का अधिकार दिया गया है।

---

[290] वही, पृ.सं- 55

[291] भारत में मानवाधिकार, डॉ. धर्मेन्द्र के. मिश्रा, ए.आर.एस. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, दिल्ली, प्र.सं- 2010, पृ.सं- 31

[292] भारत में मानवाधिकार, प्रो. मधुसूधन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र.सं- 2008, पृ.सं- 25

5.2.2. भारत में मनावाधिकार की पृष्ठभूमि

भारत लंबे समय से विदेशी गुलामी के शिकंजे में बंधा रहा था। गुलामी के दौर में मुग़ल युग के दौरान स्थान-स्थान पर होनेवाली बगावतें इस बात की साक्ष हैं, वहीं भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का इतिहास भी इस सच्चाई का गवाह है कि मुग़ल साम्राज्य के आखिरी अधिकारी शहंशाह बहादूर के पतन होते ही भारतीय जनता ने अपने आजादी और अधिकारों के लिए विदेशी सत्ताओं से लड़ना आरंभ किया था। इसकी शुरुआत 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम से हुई, जिसने अपनी चरम सीमा का प्रथम उदाहरण लड़ाकू जनजातियों को सन् 1871 में 'अपराधी जनजाति कानून' के तहत बंदी बनाकर दिया। दूसरे संघर्ष का रूप 1919 ई. के अप्रैल माह में पहूँचा, जब पंजाब में अपने अधिकारों के लिए 'रॉलेक्ट एक्ट' जिसका उद्देश्य भारत में उभरे राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए था। जिसका विरोध दर्शाने हेतु 13 अप्रैल 1919 को सभा हो रही थी। जिसमें जनरल डायर नामक एक अंग्रेजी अधिकारी ने अकारण उस सभा में उपस्थित भीड़ पर गोलियाँ चलवा दीं। जिसमें 400 से अधिक व्यक्ति मारे गए और 2000 से अधिक घायल हुए। इस व्यापक नरसंहार के बाद भी स्वतंत्रता के अधिकार की यह लड़ाई रुकी नहीं। माना जाता है कि यह घटना ही भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के अंत की शुरुआत बनी।

उस समय की और एक घटना रूस 'बोल्शेविक क्रांति' ने सारी दुनियाँ को अपनी ओर प्रभावित किया था। जिसके परिणाम स्वरूप पश्चिम यूरोप के उपनिवेशवादियों-साम्राज्यवादियों के कब्जे से दुनिया के अनेक देशों को आज़ाद कराने में इस क्रांति की एक निर्णायक भूमिका रही। जिसमें भारत भी शामिल है। लंबे समय तक आजादी के बाद साम्राज्यवादियों के चंगुल से मुक्त रहा और और अपनी संप्रभुता को बनाये रख सका, इसका बड़ा श्रेय सोवियत संघ की उपस्थिति को भी जाता है।

तमाम देशी-विदेशी गतिविधियों के बाद आजादी के लड़ाई के परिणाम स्वरूप 15 अगस्त 1947 को देश विदेशी गुलामी से मुक्त हो गया। नए देश के संविधान के निर्माण हेतु तब एक संविधान सभा का गठन किया गया। संविधान सभा की परिकल्पना, भारत में सदैव राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के साथ जुडी रही है। संविधान निर्माण के लिए बुनियादी ढांचे का प्रारुप संविधान सभा के शिष्टमंडल द्वारा प्रस्तुत किया। अतः संविधान सभा ने भारत के संविधान को अंतिम रूप में, 26 जनवरी 1950 को भारत एक गणराज्य के रूप में स्थापित किया। संविधान के अलग-अलग खण्डों में मानवाधिकारों को प्रधानता दी गयी है। संविधान की प्रस्तावना, मूल

अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में मानवाधिकारों को आवश्यकतानुकूल संरक्षण प्रदान किया गया है ।

परंतु देश में कुछ मूलभूत परिवर्तन के अलावा काम कम बाते ज्यादा हुई । इसका लेखा-जोखा समय-समय पर साहित्यिक विधाओं द्वारा लिया गया है ।

भारत में मानवाधिकार द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 1948 में 48 मित्रराष्ट्रों के समूह ने संपूर्ण मानव-जाति के मौलिक अधिकारों का प्रतिपादन करते हुए एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया था । इसमें माना गया कि मानवाधिकारों की हर कीमत पर रक्षा की जानी चाहिए । भारत ने भी इस पर सहमति जताकर 'संयुक्तराष्ट्र संघ' के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया था । उस समय भारत में संविधान की प्रक्रिया शुरू थी । तब भी संविधान निर्माताओं ने मानवाधिकारों के बारे में घोषणा पत्र जारी किया था कि-"राष्ट्र की एकता तथा आम जनता के हितों के अनुरूप किसी भी राज्य द्वारा अब तक बनाये गए मानव अधिकारों के चार्टरों में से संभवतः सर्वाधिक विस्तृत चार्टर संविधान के भाग 3 में शामिल चार्टर है ।"[293] हालाँकि देश में मानवाधिकारों से जुडी एक स्वतंत्र संस्था बनाने में 45 वर्ष लग गए । "अतः मानवाधिकार संरक्षण बिल को 1993 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पास किया गया और 8 जनवरी 1994 को राष्ट्रपति ने उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान की । 28 सितंबर 1993 से ही इस कानून को तत्काल प्रभाव के साथ लागू कर दिया गया था ।"[294] मानवाधिकारों में अधिक जवाबदेही और मजबूती लाने के उद्देश्य से मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 (Protection of Human Right Act, 1993) बनाया गया । ये कानून संपूर्ण भारत में समान रूप से लागू होते हैं, परंतु जम्मू व कश्मीर में ये सीमित रूप से लागू होते थे । जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के तहत 9 अगस्त 2019 राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति दी । तब से मानवाधिकार आयोग संपूर्ण भारत में एक समान लागू होता है ।

'भारतीय संविधान' तथा 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, आजादी और सुरक्षा का अधिकार है । गुलामी या दासता से आजादी का अधिकार, अर्थात किसी भी व्यक्ति को गुलामी या दासता की हालत में नहीं रखा जा सकता, गुलामी-प्रथा और व्यापार पूरी तरह से निषिद्ध होगा । यातना प्रताड़ना या क्रूरता से आजादी का अधिकार अर्थात किसी

---

[293] हमारा संविधान, सुभाष काश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति- 2000, पृ.सं- 74

[294] भारतीय प्रशासन और राजनीति, संपा- बासुकी नाथ चौधरी, युवराज कुमार, ओरियंटल ब्लैकस्वान प्रा.लि.नई दिल्ली, प्र.सं- 2011, पृ.सं-538

को भी शारिरीक यातना नहीं दी जा सकती और न किसी के भी प्रति निर्दय, अमानवीय या अपमानजनक व्यावहार किया जा सकता है। कानून के सामने समानता का अधिकार अर्थात हर किसी को, हर जगह कानून की निगाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति-प्राप्ति का अधिकार है। कानून के सामने सभी को सामान संरक्षण का अधिकार अर्थात कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। इन संविधान या कानून द्वारा प्राप्त मूलभूत अधिकारों पर किसी के द्वारा अतिक्रमण किये जाने पर समुचित राष्ट्रीय अदालतों की सहायता पाने का अधिकार है। इसका मतलब-"वास्तव में मानव अधिकारों एवं मूल अधिकारों के मध्य शरीर और आत्मा का संबंध है। भारतीय संविधान में न सिर्फ मानवाधिकारों की गारंटी दी गयी है बल्कि इसका उल्लंघन करने पर सज़ा का भी प्रावधान किया गया है। भारतीय संविधान का उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना या जो विधि संगत होने के साथ ही मानव हित में भी हो। जिसके अंतर्गत समस्त देशवासियों को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर, शांति और सुरक्षा के वातावरण में गरिमामयी रूप से जीने का अधिकार मिल सके।"[295]

संयुक्तराष्ट्र संघ, भारतीय संविधान तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अब तक कितनी सफलता पाई है या बिल्कुल नही, इसपर विवाद हो सकता है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि आदमी आज भी अपने अधिकारों के लिए छटपटा रहा है और संघर्षरत है। यह संघर्ष ही एक दिन दुनिया में शांति ला सकता है। किंतु इसमें कोई संदेह नही कि भय और घृणा, विनाश और विकृति की शक्तियों के विरुद्ध मानवाधिकार आयोग ने पूरी शक्ति के साथ काम किया है। उसने इस बात का अनुभव कर लिया कि स्थायी शांति के लिए व्यक्ति के अधिकार की रक्षा अनिवार्य है।

5.2.3. विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और मानवाधिकार

मानवाधिकार हर व्यक्ति का नैसर्गिक या प्राकृतिक अधिकार है जिसमें जीवन, आजादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार देता है और साथ ही मानवाधिकार के तहत व्यक्ति के गरिमामय जीवन जीने का अधिकार, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार भी प्राप्त होता है। संयुक्तराष्ट्र द्वारा ग्रहण किये गए मानवाधिकार संबंधी घोषणापत्र में वर्णित 'मानव के बुनियादी अधिकार किसी भी जाति, धर्म, लिंग, समुदाय, भाषा, राष्ट्रीयता आदि पर

[295] https://www.jagran.com/blogs/prinsu/भारत-में-मानव-अधिकार-और-उन/ (17.03.2021, 2:40 pm)

निर्भर नहीं होते हैं । जिसे हम समाज में स्थित अस्थिर, आंशिक अस्थिर और स्थिर रूप से पारंपरिक अथवा अपारंपरिक रूप से घुमक्कड़ी करने वाले विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए मानवाधिकार की पड़ताल को स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी आत्मकथाओं के माध्यम से कर सकते हैं ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के मानवाधिकारों का हनन देश में समय-समय पर होते देखा जा सकता है । किंतु भारत में अंग्रेजों के आगमन से स्वार्थपूर्ति हेतु जनजातियों के अधिकारों का जितना हनन हुआ है वह पहले शायद ही देखा जाता था । अंग्रेजों ने भारत में सत्ता कायम करने के लिए काले कानूनों का आधार लिया । इससे सर्वाधिक नुकसान जंगल में बसी आदिवासी जनजातियों और जंगल-गाँव में विनिमय पद्धति से सेवा देनेवाली जाति-जनजातियों का हुआ है । उसी के विरोध में जनजातियों ने समय-समय पर अंग्रेजों से लोहा लिया । बाद में भी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जनजातियों ने भारत की जनता का साथ दिया । इसके बाद भी जनजातियों का अंग्रेजों के प्रति रुख अपने अधिकार और आजादी का ही रहा । इसी कारण अंग्रेजों ने इन जनजातियों को काबू में लाने के लिए 'अपराधी जनजाति कानून-1871' बनाया गया । जंगल में स्थित खनिज संपत्ति पाने के लिए 'जंगल कानून' बनाया और रेल का जाल बिछाकर जनजातियों के मानवाधिकारों का हनन शुरू किया । जिसके अंतर्गत जूठे अपराध के आरोप में पकड़कर जेल में बंद किया गया । निर्बल जनजातियों को बंदी खानों में काम करवाया गया । उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के लिए हाज़िरी देना अनिवार्य किया गया । अंग्रेजों द्वारा अपराधी कहलाने से उनसे पैदा हुए बच्चे भी जन्मतः अपराधी कहलाने लगे ।

जिसका परिणाम आजादी के बाद भी रहा । यहाँ की व्यवस्था और समाज ने उसी रूप में स्वीकार किया, जो अंग्रेजों द्वारा बनायी गयी थी । इसी का उदाहरण लक्ष्मण गायकवाड़ द्वारा लिखी 'उचक्का' आत्मकथा में देखा जा सकता है । वे लिखते हैं-"जिस समाज में मैं जनमा, उसे यहाँ की वर्ण-व्यवस्था और समाज व्यवस्था ने नकारा है । सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों से मनुष्य के रूप में व्यवस्था द्वारा नकारा गया मेरा यह समाज पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया । अंग्रेज सरकार ने जो 'गुनहगार' का ठप्पा हमारे समाज पर लगा दिया और सबने हमारी ओर गुनहगार के रूप में ही देखा और आज भी उसी रूप में देख रहे हैं ।"[296]

अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के लिए संविधान में संरक्षनात्मक उपायों के संदर्भ में किये गए प्रयासों का इच्छित परिणाम दिखाई नहीं देता है । जिसका साक्ष विमुक्त एवं

---

[296] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि. नई दिल्ली, सं- , पृ.सं-V

घुमंतू जनजातियों द्वारा झेला गया दुःख है। बेरड़ आत्मकथा में लेखक की दादी अपने समाज के बारे में बताते हुए कहती है कि बेरड़ों के अधिकांश पुरुष किसी हादसे में या पुलिस की मर-पीट से मरते हैं। अपनी जवान बेटियों को आँखों के सामने विधवा होते देखा था, उनके दोनों के पति की मौत असमय तथा अनपेक्षित ढंग से पुलिस की बेतहाश मार के कारण हवालात में हुई थी। इस्पात कारखाने में हुई यल्ल्या नामक युवक की हत्या पुलिस प्रशासन के रवैए, कारख़ाना व्यवस्थापक की अनास्था के कारण यल्ल्या पर गोलियाँ चलती हुई देखकर भी कामगारों का नौकरी चली जाने की डर से गवाही न देना व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। सामाजिक कार्यकर्ता लेखक लिखते हैं-"मैं, गुजरे लगभग दो-ढाई महीने से अनवरत रूप से क़त्ल की जिस वारदात का पर्दाफाश करने के लिए प्रयत्नशील था; उस पर इस पुलिस अधिकारी ने अपनी चालाकी से एक ही पल में मिट्टी पोत कर, सब कुछ मटियामेट कर दिया था। अब आगे इस क़त्ल के मामले में दोबारा कोई कानूनी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। हालाँकि उसी पुलिस ने, मैं भविष्य में इस मामले में कुछ भी न कर सकूँ। इस दृष्टि से अधिकारी ने मेरे रास्ते में यह दीवार खड़ी कर दी थी। यानी मेरी अब तक की तमाम कोशिशें नाकाम हो चुकी थी।"[297] यल्ल्या की विधवा माँ अपने बेटे के लिए पागल हो चुकी थी। हत्या को रफा-दफा करना एक अकूत ताकत के सामने कानून की हिफाजत करनेवाली पुलिस यंत्रणा का लाचार होना विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के मूलभूत अधिकारों का हनन करना है। इस प्रकार की छोटी-बड़ी घटनाओं का उल्लंघन समाज और पुलिस व्यवस्था द्वारा नजरअंदाज करना 'बेरड़' 'उचक्का' आत्मकथाओं के हर पाँचवे-छटे पन्ने पर देखा जा सकता है।

समाज में शांति और सौहार्द स्थापित करने के लिए सर्वाधिक योगदान पुलिस प्रशासन का कहना गलत साबित नहीं होगा। किंतु पुलिस प्रशासन में कुछ खामियाँ है। जिसका परिणाम आजादी के बाद अब भी दिखाई देता है। जिसके पीछे अंग्रेजों द्वारा अर्जित की हुई व्यवस्था है जो अब तक जिंदा है और समाज के कुछ तबके को अपराधी दृष्टिकोण से देखती आ रही है। श्री राजीव कुमार वर्तमान पुलिस प्रशासन के बारे में लिखते हैं-"हमारे देश को अंग्रेजों की दासता से 15 अगस्त, 1947 को आजादी मिली। हमारा देश स्वतंत्र हुआ। हमारे देश की मौजूदा पुलिस अंग्रेजों का ही साथ दें रही है। आजादी के 72 वर्ष बाद भी हमारे पास अपना पुलिस अधिनियम नहीं है। आज भी हम सन् 1861 में अंग्रेजों द्वारा बनाये गए 'भारतीय पुलिस अधिनियम' के अनुसार ही अपना कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजी हुकूमत में पुलिस का अर्थ था, आम जनता का शोषण। भारत तो आज़ाद हुआ, किंतु। पुलिस की सोच आज भी गुलाम है। पुलिस

---

[297] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 399-400

की सोच में अंग्रेजी हुकूमत का रोब आज भी दिखाई पड़ता है। आज भी पुलिस कर्मी जनता से सीधे मुँह बात नहीं करते हैं। हालाँकि सभी पुलिस कर्मी एक जैसे भी नहीं होते हैं, किंतु हाँडी में रखे चावलों में से कुछ चावलों को देखकर पता लग जाता है कि चावल पक चुके हैं अथवा नहीं। इसलिए पुलिस की मानसिकता में आमूल-चूल परिवर्तन की नितांत ज़रूरत है।"[298]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों द्वारा झेली जा रही समस्याओं के स्वरूप अलग-अलग हैं। इस घुमक्कड़ जनजातियों का प्रमुख विषय समाज द्वारा न स्वीकारना है। इन्हें मंदिर, स्कूल, तालाब, गाँव आदि पर रोक लगाया गया तथा बेवजह चोरी-डकैती के इल्जाम में पुलिस प्रशासन द्वारा असमय उठाया जाना इनके जीवन को नरक बनाता आ रहा है। किसी गाँव में घूमते हुए गए तो वहाँ अधिक समय बसने से मना किया जाना। इनकी ऐसी अस्थिरता, आवासीय स्थिति अमानवीय है। जिसका मूल कारण वे भूमि से वंचित हुए। इसी दुर्बलता का फ़ायदा गाँव के गुंड लेते हैं, बीच रास्ते में धमकाकर पैसों की या अन्य अहंगी चीजों की माँग करना, स्त्रियों पर अत्याचार करना, बातें बाहर न आने के लिए धमकाया जाता था। दूसरी ओर इनकी अशिक्षा का फ़ायदा जमींदारों, साहूकारों, पुलिस प्रशासन, चिकित्सालय तथा सार्वजनिक स्थानों पर भी लिया गया।

मानवाधिकारों का सम्मान करने वाले संविधान के लागू होने के बावजूद भी विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों, आदिवासियों, दलितों के मूलभूत अधिकारों, सुरक्षात्मक अधिकारों में जितना इजाफ़ा होना चाहिए था उतना दिखाई नहीं देता है। भारत में मानवाधिकारों की वास्तविकता का स्पष्टीकरण देते हुए राष्ट्रीय मानवाधिकार सदस्य शरद चन्द्र शिन्हा लिखते हैं- "देश में अभी भी पुलिस को जनता के मित्र व सहायक के रूप में नहीं देखा जाता तथा पुलिस के द्वारा किये जाने वाले मानव अधिकारों के उल्लंघन समय-समय पर सामने आते हैं। देश की न्याय व्यवस्था अभी भी गरीबों, दलितों एवं अल्प संख्यकों की पहुँच से बाहर है। देश की जेलों में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व देश की जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक है। देश में अभी भी अशिक्षा है एवं जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, वह अत्यंत निम्न स्तर की है। देश में अभी भी भूख है और देश की स्वास्थ्य व्यवस्था चरमरा रही है। बेरोज़ गारी की समस्या का अब तक कोई हल नहीं निकला जा सका है। हाल में हुई अनेक घटनाओं ने देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। देश में महिलाएँ अभी भी उत्पीड़न का शिकार हैं महिलाओं एवं बच्चों की मानव तस्करी सभी प्रयत्नों के बावजूद लगातार जारी है। इसी प्रकार

[298] पुलिस विज्ञान, संपा- विजय कुमार, पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, अंक-141, (जुलाई-दिसं-2019) पृ.सं-23

आयोग के निरंतर प्रयासों के बावजूद देश के अनेक भागों में गरीब अभी भी बंधुआ मज़दूर के रूप में कार्य कर रहे हैं।"[299]

5.2.4. अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संवैधानिक प्रावधान

देश को सुचारू रूप से चलाने के लिए संविधान का निर्माण किया गया। 29 अगस्त 1947 को भारतीय संविधान को बनाने के लिए एक समिति का गठन किया गया। उसके अध्यक्ष के रूप में डॉ.भीमराव रामजी अंबेडकर को चुना गया। 26 नवंबर 1949 को भारतीय संविधान सभा के सामने रखा गया और उसी दिन संविधान सभा ने 'हम, भारत के लोग...इस पंक्ति के शुरुआत से इसे अपनाया। यही कारण है कि हम 26 नवंबर को हर साल 'संविधान दिवस' के रूप में मनाते हैं। भारत का संविधान दूनिया का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। इसमें 448 अनुच्छेद और बारह अनुसूचियाँ शामिल है। इसमें वंचित तबके के तौर पर अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियों का पूरा खयाल रखा गया है और उनको मजबूत और अन्य तबको के समान खड़ा करने ऐ लिए कई अधिकार भी दिए गए हैं। यहाँ पर देखते हैं कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए क्या प्रावधान दिए गए हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था में लोगों का एक तबका अधिकांश मूलभूत अधिकारों से वंचित था, जिसका पूर्वकाल से शेष लोगों द्वारा उपयोग किया जाता था। जिसके परिणामस्वरूप वे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से वंचित रह गए। अन्य समुदायों की अपेक्षा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति समुदायों के बीच बुनियादी असंगतियाँ होने और उनके स्तर को ऊपर उठाने के लिए विशेष शासन प्रबंध की आवश्यकता निर्माण हुई। इस कारण संविधान निर्माताओं ने उनके उत्थान के लिए विशेष प्रावधान दिए गए। उनके उत्थान के तीन तरह के संवैधानिक संरक्षण महत्वपूर्ण माने गए हैं-'एक- आरक्षण के जरिये पंचायतों से संसद तक जनता और समुदाय के प्रतिनिधित्व का अधिकार मिलना ताकि उनका सशक्तिकरण हो सके। दो- कानून के माध्यम से हर प्रकार के सामाजिक-आर्थिक व्यवहार में छुआछूत और भेदभाव को ख़त्म करना। तीन- वंचित समुदायों को सक्षम बनाने के लिए आरक्षण के आधार से शिक्षा के समान नहीं, बल्कि बेहतर और अतिरिक्त अवसर मिलें।' ताकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को राष्ट्रीय विकास की धारा में जोड़ सकें।

---

[299] मानव अधिकार : नई दिशाएं, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, मानव अधिकार भवन, नई दिल्ली, सं- 2017, पृ.सं- xiii

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गए हैं वे (***भारत का संविधान [1 अप्रैल 2019 को यथाविद्यामन] प्राक्कथन, डॉ. जी नारायण राजू, सचिव, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1 अप्रैल 2019***) निम्न हैं-

1. सामाजिक संरक्षण

इन संरक्षणों के अंतर्गत संविधान में अनुच्छेद 17, 23, 24 और 25 (2) (ख) में प्रावधान दिए गए है।

अनुच्छेद 17 : अस्पृश्यता का अंत-"अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

अनुच्छेद 23 : शोषण के विरुद्ध अधिकार मानव के दुर्व्यापार और बालश्रम का प्रतिषेध-(1) मानव का दुर्व्यपार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बालश्रम प्रतिषेध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

अनुच्छेद 24 : कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध- चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजन नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

2. आर्थिक संरक्षण

आर्थिक संरक्षण के अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनुच्छेद 23, 24 तथा 46 में प्रावधान दिए गए है :

अनुच्छेद 23 : मानव के दुर्व्यापार और बालाश्रम का प्रतिषेध- (1) मानव का दुर्व्यपार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बालाश्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

अनुच्छेद 24 : कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध- चौदह वर्ष के कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

अनुच्छेद 46 : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि- राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी स अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उसकी संरक्षा करेगा।

3. शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संरक्षण :

अनुच्छेद 15 : (4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 16 : (4) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

अनुच्छेद 29 : (2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा ।

अनुच्छेद 350 : (क) प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ- प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेंगे जो वह ऐसा सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक या उचित समझते हैं ।

अनुच्छेद 29 : (1) भारत के राज्यक्षेत्र या उनके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, उसकी अपनी विशेष भाषा या लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा ।

4. राजनीतिक संरक्षण :

अनुच्छेद 164 : छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्यप्रदेश और ओडिशा राज्यों में जनजातियों के कल्याण का भारसाधक एक मंत्री होगा जो साथ ही अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण का या किसी अन्य कार्य का भी भारसाधक हो सकेगा ।

अनुच्छेद 330 : लोक सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण-(1) लोक सभा में- (क) अनुसूचित जातियों के लिए, (ख) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर अन्य अनुसूचित जनजातियों के लिए, और (ग) असम ऐे स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए, स्थान आरक्षित रहेंगे ।

अनुच्छेद 332 : राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण-(1) प्रत्येक राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जातियों के लिए और अन्य अनुसूचित जातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे ।

अनुच्छेद 334 : स्थानों के आरक्षण और विशेष प्रतिनिधित्व [सत्तर वर्ष] के पश्चात न रहना- इस भाग के पूर्वगामी उपबंध में किसी बात के होते हुए भी- (क) लोक सभा में और राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण संबंधी और (ख) आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रतिनिधित्व संबंधी, इस संविधान के उपबंध इस संविधान के प्रारंभ से सत्तर वर्ष की अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेंगे :

परंतु इस अनुच्छेद की किसी बात से लोक सभा में या किसी राज्य की विधान सभा में किसी प्रतिनिधित्व पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक, यथास्थिति, उस समय विद्यमान लोक सभा या विधान सभा का विघटन नहीं हो जाता है ।

अनुच्छेद 243 (घ) : स्थानों का आरक्षण-(1) प्रत्येक पंचायत में (क) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाश्क्य वही होगा जो उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आवंटित किये जा सकेंगे ।

(2)के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे ।

अनुच्छेद 371 : (क) में नागालैण्ड राज्य से संबंधित विशेष उपबंध है ।

अनुच्छेद 371 : (ख) में असम राज्य से संबंधित विशेष उपबंध है ।

अनुच्छेद 371 : (ग) में मणिपुर राज्य से संबंधित विशेष उपबंध है ।

अनुच्छेद 371 : (च) में सिक्किम राज्य से संबंधित विशेष उपबंध है ।

अनुच्छेद 371 : (छ) में मिज़ोरम राज्य से संबंधित विशेष उपबंध है ।

अनुच्छेद 371 : (ज) में अरुणाचल से संबंधित विशेष उपबंध है ।

5. सेवा में संरक्षण :

अनुच्छेद 16 : (1)राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी ।

(2)राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा ।

(3)इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो [किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले किसी वर्ग के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है ।]

(4)इस अनुच्छेद की कोई बाद राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

अनुच्छेद 16 : (4क)इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और जनजातियों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, राज्य के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गों के पदों पर, परिणामिक जेष्ठ्ता सहित, प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 16 : (4ख)इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को किसी वर्ष में किन्हीं न भरी गयी ऐसी रिक्तियों को, जो खंड (4) या खंड (4क) के अधीन किये गए आरक्षण के लिए किसी उपबंध के अनुसार उस वर्ष में भरी जाने के लिए आरक्षित हैं, किसी उत्तरवर्ती वर्ष या वर्षों में भरे जाने के लिए पृथक वर्ग की रिक्तियों के रूप में विचार करने से निवारित नहीं करेगी और ऐसे वर्ग की रिक्तियों पर उस वर्ष की रिक्तियों के साथ जिसमें वे भरी जा रही हैं, उस वर्ष रिक्तियों की कुल संख्या के संबंध में पचास प्रतिशत आरक्षण की अधिकतम सीमा का अवधारण करने के लिए विचार नहीं किया जाएगा ।

अनुच्छेद 335 : सेवाओं में पदों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावे-संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाये रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा : [परंतु इस अनुच्छेद की कोई बात अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के पक्ष में, संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं के किसी वर्ग या वर्गों में या पदों पर प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए, किसी परीक्षा में अर्हक अंकों में छूट देने या मूल्यांकन के मामलों को घटाने के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।]

6. अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष संरक्षण

जनजातीय कार्यों को संविधान में एक विशेष स्थिति दी गयी है । जबकि राज्य सामान्यतः अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और विकास के लिए उत्तरदायी हैं, संघ सरकार भी प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व रखती है । स्वाधीनता के तुरंत बाद यह पाया गया था कि तुच्छ धनराशि के लिए अधिकांश जनजाति भूमि का गैर-जनजातीय लोगों को हस्तांतरण किया गया था । अतः जनजातीय लोगों ने भूमि हस्तांतरण की गंभीर समस्या का सामना किया । संविधान निर्माताओं ने इस कठिनाईयों को देखते हुए तथा जनजातीय कार्यों और जनजातीय भूमि के नियंत्रण के बारे में विचार-विमर्श कर संविधान में विशेष उपबंध किये ।

अनुच्छेद 244 : के अधीन संविधान की पाँचवी अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों की विशेष समस्याओं के लिए, विधि-निर्माण की व्यवस्था करती है ।

अनुच्छेद 244 : अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन-(1) निर्धारित करता है कि पाँचवी अनुसूची के उपबंध [असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम राज्यों] से भिन्न किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन क्षेत्र नियंत्रण के लिए लागू होंगे ।

(1)छटी अनुसूची के उपबंध [असम, त्रिपुरा, मेघालय और मिज़ोरम राज्यों] के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए लागू होंगे ।

पाँचवी अनुसूची के तहत : अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियंत्रण :

पाँचवी अनुसूची : भाग क 3. अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति के राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन- ऐसे प्रत्येक राज्य का राज्यपाल जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं, प्रतिवर्ष या जब भी राष्ट्रपति इस प्रकार अपेक्षा करे, उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा और संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य को उक्त क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में निदेश देने तक होगा ।

भाग ख 4.जनजाति सलाहकार परिषद्-(1) ऐसे प्रत्येक राज्य में, जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं और यदि राष्ट्रपति ऐसा निदेश दे तो, किसी ऐसे राज्य में भी, जिसमें अनुसूचित जनजातियाँ हैं किनती अनुसूचित क्षेत्र नहीं है, एक जनजाति सलाहकार परिषद् स्थापित की जाएगी जो बीस से अधिक सदस्यों से मिलकर नाबेगी जिसमें से यथाशक्य निकटतम तीन-चौथाई उस राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होंगे :

भाग ख 5.अनुसूचित क्षेत्रों को लागू विधि-(1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि संसद का या उस राज्य के विधान-मंडल का कोई विशिष्ट अधिनयम उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग को लागू नहीं होगा अथवा उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग को ऐसे अपवादों और इस उपपैरा के अधीन रहते हुए लागू होगा जो वह अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे और इस

उपपैरा के अधीन दिया गया कोई निदेश इस प्रकार दिया जा सकेगा कि उसका भूतलक्ष्मी प्रभाव हो ।

(2)राज्यपाल किसी राज्य में किसी ऐसे क्षेत्र की शांति और सुशासन के लिए विनियम बना सकेगा जो तत्समय अनुसूचित क्षेत्र है । विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियम-

(क) ऐसे क्षेत्र की अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा या उनमें भूमि के अंतरण का प्रतिषेध या निर्बंधन कर सकेंगे ;

(ख) ऐसे क्षेत्र की जनजातियों के सदस्यों को भूमि के आबंटन का विनियमन कर सकेंगे ;

(ग) ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो ऐसे क्षेत्र की अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को धन उधर देते हैं, साहूकार के रूप में कारबार करने का विनियमन कर सकेंगे ।

(3) ऐसे किसी विनियम को बनाने में जो इस पैरा के उपपैरा (2) में निर्दिष्ट है, राज्यपाल संसद के या उस राज्य के विधान-मंडल के अधिनियम का या किसी विद्यमान विधि का, जो प्रश्नगत क्षेत्र में तत्समय लागू है, निरसन या संशोधन कर सकेगा ।

(4) इस पैरा के अधीन बनाये गए सभी विनियम राष्ट्रपति के समक्ष तुरंत प्रस्तुत किये जाएंगे और जब तक वह उन पर अनुमति नहीं दे देता है तब तक उनका कोई प्रभाव नहीं होगा ।

(5) इस पैरा के अधीन कोई विनियम तब तक नहीं बनाया जाएगा जब तक विनियम बनने वाले राज्यपाल ने जनजाति सलाहकार परिषद् वाले राज्य की दशा में ऐसा परिषद् के परामर्श नहीं कर लिया है ।

अनुच्छेद 275 : कुछ राज्यों को संघ से अनुदान-(1) ऐसी राशियाँ, जिनका संसद विधि द्वारा उपबंध करे, उन राज्यों के राजस्वों में सहायता अनुदान के रूप में प्रत्येक वर्ष भारत की संचित निधि पर भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद यह अवधारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न राशियाँ नियत्की जा सकेंगी :

परंतु किसी राज्य्बके राजस्वों में सहायता अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से ऐसा पूँजी और आवर्ती राशियाँ संदत्त की जाएँगी जो उस राज्य के उन विकास स्किमों के

खर्चों को पूरा करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों जिन्हें उस राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की अभिवृद्धि करने या उस राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत करने के प्रयोजन के लिए उस राज्य द्वारा भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में लिया जाए ।

अनुच्छेद 338क : राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग-(1) अनुसूचित जनजातियों के लिए एक आयोग होगा जो राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा ।

(8) आयोग को, खंड (5) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण करते समय या उपखंड (ख) में निर्दिष्ट किसी परिवाद के बारे में बारें में जाँच करते समय, विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में, वे सभी शक्तियां होंगी, जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायलय को हैं, अर्थात् :

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति के समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायलय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अध्यपेक्षा करना;

(ड) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना;

(च) कोई अन्य विषय, जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे ।

(9) संघ और प्रत्येक राज्य सरकार, अनुसूचित जनजातियों को प्रभावित करने वाले अभी महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी ।

5.2.5. विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति और संविधान

मनुष्य के स्वतंत्रता व समानता की रक्षा के लिए विचारों की स्वतंत्रता अनिवार्य है । दुनिया में अब तक सभ्यता और संस्कृति का जो कुछ भी विकास हुआ है व विचारों के कारण ही

हुआ है । यह कहना गलत नहीं होगा कि विचारों के भी हाथ-पांव होते हैं । वे घुमते-फिरते हैं और अपना कार्य करते है । सच में वे कार्यों की पूर्वकल्पना होते हैं । इसलिए विचारों का अधिक महत्व है । विचारों का संबंध बुद्धि से है और बुद्धि पर किसी का और किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं लगाया जा सकता । यह बात अलग है कि विचार अच्छे भी होते है और बुरे भी । यह भी सही है कि जन कल्याण के लिए अच्छे विचारों को ही प्रोत्साहित करना चाहिए, बुरे विचारों को नहीं । परंतु इसके साथ यह भी सच है कि जिस विचार को हम उचित समझते हैं, संभवतः दूसरे उसे अनुचित समझे । या जिसे हम अनुचित समझते हैं, दूसरे उसे उचित समझे । हम अपने ही पैमाने से उस विचार को नापते है, लेकिन अब तक क्या कोई पैमाना संपूर्ण माना गया है? अच्छाई-बुराई का, उचित-अनुचित का यह मापदंड देशकाल की स्थिति के अनुसार बदलता रहता है ।

भारत के देशकाल में भी समय-समय पर बदलाब अंश देखे जा सकते हैं । जिसका सबसे बड़ा बदलाव भारत स्वंत्रतता के बाद राष्ट्रनिर्माताओं के विचारों और संविधान सभा में अनेक विचारधाराओं के विद्वानों की क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा बना 'संविधान' हैं । जो जनकल्याण के हित में स्वयं को समर्पित किया गया और 26 जनवरी 1950 को पूर्णरूपेण लागू हुआ । देश में तमाम धर्म, संप्रदाय, जाति के बावजूद एक समान विचारों की शृंखला ने गणराज्य देश बनाया । यह भारत के इतिहास में सभ्यता और संस्कृति की बहुत बड़ी कमियाबी है । जिसमें कुछ सामाजिक दबाव से और आर्थिक विपन्नता के कारण वंचित, उपेक्षित रहे थे वे सन् 1952 में 'विमुक्त' हुए और इसी समाज का हिस्सा बने । वे 'विमुक्त घुमंतू समुदाय' कहलाते हैं । उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक स्थितियों के न्याय प्राप्ति की दिशा में श्रेणी का प्रश्न महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरा । जिसे संविधान के आईने में महाराष्ट्र की नीतियों में 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति' को देख सकते हैं ।

महारष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ अधिकांश समय संवैधानिक अधिकारों और सरकारी नीतियों से वंचित रही है । जिसका कारण महाराष्ट्र में इन जनजातियों को अन्य राज्यों की तरह अनुसूचित न कर अलग से आरक्षण दिया । इस कारण इन जनजातियों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की तरह विशेष प्रावधान नहीं मिल पाए । बाद में उन्हें शैक्षिक, सामाजिक पिछड़ेपन की वजह से बने अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल किया, परंतु यह छोटे-छोटे घुमक्कड़ समूह उनके साथ स्पर्धा कर नहीं पाए । वे अपनी परंपरा के अनुसार घुमती रही, कुछ को घुमने के लिए मजबूर होना पड़ा । अपने काम-धंदों में बंटी हुई ये जनजातियाँ एक गाँव में कुछ दिन बसती थी । बसने के लिए इन्हें गाँव के पुलिस पटेल की इजाज़त लेनी पड़ती

थी। इजाज़त भी देने के लिए जानबूझकर टाला जाता था और इजाज़त न लेने का हश्र पूरे गाँव के सामने अपमान किया जाता और पुलिस स्टेशन भेजा जाता था। पुलिस स्टेशन में भी इन्हें प्रताड़ित किया जाता था और इनकी स्त्रियों को अश्लीलता की नजरों देखा जाता था। घुमंतू जनजातियों में कुछ समूह समाज का मनोरंजन करते हुए भिक्षाटन करते थे। उनके साथ समाज द्वारा कुछ जगह पर सम्मान का व्यावहार तो पूछ जगह प्रताड़ना देखी जाती है। इस तरह वंचित रखने कि क्रमिकता 2001 और उसके बाद की लिखी आत्मकथाओं में भी देख सकते हैं। सरकार की कल्याणकारी सुविधाओं में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का वह तबका जिनके पास थोड़ी बहुत जमीन रही है वे अपनी आर्थिक रूप से धीरे-धीरे उन्नति की ओर बढ़े हैं और वही सामाजिक सम्मान और राजनीतिक शक्ति प्राप्त की है।

वास्तव में एक लंबे समय तक विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के अधिकांश तबके के बारे में सोचा नहीं गया। जैसे हम पहले रेखांकित कर चुके हैं, वे राज्य की नजर में ओझल रहे। जिनके लिए संविधान में दिए गए मूलभूत अधिकार और पिछड़ा वर्ग में रखकर दिए गए विशेष प्रावधानों को निम्नलिखित देखा जा सकता है-

5.2.5.1. अन्य पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत डीएनटीज् का स्थान

1.समानता का अधिकार, जिसमें विधि के समक्ष समानता तथा विधियों का समान संरक्षण अनुच्छेद 14 : व्यवस्था करता है कि-"राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।"

अनुच्छेद 15 : "धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध-

(1) राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के-

(क) दुकानों, सार्वजानिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या

(ख) पुर्णतः या भागतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजानिक समागम के स्थानों के उपयोग, के संबंध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

अनुच्छेद 16 : लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता- (1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी ।

(2) राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा ।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले किसी वर्ग या वर्गों के पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है ।

(4) इस अनुच्छेद को कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

(5) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो ।

इस खंड के अंतर्गत राज्य किन्हीं सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों एवं अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था करने के लिए प्राधिकृत है।

संविधान के अनुच्छेद 15 (4), और 29 (2)का संदर्भ दिया गया है। इस कारण अनुच्छेद 29 (2) का भी अवलोकन करना आवश्यक है। वह निम्नलिखित है-

अनुच्छेद 29 (1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29 (2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) दोनों किसी भी सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान प्रस्तावित करते हैं। नीति निर्देशक तत्वों का अनुच्छेद 46 देश के दुर्बल वर्गों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों की विशेष रूप से रक्षा करने और उनका उत्थान करने के लिए राज्य अधिकार देता है। उपर्युक्त प्रावधानों के रहते हुए संविधान निर्माताओं ने यह महसूस किया कि समाज में कुछ ऐसे समूह भी हैं जो समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक आदि रूप से अन्य समूहों की तूलना में बहुत पिछड़े हुए हैं। इसलिए यह असमानता को मूल से निर्मूलन करने की व्यवस्था संविधान में की गयी है। इसी भावना को ध्यान में रखकर अनुच्छेद 46 में समाज के कमज़ोर वर्गों (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों) के संबंध में प्रावधान किया। परंतु दुर्बल वर्गों को इस अनुच्छेद में कमज़ोर बनाया गया है। वह निम्नलिखित-

अनुच्छेद 46 : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि- राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

वास्तविकता को देखते हुए सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए समुदायों को शिक्षा में विशेष सुविधाएँ व शिक्षा संस्थानों में प्रवेश हेतु आरक्षण तथा शासकीय नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था उनका संवैधानिक अधिकार है । निरिक्षण व अन्य प्रकार के सबूतों से पता चलता है कि कोई जाति, वर्ग व समुदाय सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़ा तथा शासकीय सेवाओं में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो उसको अनुच्छेद 15 (4) व 16 (4) के अनुसार आरक्षण की पात्रता में शामिल किया जा सकता है ।

अनुच्छेद 38 : राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा-(1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनु प्रमाणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा ।

(2)राज्य विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूह के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों में असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा ।

अनुच्छेद 164 : मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध- (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर करेगा तथा मंत्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे, परंतु [छतीसगढ़, झारखंड,] मध्यप्रदेश और [ओडिशा] राज्यों में जनजातियों के कल्याण का भारसाधक एक मंत्री होगा जो साथ ही अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों क कल्याण का या किसी अन्य कार्य का भी भारसाधक हो सकेगा ।

अनुच्छेद 335 : संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाये रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा : परंतु इस अनुच्छेद की कोई बात अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के पक्ष में, संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं के किसी वर्ग या वर्गों में या पदों पर प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए, किसी परीक्षा में अर्हक अंकों में छूट देने या मूल्यांकन के मानकों को घटाने के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

अनुच्छेद 338 (ख) : पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग- (1) सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के एक आयोग होगा जो राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के नाम से ज्ञात होगा।

अनुच्छेद 340 : पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति- (1) राष्ट्रपति, भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधरने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किये जाने चाहिए उनके बारे में और उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किये जाने चाहिए और जिन शर्तों के अधिन वे अनुदान किये जाने चाहिए उनके बारे में सिफारिश करने के लिए, आदेश द्वारा, एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 15 (4), 16 (4), 46, 164 (1), 335, 338 (ख) एवं 340 के अध्ययन से स्पष्ट है कि समाज के कमज़ोर, दुर्बल, वंचित एवं पिछड़े वर्गों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

◈ अनुसूचित जातियाँ

◈ अनुसूचित जनजातियाँ

◈ अन्य पिछड़ा वर्ग

अनुसूचित जातियाँ सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ी वह जातियाँ हैं जिनके ऊपर अछूत होने का धब्बा है। इन जातियों को राष्ट्रपति द्वारा संविधान में अनुच्छेद 341 के तहत अधिसूचना जारी करके अनुसूचित किया जाता है। इसी तरह अनुसूचित आदिवासी जातियाँ हैं जो सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ी हैं, उसके ऊपर अछूत होने का कलंक नहीं है, लेकिन वे दूरस्थ जंगलों व पहाड़ियों में नगरी सभ्यता से दूर जीवन-यापनकरती है। विशेषता यह कि इनका भी शोषण होता है। इन्हें अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित किया गया है। पिछड़े वर्ग में वह जाति, समूह व वर्ग आते हैं, जो सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हैं, लेकिन उनके ऊपर न अछूत का धब्बा है और न वे दूरस्थ जंगलों व पहाड़ियों में निवास करते हैं, किंतु वे

समाज के उन जातियों के साथ रहकर उनके घरों-बागों में सेवा का काम करते आ रहे हैं, जो संपन्न तथा उच्च जातियों में गिने जाते हैं।

बताते चलें कि इन जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों और उच्च-संपन्न जातियों के अलावा भारतीय समाज में एक और तबका है, जो 'समाज और राज्य' की नजर में ओझल रहा है, वह 'विमुक्त जाति और घुमंतू जनजाति' के नाम से जाना जाता है। जिसे आजादी के पाँच साल बाद सन् 1952 में 'अपराधिक जनजाति अधिनियम-1871' के कानून से 'विमुक्त' किया गया। इसलिए वे 'विमुक्त जाति' के नाम से जाने जाते हैं। और जो अपनी परंपरा के अनुसार खेल, नाच-गाना, पशुपालन, भविष्य, वैद्यकी आदि के साथ गाँव-जंगल के संपर्क में घुमक्कड़ी करते आ रहे हैं वे 'घुमंतू जनजाति' कहलाती हैं। इन विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को उपरोक्त तीनों पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग) का लांछन लगा हुआ है। घुमंतू समुदाय कानूनन अपने नाम के आगे जाति और जनजाति का दर्जा पाई हुई है, फिर भी वह अनुसूचित नहीं मानी गयी/ न बनायी गयी। अब वह समाज की सबसे वंचित, उपेक्षित जातियाँ-जनजातियाँ मानी जाती है। जिन्हें अनुसूचि में शामिल करने का अधिकार अनुच्छेद 341 व 342 में दिया गया है। वह निम्न-

> भारतीय संविधान, अनुच्छेद 341 : अनुसूचित जातियाँ (1) राष्ट्रपति, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में और जहाँ वह राज्य है वहाँ उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात लोक अधिसूचना द्वारा, उन जातियों, मुलवंशों या जनजातियों, अथवा जातियों, मुलवंशों या जनजातियों के भागों या उनमें से यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए [यथास्थिति,] उस राज्य [या संघ राज्यक्षेत्र] के संबंध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा।

> अनुच्छेद 342 : अनुसूचित जनजातियाँ (1) राष्ट्रपति, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में और जहाँ वह राज्य है वहाँ उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात लोक अधिसूचना द्वारा, उन जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए [यथास्थिति,] उस राज्य [या संघ राज्यक्षेत्र] के संबंध में अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाएगा।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को संविधान में क्रमशः अनुच्छेद 341 व 342 के अधीन अनुसूचित प्रयोजनों के लिए, में परिभाषित किया है। वैसे अन्य पिछड़ा वर्ग की परिभाषा में संदिग्धता दिखाई देती है। सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से में पिछड़े वर्गों को रेखांकित करने के लिए राष्ट्रपति को अनुच्छेद 340 के अंतर्गत पिछड़ा वर्ग आयोग गठित करने की व्यवस्था की गयी। जो निम्न-

अनुच्छेद 340 : पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति-(1) राष्ट्रपति, भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किये जाने चाहिए उनके बारे में और उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किये जाने चाहिएं और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान किये जाने चाहिए उनके बारे में सिफारिश करने के लिए, आदेश नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(2)इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किये जाएंगे और जिसमें ऐसी सिफारिशें की जाएँगी जिन्हें आयोग उचित समझे।

(3)राष्ट्रपति, इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति, उस पर की गयी कार्रवाई को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद के प्रत्येक सदन के सक्षम रखवाएगा।

इस अनुच्छेद 340 के अंतर्गत पिछड़े वर्गों के लिए पहला आयोग सन् 1953 को काका कालेलकर की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया गया था। उसकी सिफारिशें 30 मार्च 1955 को राष्ट्रपति को प्रस्तुत की। दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग बी. पी मंडल की अध्यक्षता में 1979 ई. को नियुक्त किया गया था। इस आयोग ने अपनी सिफारिशें दिसंबर 1980 को राष्ट्रपति को प्रस्तुत की है। जिसे केन्द्रीय स्तर पर भारत सरकार द्वारा लागू होने में लगभग 47 वर्ष की अवधि लगी। सन् 1994 में बी.पी मंडल आयोग की सिफारिशें स्वीकार की। परंतु पिछड़े वर्गों के बीच जाति वर्गीकरण बहुत स्पष्ट नहीं है।

प्रमुखतः विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को कुछ राज्यों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में शामिल किया है, जबकि कुछ राज्यों में उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत शामिल किया गया है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ इनके साथ स्पर्धा नहीं कर पाती है या वह हमेशा पिछड़ जाती है। इसलिए जनजातियाँ अब भी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से वंचित रही हैं और इनमें से कई जनजातियाँ अपने मूलभूत अधिकारों से भी हाशिए पर हैं। इनका सबसे बड़ा मुद्दा पहचान का है। इन समुदायों के लोग प्रायः प्रस्थान करते रहते हैं, इसलिए इनका कोई स्थायी ठिकाना नहीं होता है। चूँकि अब कुछ समुदायों के कुछ परिवार बसे हुए हैं परंतु अधिकांश समूह को सामाजिक सुरक्षा का अभाव होता है। और उन्हें जमीन, आवास, रोज़ गार, राशन कार्ड, आधार कार्ड की आवश्यता है, ताकि समाज में उनकी पहचान बनी रहे। पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित रहते हैं। बता दें की इन समुदायों के अधिकांश लोगों के पास जाति-प्रमाणपत्र नहीं होता है, इसलिए वे सरकारी कल्याणकारी सुविधाओं का लाभ उठा नहीं पाते हैं। स्थानीय शासन और समाज में इन समुदायों के प्रति अपराधिक धारणाओं के कारण आज भी इन्हें पुलिस प्रशासन द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। इसलिए समाज में पहचान बनी रहने और रोज़ गार उपलब्ध कराने हेतु इन जनजातियों के स्त्री- पुरुषों को मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़ गार गारंटी' योजना द्वारा रोज़ गार देने की ज़रूरत है। जिन जनजातियों को जंगल द्वारा जड़ी-बूटी, सूखे फल-फुल तथा शिकार की पाबन्दी से वन प्रशासन के साथ सामंजस्य बनाने की आवश्यकता हैं। जिसे अगले उपाध्याय में आयोगों और समितियों द्वारा की गयी सिफारिशों माध्यम दर्शाया गया है।

5.2.3. आयोगों के प्रस्ताव और क्रियान्वयन

भारतीय समाज में विमुक्त जातियाँ और घुमंतू जनजातियाँ शामिल है। जिनमें से कुछ जातियों को अग्रेजी सरकार द्वारा बंदी बनाया गया था और जो बची हुई थी उन्होंने समाज में किसी-न-किसी रूप में अपना सहभाग निभाया। जिसमें गोपाल गाय पलने का काम किया, वैदू दवाई बनाने का कार्य किया, जोशी ज्योतिषी का काम किया, खेल, चमत्कार, भिक्षाटन करनेवाली जातियाँ शामिल हैं। परंतु भारत स्वतंत्रता के बाद देश सभी लोगों, समुदायों को आजादी मिली किंतु अंग्रेजों द्वारा बंदी बनायी गयी जातियों को स्वतंत्रता नहीं मिली थी। जिन्हें स्वतंत्रता दिलाने के लिए आयोग का गठन किया गया और अन्तः 31 अगस्त 1952 को 'विमुक्त' किया गया। परंतु उनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक विकास के लिए किसी भी सरकारी प्रावधान का गठन नहीं किया। परंतु बाद में उनके विकास हेतु तमाम समितियों और आयोगों

का गठन किया गया और उनमें से कुछ सिफारिशों को लागू किया तथा कुछ को नहीं किया। जिसे निम्नलिखित देख सकते हैं।

1.अंत्रोलीकर समिति, 1949

सन् 1948 में मद्रास प्रांत में 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' 1871 द्वारा अपराधी घोषित जनजातियों को निरस्त किया। इसी का आधार बनाकर मुंबई प्रांत की सरकार ने 'अंत्रोलीकर समिति' की स्थापना की। मुंबई क्षेत्र का कानून ख़त्म होगा इस भनक से 'अपराधी जनजाति' कॉलोनी में सुगबुगाहट शुरू होती है। कॉलोनी में अपराधी जनजातियों को ब्रिटिश शासन द्वारा दिए गए सुधार हेतु स्कूल, उद्योग, खेती, ऋण संस्था जैसी सुविधाओं पर धीरे-धीरे दबंग तथा राजनीतिक लोगों का वर्चस्व बढ़ गया। कॉलोनी के अपराधी जनजातियों का पुनर्वास और सुविधाओं पर अंत्रोलीकर समिति ने कहा कि-"सरकार को कानून निरस्त करने से पहले, निरस्त होने के बाद की परिस्थितियों पर विचार कर उनके पुनर्वास की सविधाओं का विस्तार देना था।"[300] प्रांत सरकार ने कानून तो निरस्त किया, परंतु अंग्रेजों द्वारा दी गयी सुविधाओं से दूर किया। इससे विमुक्त जातियाँ के सराय का स्थान नयी दमनकारी व्यवस्था ने ले ली।

2.अयंगर समिति, 1949

सन् 1949 में एम. ए. अयंगर (मद्भूषि अनंतशयनम् अयंगर) की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की गयी। उस समय भारत का संविधान भी बनकर तैयार था। उसकी शुरुआत ही 'हम भारत के लोग' से होती है और अनुच्छेद 15 भी धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करता है।' इसी सोच से राष्ट्र निर्माताओं ने पूरे देश में 'अपराधी जनजाति अधिनियम' के अंतर्गत बंधी हुई जनजातियों पर शोधकार्य शुरू किया। सन् 1950 में अपनी सिफारिशें तत्कालीन सरकार को प्रस्तुत की। जिसमें 'अपराधी जनजाति अधिनियम' निरस्त करने की माँग को मुख्य मुद्दा बनाया। समिति द्वारा उनके कल्याण और पुनर्वास के लिए पर्याप्त धन के आवंटन की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया और दस साल तक की अवधि का प्रस्ताव दिया।

---

[300] विमुक्तायन, लक्ष्मण माने, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई, प्र. आ- 1997, पृ.सं- 174

*कायदा रद्द करण्यापूर्वी रद्द होण्यानंतरच्या परिस्थितीचा विचार करुण सरकारने त्यांच्या व्यापक पुनर्वसनाची सोय करायला हवी होती.

भारत सरकार ने अयंगर समिति की कुछ सिफारिशों को स्वीकार किया । जिसका परिणाम 31, अगस्त 1952 को 'अपराधिक जनजाति अधिनियम-1871(Criminal Tribe Act-1871)' को निरस्त कर 'आदतन अपराधी अधिनियम-1952 (Habitual Offender Act-1952)' के तहत बंदिस्त जनजातियों को 'विमुक्त (De-Notified) किया गया। परंतु इसमें 'आदतन अपराधी' नाम की पूंछ छोड़ दी, वह अब तक इनका पीछा कर रही है।

3.काका कालेलकर आयोग, 1953

पिछड़ी जातियों के विकास हेतु काका कालेलकर की अध्यक्षता में सर्वप्रथम आयोग गठित किया। आयोग ने भारत के राज्यों को पिछड़े वर्गों के लिए क्या कार्यक्रम बनाये हैं, राज्य उनको किस तरह की सुविधाएँ प्रदान करता है, इस संदर्भ में जानकारी प्राप्त हेतु राज्य सरकारों को पत्र से अनुरोध किया। आयोग ने भी भारत भर पिछड़ी जातियों का सर्वेक्षण किया। अतः कालेलकर आयोग ने 30 मार्च 1955 को अपनी सिफारिशें तत्कालीन केंद्र सरकार को सौंप दी। इस सिफारिशों का समाज के कुछ बुद्धिजीवी लोगों ने विरोध दर्शाया और तत्कालीन प्रधान मंत्री को इस रिपोर्ट का संज्ञान लेने का प्रस्ताव किया । बी. बी. सी. हिंदी के अनुसार- "कालेलकर रिपोर्ट जब आई तो बाकी लोग चाहते थे कि आरक्षण के लिए जाति के आधार लेने चाहिए। 1955 ई. से लेकर 1978 ई. तक मामला इसी बात पर रुका रहा कि जाति के आधार पर हमें आरक्षण देना चाहिए या नहीं।"[301] अतः प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने सामाजिक सद्भाव को ध्यान में रखते हुए काका कालेलकर आयोग की सिफारिशों को लागू नहीं किया।

4.बी. डी. देशमुख समिति, 1961

सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद स्वयं की कार्यप्रणाली निर्माण हेतु संविधान का निर्माण किया। जिसमें देश में दबी-कुचली, वंचित, अछूत जाति-जनजातियों को अन्यों से समान लाने के लिए विशेष प्रावधान दिए गए। जिनमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों से ओझल रही। उनके लिए पिछड़े वर्गों की श्रेणी में रखते हुए संविधान के 'अनुच्छेद 340' अनुसार उनकी दशा को सुधारने के लिए आयोग निर्माण की बात की और 'अनुसूचित' करने की बात को किनारे किया गया । बाद में इसी अनुच्छेद को आधार बनाकर महाराष्ट्र सरकार ने विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों बारे में विचार-विमर्श किया।

---

[301] https://www.bbc.com/hindi/regonalnews/story/2005/09/050908-mandal-devdutt (07.04.21, 1.23pm)

1, मई 1960 स्वतंत्र महाराष्ट्र निर्माण के बाद पारंपरिक प्रवृत्ति से घूमते आ रही घुमंतू जनजातियों और 1952 ई. में 'आदतन अपराधिक अधिनियम' द्वारा 'विमुक्त' हुई विमुक्त जातियों के लिए सरकारी सेवा में आरक्षण देने के उद्देश्य से बी.डी. देशमुख समिति का गठन किया। बी.डी. देशमुख समिति द्वारा विमुक्त जातियों और घुमंतू जनजातियों की जनसंख्या का आंकड़ा केंद्रित करके आरक्षण संबंधी प्रावधान किया। डॉ. अशोक पवार के अनुसार-"1960 ई. में गठित 'विशेष कार्यकारी अधिकारी' की रिपोर्ट के अध्ययन से महाराष्ट्र सरकार द्वारा नवंबर 1961 में विमुक्त जाति-घुमंतू जनजातियों की सूची प्रकाशित की गयी। अपराधी जनजाति अधिनियम-1871 अनुसार गुनहगार समझी गयी विमुक्त जातियों व घुमंतू जनजातियों को रियायतें शामिल की और उनकी जनसंख्या के अनुसार सेवाओं में 3 % आरक्षण लागू किया गया।"[302] सन् 1961 की विशेष कार्यकारी अधिकारी रिपोर्ट का संज्ञान लेकर सन् 1964 में बी.डी. देशमुख समिति अपनी सिफारिशें राज्य सरकार को सौंपी। महाराष्ट्र सरकार ने सन् 1979 में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को पिछड़ा वर्ग में 3 % आरक्षण लागू किया। महाराष्ट्र पिछड़े वर्गों को आरक्षण मुहैया करने वाला भारत का पहला राज्य बना है।

5.लोकुर समिति, 1965

लोकुर समिति का गठन सन् 1965 में अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित करने के विचार से किया गया। समिति द्वारा उनकी पहचान के लिए पाँच मापदंडों की सिफारिशें कीं। जिनमें-आदिम लक्षण, विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक अलगाव, बाहरी समुदायों के संपर्क में संकोच तथा आर्थिक रूप से पिछड़ापन की सिफारिशें की थी। हालाँकि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ संविधान की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की दोनों श्रेणियों में पाई जाती है। बेशक इस समिति की योजना अनुसूचित जनजातियों के लिए की गयी हों, परंतु यह भी स्पष्ट है की विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के पास भी इसकी कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। जो प्रायः अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों से जुडी होती है। आजीविका, रोज़ गार शिक्षा, स्वास्थ्य, अनैच्छिक विस्थापन और कानूनी उपेक्षा देखी जा सकती है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए बनायीं गयी अधिकांश कल्याणकारी योजनाएँ इन जातियों तक

---

[302] भारतीय भटक्यांचा विमुक्तनामा : रेणके आयोग वस्तुस्थिति व विपर्यास, अशोक पवार, सुनीता पवार, लोकपाल पब्लिकेशन, औरंगाबाद, प्र. आ- 2013, पृ.सं- 23-24

*1960 साली नेमण्यात आलेल्या विशेष कार्यकारी अधिकारी यांच्या अहवालाचा अभ्यास करून शासनाने नोव्हेंबर 1961 मध्ये विमुक्त जाति व भटक्या जमाती यांची यादी प्रसिद्ध केली. गुन्हेगार जमाती कायदा-1871 नुसार गुन्हेगार ठरलेल्या जमाती या विमुक्त व भटक्या जमाती यामध्ये सवलतीसाठी समाविष्ट करण्यात आल्या आणि त्यांच्या लोकसंख्या प्रमाणानुसार सेवेत 3 टक्के आरक्षण ठेवण्यात आले.

नहीं पहुँच पाई । इसलिए इन जाति-जनजातियों को अलग विकासात्मक कार्यक्रम का सुझाव दिया गया । इन परिस्थितियों को चित्रित कर दर्शाया गया कि समाज में स्थित बिखरी हुई 'विमुक्त एवं घुमक्कड़ जनजातियों' की विस्तृत जाँच कर जल्द-से-जल्द न्याय देने की ज़रूरत है ।

6.बी.पी. मंडल आयोग, 1979

आजादी के बाद 'पिछदे वर्गों के लिए बना दूसरा आयोग है । यह आयोग आपातकाल के बाद सन् 1977 में बनी 'जनता पार्टी' की सरकार द्वारा बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री बी.पी. मंडल (बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल) की अध्यक्षता में 1979 ई. में बी.पी.मंडल नाम से आयोग का गठन हुआ । आयोग ने संपूर्ण भारत की पिछड़ी जातियों का सर्वेक्षण किया । देश लगभग 3000 जातियों को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ापन और गरीबी आधारित बाधाओं की वजह से पिछड़ा घोषित कर 31 अगस्त 1980 को अपनी सिफारिशें भारत सरकार को सौंपी ।

जिसमें निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें की गयी थी-पिछड़ों के लिए सरकारी सेवाओं में 27 % आरक्षण, प्रोंन्नात्ति में पिछड़ों को आरक्षण, पिछड़ों का कोटा न भरने पर तीन साल खली रखने की संस्तुति, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की तरह ही आयु सीमा में छूट देना, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की तरह ही पदों के प्रत्येक वर्ग के लिए संबंधित पदाधिकारियों द्वारा रोस्टर प्रणाली अपनाने का प्रावधान, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में आरक्षण योजना की सिफारिश, पिछड़े वर्ग को फ़ीस राहत, वजीफ़ा, छात्रावास, मुफ़्त भोजन क़िताब, कपड़ा उपलब्ध कराने की सिफारिश, वैज्ञानिक, तकनीकी, व्यवसायिक संस्थानों में पिछड़ों की 27 % आरक्षण देनी की सिफारिश, पिछड़े वर्गों में भूमिहीन मजदूरों को भूमि देने की सिफारिश, पिछड़े वर्ग के छात्रों को विशेष कोचिंग का इंतजाम करने की सिफारिश, पिछड़ों की तरक्की के लिए पिछड़ा वर्ग विकास निगम बनाने की सिफारिश, राज्य व केंद्र स्तर पर पिछड़े वर्ग का अलग मंत्रालय बनाने की सिफारिश, पिछड़ा वर्ग आयोग बनाने की सिफारिश की । परंतु तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और उनके बाद बने प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू नहीं किया ।

अतः राजीव गांधी की कांग्रेस सरकार के बाद वि.पी. सिंह की सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशें 7 अगस्त 1990 को आंशिक रूप से लागू किया । जो सुप्रीम कोर्ट में आवाहन बन गयी । लंबी लड़ाई के बाद 16, नवंबर 1992 को क्रीमीलेयर की बाधा के साथ मंडल आयोग की सिफारिशों को आंशिक रूप से लागू करने का फैसला हुआ । पिछड़े वर्गों के आरक्षण को लेकर

मुक्त ज्ञानकोश में स्पष्ट किया कि-“अन्य पिछड़ा (ओबीसी) एक वर्ग है, यह सामान्य वर्ग यानी जनरल में ही सम्मिलित होता है पर इसमें आने वाली जातियाँ गरीब और शिक्षा के रूप में पिछड़ी होती हैं, यह भी सामान्य वर्ग का भाग है । जो जातियाँ वर्गीकृत करने के लिए भारत साकार द्वारा प्रयुक्त एक सामूहिक शब्द है । यह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के साथ-साथ भारत की जनसंख्या के कई सरकारी वर्गीकरण में से एक है । ‘भारतीय संविधान’ में ओबीसी ‘सामाजिक और शैक्षिक’ रूप से पिछड़े वर्गों के रूप में वर्णित किया जाता है, और भारत सरकार उनके सामाजिक और शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए हैं- उदाहरण के लिए ओबीसी सार्वजानिक क्षेत्र के रोज़ गार और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 27 % आरक्षण के हक़दार हैं ।”[303]

भारत सरकार द्वारा मंडल आयोग के निर्णय (22, मार्च 1994) अनुसार महाराष्ट्र में अन्य पिछड़ा वर्ग को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को बी.डी देशमुख समिति (1979) ने दिए 3 % आरक्षण को मंडल आयोग ने व्यापक किया । महाराष्ट्र में पिछड़े वर्ग के 27 % आरक्षण का वितरण किया । वह निम्न-

◈अन्य पिछड़ा वर्ग- 16 %

◈विमुक्त जाति और घुमंतू जनजाति- 11 %

1) विमुक्त जाति-अ 3 % (14 जातियाँ शामिल)

2) घुमंतू जनजाति-ब 2.5 % (37 जनजातियाँ शामिल)

3) घुमंतू जनजाति-क 3.5 % (1 जनजाति शामिल)

4) घुमंतू जनजाति-ड 2 % (1 जनजाति शामिल)

कुल 11 % आरक्षण और 53 विमुक्त-घुमंतू जनजातियाँ

इस प्रकार महाराष्ट्र में अन्य पिछड़ा वर्गों के आरक्षण की पृथक किया । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की 53 जातियों को 11 % आरक्षण वितरित किया । परंतु अब भी यें इन जनजातियों के कुछ समुदायों तक ही सीमित है । उसकी यथास्थिति महाराष्ट्र के अलावा संपूर्ण

---

[303] https://hi.wikipedia.org/wiki/अन्य_पिछड़ा_वर्ग, (08/04/2021, 05.19 pm)

भारत वर्ष में बनी हुई है । जिसे मद्देनज़र रखते हुए सन् 2005 में राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध घुमंतू जनजाति आयोग अर्थात रेणके आयोग तथा सन् 2015 में राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध घुमंतू जनजाति आयोग अर्थात इदाते आयोग का गठन किया गया ।

7.वेंकटचलैया आयोग, 2002

सन् 2002 में वेंकटचलैया आयोग ने अपनी रिपोर्ट में दर्शाया कि, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों सूची में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ शामिल हैं । परंतु सरकारी क्रमिक योजनाओं में विकास के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों को विशेष चित्रित किया गया । उपर्युक्त तीनों वर्गों में शामिल विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को इंगित करते हुए आयोग का कहता था कि इन समूहों की निरंतर दुर्दशा देश के नियोजन, वित्तीय संसाधनों के आवंटन, बजट और प्रशासन के लिए विफलता का एक स्पष्ट चित्र है । जिसे गंभीरता से लेने की ज़रूरत है । जनादेश का पालन करने के लिए अनुच्छेद 46 के तहत 'अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की वृद्धि' की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । इस प्रकार आयोग ने विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थितियों के वृद्धि की शिफारिशें की ।

8.रेणके आयोग, 2005

2, फरवरी 2005 में बालकृष्ण रेणके की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू एवं अर्द्ध घुमंतू जनजाति आयोग' अर्थात 'रेणके आयोग' का गठन भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय, दिल्ली द्वारा किया गया था । आयोग ने अपने सर्वेक्षण में भारत के प्रमुख राज्यों का दौरा किया । आयोग ने अपने पारदर्शी निरिक्षण में पाया कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की पहचान का मुद्दा गंभीर है । ये जनजातियाँ संविधान की विशेष अधिकार की तीनों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग) सूचियों में बिखरी हुई है, इनके भविष्य में किसी भी अस्पष्टता से बचने और संपूर्ण देश में घुमक्कड़ जनजातियों को एकरूपता में बनाये रखने के लिए इनके पहचान को व्यापक रूप में परिभाषित करने की आवश्यकता है । सर्वप्रथम इन जनजातियों की जनगणना करना आवश्यक है । एक बार इन घुमंतू जनजातियों की पहचान हो जाने पर वे कल्याणकारी योजनाओं से लाभान्वित हो सकेंगे ।

रेणके आयोग ने बताया कि जिन विमुक्त, घुमंतू एवं अर्द्ध घुमंतू जनजातियों का अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों के रूप में वर्गीकृत किया गया है, वे आरक्षण नीति से लाभान्वित नहीं हो पाए हैं या उनकी बराबरी नहीं कर पाए हैं। आयोग के अनुसार देश की लगभग 10 प्रतिशत आबादी को 150 विमुक्त जातियों, 500 घुमंतू जनजातियों के साथ निरुपित किया जाता है। आयोग ने इन जातियों की एक राज्यवार सूचि तैयार की जो विमुक्त और घुमंतू जनजातियों से संबंधित उपजातियों की पहचान की जिन्हें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग में समावेश नहीं किया। उनका नया वर्ग बनाकर उनके लिए अलग से 10 प्रतिशत आरक्षण की माँग की।

आयोग ने संपूर्ण देश में 18 राज्यों, 89 जिलों और 277 बस्तियों में 841 समुदायों का निरिक्षण किया है। आयोग अपनी सिफारिशों में 14 व्यापक श्रेणी में 75 सिफारिशें सुझाई, जिसमें भारतीय संविधान में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का उल्लेख न हो कर अन्य पिछड़ा वर्ग में है, इनके नाम को स्वतंत्र रूप से शामिल कर, स्वतंत्र बजेट, अलग मंत्रायल, देहाती समुदायों के लिए विशेष योजनाएँ, सरकारी नौकरी में आरक्षण, आश्रम स्कूल, मानवाधिकार तथा महिला आयोग में प्रतिनिधित्व के साथ बी.पी.एल राशन कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, आधार कार्ड, आवास एवं रोज़ गार के साथ कला, संस्कृति और विरासत का संरक्षण और संवर्धन का प्रावधान शामिल है। इसे समाज का सबसे वंचित तबका माना गया है। आयोग ने 30, जून 2008 को अपनी सिफारिशें केंद सरकार को सौंप दी है परंतु अब तक इन माँगों/शिफरिशों को किसी भी सरकार द्वारा कार्यवाही लागू नहीं किया गया।

9.इदाते आयोग, 2015

'राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजाति आयोग' अर्थात 'इदाते आयोग' का गठन जनवरी 2015 में हुआ। जिसके अध्यक्ष भीकू रामजी इदाते, सदस्य सचिव बी.के. प्रसाद, सदस्य श्रवण सिंह राठोड थे। भारत के संपूर्ण राज्यों का 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों' के लिए दौरा करने वाला प्रथम आयोग है। जिसके अनुसार संपूर्ण भारत में विमुक्त जातियों की संख्या 425 तथा घुमंतू जनजातियों की संख्या 810 बताई गयी है। आयोग ने इन समुदायों को राज्यवार सूची के अनेक श्रेणियों में पाया है, वह विशेष पिछड़ा वर्ग (SBC), सबसे पिछड़ा वर्ग (MBC), विमुक्त समुदाय (DNC), घुमंतू जनजाति (NT), अत्यंत पिछड़ा वर्ग (EBC), विशेष कमज़ोर जनजाति समूह (PVTG) है। इन्हीं में से ऐसे कुछ समुदाय हैं वे किसी में भी शामिल नहीं है, जिनमें विमुक्त जाति के 94 समुदाय, घुमंतू जनजाति के 173 समुदाय और अर्द्ध-घुमंतू जनजाति

के 2 समुदाय वंचित हैं। संपूर्ण भारत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो विमुक्त जातियों 35 प्रतिशत हैं, घुमंतू जनजतियाँ 64 प्रतिशत हैं और अर्द्ध-घुमंतू 1 प्रतिशत पाई गयी हैं। आयोग ने इन समुदायों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक स्थितियों का सर्वेक्षण कर कहा है कि यह भारत की सर्वाधिक वंचित और उपेक्षित जाति-जनजातियाँ हैं।

इस आयोग ने पहले गठित आयोगों की अपेक्षा विस्तृत और अधिक राज्यों का सर्वेक्षण किया है। आयोग ने अपनी 20 सूत्रीय सिफारिशों में प्रथम इन समुदायों के लिए स्थायी आयोग के गठन की माँग किया है। जिसमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति के प्रभावशाली नेता की अध्यक्ष और भारत सरकार के सचिव या अवर सचिव स्तर के सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी को आयोग का सचिव बनाया जाए। ऐसे दो व्यक्तियों को सदस्य बनाया जाए जो प्रशासनिक वैज्ञानिक समाजशास्त्री या पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ता हों। ऐसे बनाये गए आयोग को वैधानिक दर्जा दिया जाए और अध्यक्ष सदस्यों का कार्यकाल उपयुक्त रूप से निर्धारित किया जाए। आयोग को विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के जवाबी वक्तव्य और शिकायतें सुनने का अधिकार हों।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के अधिकांश समुदाय किसी भी वर्ग के अंतर्गत नहीं है जो हैं भी उन्हें विभाग और निदेशालय से कोई लाभ नहीं मिलता है, इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए प्रत्येक राज्य में पृथक विभाग और शिक्षा निदेशालय विभाग का गठन किया जाए। जो समुदाय आरक्षण के लाभ से वंचित है उन्हें चिन्हित कर पिछड़ा वर्ग के प्रथम श्रेणी में शामिल किया जाए। रोज़ गार एवं सेवाओं में आरक्षण के लाभ दिलाने हेतु पिछड़ा वर्ग में उपश्रेणियों में विभाजित करें ताकि वंचित समुदायों को भी आरक्षण का लाभ मिलें।

इन समुदायों की पहचान हेतु सूचीकरण एवं प्रत्येक राज्य में उनको परिभाषित करने की आवश्यकता है। इनके संख्या की गणना करके उनकी संख्या को ज़ाहिर करना ताकि उनके विकास एवं उत्थान के लिए उचित योजनाएँ बनायीं जा सकें। इनके सामाजिक उत्पीड़न और बहिष्कार निवारण के लिए संवैधानिक संरक्षण और विधिक सुरक्षा की आवश्यकता है। इसलिए इनके 'अत्याचारों का संरक्षण अधिनियम' (PROTECTION OF ATROCITIES ACT) के दायरे में लाया जाए। कलंकीकरण एवं उत्पीड़न से बचाव के लिए भारत स्वतंत्रता के बाद 1952 में 'विमुक्त' कर लागू किये 'आदतन अपराधी अधिनियम' को ख़त्म किया जाए। ताकि समाज में इनके प्रति और स्कूल में बच्चों के प्रति देखने का दृष्टिकोण बदलें। सामान्य जनता, पुलिस प्रशासन और मिडिया के पास इनके बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है इसलिए समाज में

इन समुदायों को पूर्वाग्रह की दृष्टि से देखा जाता है, इसके निवारण के लिए रेडिओ टी.वी. जैसे प्रसार माध्यमों से प्रचार-प्रसार करें और इनके इतिहास को पाठ्यक्रम में शामिल करें।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को मुख्यधारा में जोड़ने के लिए जरुरी शिक्षा उपलब्ध किया जाए। उनके लिए निशुल्क शिक्षा, पुस्तकें, छात्रवृत्ति, भोजन दिया जाए। माता-पिता को प्रेरित किया जाए कि वे अपने बच्चों को स्कूल में ज़रूर भेजें। स्वास्थ्य हेतु बच्चों तथा स्त्रियों को दवाएं एवं पोषक आहार का वितरण सुनिश्चित किया जाए। महिला सशक्तिकरण के लिए इन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वरोज़ गार हेतु प्राथमिक के आधार पर ऋण उपलब्ध कराया जाए। समुदाय के स्त्री-पुरुषों को रोज़ गार उपलब्ध करने हेतु उनके कौशल का विकास किया जाए।

इन समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित एवं संवर्धित किया जाए। इन समुदायों के द्वारा उत्पादित कलाकृतियों एवं घरेलू उपयोगी सामान की बिक्री के लिए कारगर उपाय किये जाए। वन क्षेत्रों में निवासरत समुदायों को प्रायः अधिकारीयों के उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। इसलिए आधिकारियों को इसके लिए संवेदनशील बनाना होगा। 'अनुसूचित जनजाति अधिनियम' 2006 का विस्तार कर घुमंतू जनजातियों को शामिल किया जाए। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए भूमि और आवास का प्रश्न बार-बार सामने आता है। इसलिए वे सड़कों के किनारें, रेल स्टेशनों और सरकारी जमीनों पर अस्थायी झोपड़ियों में रहते दिख जाते हैं। उन्हें जमीन के पट्टे उपलब्ध किये जाए और आवास हेतु अनुदान उपलब्ध किया जाए।

अतः आयोग द्वारा अपनी सिफारिशें सामाजिक न्याय एवं अधिकारिकता मंत्रालय, भारत सरकार को 8 जनवरी 2018 सौंपी गयी है। सामाजिक न्याय तथा अधिकारिकता मंत्रालय ने इदाते आयोग की 20 सूत्री सिफारिशों को संबंधित 22 मंत्रालय, आयोगों, विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के विशेषज्ञों एवं समस्त राज्य सरकारों द्वारा राय माँगी है। अब तक तीन साल से अधिक समय बिता है, परंतु सरकार ने आयोग की सिफारिशें लागू करने हेतु कोई निर्णय नहीं दिया। आशा है कि वर्तमान सरकार इदाते आयोग लागू करके समाज के सबसे वंचित और उपेक्षित समुदायों के साथ न्याय करेगी।

छटवां अध्याय

विवेच्य विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का शिल्प विधान

साहित्य में शिल्प का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि साहित्यकार अपने विचारों को भाषा के माध्यम से किसी दृश्य विशेष का, पात्रों के व्यवहार का अथवा उनके बातचीत का शब्दगत चित्र प्रस्तुत करके अपनी रचना सामग्री को कार्यान्वित करता है । इस प्रस्तुतीकरण में साहित्यकार जिन उपादान, प्रक्रिया, ढंग व कौशल्य से अनुभवों को चित्रित करता है । वह शिल्प कहलाता है ।

हिंदी कोश अनुसार "शिल्प का अर्थ है, हस्त-कौशल्य, कारीगरी, कला ।"[304] शिल्प के लिए अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द का प्रयोग किया जाता है । शिल्प का पर्याय अंग्रेजी 'क्राप्ट' शब्द है, जिसका अर्थ 'रचना कौशल' है । अंग्रेजी 'क्राप्ट' शब्द ही वास्तव में 'शिल्प' शब्द का पर्याय बन सकता है । दोनों शब्दों में पर्याप्त समानता है । अंग्रेजी शब्द कोश के अनुसार 'टेकनीक' का अर्थ है-"तकनीक, प्रविधि, शिल्प-विधान, कला, प्रवीणता ।"[305] दूसरे कोश के अनुसार (Technique) का अर्थ है-"शिल्प-विधि, कौशल्य निपुणता ।"[306] निर्माता, रचयिता जितना कुशल होगा, उसकी कृति उतनी ही सुंदर होगी, चाहे वह कृति किसी भी कार्यक्षेत्र से हो । इस प्रकार शिल्प का संबंध निर्माण कौशल से है ।

6.1. भाषागत विशेषताएँ

भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं और इसके लिए हम वाचिक ध्वनियों का प्रयोग करते हैं । भाषा, मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों इत्यादि का वह समूह है जिनके द्वारा मन की बात व्यक्त की जाती है । किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वर एक व्यवस्था में मिलकर एक संपूर्ण भाषा की अवधारणा बनती है । व्यक्त ध्वनि का सामूहिक रूप सहायक बनकर किसी समाज या देश के लोगों के बीच अपने

---

304 हिंदी-हिंदी शब्दकोश, संपा. डॉ. द्वारकाप्रसाद, पृ.सं- 747

305 मानक अंग्रेजी शब्द कोश, संपा. सत्यप्रकाश तथा बलदेव प्रसाद, पृ.सं-1390

306 अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश, संपा. फादर कामिल बुल्के, पृ.सं- 721

मनोदित विचार तथा भाव व्यक्त करते हैं । अर्थात व्यक्ति विशेष के लिखने व बोलने का ढंग भाषा कहलाता है ।

भाषा साहित्य का मूल उपकरण माना जाता है । भाषा के माध्यम से ही साहित्यकार पाठकों तक पहुँचता है । भाषा रचनाकारों की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है । कथा-साहित्य में भाषा का महत्व सर्वाधिक है । रचना प्रक्रिया के अवधि में कथाकार सहज भाव से भाषा से जुड़ जाता है और भाषा के माध्यम से उसका कृतित्व उद्घाटित होता है इसलिए अंततः भाषिक कला भी सिद्ध होती है । जब किसी वर्ग विशेष से कोई रचनात्मक व्यक्ति साहित्य में प्रवेश करता है तो अकेला ही प्रवेश नहीं करता, बल्कि उसके साथ उसका परिवेश, संस्कार, क्षोभ, पीड़ा, आक्रोश और समाज साहित्य में प्रवेश करता है । यहाँ स्पष्ट कर देने कि आवश्यकता है कि दलित और घुमंतू समुदायों की आत्मकथा लेखन में सामाजिक समस्याओं के साथ भाषा में भी कुछ हद तक उभयनिष्ठता दिखाई देती है । यह बात अलग दिखाई पडती है कि घुमंतू जनजातियों में हर समुदाय की सांकेतिक बोली होती है । इसलिए 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों' के आत्मकथा की भाषा भी अपने आप में एक समाज की बुराइयों-अच्छाइयों को समेटी हुई है । दलित साहित्य की भाषा पर विचार करते हुए देवेंद्र चौबे लिखते हैं-"उनकी (दलितों) भाषा जिंदगी की भाषा इसलिए लगती है कि वह आत्मकथात्मक शैली में रची हुई होती है । यहाँ एक बात और गौर करने के लायक है कि दलित कहानीकारों गैर दलित कथाकारों की कहानियों की भाषा में फर्क दिखाई देता है उसके कारण क्या है ? इसे प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में उद्धरणों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है ।"[307]

इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने विचार दलित 'साहित्य के सौंदर्यशास्त्र' में व्यक्त करते हैं-"कुछ आलोचक दलित साहित्य में गंदी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर संकेत करते हैं । उन्हें लगता है साहित्य का पाठ 'पवित्र' होना चाहिए । भले ही उसमें बनावटी भाषा, जो अभिजात्य संस्कारों से रची-बसी हो, का प्रयोग करना पड़े । यह धारणा उचित नहीं है क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता । वह जीवन के कटु यथार्थ से रूबरू होता है ।"[308] दलित

[307] आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, देवेंद्र चौबे, ओरियंटल ब्लैकस्वान प्रा.लि., नई दिल्ली, प्र.सं- 2009, पृ. सं- 121

[308] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि,. नई दिल्ली, प.छा.सं- 2014, पृ. स- 81

साहित्य अश्लील भाषा का प्रयोग नहीं करता है । इस अश्लीलता की बातों को दलित साहित्य के लेखकों ने भी नकारा है । दलित साहित्य में आनेवाले अश्लील शब्द या गाली-गलौज का मुख्य कारण वह जिस परिवेश में रह रहा है, वह अश्लीलता उस परिवेश में है । लेखक उस अश्लीलता को कैसे नकार सकता है ? यथार्थ का संपूर्णतः में चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है । दलित साहित्य तथा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का ध्येय किसी समाज या वर्ग को अश्लील गालियाँ देना नहीं है । बल्कि इस व्यवस्था में स्थित तथाकथित प्रतिष्ठित, बुद्धिजीवी तथा मध्यवर्ग को इनके दुखों की कल्पना ही नहीं है । इसलिए इनकी व्यथा को सबके सम्मुख प्रस्तुत करने के उद्देश्य से यह लेखन किया है । यह साहित्य न सवर्ण विरोधी है और न उनको गालियाँ देने के पक्ष में । वह व्यवस्था के सामने अपने दुःख और अन्याय के कारण जीवन जीने के लिए विवश है । इस व्यवस्था के अनुयायी सवर्ण सभ्य समाज के लोग जिन असभ्य शब्दों का प्रयोग अपमान के लिए करते हैं, यदि पिछड़े समाज लेखक उन शब्दों को साहित्य के माध्यम से जस-के-तस वापस देना चाहते हैं तो अश्लील कैसे हो सकता है ?

डॉ. धर्मवीर कहते हैं-“वे जिस परिवेश में जीवन जीते हैं, वहाँ गन्दी गालियों में नंग-धडंग घूमते बच्चे हैं, दूषित वातावरण है, जिसे पारम्परिक आलोचक नहीं जानते, उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा ।”[309] दरअसल बात यह है कि सवर्ण समाज को गलियाँ देने और खाने में आपत्ति नहीं जताते हैं लिखने में है ।

इस संदर्भ में ‘दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र’ में शरणकुमार लिंबाले की भाषा स्वीकरोक्ति यहाँ उल्लेखनीय है- “दलित लेखकों ने अपने लेखन के लिए ‘प्रमाण भाषा’ की बजाय टोली की भाषा का प्रयोग किया है । ‘प्रमाण भाषा’ का एक ‘दर्जा’ होता है । इस ‘प्रमाण भाषा’ का ‘दर्जा’ दलित लेखकों ने नकारा है । समाज में शिष्ट लोगों द्वारा लेखन के लिए मान्यता प्राप्त भाषा के रूप में ‘प्रमाण भाषा की ओर’ देखा जाता है । यह शिष्ट मान्यता दलित लेखकों ने नकारी है क्योंकि यह शिष्ट मान्यता ‘एक दंभ से’ भरी हुई है ।”[310] इस तरह की प्रमाण भाषा का प्रयोग विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में दिखाई देती है । इसमें कोई संदेह की बात नहीं है । आत्मकथाकारों जिस भाषा का प्रयोग किया है वह साधारण जन-समाज की बोली भाषा है । मूल रूप से आत्मकथाओं की भाषा मराठी है । अनुवादक विद्वान आत्मकथाओं का

---

[309] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प.सं- 2009, पृ.सं-116

[310] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनु- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं-2016, पृ. सं- 45

हिंदी में रूपांतरण (अनुवाद) करते समय परिस्थितियों एवं प्रसंग के अनुसार अनेक भाषाओं के शब्दों का उपयोग किया है। जिनमें 'पराया' का अनुवाद दामोदर खडसे, 'उचक्का' का अनुवाद डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, 'देराडंगर' का अनुवाद प्रो. अर्जुन चव्हाण, 'बेरड़' का अनुवाद डॉ. गुलाबराव हादे और 'छोरा कोल्हाटी का' का अनुवाद अरुंधति देवस्थले ने किया है। क्रमशः 'पराया' की साहित्यिक भाषा हिंदी है। जिसमें चित्रित पश्चिम महाराष्ट्र प्रादेशिक परिवेश, समाज संस्कृति एवं ग्रामीण भाषिक भूगोल हमारे सामने उभरता है। 'उचक्का' की साहित्यिक भाषा हिंदी है। लेखक की मातृभाषा वडारी बोली (तेलुगु) होने के कारण आत्मकथा में तेलुगु भाषा का प्रयोग किया है। 'बेरड़' की साहित्यिक भाषा हिंदी है। लेखक की मातृभाषा कन्नड़ होने के कारण आत्मकथा में कन्नड़ भाषा का शब्द प्रयोग किया है। 'देराडंगर' की साहित्यिक भाषा हिंदी है। लेखक की भाषा पश्चिम महाराष्ट्र की ग्रामीण संवादात्मक शैली है और लेखक के सगे-संबंधी कर्णाटक के होने के कारण आत्मकथा में कन्नड़ भाषा का शब्द प्रयोग किया है। 'छोरा कोल्हाटी का' की साहित्यिक भाषा हिंदी है। संवादों में ग्रामीण मराठी भाषा का प्रयोग किया है। आत्मकथाओं में भाषा के तीन स्तर दिखाई देते हैं। आत्मकथाओं की साहित्यिक भाषा हिंदी, लेखक के क्षेत्र की बोली भाषा और सांकेतिक बोली का प्रयोग किया गया है।

6.1.1. बिंब विधान

'बिंब' अंग्रेजी के 'इमेज' (image)शब्द का हिंदी रूपांतरण है। "इसका अर्थ है किसी पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना अथवा मानसी प्रतिकृति उतारना। 'बिंब' एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है जो सिर्फ हमारी चक्षु-इंद्रिय को ही तृप्त नहीं करता, अन्य इद्रियों की भी भूख भी मिटाता है। भाव जगाना उसका प्रमुख कार्य है।"[311] रचनाकार भी यथार्थ जगत को जैसा देखता है और उस यथार्थ जगत के संदर्भ में अपनी कल्पना को मिश्रित करके एक आकृति अपने दिमाग में खींचता है, उसे वह अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। यह चित्रबद्ध बिंब आत्मकथाकारों ने अतीत की घटनाओं, परिस्थितियों और अनुभूत सन्दर्भों को आकार-प्रकार के साथ शब्द-चित्रों के रूप में उपस्थित करता है।

बिम्बधर्मिता विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों और दलित साहित्य स्थितियों को स्पष्ट रूप से उजागर करने में सक्षम हैं। जिसमें गरीबी, भुखमरी, बेरोज़ गारी, बेबसी और अस्थिरता के बिम्ब उभर पाए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं-"दलित कविता में बिम्ब दलित जीवन की

[311] हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरकांत, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, चौ.सं-2016, पृ.सं-247

त्रासदी और अनेक यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता में अंधेरा आस-पास के परिवेश में गंगदी की सड़ांध, सीलन भरे तंग मकानों में सिसकती जिंदगी दलित जीवन के यथार्थ है जो अनेक जीवन का अविभाज्य घटक बन गए हैं। उन वस्तुओं को दृश्य बिम्ब के स्थान पर रखकर दलित कवि इन्हीं वस्तुओं में अपने जीवन के प्रतिबिम्ब ढूँढता है।"[312] हम कविता के साथ आत्मकथा के बिम्ब पर बात करें तो विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में भी उसी तरह के जीवन को बिम्बों के माध्यम से प्रयोग किया गया है। प्रत्येक दलित, विमुक्त घुमंतू आत्मकथाकारों ने अपने आत्मकथा में शोषण, उत्पीड़न, उपेक्षा एवं दयनीय हालत को बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन आत्मकथाओं में अलग-अलग दिखाई देते हैं। जो निम्नलिखित हैं-

लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ परिस्थिति के अनुरूप बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। एक बार शौच के लिए आयी स्वर्ण स्त्रियाँ भाभी को गंदी बाते सुनाई दे इसीलिए ज़ोर-ज़ोर से बातें करती हैं तभी का प्रतिबिम्ब प्रयोग हुआ है-"उसकी पहली पत्नी- भाभी- मुझे कभी-कभार मारती थी, इसलिए यह नयी भाभी अच्छी लगती। शौच को आई औरतें जब कुछ भी बोलती तब नयी भाभी को नकी गंदी बातें सुनाई न दे, इसलिए में यह कहकर की छत पर चढ़ने लगता कि "कद्दू की बेल सूख गयी है क्या, इसे देखकर आता हूँ"। अथवा कभी कहता, "अरे, कद्दू बढ़े हो गए हैं, या सूखे हैं।" छत पर जाकर मैं ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगता। घर के पिछवाड़े में शौच को बैठी औरते मेरी आवाज सुनकर सजग हो जाती। कोई पुरूष आया है, के एहसास से एक दम खामोश हो जाती। वे फिर इस ओर न आए, इसलिए मैं छत से कद्दू के बीज, छोटी डंटल उन औरतों की ओर फेंकता। औरतें हड़बड़ाकर उठती, गालियाँ देती हुई निकल जाती।"[313]

झरने से पानी पीने के बाद गधे रास्ता पार करने निकल पड़े। पलटन दरवाजे से सारे ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और नीला-घना आकाश। तर्जनी-से लोग लगते कुरवली बाँध से और माचिस के बराबर घर दिखाई देते। इसके बीच हरे भरे खेत दूर-दूर तक दिखाई दे रहे थे। 'और एक मोड़ आने पर हम उतर जाएँगे।"[314]

---

[312] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि,. नई दिल्ली, प.छा.सं- 2014, पृ. स-85

[313]उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आ- 2011, पृ. सं- 50

[314] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, आ-2016, पृ.सं- 28

“वहाँ उस पाँच एकड़ कंकरीली जमीन पर लगता कि जैसे मेला लगा हो। सिर्फ दुःख और लाचारी की ही लेन-देन उस मेले में होती थी। फिर भी उस चालीस-पचास तिरपालों की दुनिया में हर कोई यह जतलाने का प्रयास करता कि मैं ही सबसे बड़ा हूँ। तिरपाल केई सामने ईके घोड़ा बंधा हुआ होता और दो-चार कुत्ते भौंकते रहते। कुत्ते तिरपाल की रखवाली तथा शिकार के लिए पाले हुए थे। घोड़ा उनके जीवन का अभिन्न अंग था। घोड़े की पीठ पर उनकी गृहस्थी होती है और उनका दिशाहीन भ्रमण घोड़े के साथ जारी रहता है।”[315]

“माँ के भाई-बहन अभी उम्र में छोटे थे। सुशीला भी नाच सीख गयी। वह ख़ूबसूरत थी। मानों आसमान से उतरकर कोई परी जमीन पर आ गयी हो! घर में अब इन दोनों बहनों को लेकर उम्मीदें बंध रही थीं। दोनों खूब कमाएँगी, अच्छे दिन आएँगे।”[316] इस तरह विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में विभिन्न बिंबों का प्रयोग किया गया है।

6.1.2. प्रतीक विधान

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ ‘चिन्ह’ है। यह अंग्रेजी के ‘सिंबल’ (symbol) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। “प्रतिक’ ऐसे चिन्ह अथवा शब्द चिन्ह को कहते हैं जिसके माध्यम से अन्य वस्तु का बोध होता है।”[317] विद्वानों का मत है की जब बिंब रूढ़ हो जाते है तो प्रतीकबन जाता है। वह अंततः रूढ़ हो जाता है। प्रतीक द्वारा भावना, विचार, बोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है, वहीं अर्थपूर्ण भी। प्रतिक द्वारा किसी भी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है। इसलिए साहित्य में प्रतीकों का विशेष महत्व है।

दलित साहित्य में प्रतीकों को बहुत महत्व है। दलित रचनाकारो प्रतीकों के माध्यम से अपनी रचना की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं। दलित साहित्यिक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस सत्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि-“साहित्य में प्रतीक की महत्ता सर्वविदित है। प्रतीक द्वारा भावना, विचार, बोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है, वहीं अर्थपूर्ण भी। प्रतीकों द्वारा साहित्य भी बात के संक्षेप में कहा जा सकता है दलित साहित्य

[315] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-2001, पृ.सं-16

[316] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधती देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-1997, पृ.सं-23

[317] हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, चौ.सं-2016, पृ.सं-228

में समाज की पीड़ा, बेबसी, उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश को सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।"[318]

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में इन जनजातियों के अन्याय-अत्याचार, पीड़ा की टिस, अस्थायित्व की उपेक्षा, उत्पीड़न और शोषण से उपजा आक्रोश, सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का उपयोग हुआ है । इनमें पारंपरिक प्रतीकों से अलग, मौलिक एवं नये प्रतीकों का प्रयोग किया है। विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथाओं के शीर्षक ही प्रतीकात्मक हैं । जैसे : 'पराया' घुमंतू समुदाय के बेगानेपन या निषेधसुचक अवस्था का प्रतीक है । 'उचक्का' विमुक्त घुमंतू जाति के पूरे समुदाय पर चोर या उठाईगिर का प्रतीक है। 'बेरड़' एक के निडरता का प्रतीक है। 'देराडंगर' समुदाय के घुमक्कड़ वृत्ति का प्रतीक है। 'छोरा कोल्हाटी का' जातीयता के दीन-हीन अवस्था का प्रतीक है । इस तरह आत्मकथाओं के शीर्षक जहाँ विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की पीड़ा, उत्पीड़न, भूमिहीनता, उपेक्षा, परायापन को दर्शाते हैं, तो वहीं उनमें जगा स्वाभिमान, निडरता, आक्रोश को भी दर्शाया गया है । जो आत्मकथाओं में अलग-अलग प्रतीकों के माध्यम से दिखाई देते हैं, वे निम्नलिखित हैं :

आत्मकथा 'उचक्का' में ऐसे नये प्रतीकों का सृजन किया है । लेखक ने अपनी आत्मकथा का नाम एक प्रतीक के रूप में रखा है। उसके अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर प्रतीक रूप में प्रयोग करते हैं। दरअसल यह स्थिति प्रतीकात्मक रूप से समाज के दबे-कुचले शोषित जीवन में लेखक अपना समाज ही शामिल, को उजागर करता है। अर्थात जिस प्रकार बलि के बकरे की स्थिति असहाय थी उसी प्रकार उच्च वर्णों के सामने लेखक के समाज की स्थिति वही थी । इस बात की पुष्टि करते हुए प्रतीक प्रस्तुत हुआ है- "बकरा संकट को शायद महसूस कर रहा था। वह छटपटाने लगा । करीम चाचा ने उसे जमीन पर लिटा दिया । एक गड्ढे के निकट उसकी गर्दन पकड़कर करीम चाचा ने ज़ोर से कहा, "या अल्लाहा" और कुछ ही क्षणों में उसने बकरे का सिर से धड़ अलग कर दिया। खून तेजी से बहनें लगा। उस तथाकथित मंदिर के सामने वह गड्ढा खून से भर गया । करीम चाचा ने तेजी से बकरे के चारों पैरों को तोड़ दिया, कटा हुआ सिर और चारों पैर माँ की मूर्ति के सामने रख दिए । परड़ियाँ बुलवाई गयी । तब तक दादा ने बकरे के धड़ से चमड़ा उतार दिया ।"[319] इस प्रकार इस आत्मकथा में अनेक प्रतिमान और प्रतीकों का

---

[318]दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि,. नई दिल्ली, प.छा.सं- 2014, पृ. स- 84

[319]उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आ- 2011, पृ. सं- 25

प्रयोग हुआ है । पौराणिक विषम व्यवस्था का भरण-पोषण किया है इसे दलित लेखक नहीं भूल सकते । इस संबंध में दलित लेखकों ने कटु प्रतिक्रिया व्यक्त की है ।

दोपहर की स्कूल छूटी थी । बाप को करंट लगा । हमारी 'बारात' मंदिर के स्कूल की आँगन में पहुँची । सारे लड़के चारों ओर इकट्ठा हो गए । सबकी नजरें मुझ पर टिकी थीं । बाप मास्टर से बाते क्र रहा था । "अरे साल्ला ! कैकाड़ी का बेटा स्कूल में ?" सबके चेहरों पर आश्चर्य झलक रहा था ।...जिस प्रकार मुर्गियाँ अपने चूजों में दूसरे चूजे के आते ही उसे चोंच से घायल कर देती हैं, उसी तरह स्कूल के बच्चे मुझे छेड़ते । ऊपर से मेरी हालत कचरे के ढेर पर पड़े कुत्ते-सी थी !"[320]

"रात बिताए नहीं बीत रही थी । मैं वैसे ही पड़ा रहा । काफ़ी देर बाद मुर्गे ने बाग़ दी । मैंने समझ लिया की चार बजे होंगे । लगा कि उठकर चल दे किंतु यदि कोई चोर समझकर पीटने लगे तो क्या करें ? उसकी अपेक्षा थोड़ी देर सोते रहना ही अच्छा होगा यह सोचा और इन्हीं सोच-विचारों से नींद नहीं आती थी, फिर भी आँखें मूँद लीं ।"[321]

"वह रो-रोकर कोंडिबा से कहती, "मैं अब नहीं नाचूँगी । मुझे पढ़कर मास्टरनी बनना है ।" पर कोंडिबा ने उसकी एक न सुनी । पैसे के लालच ने उसे बहरा बना दिया था । उसने अपने दिल पर पत्थर रख लिया था । तोते की तरह उसने माँ को और उसकी विचार शक्ति को पिंजरे में बंद कर रखा था । अब माँ पिंजरे में कैद बुलबुल की तरह सूख रही थी । उसकी सोच की ताकत पर जैसे ताला पड़ गया था ।"[322]

इस तरह विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया गया है ।

6.1.3. मिथकीय बिंब

'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' के हिंदी रूपांतरण से निर्मित हुआ है । मूलतः यह शब्द यूनानी के 'मायथेस', लैटिन के 'मिथस', और जर्मनी के 'मिठोस' का ऋणी है । वस्तुतः मिथक परंपरागत या अनुश्रुत कथा है जो किसी अतिमानवीय तथाकथित प्राणी या घटना से संबंध

---

320 पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, आ-2016, पृ.सं-9

321 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-2001, पृ.सं-138

322 छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधती देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-1997, पृ.सं-17

रखती है । विशेषतः इसका संबंध देवताओं, विश्व की उत्पत्ति तथा विश्ववासियों से है, यह एक ऐसा विश्वास है जो बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है ।

दलित साहित्य में जगह-जगह पर मिथक सामने आते हैं । दलित रचनाकारों ने मिथकों के माध्यम से परंपरागत जीवन की दाहक स्थितियों को उजागर किया है । मिथकों की स्थिति के बारें में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि- "दलित रचनाओं में मिथक कथाएँ, जातक कथाएँ, दलित जीवन की पीड़ाओं का चित्रण करती हैं । उनके विद्रोह, विक्षोभ की भावनाओं, अस्मिता की तलाश, अस्तित्व के लिए जूझते सरोकारों को रेखांकित करती हैं ।"[323] इस तरह हम देखते हैं कि दलित साहित्य में परंपारिक मिथकों और पौराणिक, बिम्बों के स्थितियों का परिचायक है।

लक्ष्मण गायकवाड़ के 'उचक्का' में मिथकों का प्रयोग हुआ है । वह इस प्रकार- "बावजूद इन अपमानों के मैं स्कूल जा रहा था । इस तरह अभी तीन-चार दिन भी नहीं हो गए कि हमारी बिरादरी के बच्चे- शशि, तूक्या, पंचफुली-मतलब हमारे बस्ती के सभी छोटे बच्चों को टट्टी और उलटियाँ शुरू हो गयी । पड़ोस के तुकाराम, पांडुरंग, संबा आदि ने बाबा को बुलावा दिय़ा और उनके साथ झगड़ने लगे । कहने लगे- "तूने अपने लड़के लक्ष्या को स्कूल में भर्ती कर दिया है, इस कारण हमारे बच्चों को उलटियाँ और टट्टी हो रही है । इसके पहले आज तक कभी इस बस्ती में हैजे की बीमारी नहीं आई थी । आज तक कभी कोई बीमारी नहीं हुई थी । बस ! तेरा यह लड़का लक्ष्या जैसे ही स्कूल में जाने लगा, इधर बीमारी शुरू । देख मारतंड, (मेरे बाबा का नाम) हम लोग बामन-लाल तो हैं नहीं कि लड़कों से पढ़ाई करवाए । हमारी बिरादरी में आज तक क्या कोई स्कूल गया है ?" तूलसीराम और पांडुरंग कहने लगे, "अरे मारतंड, अपनी जाति में आज तक कोई पढ़-लिख सका है क्या ? अपने बच्चे अगर स्कूल जाने लगे, तो हम सभी का वंश डुब जाएगा । यल्लामा देवी का प्रकोप हो जाएगा । देख मारतंड, हम ठीक कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकाल ले । अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात पंचायत बिठाएंगे और तुझे

---

[323]दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि,. नई दिल्ली, प.छा.सं- 2014, पृ. स- 88

बहिष्कृत करंगे।"[324] इस तरह मिथकों को सत्य मानकर कुछ रहस्यमय अर्थ देते थे । इसका लेखक ने अपनी आत्मकथा में अनेक ऐसे मिथकों का प्रयोग किया है ।

"बाप ने भगवान की डलिया धोती में लपेटकर गधे की पीठ पर रख दी । ठीक से बाँधने बाद के 'माँ मातूश्री कालुबाई...' उच्चारने के बाद सबको गुलाल लगाया । मन ही मन कुछ बड़बड़ाता रहा । गाल पर ख़ुद ही एक तमाचा मारा...एक पैर पर खड़ा रहा और बोला, "चलो!"[325]

"बाप 'भूत-प्रेत' भगाता, मांत्रिक था । 'रस्सी का बल निकल जाएगा पर कैकडियों का भूत नहीं भागता । वह हमेशा यह कहा करता ।"[326]

मारुती मामा कहते थे-"आज शनीचर को मर गया... भला हुआ...मारुती का जनम मिलेगा...।"[327] तब अन्य लोग सिर हिलाकर 'जी' कहते ।

"जत के बिच में से एक नाला बहता था । नाला कहे का ? परनाला ही था बड़े आकार का । उसी को वहाँ के लोग गन्धर्व नदी कहते थे । यह नाला यानी पहले गन्धर्व नदी थी । यह किवंदन्ती थी कि किसी स्त्री के अभिशाप से नदी की यह दुरावस्था हुई है ।"[328]

"मैं जब एक साल का था तो मुझे सूखा हो गया था । उसके इलाज के लिए मुझे चरवाहे के कूड़े के ढेर में गाड़कर रखा गया था । लोगों का यह अंधविश्वास था कि चरवाहे के कूड़े में सूखे के मरीज को थोड़ी देर अगर गाड़ दिया जाए तो वह स्वस्थ हो जाता है ।"[329]

इस तरह विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में विभिन्न मिथकों का प्रयोग किया गया है ।

---

[324] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आ- 2011, पृ. सं- 19

[325] पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, आ-2016, पृ.सं-15

[326] वही, पृ.सं- 20

[327] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-2001, पृ.सं-41

[328] वही, पृ.सं-121

[329] छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधती देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं-1997, पृ.सं-22

6.2. शैलीगत विश्लेषण

'शैली' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'शील' शब्द में 'श्रण्' प्रत्यय के योग से 'शैली' शब्द बना है।"[330] शैली से तात्पर्य ढंग, तरीका, अभिव्यक्ति आदि है। शैली अंग्रेजी के 'स्टाइल' के रूप में हिंदी का पर्याय के रूप में प्रचलित है।

शैली के अन्य अर्थों में चाल, प्रणाली, रीति एवं वाक्य-रचना के विशिष्ट प्रकार से है। साहित्यकार अपने विविध विचार प्रभावी तरीके से व्यक्त होने के लिए शैली में विचारों को सज़ाता है। जिससे पाठक पर कृति का विशेष प्रभाव पड़ता है। "शैली कृतिकार के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य या सहज गुण है।"[331] गेटे के अनुसार "किसी लेखक की शैली इसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है।"[332]

हिंदी साहित्य में कई शैलियाँ हैं यथा- विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, पूर्वदीप्ति, पत्रात्मक, काव्यात्मक, आत्मकथात्मक, चित्रात्मक, सुक्तियात्मक इत्यादि। विवेच्य आत्मकथाओं में विषय एवं विधा के अनुसार वर्णनात्मक, संवादात्मक, विचारात्मक, पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक एवं पत्रात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

6.2.1. वर्णनात्मक शैली

एकता की दृष्टि से मूल प्रभाव को केंद्र में रखकर उसके चहुओर विवरणों को बुनना ही वर्णनात्मक शैली की विशेषता है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। जिसमें, घुमंतू प्रवृत्ति का वर्णन, अस्थायी बस्तियों का वर्णन, गरीबी-बेरोज़ गारी का वर्णन, जात पंचायत आदि कई वर्णनों में इस शैली का प्रयोग किया गया है। वह निम्नलिखित-

"दिशाहीन हवा के सामान हमारा जीवन बहनें लगा। तिरपाल निकलना, सामान बांधना और एक गाँव से दूसरे गाँव जाना शुरू हुआ। नंगे-धडंगे बच्चे रोते रहते। हम हाथ में पतीली, थालियाँ आदि लेकर माँगने के लिए दर-दर भटकते थे। छोटे और विचित्र दिखाई देनेवाले बच्चों को कुत्ते काटते थे। मैंने स्कूली जीवन से लाचार दुनिया में प्रवेश किया था।"[333]

"हमारा घर बहुत ही छोटा था। उसमें सभी लोग चीलर की तरह भरे रहते। एक ही छप्पर के नीचे बकरियाँ भी बाँधी जातीं और आदमी-औरतें भी सोते। मैं और हरचंदा बकरियों

---

330 शैली विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र.सं- 1977, पृ,सं- 12

331 शैली विज्ञान, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, चौथा सं- 2005, पृ.सं- 9

332 शैली विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र.सं- 1977, पृ,सं-17

333 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु. डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं- 2001, पृ.सं- 107

के पास सोते । जाड़े के दिनों में तो नहुत परेशानी होती । हमारी एक चादर में कुत्ता भी घूस जाता । बकरियां पास में बंधी रहतीं । रात में वे पेशाब करतीं । उनकी पेशाब ठीक मेरे नीचे फैलती । बकरियों की वह गरम पेशाब जाड़े की उस ठण्ड में सुखद लगती ।"[334]

"सुबह हो गयी थी, घर के छत की मुंदेर पर बैठे कौओं की कांव-कांव सुन मेरी नींद खुल गयी थी, मैंने मुँह पर सरक आई गुदड़ी परे हटा दी । माँ, अल् सुबह उठी पानी भर लाने चली जा चुकी थी । बाबा भी मुँह-अँधेरे उठा, पहाड़ की तरफ्निकल गया था ।"[335]

6.2.2. संवादात्मक शैली

संवाद शैली साहित्य में प्रमुख स्थान है । संवादात्मक शैली का अर्थ है- बातचीत या वार्तालाप । आत्मकथाओं में इस शैली का प्रयोग कम-मात्रा में दिखाई देता है । संवाद जितने प्रभावपूर्ण होते हैं, पाठकों पर उतना ही प्रभाव पड़ता है । विवेच्य सभी आत्मकथाओं में कम अधिक मात्रा में संवाद शैली का प्रयोग किया है । वह निम्नलिखित कुछ अंश-

'देराडंगर' आत्मकथा में सालों बाद मिलते लेखक माँ और मौसी का संवाद- तुकाराम

"धुर्पा मौसी, पिरगोंदा और छोटी बच्ची सुनीता-सब जन आए । मौसी ने आते ही पूछा-

'जीजी...कब आई...?'

'अबी-अबी ही...।' माँ ने उत्तर दिया ।

'किस गाँव से आई हो...? मौसी ने फिर पूछा ।

'सुरड़ी से आई...इस साल दूर पच्चीम की ओर नहीं गए...।' माँ ने बताया ।

'भला हुआ...सबकी भेंट तो हुई...कैसे हैं सब जन...?' मौसी ने कहा ।

'भले हैं...मरी माँ के आसीरवाद से...।' माँ बोली ।"[336]

'पराया' लेखक लक्ष्मण माने प्रेम विवाह करने के पश्चात् परिवार से बातचीत-

"पिताजी ने पूछा, 'किसकी लड़की है ?'

---

334 उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ती-2011, पृ.सं- 15-16

335 बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 4

336 डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु. डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं- 2001, पृ.सं- 106

मैंने कहा, 'मैंने पत्र में सब लिख दिया था।'

'अरे पत्तर कौन पढ़ सकता है ?' पिताजी बोले। मैंने 'मराठा' कहा तभी अप्पा बोले, 'वह मराठा है, इसका क्या सबूत ? महार की नहीं होगी, इसका क्या भरोसा ? किसने देखा है? तूने देखा है ? और तेरी अपनी जाति क्या मर गयी थी ? माँ-बाप जिंदा थे या मर गए थे ?'

'हमें बताता...खैर, जाने दे ! तू अपना कुछ भी कर। एक बार गट्ठे का छोर छूट गया तो क्या फिर बंधता है ? और तू किस जाति का है, उसे मालूम है ?'

'मैंने सिर हिलाकर हामी भरी।'

'अरे, यही नीच जाति की होगी। इसलिए तुम्हारे साथ आई। नहीं तो ऊपर की जाति की औरतें ऐसा करती हैं क्या ?"[337]

'बेरड़' आत्मकथा में जात पंचायत की बातचीत का अंश-

"कौन है ये, किस गाँव-टोले से पधारा है, ये पंच ?

'ये पंचों में से नहीं !' मैंने बतला दिया, 'भागी का मरद है, ये !'

'इसे, यहाँ पे क्यों ले आया है-तू ?'

'और, इस जात पंचायत की बैठक में, इसका क्या काम ? दूसरे पंच में फ़ौरन एतराज जताया।'

'हाँ,है ! बैठक में इसका भी काम है ! इसलिए तो, यहाँ आया है !"[338]

6.2.3. विचारात्मक शैली

इस शैली के माध्यम से आत्मकथाकार का चिंतन, मनन, विचार-प्रतिपादन एवं खंडन-मंडन आदि का साकार रूप परिलक्षित होता है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में विचारात्मक शैली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

'उचक्का' आत्मकथा में लेखक बचपन में पुस्तक में लिखी प्रथम पृष्ठ पर लिखे प्रतिज्ञा का खंडन-मंडन करते हैं वह इस प्रकार-'पुस्तक का पहला पृष्ठ में खोलता। उस पर लिखा हुआ था, "भारत मेरा देश है। सारे भारतीय मेरे बंधू हैं। मुझे इस देश की परंपरा पर अभिमान है।" मुझे लगता कि अगर यह सब कुछ सही है तो फिर हमें बिना अपराध के पीटा क्यों जाता है ? माँ को

---

[337] पराया, लक्ष्मण माने, अनु. दामोदर खड़से, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं- 2016, पृ.सं- 131-132

[338] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं-229

पुलिस क्यों पीटती है ? उसकी साड़ी पकड़कर यह क्यों कहा जाता है कि “साड़ी चोरी की है ।” मुझे लगता कि अगर भारत मेरा देश है, तो फिर हमारे साथ ऐसा बर्ताव क्यों किया जाता है?’[339]

“मैं रेल की पटरियों में चल रहा था । कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । हाथ में सिर्फ़ बैग था। पैर गतिशील हो गए थे और दिमाग में विचारों का कोलाहल था । कहाँ से आया, यहाँ से इस व्यवस्था पर पेशाब करें, यहाँ तक विचार आते; जो व्यवस्था मुझे आदमी मानने को तैयार नहीं है । लड़की की इच्छा होते हुए और कानूनी व्यवस्था होते हुए भी ये लोग शादी नहीं करने दे रहे हैं । जाति ! जाति ! सारा जीवन जैसे कांजीहाउस हो गया । मैं सुलग उठा था ।”[340]

“पंद्रह दिन से भूखे पेट भटकता हूँ यह सुनकर माँ-बाप मुझसे बहुत प्रेम करेंगे कि-“छोरा कितना सयाना है...हयाँ तक देराडंगर के पीछे अनेक गाँवों से भटकता आया...।” इस प्रकार आशा के अनेक शिखर बाँधता हुआ मैं सो गया ।”[341]

6.2.4. पूर्वदीप्ति या फ्लैशबैक शैली

कथा साहित्य की कथावस्तु के विकास के लिए लेखक पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करता है । कथा में कोई घटना पहले घटित हुई हो लेकिन उसका वर्णन नहीं किया हो, उसे बाद में उचित समय पर व्यक्त किया जाता है उसे पूर्वदीप्ति पद्धति या फ्लैशबैक शैली कहते हैं । इस शैली का प्रयोग लेखक इस लिए करता है कि पाठक को वर्तमान प्रसंग को समझने में मदद मिले । इस शैली का प्रयोग विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों आत्मकथाओं में किया गया है । उसके कुछ अंश निम्नलिखित-

“दोस्तों !, कलेजे में बेतहाशा टीसती हुई, मवाद पकड़ चुके नुकीले कांटे की मानींद सालने वाली वेदना के इस फोड़े को अब फोड़ ही देना होगा...ज़ोर का दर्द उठेगा, चीख निकलेगी और मवाद बनता जा रहा सड़ा-गला खून बहनिकलेगा...मगर अब टीसते वेदना के इस फोड़े को दिल कड़ा कर निर्दयता के साथ फोड़ देना ही बेहतर होगा...!”[342]

6.2.5. आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथा में यह शैली अवश्य दिखाई देती है । जिसमें आत्मकथाकर ‘उत्तम पुरुष’ अर्थात ‘मैं’ शैली के प्रयोग में कथा को प्रस्तुत करता है । ‘मैं’ शैली में व्यक्त होते हुए लेखक ‘मैं’

---

[339] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ती-2011, पृ.सं-48
[340] पराया, लक्ष्मण माने, अनु. दामोदर खड़से, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं- 2016, पृ.सं-126
[341] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु. डॉ. अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं- 2001, पृ.सं-141
[342] बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2006, पृ.सं- 1

का वास्तव 'हम' होता है। उस समय लेखक अपना निजी अनुभव ही नहीं बल्कि अपने पूरे समुदाय का अनुभव व्यक्त करता है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में 'मैं' शैली का प्रयोग किया गया है। उसके कुछ अंश निम्नलिखित-

"गरमी के दिनों में जब पैर बहुत जलने लगते, तब मैं गाँव के घूरे पर फटी चप्पलें ढूंढ़ने निकालता था। मेरे पैर से काफ़ी बड़ी, परंतु आधी अधिक फटी एकाध चप्पल मिल जाती। एकाध जूता मिलता। उन दिनों मैं एक पैर में जूता और एक पैर में चप्पल डाल घूमा करता था।"[343]

6.2.6. पत्रात्मक शैली

पत्रों के माध्यम से अपनी बात को पहुँचाया जाता है वहाँ पत्रात्मक शैली होती है। अपने जीवन के सभी सुख-दुःख, निजी अनुभव, विभिन्न परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन आत्मकथामें किया जाता है। घटनाओं एवं व्यक्ति के आपसी संबंधों और लेन-देन को पत्रव्यवहार के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। उसका प्रयोग विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में किया गया है। निम्नलिखित कुछ अंश-

'चि. पोते दादासाब को नानी का आशीरवाद...तेरे माँ-बाप खोगव्याल को आए हैं। उनोने बताया कि इम्तहयान होने पर गोंधले बाड़ी को आ जा...। हम तेरे कु लेने आइंगे। जवाब दे। -तेरी नानी मानका माँ '

'चि. पोते दादासाब को नानी का आशीरवाद...मुझसे ख़ाना भेजना संभव नहीं...काम मिलता नहीं...आज सिरफ दो रोटियाँ ही भेजी हैं...तू तेरे बाप कु मिलके पेट कु कुछ देने कु बोल...मेरे पास तो कुछ बी नहीं...। उत्तर दो। -तेरी नानी'

'चि. छोटे भाई परशराम को, दादासाहब का शुभाशीर्वाद। मैं पिताजी के साथ जंगल जा रहा हूँ। मानका माँ को बताना कि भोजन मत भेजो। मैं छूट्टी के बाद गोंधलेवाड़ी आता हूँ। तब तक तू गोंधलेवाड़ी में ही रहना। -तेरा भाई दादासाहब।'

भोजन के डिब्बे में नानी को चिट्ठी भेज दी- पूज्य नानी की सेवा में, पोते दादासाहब का सा. नमस्कार। वि.वि. दो दिन में माँ का सरकारी अस्पताल में परिवार नियोजन का ऑपरेशन है। इसलिए कल तू जत अवश्य आना। हम सम्भू नाले पर रहे हैं। एक ही तिरपाल है। -आपका पोता दादासाहब

---

[343] उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ती-2011, पृ.सं-52-53

'पराया' आत्मकथा में लेखक को अपनी प्रेमिका का शादी के लिए पत्र प्राप्त होता है-"हम दोनों मरते समय भी साथ ही मरेंगे। जो भी होगा, देखेंगे। मैंने फुटपाथ की तैयारी कर ली है। तुम ना मत कहना। तुम्हारे ना कहने पर...आदि...आदि।"[344]

6.3. भाषागत प्रयोग (शब्द चयन)

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सहज, सरह तथा आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लोग जिस घुमक्कड़ प्रवृत्ति के परिवेश में जीवन जीते हैं उसमें प्रयुक्त होने वाली बोली भाषा के शब्दों का प्रयोग उनकी भाषा में होता है। जिसके कारण उसमें जीवंतता आ जाती है। चाहे वह सांकेतिक बोली हो या ग्रामीण भाषा की शब्दावली, चाहे वह हीनता बोध उत्पन्न करनेवाली या जातिसूचक। आत्मकथाकारों ने उन शब्दों का यथायोग्य प्रयोग किया है। इसमें संस्कृत शब्दावली का प्रयोग न कर सांकेतिक तथा शोषित व्यक्ति की ग्रामीण बोली भाषा का प्रयोग किया गया है। उसकी माँग जन्मजात अपराध से मुक्त मुक्त करने की, किसी गाँव में बिना इजाज़त के बसने की, सिर पर छत की और घर के लिए जमीन की। जिसके कारण भाषा में मिठास भी हैं खटास भी, आनंद भी है पीड़ा भी, शांति भी है डर भी है। आत्मकथाकारों ने शब्द संयोजन में अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी, मराठी, तेलुगु आदि भाषाओं के साथ सांकेतिक बोली, ग्रामीण तथा अश्लील बोली भाषा के शब्द लिए हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ शब्द निम्नलिखित हैं :

6.3.1. अंग्रेजी शब्द

नाईट पेट्रोलिंग, ब्लेड, जेल, ऑक्सफॉम, स्टेशन, किलो, किलोमीटर, मार्किट, पैसेंजर, स्टोव, डॉक्टर, बस स्टॉप, साईकल, मोटार साईकल, पुलिस स्टेशन, कोर्ट, रोड, टिकट, पार्टी, रूपए, कलक्टर, कम्युनिस्ट पार्टी, मेंमबर, जीप, फायनल, हॉटेल, पेन, कॉफी, लायसन्स, फ्रेंच पॉलिश, टाईट, बेल्ट, डायरेक्ट बोर्ड, कस्टडी, बेड, परसेंटेज, युनियन, पॉजिशन। स्कूल, हाइस्कूल, मास्टर, पीरियड, स्लेट-पेंसिल, मैट्रिक, अल्युमिनियम, स्पेशल, सीजन, पिकनिक, लाऊडस्पीकर, मजिस्ट्रेट। थियटर, टिकट, काउंटर. केबिन, लाइसेंस, वंसमोर, इंस्पेक्टर, हारमोनियम, एग्रीमेंट, मेकअप, ट्रांसफ़र, मनीऑडर। रिजल्ट, मार्कलिस्ट, एफ डिविजन, हेड सर, गादरिंग, रिहर्सल, एडमिशन, स्कॉलरशिप आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

---

[344] पराया, लक्ष्मण माने, अनु. दामोदर खड़से, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं- 2016, पृ.सं-123

6.3.2. ऊर्दू, फारसी शब्द

ख़ानाबदोश, हिफाजत, मजबूर, गुनहगार, तलाश, मसहूर, शराब, नशा, बरकत, मुखबिर, इनाम, निजाम, पेशाब, नफरत, औलाद, शक, तकलीफ, करीम, या अल्लाहा, जुबान, गुजर, मशगूल, उस्मानाबाद, लफंगा, तनख्वाह, फिकर, लिफाफे, खोजबीन, खिलाफ, जुलूस, आजीम, खस्ता, जुर्म, दर्ज, जप्त, हिरासत, परवरिश, निगाहों, अजनबी, बेशर्म, होशियार, रस्म, मजाक, सर्दी-जुखाम, नौबत, पैबंदों, शौक, खसम, शान, आदत, बेहोश, आवारागर्दी, सनम, दिल, संदूक । इतवार, मुहल्ला, मुकाबला । गुसलख़ाना, रईसज़ादे, महफ़िल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.3.3. तेलुगु शब्द

आण्णा, बेजेपल्ली, संतामुच्चर, गुद्दा, अक्का, बाबु, भगवान आण्णा, बोंता, बालाजी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.3.4. मराठी शब्द

साहू, बाबा, मिरगी, शिक्षक, गुदड़ी, बुट घालने, भावजी, अस्पृश्य, आजी, लिपना, पुरण-पोली, बोंब, भाऊ, दादा, ताता, हरचंदा, रत्नाबाई, संभाभाऊ, सायबु ताता, पांडुरंग, चोरी, पट्ठ घालने, दौरा, धोती, छनी, परड़ी, कारभारी, आई राजा ऊदे, ऊदे, कमरडोरा, किसनामाय, आषाढ-श्रावण, बुद्धिमान, भानामती, चंद्रभागा, सोलापुर, दंड, कुपाटा, पंगत, धोंडामाय, कला पथक, पुरण, गुत्तेदारी, गिरवी, उलथान, चिमनी, घाघ । पालकी, सिधा । आमदार, पाडवा । दोरकारीन, मावसी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.3.5. ग्रामीण बोली भाषा के शब्द

आपकु(आपको), इस्कूल(स्कूल), काहे(क्यों), परिकशा(परीक्षा), मलारी(मल्हारी), आउर(और), कुच वी(कुछ भी), उसकु(उसको), परमातमा(परमात्मा), बोत(बहुत), सिरफ(सिर्फ), हयाँ बी(यहाँ भी)। दादस्या(दादासाहब), आपरिसन(ओपरेशन), इत्ते(इतने), कइसा(कैसा), पुड़िया(पूरी), जुशी(जोशी), बातन(बात), संडास(सौच), चैए(चाहिए), अच्छर(अक्षर), भई(भाई), आशीरवाद(आशीर्वाद), इम्तहयान(इम्तिहान), आइंगे(आएँगे), घास-फूँस, छुटपन आदि ग्रामीण बोली भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है ।

6.3.6. पुनरूक्ति शब्द

संज्ञा सर्वनाम जैसे शब्दों का वाक्यों में बार बार दोहराया जाना पुनरुक्ति कहलाता है । ऐसा करने से उन शब्दों का भार वाक्य में काफ़ी ज्यादा बढ़ जाता है और वे ज्यादा प्रभावशाली नज़र आते हैं । आत्मकथा में प्रभाव छोड़ने वाले कुछ पुनरुक्ति शब्द निम्नलिखित :

धीरे-धीरे, भिन्न-भिन्न, कौन-कौन, कदम-कदम, कभी-कभार, ज़ोर-ज़ोर, लड़के-लड़की, अलग-अलग, पास-पास, पकड़-पकड़कर, ऐशों-आराम, पीट-पीटकर, मेहनत-मजदूरी, गोल-गोल, कुतर-कुतरकर, शादी-ब्याह, छोटे-छोटे, इधर-उधर, गिला-गिला, पढ़ने-लिखने । नंग-धडंग, झगड़ा-झंझट, रोते-रोते, गोरा-चिट्टा, चूसता-चूसता, ठूंस-ठूंसकर, घूमते-घूमते, तड़पते-तड़पते । टुकुर-टुकुर, सहमी-सहमी, मन-ही-मन, गाली-गलौज, रोते-रोते, दर-दर, चुस्त-दुरुस्त, यार-दोस्त, कस्में-वादे, चीख-चीखकर । चीखना-चिल्लाना, नन्ही-मुन्नी, रोते-रोते, लालन-पालन आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.3.7. हीनता बोध कराने वाले या जातिवाचक शब्द

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के पात्र तथा उनके बच्चों के नाम हीनताबोधक करनेवाले होते हैं । वे नाम इस प्रकार लक्ष्या, दाद्स्या, भीम्या, नाचनेवाली का आदि । जातिसूचक में ऐ कैकाडी, उठाईगीर का लक्ष्या, नाचनेवाली की औलाद, भुखारियों का बेटा, ये बेरड़ आदि शब्द जाति को सूचित करते हैं । आत्मकथाओं में आए शब्दों को निम्लिखित दिया गया है-

'अरे साल्ला ! कैकाड़ी का बेटा स्कूल में ?', 'अरे भिखारियों के लिए भी कहीं स्कूल होता है ?...अरे उसके पढ़ने के बाद टोकरियाँ कौन तैयार करेगा ? यह सब नहीं चलेगा ! बड़े आये पड़नेवाले यह सब नहीं चलेगा ।' 'अरे, जल्दी करो, महार रास्ता काट देगा ।' 'ऐ, कैकाड़ी, बेटा चूड़ियाँ भर चूड़ियाँ ।'

'कक्षा में सभी लड़के मुझे कंकड़ों से मारते, उठाईगीरों का लक्ष्या स्कूल में कैसे?', 'क्या गंदे लोग हैं, भैनचोद, इनकी माँ...ये तो साले बिल्लियों को भी खाते हैं ।', 'मानक्या तेरी माँ...बामन-लाल की तरह पीटाई से घबराने लगा है तू', 'इसकी माँ की...! पता नहीं, किस जाति का है ? पूरी पंगत भ्रष्ट कर दी साले ने ।'

‘तू भिखारी का बेटा...तेरा नाम कैसे दाखिल करें स्कूल में...जा तेरे बाप को बोल...तुझे स्कूल में प्रवेश नहीं दिया जा सकता । जा...भाग...।’ ‘इनकी माँ की...फुकट खाने की तूम्हारी जाति को आदत ही पड़ी है...जा...आगे...जा...।’ ‘इसकी माँ की...क्या माल है...? अरे..वह भिखारी की छोरी है...। अरे पगले...किसी कीभी क्यों न हो...अपन को क्या शादी करनी है...? सिर्फ काम के लायक हुई तो बस हुआ...।’

‘देखो यह नाचनेवालियों के समाज से हैं’, कोल्हाटी समाज यह मानता है कि नाचानेवालियों को महार-माँग जैसी निम्न जातियों के साथ नहीं रहना चाहिए ।’ आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.3.8. अश्लील भाषा के शब्द

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में आए अश्लील भाषा के शब्दों को निम्लिखित दिया गया है-

‘रांड का...अभी तक सोया है ?’, ‘यहाँ क्या मूत पी रहा है ।’, चल हट तेरी माँ की...हूँह!’, ‘रांदे बुलाती हैं, पलभर बैठने भी नहीं देती ।’, ‘ये तेरी माँ की...क्या तू बाम्हणी है ! शरीर में गू लगा है ! हमेशा नहाती रहती है ।’ ‘यह छिनाल निभायगी नहीं, मेरी नाक ही काट डाली...।’,रांड, मवाली ! तेरी माँ की...कहाँ मैला खाने गयी थी !’, ‘कीड़ा मूत पीकर आया है ।’

‘तेरी रांड़ को मालूम होगा’, ‘तुकाराम ने रोटी पर रखी मिर्च पावड़र, उठायी और दादा की गुदा तथा आँखों में डाल दी दादा तड़पने लगा । तपती रेत, भयंकर और आँख, गुदा में तीखी मिर्च । इस हाल में भी उसे पीटा जा रहा था’, ‘दादी को “पुलिस जब पकड़ लेती है तब उल्टा टाँग देती हैं, हंटर से मारती हैं, जलती सिगारेट से दागती हैं । अगर चोरी कबूल न की तो मुँह में गू ठूँसने की कोशिश करती है ।’, ‘उसके स्तनों को पकड़कर पुलिस पूछती, ‘बोल साली, बोल, तेरे इन लवंड़ों ने चोरी का माल कहा रखा है ।’‘इनकी माँ की...माँगने कु आते सो आते...आउर कुत्ते कु भी मारते हैं...।’ ‘नाजायज औलाद, तेरी माँ की पैसे ज्यादा हो गए है री ?’ आदि अश्लील भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

6.4. कहावतें / लोकोक्तियाँ एवं मुहावरें

6.4.1. कहावतें / लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियाँ संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है लोक+उक्ति अर्थात जन कथन, लोक में प्रचलित एवं प्रसिद्ध उक्ति । सामान्यतः लोकोक्ति को 'कहावत' भी कहा जाता है। बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्तियाँ कहलाती हैं । इन वाक्यों में जनता के अनुभवों का निचोड़ या सार होता है । इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते । लोकोक्ति लोक जीवन के व्यापक अनुभव से जन्म लेती है और लोक जीवन के सत्य को प्रकट करती है । इस का प्रयोग वाक्य को अधिक युक्तिसंगत, प्रभावशाली एवं प्रमाणिक बना देता है ।

लिकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं सन्दर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं जिसका किसी खास समूह, उम्र वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है । इसमें स्थान विशेष के भूगोल, संस्कृति, भाषाओं का मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है । लोकोक्तियाँ वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होती हैं ।

'हिंदी साहित्यकोश' में लोकोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि- लोकोक्ति गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति का काम करती है ।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में उदाहरण स्वरूप प्रयुक्त कहावतें (लोकोक्तियाँ) कथा के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती है । उदाहरण निम्न-

'पैर में चप्पल ठीक बैठी, मैंने पहन ली ।', 'वह एक गूंगा प्राणी, जैसे हाँका वैसे चलता ।', 'प्राण हल्के हो गए ।', कोल्हू में रहना है तो कोल्हू जैसा होना होगा ।', 'सुन्दर औरत अपनी नहीं।', 'होटल में ख़ाना मस्जित में सोना', 'घर में नहीं दाना मुझे कहो नाना', 'चार दिन की चाँदनी'

'घोडा मरे बोझ से और बछड़ा मरे चक्कर काटने से..।' 'कुल्हाड़ी का डंडा अपने रिश्तेदारों का दुश्मन' 'बिना सज़ा के गलती सुधरती नही' 'जंघा पर छोरा हगने से क्या जंघा को काट देंगे।'

'पैरों की जूती पैरों में ही रहनी चाहिए', 'सोने का अंडा देने वाली मुर्गी', 'पैसा इन्सान को नाचता है', 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का',

6.4.2. मुहावरें

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'अभ्यास' करता है । मुहावरा अतिसंक्षिप्त रूप में होते हुए भी बड़े भाव या विचार को प्रकट करता है । विशेष अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्यांश को मुहावरा कहते हैं । मुहावरा पूर्ण वाक्य नहीं होता, इसलिए इसका स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता । मुहावरे का प्रयोग करना और ठीक-ठीक अर्थ समझना बड़ा कठिन है, यह अभ्यास से ही सीखा जा सकता है मुहावरा एक ऐसे पदबंध को कहा जाता है, जिसका अर्थ अर्थात भावार्थ कुछ और ही निकालता है । मुहावरा एक ऐसे पदबंध को कहा जाता है, जिसका अर्थ अर्थात भावार्थ कुछ और ही निकालता है । विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं मरण उचित स्थान पर मुहावरों का प्रयोग किया गया है । उसके कुछ अंश निम्न-

'काला अक्षर भैंस बराबर', 'गूंगी की इज्ज़त लुटी, न चीख न चिल्लाहट', 'कहो सिर सलामत तो पगड़ी हज़ार', 'गूँगी की शिकायत, न चीक न चिल्लाहट', 'गरीबी में आटा गीला',

6.5. मूल पाठ और अनूदित पाठ में तुलना/अंतर :

विवेच्य आत्मकथाओं की मूल और अनूदित पाठ में साम्य और वैषम्य की चर्चा करेंगे । विवेच्य रचनाएँ मराठी से हिंदी में अनूदित होने के कारण आत्मकथाओं के मूल और अनूदित पाठ में अंतर देखना अनिवार्य हो जाता है । अनुवादक एक भाषा से दूसरी भाषा का सेतु होता है । अनुवाद से अन्य भाषा-भाषी समाज की सभ्यता और संस्कृति जान-पहचान कराता है । अनुवाद साहित्यिक सामग्री का हो, चाहे साहित्येतर सामग्री का, उससे विविध प्रयोजनों की पूर्ति, भावनात्मक एकता की संपूर्ति तथा विविध प्रकार की उन्नति का मार्ग । इस पर डॉ. अर्जुन चव्हाण का कहना है कि-"अनुवाद भावात्मक एकता का सेतु है, वः मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरियाँ मिटाता है और अन्य भाषाभाषी समाज में एक-दूसरे के प्रति उदारता, सहिष्णुता, आत्मीयता वृद्धिगत होकर मानवधर्म-प्रसार तथा 'वसुधैवकुटुंबकम्' की संकल्पना को साकार करने में सहयोग मिलता है ।"[345] इस का आधार विवेच्य आत्मकथाओं की अभिव्यक्ति है । जो मराठी भाषा से हिंदी भाषा में अभिव्यक्त हुई है । मूल मराठी लिखित सभी आत्मकथाओं की

---

[345] डेराडंगर, दादा साहब मोरे, अनु- डॉ. अर्जुन चव्हाण, पृ.सं- vii

भाषा मराठी है, किन्तु पात्रों और क्षेत्रों के अनुसार ग्रामीण (क्षेत्रीय बोली) तथा सांकेतिक बोली का प्रयोग हुआ है । 'उचक्का' और 'पराया' इन दो आत्मकथाओं में सर्वाधिक सांकेतिक भाषा का प्रयोग हुआ है । अनूदित सभी आत्मकथाओं में शुद्ध हिंदी भाषा का भावात्मक अनुवाद हुआ है । जिसके अंतर को निम्नलिखित समझा जा सकता है ।

6.5.1. सांकेतिक भाषा का प्रयोग

मूल मराठी में लिखित आत्मकथाओं में विमुक्त घुमंतू जनजातियों की सांकेतिक बोली का प्रयोग हुआ है । 'उचक्का' में तेलुगु-मराठी मिश्रित सांकेतिक भाषा का उपयोग हुआ है और 'पराया' में कैकाड़ी समुदाय की अपनी सांकेतिक भाषा का प्रयोग हुआ है । उसे हिंदी भाषा में किस प्रकार अनुवाद किया गया है, इस अंतर को तुलनात्मक दृष्टि से देख सकते हैं । वह हम निम्नलिखित-

'नू यल्का पिल्लील तिन्टीरे'[346] (सांकेतिक)

तू उंदरं मांजरं खातूस (ग्रामीण मराठी)

तु चूहे-बिल्ली खाता है (हिंदी में अनुवाद)

'पेनसुन्या, देवरा भिंगाकास हां ? आजून निवद दाकविकराद किर. याल याल इगुन.'[347] (सांकेतिक)

'मुरदे ! मुझे अभी भगवान को नैवद्य चढ़ाना है और तूने झूठा कर डाला ?' (हिंदी में अनुवाद)

'गप्प खानसी नाई'[348]

'चुप बैठ कुत्ता कहीं का !' (हिंदी में अनुवाद)

6.5.2. ग्रामीण भाषा का प्रयोग

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के आत्मकथाओं की मूल भाषा मराठी है । उसमें क्षेत्र और पात्र के अनुसार भाषा में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है । 'छोरा कोल्हाटी का'

---

346 उचल्या, लक्ष्मण गायकवाड, श्रीविद्या प्रकाशन, शनिवार पेठ, पुणे, बारावी आ- 2013, पृ.सं- 18

347 उपरा, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर मुंबई, पुनर्मुद्रण- 2006, पृ.सं- 19

348 वही- 19

आत्मकथा के आलावा अन्य सभी आत्मकथाओं में ग्रामीण (क्षेत्रीय) बोली भाषा का प्रयोग अधिक पाया जाता है । उसी प्रकार अनूदित पाठ में अनुवादक विद्धवानों ने भावात्मक अनुवाद के साथ-साथ पात्र के अनुकूल भाषा में ग्रामीण बोली का प्रयोग किया है । उसे हिंदी भाषा में किस प्रकार अनुवाद किया गया है, इस अंतर को तुलनात्मक दृष्टि से देख सकते हैं । जिसे हम निम्नलिखित-

"माझ्या बाबानं पक्कं ठरविला, की लक्ष्मनाला सालाच शिकवनार. बाबा त्या येलंस कुणाचंच आयकला न्हाई. म्हणून मी साला शिकलो न्हायतर मी बी आज चोर म्हनूनच ह्रायलो असतो."[349] यह ग्रामीण लातूरी भाषा है ।

'पर बाबा ने यह पक्का इरादा किया था कि लक्ष्मण को पढ़ाना ही है । बाबा इस मामले में किसी की भी सुनने को तैयार नहीं था । इसलिए मैं पढ़ सका । नहीं तो मैं आज 'चोर' के रूप में ही मुँह छिपाकर जीता ।' (हिंदी में अनुवाद)

'बेरड' मूल आत्मकथा शुद्ध मराठी भाषा लिखी गई है, पात्र और क्षेत्र के अनुसार भाषा में महाराष्ट्र-कर्णाटक सीमावर्ती की ग्रामीण मराठी भाषा का प्रयोग हुआ है । हिंदी में अनुवादक ने उसे प्रकार अनुवाद किया जिस प्रकार मूल आत्मकथा पात्रों और क्षेत्र अनुसार ग्रामीण बोली का प्रयोग हुआ है । उदहारण-

"देवाच्यान आण, खरंच सांगतुया गा ! लौकुर आटपुन घ्यावा, नायतर लुकसान व्हईल बघा !"[350]

'भगवान् कसम ! मैं सच्ची कहै रहा हूँ ! चलो, जल्दी करौ, नै तो भारी नुकसान उठाना पड़ेगा !' (हिंदी में अनुवाद)

तिरपाल पर पहुँचते ही गुंडप्पा मोरे ने पूछा-"भैया...हुई क्या परीकशा...?" पिताजी ने कहा-"हुई...दादासाब पहली में पास हुआ...अब उसकु दूसरी में डाला...। हमारी जाति में मेरी प्रशंसा करते लगे ।...फिर बाबजी मामा ने कहा-"मलारीsss अब छोरे कु मांगने कु मत भेज...।

---

349 उचल्या, लक्ष्मण गायकवाड, श्रीविद्या प्रकाशन, शनिवार पेठ, पुणे, बारावी आ- 2013, पृ.सं- 27

350 बेरड, भीमराव गस्ती, राजहंस प्रकाशन प्रा.लि. सदाशिव पेठ, पुणे, स.आ- 2012, पृ.सं- 72

पिताजी झट से उत्तर देते हैं-“अजीsssबाबू मामा...वह रात कु पढ़ेगा...आउर दिन भर क्या करेगा? रोटी के चार टुकड़े तो लाएगा।”[351]

6.5.3. मराठी शब्द प्रयोग

हिंदी के अनुवाद में कुछ शब्दों या वाक्यों को ठीक रूप में शब्द न मिलने के कारण अनुवादक विद्धवानों द्वारा जस-के-तक रखे गए शब्द मिलते हैं। वह निम्नलिखित है-

बोंब लगाई, भोग के अवसर, कर मनाई, इर का भोजन, स्थायिक हुए, जुरमाना ठोंक दिया, जमीन खानगी रेट पर, जानकारी दूत (जासूस) देता, कुड़मुड़े जोशी, पिंगला जोशी, डुग्गी जोशी, पारधी, डोंबारी, डवरी, गोंधळी, गोसावी आदि।

मराठी से हिंदी में अनूदित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में अनुवादक अपनी अनुवाद कला का उदहारण पेश करते हैं। ‘उचक्का’ में मराठी की ग्रामीण भाषा (लातूरी भाषा) तथा पाथरवट समुदाय की सांकेतिक भाषा का अनुवाद शुद्ध हिंदी किया है। जिन शब्दों का अनुवाद संभव नहीं था उनका भावात्मक अनुवाद किया। इसी तरह ‘पराया’ आत्मकथाओं का अनुवाद किया गया है। ‘डेराडंगर’ और ‘बेरड़’ आत्मकथाओं में पश्चिम महाराष्ट्र की ग्रामीण भाषा (क्षेत्रीय भाषा) का प्रयोग हुआ है। ‘छोरा कोल्हाटी’ शुद्ध मराठी का प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार हिंदी में अनुवाद किया है। इन आत्मकथाओं के अनुवाद में कुछ सांकेतिक तथा ग्रामीण भाषा के शब्द जस-के-तस रखे गए हैं। अनुवाद की दृष्टि से आत्मकथाएँ उत्कृष्ट साबित होती हैं।

इस प्रकार भाषा व्यक्ति के जीवन से जैविक रूप से जुड़ी होती है, वैसे ही समाज को वाणी देने का काम करती है। “अर्थात दलित साहित्य ललित साहित्य नहीं हो सकता” यह वरिष्ठ आलोचक प्रो.मैनेजर पाण्डेय उचित है। क्योंकि दलित कथा-साहित्य में बहुतों को यदि भाषा भदेस और अश्लीलता दिखाई पड़ती है तो वह दरअसल भाषा के समाजशास्त्र को न समझ ने की वजह से है। भारतीय दलित साहित्य चूँकि अपनी भाषाई मौलिकता के साथ आया है, इसलिए यह भाषाई लोकतंत्र को सांस्कृतिक सार्थकता प्रदान करता है। दलित साहित्य असल में ‘हिन्दुस्तानी’ भाषा में अधिक है। यहाँ हिंदी संस्कृतनिष्ठ के आग्रह से मुक्त है। इससे समाज के वंचित और निर्धन तबकों की समस्याओं का खुलासा हो रहा है और भाषा के क्षेत्र में नए-नए शब्दों का विलक्षण योगदान हो रहा है। इसी प्रकार अनुवाद की दृष्टि से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ चरमोत्कर्ष अवस्था में हैं

[351] डेराडंगर, दादासाहब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, पृ.सं- 70

उपसंहार

इस शोध प्रबंध को छह अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय **"विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अवधारणा"** के अंतर्गत इसे दो उप भागों में विभाजित किया है । सर्वप्रथम विमुक्त और घुमंतू शब्दों के शाब्दिक अर्थ बताया गया साथ ही अनेक साहित्यकारों के मतों एवं परिभाषाओं को शामिल किया गया । पहले उपअध्याय में **'भारतीय परिप्रेक्ष्य में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का परिचय'** में भारत की विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है । यथा, एक- पशुपालक घुमंतू जनजातियाँ- इसमें धनगर, गडरिया, गोपाल, गुज्जर, बकरवाल, चारण, गद्दी, आदि शामिल हैं । दो- व्यापारिक घुमंतू जनजातियाँ- इसमें मुख्यतः बंजारा शामिल हैं । तीन- पेशेवर घुमंतू जनजातियाँ- इनमें सपेरा, मदारी, नट, सिकलीगर, बाजीगर, कोल्हाटी, डोंबारी, घिसाड़ी आदि शामिल हैं । चार- भिक्षुक घुमंतू जनजातियाँ- इनमें जोशी, जोगी, गोसावी, गोंधली, रामास्वामी, रंगास्वामी, सिंगिवाला आदि शामिल हैं । पांच- अपराधी घुमंतू जनजातियाँ- इनमें कंजर, सांसी, बावरिया, उठाईगीर, कैकाडी, बेरड़, डोम, झल्लीमार आदि शामिल हैं । इनकी सामाजिक स्थिति का राज्यवार अध्ययन व विश्लेषण किया गया है ।

दूसरे उपभाग में **'महाराष्ट्र की विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का परिचय'** के अंतर्गत सर्वप्रथम **'महाराष्ट्र की विमुक्त जनजातियों का परिचय'** के अंतर्गत विमुक्त जनजातियों की कुल संख्या चौदह बतायी गयी है, इसमें से सात जनजातियों का परिचय दिया गया है । अगले भाग में **'महाराष्ट्र की घुमंतू जनजातियों का परिचय'** के अंतर्गत घुमंतू जनजातियों की संख्या अट्ठाईस बतायी गयी है, जिनमें से तेरह जनजातियों का परिचय दिया गया है । कुल बीस जनजातियों का परिचय दिया गया है । भारत में स्थित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्थिति लगभग एक-सी पायी जाती है । जिनके व्यवसाय भिन्न होते हुए भी प्रवृत्तियाँ एक-सी है । जैसे- घुमंतू प्रवृत्ति, देवी-देवता, रुढी-परंपरा, शादी-ब्याह इन्हें उभयनिष्ठ बनती है । इनके वर्तमान स्थिति को देखने से पता चलता है कि, यह जनजातियाँ आधुनिकता और भूमंडलीकरण की चपेट में सर्वाधिक नुकसान झेल रही है ।

दूसरा अध्याय **"विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों पर आधारित आत्मकथाएँ"** के अंतर्गत इसको तीन उपभागों में विभाजित किया गया है । सर्वप्रथम आत्मकथा की परिभाषा- जिसमें

'आत्मकथा' का शाब्दिक अर्थ बताया गया है व अनेक साहित्यकारों और पाश्चात्य विद्वानों की आत्मकथा संबंधी परिभाषाओं व मतों को शामिल किया गया है । साथ ही हिंदी के आधुनिक विद्वानों जैसे- डॉ.नगेन्द्र, डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, मैनेजर पाण्डेय, डॉ. कमलेश सिंह आदि के द्वारा परिभाषित 'आत्मकथा' शब्द की परिभाषाओं को भी लिया गया है । इसके आलावा 'आत्मकथा' का स्वरुप निर्धारित करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए विस्तृत विवेचन किया गया है ।

इसके दूसरे उपशीर्षक **'हिंदी में आत्मकथा लेखन का उद्द्भव और विकास'** में आत्मकथा का आरंभ और प्रथम आत्मकथा लेखन पर चर्चा की गयी है । सुदृढ़ आत्मकथा लेखन की परंपरा कब से शुरू हुई ? बताते हुए- भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, वर्तमान युग और स्त्री आत्मकथा लेखन आदि भागों में विभाजित हिंदी आत्मकथा लेखन की परंपरा का अध्ययन किया गया है ।

अगला उपशीर्षक **'विमुक्त एवं घुमंतू आत्मकथा लेखन एवं प्रेरणास्त्रोत'** नामक शीर्षक में सर्वप्रथम दलित आत्मकथा लेखन की प्रेरणा एवं चिंतन को देखा गया । प्रथम मराठी दलित कौन-सी है ? किस पत्रिका ने अभिव्यक्त होने में अपना योगदान दिया है ? हिंदी में दलित आत्मकथा लेखन की शुरुआत कब हुई ? के साथ मराठी-हिंदी में लिखित सभी दलित आत्मकथाओं को रेखांकित किया गया है । जिनके लेखन में हाशियाकृत समुदायों का मूल स्वर अस्मिता को देखा गया । डॉ.अम्बेडकर की घोषणा 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' की प्रेरणा से तमाम वंचित समुदायों के युवा शिक्षा की ओर आकर्षित हुए हैं । महाराष्ट्र में दलित आन्दोलन की आवाज में आवाज मिलाकर फुले, शाहू, अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के युवा दलित आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे ।

इसी कारण अब तक इन जनजातियों की आत्मकथाओं को दलित साहित्य के अंतर्गत रखकर अध्ययन-अध्यापन किया गया है । अलग से नहीं देखा गया । बताते चले की इनके आगे जनजाति नाम लगाने से ये न आदिवासियों में शामिल होती हैं और न अधिकांश प्रतिशत गाँव का सहारा लेती हैं इसलिए न दलितों में शामिल हैं । इन तीनों के जीवन में कुछ समस्याएँ उभयनिष्ठ पायी जाती हैं । परंतु ये तीन अलग-अलग समुदाय हैं । इसलिए विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं को अलग से रखकर अध्ययन, विश्लेषण और विवेचन किया जाना अवश्यक हो जाता है ।

अगला उपशीर्षक **'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाएँ'** के अंतर्गत विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की मराठी में लिखित चालीस आत्मकथाओं में से बीस आत्मकथाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसी भांति विवेच्य मराठी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाओं और आत्मकथाकारों का विस्तृत परिचय दिया गया है । जिनमें- पराया- लक्ष्मण माने, उचक्का- लक्ष्मण गायकवाड़, बेरड़- भीमराव गस्ती, डेराडंगर- दादासाहब मोरे, छोरा कोल्हाटी का- किशोर शांताबाई काले आदि शामिल हैं । इनका अध्ययन करने पर पाया गया कि अन्य हाशियाकृत समुदायों की अपेक्षा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातीय समुदायों का जीवन अधिक कष्टप्रद हैं।

तीसरा अध्याय **'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ'** के अंतर्गत सर्वप्रथम यथार्थ का शाब्दिक अर्थ बताया गया है और जिनमें अनेक साहित्यकारों के यथार्थ से संबंधी मतों को शामिल किया गया है । यथार्थ के तात्पर्य के रेखांकित करते हुए विवेच्य आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को दर्शाया गया।

दूसरा उप-अध्याय **'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सामाजिक स्थिति'** का है । जिसके अंतर्गत सर्वप्रथम विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का समाज में स्थान और जातीयता के लेखकीय अनुभवों का अध्ययन किया गया है । जिसमें जाति की अभिव्यक्ति ही जातीयता की समस्या में बदलती दिखाई दी । **'1871 का एक्ट और समाज की मानसिकता'** नामक उपशीर्षक में विमुक्त जनजातियों को अग्रेजों द्वारा बनाए गए 'अपराधिक जनजाति अधिनियम 1871' के तहत अपराधी की मुहर लगायी गयी। जो आजादी के बाद भी भारतीय समाज और प्रशासन में कायम रही। जिसे अब भी समाज और पुलिस प्रशासन द्वारा घृणा और शक की नजर से देखा जाता है।

अगला उपशीर्षक **'अंधविश्वास'** में पाया गया कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ अस्थिर होने के कारण अंधविश्वास की चपेट से गुजरती है । अस्थिर होने से कई संकटों का सामना करना पड़ता है, उन संकटों से बाहर निकलने के लिए वे मन्नतें माँगते हैं। आवश्यक साधनों का न होना उन्हें बीमार व्यक्ति को भभूत लगाकर या बाबा-बुआओं के जंतर-मंतर के विश्वास का पात्र बनती है। **'जात पंचायत'** विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए 'संविधान' या 'समिति' की तरह कार्य करती है। इसमें पाया गया है कि जात पंचायत के पंच साक्षात् परमेश्वर होते हैं। जिनमें सभी पुरुष जाति के लोग होते हैं। जो जीवन की हर समस्या पर निर्णय देते हैं। जिसका

शिकार अधिकांश महिलाएँ होती है। वर्तमान समय पर दृष्टिपात करने से पता चला कि अब भी जात पंचायतों द्वारा बहिष्कृत करने की घटनाएँ सामने आती है। इसके लिए कानून तो हैं, पर मजबूती से लागू न होने के कारण ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती है।

अगला उपशीर्षक **'नारी स्थिति'** के अंतर्गत विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ मराठी के लोकोक्ति की तरह होती है। वह 'घोड्याचे नसीब फुटले की तो टांग्याला जूंपला जातो.' अर्थात घोड़े की किस्मत फूटने पर, वह तांगे को जोता जाता है।' यह घुमंतू जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति है। **'पारिवारिक स्त्री'** अत्यंत दयालु होती है। दूसरी ओर अपने पुरुष के कंधे से कंधा मिलकर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ संभालती है। **'शोषित स्त्री'** विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। पाया गया है कि, इनका शोषण अपने पति और समुदाय की जात पंचायत के आलावा जिस गाँव में रुकने के लिए सहारा लेते हैं, वहाँ के दबंग लोगों का शिकार होती है। परिवार और समाज में भी घुमंतू स्त्रियाँ पिसती हुई दिखाई देती हैं। **'परित्यक्ता स्त्री'** इस तरह की स्त्रियों का समुदाय में गौण स्थान होता है। कुछ समुदायों में स्त्री परित्यक्ता होती है तो उसकी शादी किसी दूसरे पुरुष से की जाती है। इसी प्रकार 'विधवा स्त्री' को भी विदा किया जाता है। परन्तु कुछ समुदायों में वह कुछ कमाती है तब तक ठीक होती है, वरना उस स्त्री को पागल बनने अथवा वेश्या बनने के आलावा कोई पर्याय नहीं बचता है। **'देवदासी स्त्री'** विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में संकटों से बचने, बीमारी का इलाज होने, धंदे में बरकत आने और बेटा पैदा होने हेतु बच्चा (लड़का-लड़की) छोड़ने की प्रथा है। लड़का पोतराज, जोगता या वाघ्या नाम से जाना जाता है। लड़की मुरली, जोगती या देवदासी नाम से जानी जाती है। पोतराज घर पर रह कर ही समाज में विधिवत् भिक्षाटन करता है। देवदासी को मंदिर में रहकर कार्य पूरा करना पड़ता है। वर्तमान समय में इस प्रथा को देखते हैं तो पता चलता है कि पोतराज (लड़का) छोड़ने की प्रथा लगभग बंद हुई है, देवदासी की प्रथा कुछ-कुछ जगह पर दृष्टिगोचर होती है।

इस अध्याय का महत्वपूर्ण बिंदु **"विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में सांस्कृतिक विशेषताएँ"** इस उप-अध्याय को आठ भागों में विभाजित किया गया है। जिसमें सर्वप्रथम 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की जीवन प्रणाली' यह जनजातियाँ अस्थिर घुमक्कड़ी करती है। उनकी अपनी जीवन शैली है। उस में सदियों से चली आ रही परंपराओं, मूल्यों और विश्वासों को श्रद्धापूर्वक पालन किया जाता है। **'आवास व्यवस्था'** वे जहाँ पर रुकते हैं तंबू या घासफूस से बनाई झोपड़ी में रहते हैं। झोपड़ी बनाते समय दो झोपड़ियों में अंतर जरुर रखते हैं, ताकि एक झोपड़ी को आग लगे तो दूसरी झोपड़ियों को नुकसान न हो इसलिए इसका विशेष

ध्यान रखते हैं । वर्तमान समय को देखने पर पता चलता है कि कुछ जनजातियाँ पक्के मकान बनवाकर साल में एक या दो बार घुमक्कड़ी के लिए निकलती हैं । परन्तु आज भी अधिकांश जनजातियों को स्थायी मकान या जमीन नहीं है, वे अपनी प्रवृत्ति में कायम है । **'खान-पान'** विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में भोजन की सुविधा कुछ ख़ास दिखायी नहीं देती है । वे पेट की आग बुझाने के लिए भटकते हैं । अधिकांश समुदाय कलाबाजी दिखाकर, देवी-देवता के नाम पर भिक्षा, शिकार में मिले पशु-पंछी और मेहनत-मजदूरी कर उदरनिर्वाह करते हैं । इनमें अधिकत्तर मांसाहारी भोजन करते हुए पाए जाते हैं । इनके देवी-देवता भी मांसाहारी होते हैं । वर्तमान समय देखा में जाए तो सभ्य समाज के संपर्क में आकर भोजन में बदलाव दिखाई देता है। परंतु शराब पीने की आदत में बदलाव नहीं देखा जाता है । कई समुदायों में सन-उत्सव, शादी-ब्याह में और कुछ समुदाय में दुःख में भी शराब पीने का प्रचलन है ।

'वेश-भूषा' में पुरुष सामान्य धोती-कुर्ता पहनते हैं । समुदाय प्रतिष्ठित व्यक्ति धोती-कुर्ते के साथ सिर पर गुलाबी या सफ़ेद रंग का फेटा (पगड़ी) पहनते हैं । बहुरूपी, जोशी और गोंधली समुदाय के पुरुष पारंपरिक कार्य करते समय रंग-बेरंगे कपड़े पहनते हैं । इन समुदायों में स्त्रियाँ अलंकार की बहुत शौक़ीन होती है । कुछ समुदाय में स्त्रियाँ पीतल और रागा धातु के गहने पहनने की भी शौकिया होती है । जिनमें बंजारा, पारधी, घिसाड़ी, धनगर समुदायों की स्त्रियाँ आती है । बंजारा समुदाय की स्त्रियाँ कांच से सजाया हुआ लहँगा, चोली, घूँघट तथा प्लाटिक की चूड़ियाँ और झुमके पहनती है । वर्तमान समय में देखा जाए तो इन जनजातियों के पेहराव में काफी बदलाव दिखाई देता है । कुछ समुदायों में आज भी पारंपरिक वेश-भूषा देखी जा सकती है ।

'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के संस्कार' के अंतर्गत **'जन्म एवं नामकरण'** में शिशु के जन्म से परिवार में ख़ुशी का माहौल आ जाता है । कुछ समुदायों में 'लड़की के जन्म पर खुशियाँ मनायी जाती है । जिसमें 'कोल्हाटी' समुदाय आता है । 'नामकरण' की प्रक्रिया में देखा जाता है कि जिस क्षेत्र में बच्चा जन्म लेता है, वहाँ के प्रसिद्ध स्थान, देवता आदि का आधार बनाते हैं । उदा- समंदर के किनारे पैदा हुए बच्चे का नाम 'समुद्र या समुद्री' आदि । इन जनजातियों में पाया गया है कि नाम बहुत अच्छे रखे जाते हैं परंतु व्यवहार में बदल जाते है ।

'विवाह संस्कार' इन जनजातियों में विवाह हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है । इनके विवाह में अन्य समाज की तुलना में अलग परंपरा पायी गयी है । बाल विवाह की प्रथा है । प्रेम विवाह का सक्त विरोध दिखायी देता है । कोल्हाटी समुदाय में स्त्री विवाह की पद्धति अन्य

समुदायों से विलक्षण होती है । उनका केवल 'चीरा' उतारा जाता है । उस दिन परिवार का माहौल अधिक खुशनुमा होता है । अनमेल विवाह एवं विधवा विवाह' विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में दोनों प्रथाएँ मौजूद हैं । यदि कोई विवाह-विच्छेद करना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम जात पंचायत से स्वीकृति लेनी पड़ती है । जो तलाक लेना चाहता है वह विवाह में जितना खर्चा हुआ है, उतनाही खर्च पूरा कर शादी के बंधन से मुक्त हो सकता है । 'विधवा विवाह' में कुछ जनजातियों में मृत पति के भाई से शादी करा दी जाती है । कुछ जनजातियों में विधवा के साथ जो पुरुष शादी करने को तैयार होता है, उसकी शादी तकिये को सामने रखकर, विधवा वधु को परदे के पीछे खड़ा करके विवाह संपन्न किया जाता है ।

'त्यौहार' में कुछ जनजातियाँ धूमधाम से त्यौहार मनाती हैं । जिनमें- होली (बंजारा), कामणा (बेरड़) आदि । अधिकांश जनजातियों को त्यौहार का अता-पता ही नहीं होता है । होता भी है तो वे जिस गाँव में रुके हैं उस गाँव के अमीर घरों पर आधारित होता है । इनका अपना त्यौहार नहीं होता है । वे साल में एक बार अपने कुलदेवी या देवता को पशु बलि देकर उत्सव मानते हैं ।

'पारंपरिक व्यवसाय' विवेच्य आत्मकथाओं के लेखक जिस जनजाति समुदाय से आते हैं, उन समुदायों का पारंपरिक व्यवसायों का ऐतिहासिक और वर्तमान स्थिति विश्लेषण किया गया है । **'पराया'** आत्मकथा में कैकाड़ी जनजाति है, जिनका मुख्य व्यवसाय बांस या पेड़ की डाली से टोकरियाँ, डालियाँ, फूलदान, ब्रश, झाडू आदि बनाकर बेचना है । आत्मकथा में इस व्यवसाय के साथ-साथ बैंड बजने का भी काम करते हैं । वर्तमान समय बाजार में प्लास्टिक की चीजों ने जगह बनायी, इसलिए इनकी बनायी गयी चीजों में गिरावट दिखायी देती है । इसलिए कैकाडी समुदाय के लोग बैंड बजाना, प्लास्टिक की चीजें बेचने जैसे काम करते दिखायी देते हैं ।

'उचक्का' आत्मकथा में उठाईगीर समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय पत्थर टांकना है । किन्तु आत्मकथा में सन् 1871 में बनाए गए 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' द्वारा घोषित समुदाय समाज और प्रशासन की दृष्टि में अपराधी है । इसलिए समाज में उन्हें चोर समझकर रोजगार से दूर रखा गया । इसलिए उन्हें चोरी करना ही एकमात्र पर्याय बचा, इसलिए मजबूरन अपराध कर उदरनिर्वाह करना पड़ा है । वर्तमान समय में चोरी करना बंद हुआ है, अब वे रास्तें बनाने के लिए पत्थर तोड़ने, मिट्टी खोदने जैसे काम कर रहे हैं ।

'बेरड़' आत्मकथा में बेरड़ जनजाति का पारंपरिक व्यवसाय 'रक्षक' (रक्षण करना) था। समय के अनुसार राजाओं का राज्य ख़त्म हुआ और भारत में अंग्रेजों का प्रवेश हुआ। अंग्रेजों द्वारा बने काले-कानून 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' का शिकार बेरड़ समुदाय भी था। यही कारण है कि आजादी के बाद भी इन्हें अपराधी की दृष्टि से ही देखा गया। उदरनिर्वाह के लिए इस जनजाति के लोग शराब बेचने का काम शुरू किया। कुछ लोग मेहनत, मजदूरी कर जीवन-यापन करते, परंतु पुलिसिया अत्याचार इन पर हावी रहा है। **'डेराडंगर'** आत्मकथा में जोशी जनजाति का पारंपरिक व्यवसाय ज्योतिषी (भविष्य) देखना है। वे पंचाग, हस्तमुद्रा, मुखमुद्रा, व्यक्ति के नाम तथा तोते की सहायता से भविष्य बताते हैं। वर्तमान समय वैश्वीकरण के प्रभाव से इनके पारंपरिक व्यवसाय पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

'छोरा कोल्हाटी का' आत्मकथा में कोल्हाटी समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय 'नाच-गाना' करना है। पूर्वकाल में यह समुदाय राजाओं, सरदारों, देशमुखों के दरबारों, गाँवों में अपना नृत्य प्रस्तुत किया करते थे। कालांतर में सब बदलता गया और कोल्हाटी जनजाति जीवन-यापन की खोज में घुमक्कड़ी करने लगी। वर्तमान समय में टेलीवीजन और आर्केस्ट्रा आदि के कारण इस समुदाय पर भारी प्रभाव पड़ा है। कुल मिलकर विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और उनके व्यवसाय आधुनिकता और वैश्वीकरण की चपेट का नुकसान झेल रही है।

चौथा अध्याय **"विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ"** के अंतर्गत दो उपशीर्षकों को कुल आठ भागों में विभाजित किया गया है। सर्वप्रथम **'विमुक्त-घुमंतुओं की आर्थिक स्थिति'** पर अंग्रजों द्वारा बनाए गए 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' का गहरा प्रभाव दिखायी देता है। जो आजादी के बाद भी है। इन जनजातियों के पास रहने के लिए घर और जोतने के लिए जमीन का न होना इन्हें हमेशा आर्थिक स्थिति से कमजोर बनाता रहा है। मेहनत-मजदूरी करके जो पूंजी जमा करते हैं, वह समूह और दबंगों द्वारा हड़प लिया जाता है। जैसे- जिस गाँव में रुकते हैं वहाँ के दबंगों शिकार बनते हैं। दूसरा अपने ही समुदाय की जात पंचायत के पंचों का शिकार बनते देखा जा सकता है। तीसरा पुलिसिया अत्याचार से जेल में ठुंसे गए परिजनों को बाहर निकालने साहूकार से कर्जा लेना, पशु बेचकर दिवालिया होने और भूख के सवालों की घटनाओं का जाल बुनती हैं यह आत्मकथाएँ।

दूसरे उपशीर्षक में **'राजनितिक स्थिति'** में सर्वप्रथम **'प्रगतिशील विचार और आन्दोलन'** प्रगतिशील विचारों की बुआई अंग्रेजों द्वारा भारत में पाँव जमाने की नीतियों से शुरू होती है।

जो तमाम भारतीय लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर परिवर्तन की मशाल निर्माण करती है। जिनमें राजा राममोहन राय से लेकर गांधी, अम्बेडकर तक के लोगों की जमीन तैयार की। बाद में भी भारतीय समाज में सहमति-असहमतियों के बीच परिवर्तन हुए। इसी बीच महाराष्ट्र के दलितों में अस्तित्व और अस्मिता पर सवाल होने लगे। एक लंबे समय के बाद अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों पर रोक लगाने के लिए **दलित पैंथर** का निर्माण हुआ। जिसके माध्यम से दलित, पीड़ित समूह एक साथ होकर आवाज उठाना शुरू किया। और दूसरी तरफ लेखन के माध्यम से समाज में जनजागृति शुरू की। वही लेखन दलितोत्थान की दिशा में बौद्धिक विचार-विमर्श के धरातल पर साहित्य का सृजन शुरू हुआ। जिसका परिणाम 'दलित साहित्य' है।

'विमुक्त एवं घुमंतूओं के संगठन और कार्य' के अंतर्गत महाराष्ट्र में तमाम आंदोलनों और सगठनों का जन्म हुआ। इसमें एक 'विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति संगठन' है। जो मुंबई, सोलापुर, बीजापुर, अहमदाबाद के सेटलमेंटों और अंग्रेजों की कॉलनियों में आंदोलन छेड़ा था। जिनमें घुमंतू समुदाय के युवा बोधक नगरकर, भीमराव जाधव, माफेरी गुरूजी शामिल थे। इसी का प्रति फल सन् 1952 में 'आदतन अपराधी अधिनियम' (हबिचुँल अफेंडर एक्ट) बनाकर अंग्रेजों द्वारा सन् 1871 में बनाए 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' (क्रिमिनल ट्राइब एक्ट) को ख़त्म किया। परन्तु सन् 1952 में बने अधिनियम ने 'अपराधी' नाम की पूंछ छोड़ी, इसी कारण विमुक्त हुई जनजातियाँ समाज और प्रशासन की नजरों में हमेशा 'शंकित' रही। इसका लेखा-जोखा विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं के माध्यम से देखा जा सकता है।

70 के दशक में दलित आंदोलन और साहित्य सृजन में **'विमुक्त-घुमंतुओं की दूसरी पीढ़ी'** का उत्थान हुआ है। जिनमें बालकृष्ण रेणके, लक्ष्मण गायकवाड़, लक्ष्मण माने, भीमराव गस्ती, दादासाहब मोरे, मोतिराज राठोड आदि ने विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के संगठन का कार्य किया। लक्ष्मण माने महाविद्यालयीन उम्र से 'राष्ट्रीय सेवा दल', 'दलित पैंथर' से जुड़े रहकर जनजातियों के लिए कार्य किया। लक्ष्मण गायकवाड़ ने मील मजदूरी के साथ मजदूरों के लिए कार्य किया। बाद में 'लाल बावटा', 'अम्बेडकरवादी आंदोलन' के द्वारा मराठवाड़ा के क्षेत्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए आंदोलन किया। महाराष्ट्र व कर्णाटक के सीमावर्ती क्षेत्र

में भीमराव गस्ती ने विमुक्त एवं घुमंतुओं के साथ 'देवदासियों' के लिए आंदोलन किया था। इस आंदोलन की गतिविधि में महाराष्ट्र की 'अंधविश्वास निर्मूलन समिति' ने भी योगदान दिया। विशेषतः समिति ने जात पंचायतों द्वारा अत्याचार और बाबा-बुआओं के कर्मकांडों पर लगाम लगाने का कार्य किया है।

अगला उपशीर्षक **'विमुक्त एवं घुमंतुओं का राजनीति में स्थान'** के अंतर्गत गांधीजी के विचारों से प्रभावित कुछ घुमंतू जनजातियों के युवा राजनीति में शामिल हुए। जिसमें महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र से वसंतराव नाईक जो बंजारा समुदाय से थे। 1960 के दशक में कांग्रेस पार्टी की राजनीति से उभरकर सामने आए। वे 1963 से 1975 के लंबे समय महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री रहे, उन्होंने कृषि क्षेत्र और दलित, पिछड़ी जनजातियों के शिक्षा के लिए कार्य किया है। सन् 1970 में दलित पैंथर उभरा। 1975 के आपातकाल में दलित पैंथर के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया जा रहा था, उसमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के युवा भी शामिल थे। इसी कालावधि में लातूर (मराठवाड़ा) से लक्ष्मण गायकवाड़ और सातारा (पश्चिम महाराष्ट्र) से लक्ष्मण माने जैसे कार्यकर्ताओं ने लोकसभा, विधानसभा की राजनीति में हिस्सा लिया था। लक्ष्मण गायकवाड़ को चुनाव के समय राजनीतिक पार्टी ने धोका दिया, जिससे उनका मोहभंग हुआ। इसी समयावधि में लक्ष्मण माने विधानसभा सदस्य रहे थे। और बंजारा समुदाय से सुधाकरराव नाईक (मुख्यमंत्री) किशन राठोड, हरिभाऊ राठोड विधायक रह चुके हैं। वंजारी घुमंतू समुदाय से गोपीनाथ मुंडे महाराष्ट्र के उपमुख्यमंत्री रहे हैं। परन्तु विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का अधिकांश तबका राजनीति से दूर रहा है। जो राजनीति में नेता (लीडर) बने वे अपने ही समुदाय का विकास कर पाए। इसलिए इन जनजातियों का अधिकांश तबका भुलावे की राजनीति के चपेट में आकर मतदाता बनता रहा। जब तक राजनीति भुलावों के मुद्दों से परे जाकर विचार नहीं करेगी, तब तक इन जनजातियों में विकास नहीं होगा। राजनीति सुधार आएगा तो जनजातियों में बदलाव आने में वक्त नहीं लगेगा।

पाँचवाँ अध्याय **'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं में शैक्षणिक-संवैधानिक परिस्थितियों का यथार्थ'** के अंतर्गत दो भागों में आठ उप शीर्षकों में विभाजित किया गया है। सर्व प्रथम विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की **'शैक्षणिक स्थिति'** में आत्मकथाकार ही

अपने समुदाय के प्रथम व्यक्ति होते हैं जो स्कूल जाते हैं । अस्थिरता के कारण अधिकांश बच्चे स्कूल न जाकर परिवार की सहायता करते हैं । जो बच्चे स्कूल जाते हैं उन्हें स्कूल में शिक्षकों और विद्यार्थियों की जातीय-भेदभाव तथा जातीय मानसिकता का अपमान सहना पड़ता है । इस कारण अधिकांश बच्चे स्कूल जाने से पहले ही नकार देते हैं और कुछ बच्चों के माता-पिता भी स्कूल भेजने के विरोध में होते हैं । इस बीच किसी संवेदनशील शिक्षक का मिलना घुमंतू जनजातियों के बच्चों के लिए 'सोने पर सुहागा' जैसी स्थिति होती है । किन्तु भेदभाव, आर्थिक तंगी के बीच घर और समुदाय का दबाव होता है । बढ़ती तकनीकी के कारण शिक्षा तो दूर, इनके व्यवसाय पर असर के कारण ये दिवालिया होने की स्थिति में आ गए हैं । **'आरक्षण और उसका लाभ'** महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की स्थिति को देखने पर पता चला कि, अधिकांश जनजातियों को आरक्षण क्या है ? इसका पता भी नहीं था । जिनको पता था और जिनके समुदाय का राजनीति में नेता-कार्यकर्ता थे, उन्हीं समुदायों का तबका शिक्षा में प्रवेश कर सका । बाकि अधिकांश समुदाय पहले भी और आज भी दूर ही है । जो कोई शिक्षा का लाभ लेना चाहते हैं, उन्हें जात प्रमाणपत्र के लिए पचास साल पुराना दाखिला प्रस्तुत करने की शर्त है । बहुत कम समुदाय के लोगों के पास दाखिला होता है । जिनके पास नहीं होता है वे सरकारी अधिकारीयों को पैसा देकर प्रमाणपत्र निकलवा लेते हैं । अतः विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का अधिकांश तबका आरक्षण के लाभ से वंचित है ।

अगला महत्वपूर्ण उपशीर्षक **'संवैधानिक परिस्थितियाँ'** है । जिसके अंतर्गत सर्वप्रथम **'वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार की शुरुआत'** मानवाधिकार वह नैतिक अधिकार है जो इंसान के व्यवहार से संबंधित कुछ मापदंड स्थापित करता है । ये मानवाधिकार स्थानीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा नियमित रूप से संरक्षित होते हैं । जिन्हें लगभग 'न छीने जाने योग्य' माना जाता है और यह भी माना जाता है कि, ये अधिकार किसी व्यक्ति के जन्मजात अधिकार हैं । जिसे वैश्विक स्तर पर नेपोलियन के बाद सन् 1917 की 'रूसी क्रांति' ने प्रभावित किया था । द्वितीय युद्ध केबाद स्थायी शांति स्थापित करने और विविध राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधने के उद्देश्य से ' संयुक्त राष्ट्र संघ' का निर्माण हुआ । इसके बावजूद भी तमाम महासभाओं, बैठकों और घोषणाओं के बाद मानवाधिकारों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया समाने आ गयी । अतः 10 दिसंबर 1948

के दिन 'विश्व के अधिकांश व्यक्तियों को जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार नहीं किया जाएगा ।

'भारत में मानवाधिकारों की पृष्टभूमि' संविधान में मुलभूत अधिकारों के बावजूद दलित, पिछड़ी जातियों, जनजातियाँ पीड़ित रही है और लगातार पर्याप्त भेदभाव झेल रहे हैं । हालाँकि मानवाधिकार की समस्याएँ भारत में मौजूद हैं फिर भी देश में मानवाधिकारों को लेकर चिंता का विषय नहीं माना जाता है । **'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों और मानवाधिकार'** आजादी के पहले और बाद भी इन जनजातियों के मानवाधिकारों के संरक्षण का इच्छित परिणाम दिखायी नहीं देता है । इनकी आत्मकथाओं के माध्यम से देखने से पता चलता है कि, हमेशा जनजातियों की अस्थिरता, भूमि से वंचित होने का फायदा कुछ पुलिस अधिकारीयों, ठेकेदारों, जमींदारों और गाँव के दबंग लोगों द्वारा किसी-न-किसी कारण पिसती रही हैं ।

अगला उप शीर्षक **'भारतीय संविधान और डी.एन.टीज'** के अंतर्गत सर्व प्रथम भारत का संविधान [1 अप्रैल 2019 को यथाविद्यमान] डॉ. नारायण राजू, सचिव, भारत सरकार, नयी दिल्ली द्वारा संशोधित आवृत्ति से **'अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक प्रावधान'** में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सेवा में संरक्षण तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए पाँचवी अनुसूची द्वारा दिए गए विशेष संरक्षण को देखा गया गया है ।

'विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ और संविधान' के अंतर्गत देखते हैं कि, भारत के देश काल में समय-समय पर बदलाव के अंश देखने को मिलते हैं । जिसका सबसे बड़ा बदलाव भारत स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रनिर्माताओं के विचारों और संविधान सभा में अनेक विचारधाराओं के विद्ध्वानों की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा बना 'संविधान' है । जो जनकल्याण के हित में स्वयं को समर्पित किया गया । देश में तमाम धर्म, संप्रदाय, जाति के बावजूद एक समान विचारों की शृंखला ने 'गणराज्य' देश बनाया । यह भारत के इतिहास में सभ्यता और संस्कृति की बहुत बड़ी कामयाबी है । फिर भी देश में कुछ ऐसे समुदाय सामाजिक दबाव और आर्थिक विपन्नता के कारण वंचित रहे हैं । वह समाज में विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदाय के नाम से जाने जाते हैं । उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक और शैक्षणिक स्थितियों के न्याय प्राप्ति की दशा में शृंखला का प्रश्न महत्वपूर्ण बनकर उभरा है ।

'महाराष्ट्र के सन्दर्भ में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ' अधिकांश समय संवैधानिक अधिकारों और सरकारी नीतियों से वंचित रही है । जिसका कारण महाराष्ट्र की नीतियों में इन जनजातियों को जन-योजनाओं से वंचित रखा गया । जिसमें जमीन, आवास, रोजगार, राशन, जाति प्रमाणपत्र, आरक्षण आदि मुद्दे महत्वपूर्ण हैं । जिन्हें आत्मकथाओं में भी देखा जा सकता है।

अगला उपशीर्षक **'आयोगों के प्रस्ताव एवं क्रियान्वयन'** के अंतर्गत भारत में स्वतंत्रता के बाद समाज से पिछड़ी, वंचित जातियों के विकास हेतु समितियों और आयोगों का गठन किया गया । जिनमें विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के लिए 'अंत्रोलीकार समिति 1949, अयंगर समिति 1949, काका कालेलकर आयोग 1953, बी.डी. देशमुख समिति 1961(म.स), लोकुर समिति 1965 (म.स), बी.पी. मंडल आयोग 1979, वेंकटचलैया आयोग 2002, रेणके आयोग 2005 तथा इदाते आयोग अर्थात राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध घुमंतू जनजाति आयोग 2015 आदि समितियाँ और आयोगों का गठन हुआ है । वर्तमान समय में रेणके आयोग और इदाते आयोग की शिफरिशें (क्रमशः 2008 और 2018) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिकता मंत्रालय, भारत सरकार को सौंपी गयी है । परन्तु किसी भी सरकार ने इन आयोगों के लागू करने हेतु निर्णय नहीं दिया है । आयोगों के सर्वेक्षण में पाया गया है कि विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक और शैक्षणिक दृष्टियों से भारत की सर्वाधिक वंचित एवं उपेक्षित जाति-जनजातियाँ हैं । आशा है कि वर्तमान सरकार 2018 में शिफरिशें दिए गए इदाते आयोग को लागू कर समाज के सबसे वंचित और उपेक्षित तबके को न्याय देगी ।

छटवें तथा अंतिम अध्याय के अंतर्गत **'विवेच्य विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आत्मकथाओं का शिल्प विधान'** में भाषा के माध्यम से रचनाकार किसी दृश्य विशेष का, पात्रों के व्यवहार का अथवा उनके बातचीत का शब्दगत चित्र प्रस्तुत करके अपनी रचना सामग्री को कार्यान्वित करता है । इस प्रस्तुतिकरण के कारण रचनाकार जिन उपादान, प्रक्रिया, ढंग और कौशल से अनुभवों को चित्रित करता है, वह शिल्प कहलाता है । इसी शिल्प को विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से भाषा की विशेषता में बिंब, प्रतीक, मिथक विधानों को शामिल किया है । शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, संवादात्मक, विचारात्मक, पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक एवं पत्रात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है । शब्द चयन के अंतर्गत आत्मकथाओं में सहज तथा आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है । और साथ ही जनजातियों की घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण प्रयुक्त होने वाली सांकेतिक भाषा के शब्दों का प्रयोग उनकी भाषा में होता है । जिसके कारण उसमें जीवंतता आ जाती है । चाहे वह सांकेतिक हो, ग्रामीण शब्दावली या हीनता बोध उत्पन्न करनेवाली जाति सूचक शब्दों हो या

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ हो आदि का यथा योग्य प्रयोग आत्मकथाकारों ने किया है। अंततः मूल पाठ और अनूदित पाठ में अंतर/तुलना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ सूचि :

● उचक्का, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु- डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ती- 2011

● छोरा कोल्हाटी का, किशोर शांताबाई काले, अनु- अरुंधति देवस्थले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1997

● देराडंगर, दादासाहेब मोरे, अनु- अर्जुन चव्हाण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17, जगतपुरी, दिल्ली, पहला संस्करण- 2001

● पराया, लक्ष्मण माने, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, प्रकाशन रबिन्द्र भवन, 35, फिरोज़ शाह रोड, दिल्ली, पाँचवा सं-2016

● बेरड़, भीमराव गस्ती, अनु- गुलाबराव हादे, विद्याविहार प्रकाशन 124/679 B गोविन्द नगर, कानपुर, प्र. सं-2006

हिंदी सहायक ग्रंथ सूचि :

● अछूत, दया पवार, अनु- दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आ-2016

● अस्मितामूलक साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, सं- कर्मानंद आर्य, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, प्र.सं-2018

● आत्मकथा की संस्कृति, पंकज चतूर्वेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2003

● आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, देवेंद्र चौबे, ओरियंटल ब्लैकस्वान प्रा.लि., नई दिल्ली, प्र.सं- 2009

● गुलामगीरी, महात्मा गोविंदराव फुले, अनु./संपा.- विमल कीर्ति, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2017

● घुमंतू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, प्र.सं- 2015

● घुमंतू जातियों का लोकसाहित्य और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2016

● घुमंतू-लोकजीवन की संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. हुकुमचंद जाधव, मित्तल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2016

● घुमंतू है, चोर नहीं : आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, अनु- मधु सिंह, ओरियंटल ब्लैकस्वांग प्राइवेट ली., हैदराबाद, प्र.सं- 2017

● जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतूम्बदे, संपा- रुबीना सैफ़ी, आधार प्रकाशन प्रा. लि, पंचकुला, प्र. सं- 2016

● ज्योतिबा फुले रचनावली, भाग- 1, संपा- विमलकीर्ति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा सं- 2015

● दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प.सं- 2009

● दलित साहित्य वेदना और विद्रोह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्र, दिल्ली, प्र.सं-2010

● दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.सं- 2015

● दलित पैंथर, अजय कुमार, गौतम बुक सेंटर, शहादरा, दिल्ली, सं- 2015

● दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि,. नई दिल्ली, प.छा.सं- 2014

● दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनु- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प.सं- 2016

● दलित पैंथर : भूमिका एवं आन्दोलन, संपा- शरणकुमार लिंबाले, अनु- सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं-2017

● नई समीक्षा, अमृतराय, हिंदुस्थानी पब्लिकेशन हाऊस, बनारस, प्र. सं- 1950

● परंपरागत वर्णव्यवस्था और दलित साहित्य, साक्षांत मस्के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं- 2009

● बाबासाहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाड़मय खंड- 1, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सा.सं- 2013

● बाबासाहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाड़मय खंड- 8, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, आ. सं- 2013

● बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय खंड-10, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सा.सं- 2013

● बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांङ्मय, खंड-11, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिकता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, छठा सं- 2013

● बोलना ही है (लोकतंत्र, संस्कृति और राष्ट्र के बारे में), रवीश कुमार, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र.सं- 2019

● बंजारा लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड़, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं- 2002

● बृहत् हिंदी कोश खंड- 1, संपा- डॉ. राकेश कुमार, केंद्रीय हिंदी निदेशालय उच्चतर शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय (भारत सरकार) नई दिल्ली, प्र.सं- 2018

● भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृ. सं- 2007

● भारत में मानवाधिकार, प्रो. मधुसूधन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र.सं- 2008

● भारत में सामाजिक आन्दोलन, घनश्याम शाह, सेग भाषा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2009

● भारत में मानवाधिकार, डॉ. धर्मेन्द्र के. मिश्रा, ए.आर.एस. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, दिल्ली, प्र.सं- 2010

● भारतीय प्रशासन और राजनीति, संपा- बासुकी नाथ चौधरी, युवराज कुमार, ओरियंटल ब्लैकस्वान प्रा.लि.नई दिल्ली, प्र.सं-2011

● भाषा साहित्य और जातीयता, रामविलास शर्मा, क़िताबघर प्र., नई दिल्ली, प्र.सं- 2012

● भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, मैनेजर पांदेय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं- 2013

● भारत का संविधान [1 अप्रैल 2019 को यथाविद्यामन] प्राक्कथन, डॉ. जी नारायण राजू, सचिव, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1 अप्रैल 2019

● भारत के विमुक्त एवं घुमंतू जन-समुदाय, संपा- व्यंकट धारासुरे, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं-2020

● महान आजीवक कबीर रैदास और गोसाल, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं-2017

● मानवाधिकार (मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी), विष्णु प्रभाकर, राजदेव त्रिपाठी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्र.सं-1960

● मानव अधिकार : नई दिशाएं, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, मानव अधिकार भवन, नई दिल्ली, सं- 2017

● मानक अंग्रेजी शब्द कोश, संपा. सत्यप्रकाश तथा बलदेव प्रसाद, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र.सं- 1971

● मीलस्तंभ, गुलाबराव हादे, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं- 2007

● यथार्थवाद, डॉ. शिवकुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.आ- 2009

● रेत, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि. दिल्ली, पहला सं- 2013

● वकील पारधी, लक्ष्मण गायकवाड़, अनु-प्रभा शेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प.सं- 2011

● विमुक्त-घुमंतू आदिवासियों का मुक्ति-संघर्ष, संपा- रमणिका गुप्ता, कल्याणी शिक्षा परिषद् प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं- 2015

● विश्व इतिहास (दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम), दृष्टी द विज़न, मुखर्जी नगर, दिल्ली, प्र.सं- 2019

● शैली विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र.सं- 1977

● शैली विज्ञान, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, चौथा सं- 2005

● सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, संपा- शंभुनाथ सिंह, भाग- 1, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं- 2004

● संचार जतूलू, चिर्रावुरु नागभूषणाचार्युलू, विश्व श्री आर्ट प्रेस, पिछड़े जातियों का शोध अध्ययन केंद्र, नरसराव पेठ, गुंटूर, प्र.सं-1977

● स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना, डॉ. सौफिया मैथ्यू, हिंदी विभाग, कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन, सं- 1991

● हमारा संविधान, सुभाष काश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति- 2000

● हाशिए का वृतांत, संपा- दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे, आधार प्रकाशन, पंचकुला, प्र. सं- 2011

● हिमालय के यायावर, डॉ. श्याम सिंह शशि, प्रकाशन विभाग, सुचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वि.सं- 1987

● हिंदी आत्मकथा : स्वरूप एवं साहित्य, डॉ. कमलेश सिंह, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, प्रथम सं- 1989

● हिंदी आत्मकथा विधा शास्त्र और इतिहास, डॉ. बापूराव देसाई, गरिमा प्रकाशन, कानपूर, प्रथम.सं- 2011

● हिंदी दलित आत्मकथा, डॉ. संजय नवले, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं-2011

● हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ. चंम्पा श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं- 2013

● हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, बनारस ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस, संवत- 2015

● हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरकांत, राजकमल प्र., दिल्ली, चौथा छात्र सं- 2016

● हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवा सं- 2017

● 1857 का स्वतंत्र समर, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति- 2000

<u>मराठी सहायक ग्रंथ :</u>

● आंधारवाटा, संपा- श्रीकांत मुद्दे, परिवर्तन पब्लिकेशन, लातूर, प्र. आ- 2014

● उचल्या, लक्ष्मण गायकवाड, श्रीविद्या प्रकाशन, शनिवार पेठ, पुणे, बारावी आ- 2013

●उपरा, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर मुंबई, पुनर्मुद्रण- 2006

● क्रांतिवीर विमुक्त भाटक्यांची गाथा, नागनाथ गायकवाड़, गवळी प्र. इस्लापूर, जि.सांगली, प्र.आ- 2013

● गावकुसाबाहेरची मानसं, लक्ष्मण गायकवाड़, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प.आ- 2016

● चरित्र आणि आत्मचरित्र, सदा कऱ्हाड़े, लोकवांग्मय गृह प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं- 1976

● जग बदल घालुनि घाव, एकनाथ आव्हाड, समकालीन प्रकाशन, पुणे, पाचवी आवृत्ति- 2015

● नोटिफाइड ट्राइब्स नोमडिक ट्राइब्स, प्रा. मोतीराज राठोड, निर्माण संस्थान प्रकाशन, पुणे, पहिली आवृत्ती- 2015

● पारध्याचं पोर, मारोतराव जाधव, सुगावा प्रकाशन, पुणे, पहली आवृत्ति-2017

●बेरड, भीमराव गस्ती, राजहंस प्रकाशन प्रा.लि. सदाशिव पेठ, पुणे, स.आ- 2012

● बिराड, अशोक पवार, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, सातवी आवृत्ती- नोव्हेंबर 2014

● भटक्यांच भारूड, लक्ष्मण माने, ग्रंथाली प्रकाशन, दादर मुंबई, दूसरी आवृत्ति- 2006

● भटक्यांचे लग्न, उत्तम कांबले, मनोविकस प्रकाशन, पुणे, सुधारित आवृत्ति- 2010

● भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने, द्रोपदी पंदिलवाड, गोदा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति- 2014

● भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत खंड-1, रामनाथ चव्हाण, देशमुख आणि कंपनी (पब्लिशर्स) प्रा. लि. पुणे, दू.आ- 2016

● भारतीय भटक्यांचा विमुक्तनामा : रेणके आयोग वस्तुस्थिति व विपर्यास, अशोक पवार, सुनीता पवार, लोकपाल पब्लिकेशन, औरंगाबाद, प्र. आ- 2013

● मराठी विश्वकोश खंड-12, संपा- लक्ष्मणशास्त्री जोशी, म.रा.म.वि.नि. मं. मुंबई, आवृत्ति- 1985

● लक्ष्मण माने यांचे साहित्यः एक समाजशआस्त्रीय अभ्यास, ज्ञानेश्वर वाल्हेकर, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.आ- 2008

● वसंतराव नाईक कृषि- औद्योगिक क्रांतिचे प्रणेते, डॉ. उत्तम रुद्रावार, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडल प्रकशन, मुंबई, प्र. आवृत्ति- 2004

● वडार समाज परंपरा व इतिहास, टी.एस चव्हाण, कवी सचिन टी.चव्हाण, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ति-2016

● विमुक्तायन, लक्ष्मण माने, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई, प्रथम आ- 1997

● साठोत्तरी मराठी वांग्मयातील प्रवाह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, भटक्या-विमुक्तांचे साहित्य, दादासाहेब मोरे, दिलिप्रज प्रकाशन प्रा.लि. पुणे, द्वि.आ- 2014

<u>पत्र-पत्रिकाएँ :</u>

● चौमासा, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, विशेषांक- 14, नवंबर 2020- फरवरी- 2021

● जनसत्ता, आधी आबादी का गणतंत्र, पी. चिदंबरम, 5 जनवरी 2020, (हिंदी समाचार पत्र)

● दैनिक लोकमत समाचार पत्र, 20 अगस्त 2015, (मराठी दैनिक समाचार पत्र)

● पुलिस विज्ञान, संपा- विजय कुमार, पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, अंक- 141, जुलाई-दिसंबर-2019

● लोकसत्ता समाचार, चतूरंग पुरवणी, 14 मार्च 2015, (मराठी दैनिक समाचार पत्र)

● सकाळ समाचार, सप्तरंग, रविवार, 23 मार्च 2014, (मराठी दैनिक समाचार पत्र)

<u>बेवसाइट (अंतर्जाल) सूचि :</u>

● By reposrted by himanshu shekhar mishra, edited by suryakant pathak

● file:///E:/आत्मकथा इतिहास/हिंदी साहित्य%20%20एक परिचय.htm

● http://kavitakosh.org

● https://www.bbc.com/hindi

● https://ncert,nic.in

● https://hi.m.wikipedia.org

● http://mr.vikaspedia.in

● https://www.youtube.com

● https://www.hrw.org

● https://sanjaysonawani.blogspot.in

- https://enavnath.wordpress.com
- https://www.jagran.com
- https://www.bhaskar.com
- Ketkardnyankosh.com
- https://satyagrah.scroll.in
- https://www.punjabkesari.in
- https://www.onehimachal.com
- Shodhganga.inflibnet.ac.in

परिशिष्ट

ISSN : 0975-3664
RNI : U.P.BIL/2012/43696
UGC No. : 41386

शोध - धारा
SHODH DHARA

(A peer reviewed Quarterly Research Journal of Humanities & Social Sciences)

Year : 2019 **Month : MAR** **Vol. 1**

Chief Editor
Dr. (Smt.) Neelam Mukesh

52

Editor
Dr. Rajesh Chandra Pandey

Published by : Shakshik Avam Anusandhan Sansthan, Orai (Jalaun) U.P.

SHODH-DHARA

शोध-धारा

Year	:	2019 MAR 2019 Vol.1 Quarterly Research Journal
Publisher	:	**Dr. Rajesh Chandra Pandey** (General Secretary) Shakshik Avam Anushandhan Sansthan Orai (Jalaun) U.P.
Printer	:	**Customer Gallery** Mauni Mandir, Orai (Jalaun) U.P.

Contribution :

One Volume	: 250/-
Individual Five Year	: 2000/- (For Research Scholar)
Individual Life Membership	: 3000/- (For Teachers & Others)
Institutional Five Year	: 2500/-
Institutional Life Membership	: 5000/-

(Duration of Life Membership is 10 year)

Note : All payments relating to this journal shall be made by draft in favour of the "***Editor Shodh Dhara***", Payble at **Orai.**

Office : **Dr. (Smt.) Neelam Mukesh**
Chief Editor, Shodh-Dhara
1075, Bank Colony, Jalaun Road, Orai (Jalaun) 285001, U.P.
Mobile : 9450109471

: **Dr. Rajesh Chandra Pandey**
Editor, Shodh-Dhara
262, Pathakpura, Orai (Jalaun) 285001, U.P..
Mobile ; 9415592698, 9198204835
Email : shodhdharajournal2005@gmail.com

डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय (महासचिव, शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन)) मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी द्वारा कस्टमर गैलरी, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन) से प्रकाशित। संपादक –डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय

Note : * The views expressed in the published articles are their writers own. The agreement of the Editorial Board or the Shodh Pratisthan is not necessary.

* Disputes, If any shall be decided by the court at Orai (Jalaun) U.P.

२१. लोक–सांस्कृतिक सन्दर्भ में हिन्दू गढ़वाल की आभरण परम्परा	अरविन्द कुमार अवस्थी	99-104
२२. सूर्यबाला के उपन्यासों में वर्णित समस्याएं	अमित कौर	105-109
२३. कवि महेश वर्मा 'अशान्त' का व्यक्तित्व एवं क तित्व	गिरीशचन्द्र प्रो. पुष्पा खण्डूरी	110-114
२४. विष्णु प्रभाकर के 'तट के बंधन' उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्या	एस.सुधाकर डा० एल.तिल्ले सेल्वी	115-120
२५. अम तलाल नागर की कहानियों में विषय–वैविध्य	डॉ० तरन्नुम बानो	121-124
२६. प्रगतिशील आन्दोलन का इतिहास	अनिल कुमार यादव	125-131
२७. घुमंतू जनजातियों की श्रम संस्कृति	व्यंकट बा. धारासुरे	132-137
२८. समस्याओं के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य और डॉ. मधु संधु की कहानियाँ	डॉ० दीप्ति	138-141
२६. बहुरि बंदि खल गन सत भाए: रामचरित मानस और हिंदी आलोचना	डॉ० सर्वेश कुमार सिंह	142-145
३०. हिन्दी काव्य में बेटी की विदा	डॉ० सतीश चतुर्वेदी, 'शाकुन्तल'	146-150
३१. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता : देशज एवं पाश्चात्य का द्वन्द्व	अनुपम आनन्द	151-154
३२. युग प्रर्वतक समीक्षक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	डॉ० माधुरी गर्ग	155-159
३३. मार्कण्डेय की कहानियों में ग्राम्य जीवन	प्रवीण मिश्र	160-162
३४. हिन्दी साहित्य : स्त्री सशक्तिकरण	हरिओम कुमार द्विवेदी	163-166
३५. हिन्दी कविता की कलावादी यात्रा : काव्यशास्त्र से सौन्दर्यशास्त्र	डॉ० इकरार अहमद	167-170
३६. हिन्दी साहित्य में व्यंग्य परम्परा : काव्य के विशेष संदर्भ में	डॉ० राजेश चन्द्र पाण्डेय	171-175
३७. शब्द संस्कृति के स्वाधीन चिंतन का रचनाकार–अज्ञेय	डॉ० नरेंद्र मिश्र	176-182
३८. दलित विमर्श की अवधारणा एवं स्वरूप	रमेश गर्ग	183-187
३६. लोक संस्कृति, लोक मूल्य और भारतीय पत्रकारिता	डॉ० बलजीत कुमार श्रीवास्तव	188-194
४०. बाबू शिवपूजन सहाय के साहित्य में नारी–समस्या का अनुशीलन	डॉ० जितेन्द्र कुमार सिंह	195-200
४१. उदात्त की अवधारणा	डॉ० ज्योति मिश्रा डॉ० प्रीति षड़ंगी	201-210
४२. हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता का स्वरूप	सत्यप्रकाश	211-213
४३. लोक साहित्य की प्रासंगिकता	निधि अग्रवाल	214-216
४४. प्रगतिधर्मी कविताओं का विश्लेषण	डॉ० अर्चना त्रिपाठी	217-221
४५. गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता और अवदान	निशान्त मिश्रा	222-227
४६. रंगमंच की द ष्टि से पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक (पौराणिक–सांस्कृतिक नाटक)	डॉ० विनोद कुमार चौबे	228-236
४७. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री चेतना के विविध आयाम (सूर्यबाला के कथा साहित्य के विशेष संदर्भ में)	सौरभ पाण्डेय	237-242

हिन्दी

ISSN : 0975-3664, RNI : U.P.BIL/2012/43696, UGC No. : 41386
SHODH-DHARA ; MAR 2019; Vol. 1; P. 132-137

घुमंतू जनजातियों की श्रम संस्कृति

व्यंकट बा. धारासुरे

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, **हैदराबाद, तेलंगाना**

(प्राप्त : ४ जनवरी २०१६)

Abstract

भारत की घुमंतू जनजातियों की श्रम पर आधारित संस्कृति, भाषा, पारंपरिक व्यवसाय, वेशभूषा, खान–पान अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनके अस्थायी यात्रा करने के अनेक कारण हैं। जिसमें अपनी हजारों सालों की घुमक्कड प्रव त्ति के कारण तो कोई व्यवस्था के दबाव से पीडित होकर अस्थाई यात्रा करती हैं। इनमें से कुछ जातियाँ स्थाई हुई हैं, जिनमें कुछ जातियाँ साल में दो बार यात्रा पर निकलती हैं तो अधिकतर जातियाँ हमेशा घुमक्कडी रहती हैं। ये सभी जनजातियाँ समाज को हमेशा किसी–न–किसी रूप में सेवाएँ देती रही हैं। किन्तु आज उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं को महत्व नहीं दिया जा रहा है। इसलिए सरकार उनके श्रम और कला को रोजगार में तब्दील कर उनके वस्तुओं और कलाओं को महत्व दें। इनके वस्तुओं को खुद खरीदें और रोजगार उपलब्ध करा दें। आज बढते आधुनिकीकरण का इन जनजातियों पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

Figure : 00 References : 11 Table : 00

Key Words : घुमंतू जनजातियाँ, श्रम, संस्कृति और जनजाति

हमारे देश में विभिन्न जाति–जनजातियों के लोग रहते हैं। इन लोगों में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ भी पाई जाती है। यह जनजातियाँ अपने जीवन–यापन के लिए हमेशा एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करती रहती हैं। समाज से दूर, बहिष्कृत यह जनजातियाँ जितना अपमान और शोषण सहती आई है, शायद ही कोई अन्य जाति सह पाई हो। भारत में स्थित वर्णवादी व्यवस्था और बाहरी दबाव के कारण यह जनजातियाँ मुख्यधारा से दूर अपनी घुमंतू प्रव त्ति में जीवन यापन करती रही हैं। लक्ष्मण गायकवाड़ के अनुसार–"भारत में ऐसी २०० जातियों के ८ करोड़ लोग आज भी इस देश में आजादी के लिए तरस रहे हैं।" जिनमें बहुरुपिया, कंजर, लोहार–घिसाडी, जोशी, कैकाड़ी, डोंबारी, कोल्हाटी, नट, बाजीगर, सपेरे, बंजारा, बेदिया, पारधी, वडार, बेलदार, सिकलीगार, गोसावी, भगत, गारुड़ी, सहरिया, बहेलिया, वैदू और मसनजोगी आदि। इन घुमंतू जनजातियों के रीती–रिवाज, रूढ़ि–परंपरा, भाषा, व्यवसाय अलग–अलग हैं। हजारों सालों से यह जनजातियाँ अस्थाई रूप से टांडा, पाल, तंबू बनाकर गाँव, शहरों के इर्द गिर्द अपने जीवन–यापन की तलाश में भटकती रहती हैं।

श्रम संस्कृति का स्वरुपः सामान्यतः सभी आदिवासीयों में सामूहिक न त्य तथा लोकगीतों के बिना कोई भी धार्मिक अथवा सामाजिक उत्सव अधूरा ही माना जाता है। इनकी गतिविधियों, वेशभूषा, खान–पान, सामाजिक उत्सव, सांसेंतिक मनोरंजन, जन्म–म त्यु संबंधित लोकाचार में आदि मूल्यों के आधार पर इनकी जातियों का वर्गीकरण किया जाने लगा। इन्हीं में एक जनजाति आती है 'घुमंतू आदिवासी'। घुमंतू का शाब्दिक अर्थ है 'यात्रा करना', 'खानाबदोशी' या 'यायावरी' में अपना जीवन–यापन करना है। पूर्वकाल में आदिम जानजातियाँ घुमंतू जीवन व्यतीत करती थी। आज भी करती हैं। यह उनकी प्रव त्ति

है। किन्तु वर्तमान में बाहरी दबाव के कारण आर्थिक तंगी, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा निम्नवर्गीय सामाजिक परिवेश के वशीभूत वे घुमंतू जीवन जीने के लिए विवश हैं और कुछ अपनी प्रव त्ति को नहीं छोडती हैं। इसका कारण उनके साथ सदियों से चले आ रहे विश्वासों, परंपराओं और मूल्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं। समाज मे स्थित नैतिकता, अनुशासन, नियम–कानून, धर्म–नीति, संस्कार आदि का पालन किया जाता रहा है। विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों में इस तरह के रीति–रिवाज अन्य जातियों से कुछ भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

वेशभूषाः घुमंतू जनजातियों में हर जाति का अपना–अपना व्यवसाय होता है। इस कारण इनकी वेशभूषा, विवाह पद्धति भी कुछ अलग–सी पाई जाती है। इनकी स्त्रियाँ लगभग एक जैसा पहनावा पहनती हैं, जिसमें लुगड़े (साड़ी), चोली और बंजारा तथा उत्तर भारत की घुमंतू जनजातियों की स्त्रियाँ घाघरा, ओढ़नी, घुँघटा आदि। "पारधी स्त्रियों को गहने बहुत पसंद होते हैं। वे पीतल या रांगा के गहने पहनती हैं।" सौभाग्यवती स्त्रियाँ माथे पर गोल आकार का कुमकुम लगाती है तो घिसाड़ी और बंजारा जनजाति की स्त्रियाँ माथे पर लंबी सिंग या लाठी खींचती हैं। घुमंतू जनजातियों के लगभग सभी पुरुष कुर्ता और पजामा पहनते हैं। महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत के अन्य राज्यों में पुरुष धोती और कमीज पहनते हैं। इसमें धोती को अलग–अलग ढंग से पहनते दिखाई देते हैं और पारधी जनजाति के पुरुष लंगोटीनुमा बनाकर पहनते हैं। कुछ जनजाति के पुरुष सिर पर लाल या सफेद फेटा (पगड़ी) बांधते हैं। बहुरूपी जनजाति के पुरुष रंगी–बिरंगी (अलग–अलग कपड़े से बने हुए) कपड़े पहनकर जोगवा अर्थात् देवी के नाम पर भिक्षा माँगते हैं। अतः समय के अनुसार इन जनजातियों में भी बदलाव दिखाई देता हैं। वर्तमान समय में इन जनजातियों की कुछ स्त्रियाँ मात्र साड़ी–चोली तथा पुरुष पैंट–शर्ट परीधान करते हैं।

भाषाः सामान्यतः सभी घुमंतू जनजातियाँ द्वि भाषिक होती हैं। इसमें उनकी एक अपनी बोलचाल की भाषा जिसे सांकेतिक भाषा कहा जाता है। महाराष्ट्र–कर्नाटक के सीमा पर रहने वाली जतजातियाँ कन्नड़ मिश्रित भाषा बोलती हैं तो महाराष्ट्र–तेलंगाना की सीमावर्ती जनजातियाँ मराठी तेलुगु भाषा भी बोलती हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत की घुमंतू जनजातियाँ भी अपनी सांकेतिक भाषाएँ बोलती हैं । घुमंतू समाज देश का ऐसा समाज है जो सबसे ज्यादा भाषाओं का ज्ञान लेकर चलता है। वह जिस प्रान्त या राज्य में जाता है वहाँ की भाषा को सहजता से स्वीकार करता है। जैसे– तेलुगु, कन्नड़, मराठी, हिंदी, गुजराती, राजस्थानी आदि। इस तरह से घुमंतू जनजातियाँ अन्य समाज के लिए एक भाषा और अपने समाज में सांकेतिक भाषा में व्यवहार करते हैं। प्रा.मोतिराज राठोड़ कहते हैं–"भाषा एक तरह से उनके समुदाय की पहचान करा देती है। दक्षिण में कन्नड़, तेलुगु, तमिल तो उत्तर तथा मध्य भारत में कई हिंदी भाषा तथा उसकी विभिन्न बोलियों से प्रभावित घुमंतू की बोलियाँ, जैसे बेलदार जमाती का मूल स्थान मध्यभारत रहा है, तो हिंदी मिश्रित बेलदार की बोली को बेलदारी कहा जाता है। इस तरह से गोपाल की गोपाली, वाघारी, पारधी बोली, दासनीयता गोसावी, लंवगी, गोसावी, भराड़ी, गोंधकी हिंदी–मराठी मिश्रित बोली बोलते हैं। बेरड़, वडार, कैकडी, मसानजोगी, डवरी, गोसावी, कुड़मुड़े जोशी, पामलारे, वैदू, नंदिवाले आदि तेलुगु, कन्नड़ भाषा मिश्रित बोली बोल लेते हैं।"

खान-पानः खान–पान में घुमंतू जनजातियाँ अधिकतर मांसाहार को पसंद करती हैं। शिकार में मिले मोर, तीतर, खरगोश, मछली तो पालने वाले पशुओं में मुर्गी, बकरे आदि का मांस खाते हैं, और कुछ जनजातियाँ

सुअर, बिल्ली, केकड़े, मछली का मांस खाती हैं। इनके यहाँ त्योहारों, शादी और देवी–देवताओं की पूजा आदि के अवसर पर मांसाहारी भोज के साथ शराब बांटे जाने का रिवाज है। वर्तमान समय जनजातियों में कुछ बदलाव दिखाई देते हैं। इसे समाज का प्रभाव कहेंगे या समाज द्वारा तुच्छता से देखने के कारण भी हो सकता है। सन–उत्सव, विवाह विधि के अवसर पर कुछ जातियाँ भारतीय हिन्दू सभ्यता के अनुसार सामूहिक खान–पान, धार्मिक कार्य करने लगी हैं।

श्रम संस्कृति के प्रकारः घुमंतू जनजातियों के इतिहास की पड़ताल करने के बाद पता चलता है कि यह जतजातियाँ अपने जीवन–यापन के खोज में खानाबदोशी करती रही हैं। आरम्भ से ही इन समुदायों स्थायी ठौर–ठिकाना नहीं रहा है। घुमंतू जनजातियों का अस्थायी ठिकाना न होने के कारण यह जतजातियाँ पिछले हजारों वर्षों से अपना जीवन यापन खानाबदोशी से कर रही हैं। ऐसा करते समय इन्हें कई प्रोंतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार इन्हें कठोर परिश्रम करने पर भी दो वक्त का खाना जुटा पाना मुश्किल हो जाता है। प्रत्येक घुमंतू जनजाति का पारंपरिक व्यवसाय भिन्न होता हैं, इसी कारण उनके व्यवसाय की पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति और उनके श्रम संस्कृति में आए हुए बदलाव का परिचय करना मुख्य उद्देश्य होगा–

बंजाराः– बंजारा समुदाय लगभग संपूर्ण भारत में पाया जाता है। हुकुमचंद जाधव कहते हैं–"इनमें लवण से उत्पन्न रूप लभान, लभाणी, लाबाड़ी आदि हैं तथा वणज या वाणिज्य से उत्पन्न रूप बंजारा, बंजारी, बींजार आदि हैं। ये दोनों रूप उनके व्यापारी होने को ही सूचित करते है। बैलों की पीठ पर नमक तथा आवश्यक चीजों को लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बेचना उनका मुख्य व्यवसाय था। इसी व्यवसाय के बलबूते पर वे अपना जीवनयापन व्यतीत करते रहें हैं।" वर्तमान समय बंजारा जनजाति के २०–२५ परिवार के साथ तांडा व्यवस्था में बसे हुए हैं। यह लोग शक्कर मिल तथा खेतों में गन्ने काटने आदि का अस्थायी मजदूरी का काम करते हैं और काम खत्म होने पर अपने गाँव लौट आना उनकी नियति है। मूल गाँव का अर्थ है– स्थिर बस्ती का स्थान। सौ वर्षों के स्थानांतरण के पश्चात् निश्चित किया हुआ गाँव तथा बस्ती का स्थान।

पारधीः- पारधी जनजाति का पारंपरिक व्यवसाय शिकार करना है। शिकार में खरगोश, तीतर, बगुले, गोह, शहद के छत्ते आदि हैं। यह जंगल में रहने वाली घुमंतू जनजाति है। शिकार की खोज में वे हमेशा भटकती हैं। शिकार जाते वक्त सामूहिक रूप से जाते हैं। इसलिए उनमें सामूहिकता की भावना अधिक प्रखर दिखाई देती हैं। इसी प्रकार शिकार करने वाली जनजातियों में बहेलिया भी आती है। "बहेलिया जनजाति के लोग प्रमुख रूप से उत्तर भारत में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल में भी ये निवास करते हैं। बिहार में इन्हें 'मूला' जनजाति के नाम से जाना जाता है। शिकार करना, पक्षी पकड़ना इनका प्रमुख व्यवसाय है।"

मसनजोगीः-संभवतः मसनजोगी यह घुमंतू जनजाति पूर्व काल में लड़ाकू हुआ करती थी। पराजय के चलते श्मशान का आश्रय लिया होगा। और तब से इन्हें यह उपेक्षा का जीवन जीना पड़ रहा होगा। इस जनजाति के लोग श्मशान में डेरा लगाकर रहते हैं। "पुराने जमाने में ये लोग श्मशान में चिता रचाने में मद्द तथा शव की रक्षा करते थे। कफन से कपड़े सिलाकर पहना करते थे। चिता से बची लकड़ियों से श्मशान के पास ही झोपड़ी बनाकर रहा करते थे। श्मशान सेवा के मुआवजे में लोग इन्हें बख्शीश दिया

करते थे। जिस दिन चिता नहीं जला करती, उस दिन ये लोग गले में रुद्राक्ष माला, देवी–देवताओं की ग हायों की माला, मोरपंखों से बनी टोपी और टोपी के ऊपर इन्सानी खोपड़ी पहनाकर भीख मांगा करते थे।" वर्तमान समय इस जनजाति के लोग कचरा बीनने से लेकर प्लास्टिक से बने सामान बेचने का काम करते हैं। इस समय इस जनजाति की संख्या बहुत कम दिखाई देती हैं।

लुहार, घिसाड़ी और सिकलीगरःलोहार यह जाति पूर्वकाल में बाड़े, रजवाड़े, रथों आदि के दरवाजे, कुंडियाँ, सांकल, पहिये बनाने का कार्य करती थी। इस प्रकार की अनेकों खानाबदोश जातियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाती हैं। जो अलग–अलग नामों से जानी जाती है, जैसे– महाराष्ट्र में घिसाड़ी, उत्तरभारत में गाड़िया लोहार, राजस्थान में गडोलिया और शिकलीगर आदि। डा. भीमराव पिंगले के अनुसार–"घिसाड़ी लोग भी जमींदारों को खुरपी, दरांती, कुल्हाड़ी, कुदाली, पासा, फारुहे आदि सब प्रकार के लोहे की वस्तुएँ तैयार करके देती हैं। इस जाति के लोग वर्ष में दो बार हर एक गाँव में जाते ही हैं।" शिकलीगर समुदाय लोहारों, घिसाड़ियों से कुछ अलग कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। यह समुदाय हमेशा गाँवों–कस्बों, शहरों में खानाबदोशी करते हुए लोहे की चीजों को धार देने का कार्य करता है।

वडार और बेलदारः यह जनजातियाँ संपूर्ण भारत में पायी जाती है। इनका पारंपरिक व्यवसाय पत्थर तोड़ना और दीवार रचना। इसमें वडार जाति पत्थर तोड़ने का काम करती और बेलदार जो संभवतः इसी जाति से उत्पन्न हुई जो दीवार बनाने का काम करती हैं। यह जतजातियाँ पूर्वकाल में गढ़, किले, रजवाड़े आदि के लिए पत्थर तोड़ने तथा बांधने का काम करती थी। टी.एस चव्हाण का कहना है कि– ष्वडार समाज ओडिशा से से स्थानांतरित होते हुए दिखाई देता है। यह समाज श्रीलंका में 'भोवी' नाम से जाना जाता हैं और नेपाल में भी वडार समाज पाया जाता हैं।...इनका मुख्य व्यवसाय पत्थर तोड़ना और दीवार रचना हैं। इसके अलावा यह जाति रास्ते बनाने के लिए पत्थर तोड़ती हैं, धरती से पत्थर निकालकर उसके चीरे तैयार करना, पत्थरों पर नक्काशी करना, किले बांधना आदि मेहनत का काम करनेवाला वडार समाज आज मुख्यधारा से बाहर है।" "खुमरा (khumras) उत्तरी भारत की मुस्लिम जाति है। इनका प्रमुख व्यवसाय खान से पत्थर निकलकर चक्की, सिलपट्टा आदि बनाना एवं उसे बेचना है।"

बैरागी, भगत और गोसावीः "बैरागी यह जाति समूचे देश में बिखरी हुई है। यह बैरागी लोग धार्मिक स्थलों, तिर्थक्षेत्रों और विविध मंदिरों पर दिखाई देते हैं।...देश के हर प्रदेश के मंदिरों में या मंदिरों के आसपास बैरागी अधिक मात्र में दिखाई देते हैं। कुछ बैरागी लोग नाच–गाकर समाज का मनोरंजन करते हैं।" इसी प्रकार भगत जाति के लोग समाज में स्थित लोगों की भूतबाधा, भभूत दूर करने के नामपर भिक्षा माँगते हैं। "भगत जाति के घुमंतू लोग कश्मीर में निवास करते हैं जो संगीत, कला के साथ–साथ भीख माँगने का कार्य भी करते हैं।" गोसावी, नाथ जोगी, डवरी गोसावी जातियाँ अलग–अलग तरह से भिक्षाटन करती हैं। जैसे–गोसावी भगवान् शंकर के नाम पर भिक्षा माँगते हैं। नाथ जोगी समुदाय के लोग आदिनाथ, गोरखनाथ की परंपरा के अनुसार गीत गाते हुए भिक्षा माँगते हैं तथा डवरी गोसावी समुदाय के लोग गाय को साथ लेकर उसकी पूजा–अर्चना करते हुए घर–घर भिक्षा माँगते हैं। डवरी गोसावी समुदाय प्रमुख रूप से महाराष्ट्र और कर्नाटक के कुछ हिस्सों में पाया जाता है।

गारुडी, सपेरे और मदारीः गारुड़ी (सपेरे), मदारी, भालुवाले, नंदीबैल वाले, बहुरुपिया, कलंदर इनके नाम मात्र से ही पता चलता चलता है कि इनकी श्रम संस्कृति में समाज का मनोरंजन करना है। ये लोग

अपना–अपना पारंपरिक व्यवसाय करते हुए, ग्रामीण क्षेत्रों, बाजारों, मेलों जैसी भीड़–भाड़ की जगह पर अपनी कला को प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं।

कोल्हाटी और डोंबारीः कोल्हाटी जनजाति का पारंपरिक व्यवसाय नाच–गाना अर्थात तमाशा दिखाना है। कोल्हाटी समाज मुख्यतः स्त्रियों पर आधारित होता है। संभवतः पूर्व काल में राजाओं के दरबार में न त्य का काम करती हो। समय के अनुसार राजाओं का पतन होता गया तो यह जनजाति भी अपने उदरनिर्वाह की खोज में लोगों का मनोरंजन करते हुए गांव–गांव घुमक्कड़ी रही हों। परिवार के जीवन यापन के लिए स्त्रियों को हमेशा नाच–गाना पड़ता है, इनमें जितना परिवर्तन होना चाहिए उतना दिखाई नही देता है। इनके पुरुष स्त्रियों की कमाई पर मौज–मजा करते हैं। आज भी इन स्त्रियों को अपमान जनक व्यवहार सहते हुए स्थिति के अनुसार परिस्थिति से झगड़ना होता है। यही उनके हिस्से में होता रहा है। डोंबारी समुदाय के लोग कसरतें करके समाज का मनोरंजन करते हैं। ये लोग ग्रामीण क्षेत्र में सुबह के समय अपनी कला प्रस्तुत करने जाते हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में किसान, मजदूर लोग दिन भर मेहनत–मजदूरी के लिए जाते हैं और शाम को मेहनत कारण थके होते हैं। सुबह किसान, मजदूरों और स्कूल के बच्चों का ध्यान आकर्षित हो और अधिक से अधिक लोग कसरतों का आनंद लें उनका उद्देश्य होता है। शहर में यह समुदाय खासकर बाजार के दिन या भीड़–भाड़ की गल्ली–बस्ती में अपनी कला को प्रस्तुत करता हैं।

अतः भारत की घुमंतू जनजातियों की श्रम पर आधारित संस्कृति, भाषा, पारंपरिक व्यवसाय, वेशभूषा, खान–पान अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनके अस्थायी यात्रा करने के अनेक कारण हैं। जिसमें अपनी हजारों सालों की घुमक्कड़ प्रव त्ति के कारण तो कोई व्यवस्था के दबाव से पीड़ित होकर अस्थाई यात्रा करती हैं। इनमें से कुछ जातियाँ स्थाई हुई हैं, जिनमें कुछ जातियाँ साल में दो बार यात्रा पर निकलती हैं तो अधिकतर जातियाँ हमेशा घुमक्कड़ी रहती हैं। ये सभी जनजातियाँ समाज को हमेशा किसी–न–किसी रूप में सेवाएँ देती रही हैं। किन्तु आज उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं को महत्व नहीं दिया जा रहा है। इसलिए सरकार उनके श्रम और कला को रोजगार में तब्दील कर उनके वस्तुओं और कलाओं को महत्व दें। इनके वस्तुओं को खुद खरीदें और रोजगार उपलब्ध करा दें। आज बढ़ते आधुनिकीकरण का इन जनजातियों पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उन्हें भी पता होगा परन्तु अशिक्षा, बेरोजगारी, पिछड़ेपन के कारण वह विकसित नहीं कर पा रही है। आज इन्हें सरकारी संरक्षण की आवश्यकता है। नहीं तो इनके पारंपरिक व्यवसाय, भाषा, लोकगीत, लोककला, मनोरंजन के साधन लुप्त होने के कगार पर हैं, इन्हें संरक्षित करना बहुत जरुरी है, नहीं तो इनकी श्रम और कला संस्कृति खत्म होने में समय नहीं लगेगा।

संदर्भ

१. गुप्ता, सं. रमणिका; विमुक्त–घुमंतू आदिवासियों का मुक्ति संघर्ष, कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, प्र.सं.–२०१५, प.सं.–२१

२. जाधव, डॉ. हुकुमचंद; घुमंतू जातियों का लोकसाहित्य और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, मित्तल एंड संस, दिल्ली, प्र.सं.– २०१६, प.सं. ६२५

३. जाधव, सं. डॉ. हुकुमचंद; घुमंतू–लोकजीवन की संस्क ति के विविध आयाम, प.सं. ३३४–३३५

४. वही, प.सं. ४८

५. उप्रेती, डॉ. हरिशचंद; भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प. सं. २००७, प.सं– ८०
६. जाधव, सं. डॉ. हुकुमचंद; घुमंतू–लोकजीवन की संस्क ति के विविध आयाम, प.सं. ४७
७. पिंगले, डॉ. भीमराव; आदिवासी एवं उपेक्षित जन, अनु. ए.एच. जमादार, विकास प्रकाशन, कानपुर, द्वि.सं– २०१७, प.सं २६०
८. चव्हाण, टी.इस; वडार समाज परंपरा व इतिहास– प्र–कवि सचिन टी. चव्हाण, औरंगाबाद, प्र.आ– २०१६, प. सं– ३३–३४
९. उप्रेती, डॉ. हरिशचंद्र; भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प. सं– २००७, प.सं– ८४
१०. राठोड़, गणपत; घुमंतू जनजातियों का सांस्क तिक अध्ययन, पूजा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं– २०१५, प.सं– २५
११. उप्रेती, डॉ. हरिशचन्द्र; भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प. सं– २००७, प.सं– ८२

MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

Special Issue February 2019

Peer Reviewed International Refereed Research Journal

VIDYAWARTA®

Special Issue – Vol. II

VIMUKTA - NOMADIC CASTES – TRIBES & OTHER BACKSWORD CLASS: PRESENT CONDITIONS, DEVELOPMENT & CHALLENGES.

Guest Editor

Dr.B.K.Shep
Dr.R.D.Rathod
Dr.K.M.Bhange

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

Special Issue – Vol. 02

VIMUKTA - NOMADIC CASTES – TRIBES AND OTHER BACKSWORD CLASS: PRESENT CONDITIONS, DEVELOPMENT AND CHALLENGES.

Guest Editor

Dr.B.K.Shep

Dr.R.D.Rathod

Dr.K.M.Bhange

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat**.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed

Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295

harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

56) हरितक्रांतीचे प्रणेते वसंतराव फुलसिंग नाईक ; जीवन आणि कार्य
डॉ.शिवाजी सोमला पवार, भोकर जि.नांदेड ||141

57) महाराष्ट्रातील विमुक्त—भटक्या जाती—जमाती इतर मागासवर्गीय स्त्रियांची स्थिती
सविता साहेबराव काळबांड, औरंगाबाद ||143

58) डोंबारी समुदाय कासमाजशास्त्र
व्यंकट बा.धारासुरे, हैदराबाद ||145

59) पुरोगामी महाराष्ट्राचे जाणते नेतृत्व- श्री वसंतराव नाईक कृषी, शिक्षण व विविध सुधारणात्मक योजना व कार्याचा ...
प्रा. सोनवळकर रमेश शंकरराव, अंबाजोगाई ||147

60) विमुक्त - भटक्या जाती- जमाती व त्यांची अस्थिर जीवनपद्धती : एक ऐतिहासिक आढावा
प्रा.डॉ.सुर्यवंशी एन.बी., शिरुर अनंतपाळ जि.लातूर ||150

61) समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यातून भटक्या विमुक्त्यांच्या आत्मकथनातील स्त्री : एक शोध
प्रा. डॉ. गायत्री गाडेकर, अंबाजोगाई जि. बीड ||152

62) महाराष्ट्रातील पारधी समाजाची स्थिती आणि त्यांच्या समस्या
मिनाक्षी पुनमचंद कुरिल, औरंगाबाद ||156

63) बीड जिल्हयातील बंजारा जातीची सद्यास्थिती व आव्हाण -एणसमाजशास्त्रीय अभ्यास (विशेष संदर्भ गेवराई तालुका)
डॉ. तंगलवाड डी.एम., गढी,ता.गेवराई,जि.बीड ||159

64) महाराष्ट्रातील विमुक्त—भटक्या जाती— जमाती व इतर मागासवर्गीय विकासात लोकनेते गोपीनाथ मुंडे...
प्रा.जिजाराम रेशिमराव कावळे, अंबाजोगाई ||161

65) पुरोगामी महाराष्ट्राच्या निर्मीतीत वसंतराव नाईक यांचे योगदान
प्रा.राठोड नामदेव मंचा, सिरसाळा ता. परळी वै. जि. बीड ||163

66) वसंतराव नाईकांचे शेतीविषयक योगदान
प्रा. डॉ. वागडव ए. आर. & दांडेगावकर गजानन सुखाजी, औरंगाबाद ||164

67) वसंतराव नाईक यांचे सामाजीक कार्य
प्रा. परळकर शशिकांत दतोपंत, सिरसाळा ता. परळी वै. जि. बीड ||166

68) महाराष्ट्राच्या समृद्धीचा ध्यास घेणारे वसंतराव नाईक
डॉ. सविता मुंडे, जालना ||167

69) महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जमाती
डॉ. भालेराव जी. पी., सेनगांव ता. सेनगांव जि. हिंगोली ||169

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

58

डोंबारी समुदाय कासमाजशास्त्र

व्यंकट बा.धारासुरे
शोधार्थी : हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

****

महाराष्ट्र में डोंबारी यहघुमंतू समुदाय कसरतें करके लोगों का मनोरंजन करता है । वैसे इस समुदाय की उत्पत्ति कोल्हाटी जनजाति से होते दिखाई देती है । पूर्वकाल में इस जनजाति की महिलाएँ राज दरबार में नाच—गाना करके राजा—महाराजाओं का मनोरंजन किया करती थी और इनके पुरुष सैनिक का काम करते थे । इसी समुदाय का कुछ तबका ऐसा था जो समाज में लोगों को समय—समय पर दुश्मनों के सैनिकों का मनोरंजन करने के लिए उनके कबीलों पर जाकर उनका ध्यान आकर्षित करते थे ।दूसरी ओर चालाकी से विरोधी पक्ष को घेरा डाला जाता था और दुश्मनों का गोरिल्ला युद्ध करके पराजय किया करते थे । कालान्तर में राजाओं का पतन होते गया ।तब से ये दोनों समुदाय उदरनिर्वाह की खोज में भटकने लगे । कोल्हाटी समुदाय अपना पारंपरिक व्यवसाय नाच—गाना करता रहा और उसी में से उत्पन्न हुआ डोंबारी समुदाय कला—कसरतों से समाज का मनोरंजन करते हुए भटक रहा है । यहाँ मुझे अज्ञेय की चंद पंक्तियाँ याद आ रही है—

'जो पुल बनायेंगे
वे अनिवार्यतः पीछे रह जायेंगे
सेनायें कर जायेंगी पार
मारे जायेंगे रावण
विजयी होंगे राम
जो निर्माता रहे
इतिहास के बन्दर कहलायेंगे ।'

यही स्थिति आज डोंबारी समुदाय की हुई है ।वे जिस गांव में जाते है उस गाँव की चावड़ी, मंदिर या स्कूल के आसपास की जगह पर अपना डेरा जमाते हैं ।यह समुदाय अपनी कसरतें,कलाएँ ग्रामीण क्षेत्र में सुबह के समय दिखाते हैं, क्योंकि दिनभर लोग गाँव में नहीं होते हैं और शाम के समय दिनभर की मेहनत से थके होते हैं । इस कारण डोंबारीसमुदाय के लोगसुबह ही किसानों, मजदूरों और स्कूल के बच्चों का ध्यान आकर्षित करते हैं । और अधिक से अधिक लोगों को कसरतों का आनंद देतें है । शहर में यह समुदाय खासकर बाजार के दिन और बाकी दिनों में भीडभाड की गल्ली—मोहल्लों में कसरतें दिखाते हैं ।

डोंबारी समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय कसरतें करके समाज का मनोरंजन करना है, बदले में भोजन, अनाज, रुपया मिलता है उसी से अपना उदार्निवाह करते हैं । इस समुदाय में अजीबोगरीब प्रथा—परंपराएँ मौजूद हैं । जिनमें यह लोग महीनों तक स्नान करते नहीं है, खासकर महिलाओं को स्नान करने नहीं दिया जाता है । इनका मानना है कि इनके शरीर की दुर्गन्ध के कारण पर पुरुष इन स्त्रियों से आकर्षित नहीं होता है ।वे अस्पताल भी नहीं जाते हैं, इसका कारण स्त्रियों को डॉक्टर हाथ लगाने से वे अपवित्र हो जाति है और कुछ लोगों को डॉक्टर के पेट काटने का डर होता है । इस समुदाय में खाना बनाने की प्रथा नहीं है, ये लोग अपने बाचे और महिलाओं को भीख मांगने के लिए भेज देते हैं । भीख में जोअन्न मिलता है उसी से अपनी आजीविका चलते हैं दिन भर की थकान के कारण जादातर स्त्री—पुरुष शराब के नशे में होते हैं । और अपने छोटे—छोटे बच्चों को भी शराब पिलाते है, इसलिए की वे जादा शरारत न करें । वे बच्चों को साल—दो साल की उम्र में ही कूदना, लांघना, डांकना, फांदना, उछलना,और रस्सी पर चलना सिखाते हैं ।बचपन से ही वे बच्चों को सय्यमित, एकाग्रत और जिद्दी बनाते हैं ।जो बच्चे कसरत करने में उत्सुकता नहीं दिखाते हैं उन्हें देशी शराब पिलाकर नशे में उनके शरिर को लचीला बनाते है ।

इस समुदाय में अपने व्यवसाय के लिए लड़कियों को अधिक तवज्जो दिया जाता है । लडकियाँ ही इस समुदाय के उत्पादन का साधन होती हैं । लड़कों कुछ ही सालों बाद शरिर दृढ़ होता है और वे बैंड, ढोल और गाने गाने का काम करते हैं ।लड़कियों का शरिर नाजुक होने के कारण उन्हीं को जादा कसरतें करनी पड़ते हैं । समुदाय में इस प्रकार के लड़कियों की अधिक कीमत होती हैं और शादी जल्दी कराई जाती हैं । शादी इसलिए भी जल्दी की जाती है, लड़की पवित्र रहें और कम उम्र में कसरतें करके अपना पारंपरिक व्यवसाय चलाकर परिवार का उदरनिर्वाह करें ।

डोंबारी समुदाय में लड़का लड़की के पिता को दहेज देता है। इसलिए समुदाय में लड़की को महत्व दिया जाता है, लड़की के पिता को समुदाय में महत्वपूर्ण स्थान होता है ।लड़का जब लड़की को देखने जाता है, उस समय माता—पिता और समुदाय के प्रतिष्ठित लोगों को साथ लिया जाता है । लड़के को लड़की के परिवार को भोजन और उसके पिता को शराब की बोतल देनी पड़ती है ।जब सगाई की बाते करते है तब विनियम विवाह के बारे में बाते होती है । जैसे— वधू के भाई कि शादी वर के बहन के साथ करके दोनों शादियाँ एक साथ करने पर महत्व दिया जाता है, और दहेज की बात को यहाँ खत्म किया जाता है । पहली मुलाखत में लड़की बसंद आती है तो लड़के का आना—जाना शुरू रहता है । सगाई के लिए दिन तय करके लड़का और लड़की के सगे— संबंधित लोग और जातपंचायत

के अपने–अपने मुखिया (पटेल) को साथ बुलाया जाता है । पटेल दोनों परिवारों की सहमती से दहेज तय करके पान–सुपारी बांटता है, तब सगाई निर्धारित समझी जाति है फिर लड़के की ओर से दोनों पटेलों और शराब पिलाई जाति है इस समुदाय में शादी की रस्म दो–तीन दिन चलती है ।

डोंबारी समुदाय में जातपंचायत को महत्वपूर्ण स्थान है । इस समुदाय में पत्नी को तलाक देने की प्रथा नहीं है, क्योंकि पुरुषों को शादी करने में दिक्कतें आती है । तलाक के बाद पुन: शादी करनी है तो पहले जैसे संपूर्ण रीति–रिवाज करने पड़ते है । उसके लिए खर्चा अधिक होता है, इसलिए पुरुष तलाक देने के मुसीबत में नहीं पड़ता है । किन्तु पहली पत्नी का देहांत अथवा बाँझ होती है तो उसकी अनुमति लेकर दूसरी शादी हो सकती है । स्त्री का पुनर्विवाह नहीं होता है । इसी प्रकार किसी लड़का या लड़की ने अंतरजातीय विवाह करते हैं तो उसे जातपंचायत द्वारा बहिष्कृत किया जाता है और उस लड़के या लड़की को मृत समझकर श्राद्ध करके भोजन दिया जाता है इस समुदाय में किसी व्यक्ति कादेहांत होता है तो उसे बारह दिनों तक एक ही जगह डेरा बसाते हैं । जो लोग इन नियमों को नहीं मानते हैं, उन्हें बड़ी पंचायत में बैठाया जाता है । महाराष्ट्र में डोंबारी समुदाय के जातपंचायत का प्रमुख स्थान अथवा सुप्रीमकोर्ट पूना है । महाराष्ट्र में डोंबारी समुदाय के किसी भी गाँव का मुकदमा हल नहीं होता है तो इस प्रकार के मुकदमों की सुनवाई पूना के जातपंचायत में की जाति है । इससे स्पष्ट होता है कि डोंबारी समुदाय में जातपंचायत और पंचों का वर्चस्व अधिक है ।

विगत कुछ सालों से कोल्हाटी और डोंबारी समुदायों के अंतर्गत विवाद चल रहा था । इस विवाद की कानाफूसी पुलिसवालों तक पहुच गई और इस जनजाति के जातपंचायत का भांडा फूट गया सदियों से चली आ रही जातपंचायत जैसी कुप्रथा को दिसंबर २०१४ में पुलिस अधिकारीयों और समुदाय के कुछ लोगों ने मिलकर इस सदियों पुराणी जातपंचायत को खत्म करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया है । परन्तु हाल ही में दिए गए वी.एम.न्यूज मराठी (यू ट्यूब) चौनल के अनुसार इचलकरंजी (कोल्हापुर) में २७ नवंबर २०१८ को डोंबारी–कोल्हाटी समुदाय के दंपत्ति (अमर और अश्विनी) ने प्रेम विवाह करने के कारण उन्हें बहिकृत किये जाने का समाचार सामने आया है इस समुदाय में प्रेम विवाह करना अपराध माना जाता है ।यह पता होते हुए भी अमर और अश्विनी ने दो साल पूर्व प्रेम विवाह करके परिवार बसाने निर्णय लिया । आज उन्हें एक संतान भी है, फिर भी समुदाय के पुजारियों (पंच) ने परंपरा के अनुसार शादी नहीं हुई, इसलिए उन्हें दुबारा शादी करने के लिए मजबूर किया और न मानने पर बहिष्कृत किया है। समुदाय के लोगों की दहशत और उपेक्षाके कारण समाज के कुछ लोगों का आदर–भाव रखते हुए उन्होंने दोबारा की है । आज २१वीं सदी में भी जब हम इन समुदायों में इस तरह की घटनाएँ देखते हैं तो विक्षोभ से मन भर उठता है. अपनी परम्परागत सोच से बाहर नहीं आ पाने की वजह से घुमंतू समाज मुख्यधारा से नहीं जुड़ पा रहा है । उनकी अपनी ही सोच उनकी समस्या बन जाती है. कुछ पढ़े लिखे युवा जब अपने समाज के लोगों के भले के बारे में कुछ कदम उठाते हैं तो पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी परम्परागत सोच के जरिये उनकी राह में रोड़ा अटकाते हैं । जाहिर है घुमंतू समुदाय के लोगों की चेतना का विस्तार अभी सुमुदाय में होना बाकि है ।

वर्तमान समय शिक्षा से दूर भटका हुआ डोंबारी समुदाय अपनी कला, कसरतों द्वारा स्वावलंबन, सय्यम, एकाग्रता, सुरक्षा, सन्मान और संघर्ष सिखलाने वाला समुदाय आज अपने अस्तित्व की तलाश में दर–दर भटक रहा है ।आज भूमंडलीकरण के युग में टीवी, मोबाइल, इंटरनेट के कारण डोंबारी समुदाय द्वारा की जानेवाली कसरतें किसी राष्ट्रीय खेलों से कम नहीं परन्तु इन्हें परखा नहीं जाता है । आधुनिक सुविधाओं ने कैमरे द्वारा सबकुछ मोबाइल, टीवी, इंटरनेट में भर लिया है, इस कारण कसरतों को देखने के लिए अब पहले जैसी भीड़ नहीं दिखाई देती है।

इसलिए इस समुदाय के कुछ युवाओं ने अपने कला का रास्ता बदलकर शादियों, जयंतियों जैसे कार्यकर्मों में बैंड बजने, डी.जे. चलाने और सांस्कृतिक कार्यकर्मों में स्त्री–पुरुषों के आवाज में गाने गाने का काम कर रहे हैं इनकी स्त्रियाँ शादी–ब्याह जैसे कार्यकर्मों में बर्तन आदि मांजने का काम करते दिखाई देती है । डोंबारी समुदाय के सामाजिक कार्यकर्त्ता नरसिंग झरे ने विगत कुछ वर्षो से महाराष्ट्र के लातूर तथा अन्य जिलों में अपना सामाजिक कार्य सुरु किया है । इसमें महिलाओं को रोटियाँ बनाने से लेकर, स्नान करके स्वच्छ रहने, घर स्वच्छ रखने, बच्चों की देखभाल करने आदि के पाठ पढ़ा रहे हैं नरसिंग गुरूजी के कारण आज बच्चे स्कूल की राह पकड़ रहे हैं फिर भी इस समुदाय के लोगों को घर बनाने के लिए स्थाई जगहऔर रोजगार के साथ बच्चों को स्कूल की मुलभूत सुविधाएँ देना अत्यंत आवश्यक है ।

सन्दर्भ ग्रंथ :

भाटक्यांच लग्न, उत्तम कांबले,प्र– मनोविकस प्रकाशन, पुणे, आवृत्ति– २०१०,पृ.सं– ४६

घुमंतू–लोकजीवन की संस्कृति के विविध आयाम, हुकुमचंद जाधव,प्र– मित्तल एंड संस, दिल्ली, प्रथम सं–२०१६, पृ.सं–३१३

❑❑❑

आयोजक

गोंडवाना स्वदेश

गढ़बो नवा छत्तीसगढ़

गोंडवाना स्वदेश- मासिक पत्रिका, रायपुर (छत्तीसगढ़) द्वारा आयोजित
एवं संस्कृति विभाग व आदिवासी विकास विभाग, छत्तीसगढ़ शासन द्वारा प्रायोजित

राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी

दिनांक : 27, 28 एवं 29 दिसंबर 2019

राष्ट्रीय आदिवासी नृत्य महोत्सव NATIONAL TRIBAL DANCE FESTIVAL

आदिवासी अस्मिता: कल, आज और कल

(आदिवासी संस्कृति, कला, शिक्षा, साहित्य, विस्थापन, समस्या एवं निदान पर केन्द्रित)

:प्रमाण-पत्र:

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./ डॉ./ श्री/ श्रीमती/ सुश्री अंकुर बा. धारासुरे ने दिनांक 27,28 एवं 29 दिसंबर 2019 को गोंडवाना स्वदेश मासिक पत्रिका द्वारा ''आदिवासी अस्मिता: कल, आज और कल'' विषय पर आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में प्रतिभागी/ विषय विशेषज्ञ/ अध्यक्ष/ वक्ता/ सत्र अध्यक्ष/ सत्र संचालक/ रिपोर्टियर/ आयोजन समिति के सदस्य के रुप में सहभागिता की। इन्होंने विमुक्त - घुमंतू आदिवासियों की समस्याएं और निदान विषय पर शोध पत्र/ शोध आलेख/ व्याख्यान प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी संरक्षक	संगोष्ठी संयोजक	संगोष्ठी सह-संयोजक	संगोष्ठी सह-संयोजक
मान. श्री अमरजीत भगत	**श्री रमेश ठाकुर**	**डॉ. नरेश कुमार साहू**	**श्री जितेन्द्र सोनकर**
कैबिनेट मंत्री खाद्य, संस्कृति, सांख्यिकी एवं योजना विभाग छत्तीसगढ़ शासन	संपादक, गोंडवाना स्वदेश जन जागरण के लिए प्रतिबद्ध मासिक पत्रिका	सदस्य, संपादक मंडल गोंडवाना स्वदेश जन जागरण के लिए प्रतिबद्ध मासिक पत्रिका	सदस्य, संपादक मंडल गोंडवाना स्वदेश जन जागरण के लिए प्रतिबद्ध मासिक पत्रिका

देशभक्त बाबासाहेब भा. खंजिरे

॥ श्रम एव जयते ॥

दे.भ.बाबासाहेब भाऊसाहेब खंजिरे शिक्षण संस्थेचे,

नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस् अ‍ॅण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी.

नॅक पुनर्मूल्यांकन 'B' (2.80 स्कोर) (शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर संलग्न)

कै.श्रीमती सरोजिनीताई बा. खंजिरे

हिंदी विभाग एवं

शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद के

संयुक्त तत्वावधान में परिषद का

पंचम अधिवेशन तथा एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

शनिवार दि. 07 दिसंबर, 2019

"इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श" (सन–2010 से अब तक)

प्रमाणपत्र

प्रा./डॉ./श्री./श्रीमती व्यंकट धारासुरे

को एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में बीजभाषक/सत्राध्यक्ष/विषयतज्ञ/आलेख प्रस्तोता

(विषय विमुक्त एवं घुमंतू जनजातीय आत्मकथा लेखन की परंपरा) प्रतिभागी/संयोजन समिति सदस्य

के रूप में उपस्थित रहने के उपलक्ष्य में यह प्रमाणपत्र दिया जाता है।

डॉ. रघुनाथ देसाई	डॉ. सुनील बनसोडे	डॉ. माधव मुंडकर	डॉ. पुरंधर नारे
अध्यक्ष	सचिव	संयोजक	प्राचार्य, नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस्
शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद	शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद	अध्यक्ष, हिंदी विभाग	अ‍ॅण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी.

वडार घुमंतू जनजाति के लोग पत्थर तोड़ते हुए | पांढूरनी-पेठवडज रास्ते पर (महाराष्ट्र)

वडार समुदायों के तंबुओं पर बातचीत के दौरान, वसंतनगर-पांडूरनी रास्ते पर (महाराष्ट्र)

यह लॉकडाउन शुरुआत की तस्वीर है | इसमें पत्थर काटनेवाली वडार जनजाति के लोग कम मजदूरी में काम करने पहुँचे हैं | (पेठवडज – मुखेड के रास्ते पर)

माती वडार जनजाति के लोगों के साथ (मुखेड – लातूर रोड पर), मेरे जाने पर काम छोड़कर उत्सुकता से इकठ्ठा हुयी महिलाएँ

कैकाड़ी जनजाति के लोगों के साथ | वैश्वीकरण का प्रभाव से मूल व्यवसाय ख़त्म होने पर प्लास्टिक की कटोरियाँ और गगरियाँ बेचकर उदरनिर्वाह करते परिवार (जांब – लातूर के बीच जलकोट की रोड पर)

ज्योतिष देखने और राशि की अँगूठी बेचते हुए जोशी जनजाति का व्यक्ति, मालेगाँव मेला (महाराष्ट्र)

मेले में युवक अपने परिजनों के साथ अपना भविष्य देखते हुए |

धन्यवाद !